माध्यमिक पाठ्यक्रम

223 - भारतीय संस्कृति और विरासत

NIOS
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्थान)

ए-24/25, शैक्षणिक क्षेत्र, सैक्टर-62, नोएडा-201309 (उ॰प्र॰)

Website: www.nios.ac.in, Toll Free No. 18001809393

ISBN 978-93-85808-31-9

एनआईओएस वाटरमार्क 70 जीएसएम पेपर पर मुद्रित।

© राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

पुनर्मुद्रण : दिसंबर, 2024 (2,000 प्रतियाँ)

सचिव, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, ए-24-25, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर-62, नोएडा-201309 द्वारा प्रकाशित एवं मैसर्स रास टैक्नोप्रिंट, सी-22/21, सैक्टर-57, नोएडा-201301 द्वारा मुद्रित।

सलाहकार समिति

अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

संयुक्त निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

पाठ्यचर्या समिति

डॉ श्याम सिंह शशि
आयुक्त, प्रकाशन विभाग,
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रो. आर. पी. शर्मा
पूर्व प्रधान एवं विभागाध्यक्ष
शिक्षा विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. भिक्षु सत्यपाल
बौद्ध अध्ययन विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

श्री आई.एस. अस्थाना
पूर्व प्रधानाचार्य,
भारतीय डिग्री कॉलेज फरुखाबाद,
उ.प्र.

प्रो. एम. के. दास
विभागाध्यक्ष, शिक्षा संकुल
एम.जी. काशी विद्यापीठ,
वाराणसी, उ.प्र.

डॉ. हुमा मसूद
प्रोग्राम अधिकारी (शिक्षा),
यूनेस्को

डॉ. प्रत्युश के. मंडल
एसोसिएट प्रो. (इतिहास),
डी.ई.एस.एस.एच., एनसीईआरटी
नई दिल्ली

डॉ. इन्दु विरेन्द्र
एसोसिएट प्रोफेसर,
जामिया मिलिया इस्लामिया
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

श्रीमती अनीता देवराज
प्रधानाचार्य,
डी.ए.वी. पब्लिक स्कुल
बहादुरगढ़, हरियाणा

डॉ. एस. एस. हसन
संस्कृति फाऊंडेशन,
नई दिल्ली

डॉ. रमेश चन्द्र
पूर्व रीडर (अर्थशास्त्र),
डी.ई.एस.एस.एच., एनसीईआरटी
नई दिल्ली

श्री आर. एन. मीणा
शैक्षिक अधिकारी (संस्कृत)
शैक्षिक विभाग
(एनआईओएस), नोएडा

डॉ. सी. एम. खन्ना
अध्यक्ष एमडीपीपी एंड एसके नई दिल्ली

पाठ लेखक

डॉ. आई.एस. अस्थाना
पूर्व प्रधानाचार्य,
भारतीय डिग्री कॉलेज
फरूखाबाद, उ.प्र.

श्रीमती अनीता देवराज
प्रधानाचार्य
डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल
बहादुरगढ, हरियाणा

डॉ. रमेश चन्द्र
पूर्व रीडर (अर्थशास्त्र)
डी.ई.एस.एस.एच., एनसीईआरटी
नई दिल्ली

श्री हितेन्द्र श्रीवास्तव
प्रधानाचार्य, स्पेस इंडिया स्कूल,
कंझावला, दिल्ली-110081

श्री सी.एम. खन्ना
अध्यक्ष, एमडीपीपी
एंड एस.के., नई दिल्ली

डॉ. इंदु विरेन्द्र
एसोसिएट प्रोफेसर,
जामिया मिलिया इस्लामिया
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. प्रत्युश के. मण्डल
एसोसिएट प्रो. (इतिहास)
डी.ई.एस.एस.एच.,
एनसीईआरटी, नई दिल्ली

डॉ. सर्वदमन मिश्र
व्याख्यता (इतिहास)
गवर्नमेंट कॉलेज,
अजमेर (राजस्थान)

राम नारायण मीणा
शैक्षिक अधिकारी (संस्कृत)
शैक्षिक विभाग (एनआईओएस), नोएडा

संपादक

डॉ. आई. एस. अस्थाना
पूर्व प्रधानाचार्य
भारतीय डिग्री कॉलेज
फरूखाबाद, (उ.प्र.)

श्रीमती अनीता देवराज
प्रधानाचार्य
डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल
बहादुरगढ़, हरियाणा

डॉ. रमेश चन्द्र
पूर्व रीडर (अर्थशास्त्र)
डी.ई.एस.एस.एच., एनसीईआरटी
नई दिल्ली

श्री राम नारायण मीणा
शैक्षिक अधिकारी (संस्कृत)
शैक्षिक विभाग (एनआईओएस)
नोएडा

अनुवादक

डॉ. आई. एस. अस्थाना
पूर्व प्रधानाचार्य
भारतीय डिग्री कॉलेज
फरूखाबाद, (उ.प्र.)

श्री सी. एम. खन्ना
अध्यक्ष, एमडीपीपी
एंड एस.के., नई दिल्ली

श्री राम नारायण मीणा
शैक्षिक अधिकारी (संस्कृत)
शैक्षिक विभाग (एनआईओएस)
नोएडा (यू.पी.)

श्रीमती शशि प्रभा गोयल
पूर्व रीडर, एस.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली

श्रीमती पुष्पा गर्ग
अनुवादक (फ्रीलांस), मयूर विहार फेज-2 दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयकर्ता

राम नारायण मीणा
शैक्षिक अधिकारी (संस्कृत), शैक्षिक विभाग, एनआईओएस, नोएडा

ग्राफिक्स आर्टिस्ट

श्री महेश शर्मा
ग्राफिक्स आर्टिस्ट, एनआईओए, नोएडा

लेजर टाइपसेटिंग – शिवम् ग्राफिक्स

आपके साथ एक बात

प्रिय शिक्षार्थी,

यह रोचक विषय भारतीय संस्कृति एवं विरासत चुनने के लिए आप को बधाई। आप जानते होंगे कि हमारे भारत देश का एक लम्बा इतिहास रहा है क्योंकि यह विश्व की पुरातन सभ्यताओं में से एक है। इस पाठ्यक्रम में आप हमारे गौरवशाली राष्ट्र की सम्पन्न और समृद्ध संस्कृति और विरासत के विषय में अध्ययन करेंगे। मुझे विश्वास है कि आप इस प्राचीन भव्य सभ्यता का एक अंग होने पर गर्व का अनुभव करेंगे। आपने स्वयं कभी कल्पना भी नहीं की होगी, जो आश्चर्यजनक उन्नति हमारे पूर्वजों ने मनुष्य के रूप में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में की है चाहे वह क्षेत्र भाषा का रहा हो या वह विपुल साहित्य का, जो हमें प्राप्त हुआ है, अथवा कला और स्थापत्य, संगीत, नृत्य, नाटक, विज्ञान, शिक्षा, दर्शन और धर्म का रहा हो। हमारी संस्कृति और विरासत इतनी आकर्षक है कि विदेशों में भी इसका अनुकरण किया गया अथवा किया जा रहा है। आप इन सब के विषय में इस पाठ्यक्रम सामग्री में पढ़ सकेंगे। मुझे विश्वास है कि आपको यह सब पढ़ कर सुखद अनुभूति और प्रसन्नता होगी।

इस छोटे से पाठ्यक्रम में हमारी विशाल संस्कृति और विरासत के बारे में सब कुछ तो नहीं बताया जा सकता है। परन्तु मुझे विश्वास है कि इससे आपको इस विषय में पुस्तकालयों से तथा पुस्तकें पढ़कर और अधिक जानने की प्रेरणा मिलेगी। आप इंटरनेट से भी और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं यदि यह व्यवस्था आपको सुलभ हो। आप में से कुछ ऐसे भाग्यशाली होंगे जो स्वयं इन स्थानों की यात्रा करके स्वयं अपनी आंखों से देख कर साक्षात अनुभव प्राप्त कर करेंगे। एक अन्य संसाधन संग्रहालय हैं जो हमारी संस्कृति और विरासत के कलात्मक अवशेषों के भण्डार गृह हैं और जिनकी वहाँ के संरक्षकों द्वारा निरन्तर बड़े श्रम और स्नेह से देखभाल की जाती रही हैं।

यह सामग्री आपके ज्ञानवर्धन और बहुत ही रोचक इस क्षेत्र में आपकी अन्त: दृष्टि के प्रवेश हेतु एक मित्र, दार्शनिक और पथप्रदर्शक का कार्य करने के उद्देश्य से निर्मित की गई है।

अगर ऐसा हुआ तो हम यहाँ राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के सदस्य के रूप में यह जानकर बहुत प्रसन्न होंगे कि हम आपको इस समृद्ध धरोहर से परिचित कराने में सफल हो सके हैं, जिसको हम सबने अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किया है।

किसी भी प्रकार की टिप्पणी और सुझावों का स्वागत होगा। मैं आपको अपने अध्ययन, भविष्य तथा भावी जीवन के लिए सफलता की कामना करता हूँ।

एनआईओएस पाठ्यक्रम दल

अपने पाठ कैसे पढ़ें !

बधाई! आपने स्व-शिक्षार्थी बनने की चुनौती स्वीकार की है। एनआईओएस हर कदम पर आपके साथ है। आपकी पाठ्य सामग्री भारतीय संस्कृति और विरासत विषय के विशेषज्ञों की समिति ने तैयार की है। इसे विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें, इसके लिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकेत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएँगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है, आइए जानें–

पाठ का शीर्षक : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते है कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

भूमिका : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा।

उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ के उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएँगे। इन्हें याद कर लीजिए और जाँच लीजिए कि आपने उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया।

विषय : सम्पूर्ण विषय सामग्री को कई भागों एवं उपभागों में विभाजित किया गया है। ये भाग आपको विषय सामग्री के एक घटक से दूसरे घटक में ले जाते हैं और उपभाग विषय सामग्री के घटक के विचार को समझने में सहायता करते हैं।

टिप्पणी : आपके लिए महत्त्वपूर्ण बिंदु को लिखने या टिप्पणियाँ लिखने के लिए प्रत्येक प ष्ठ में किनारे की ओर खाली स्थान दिया गया है इसका भरपूर उपयोग करें।

क्रियाकलाप : विषय को अच्छी तरह समझने हेतु आपके लिए कुछ क्रियाकलाप दिए गए हैं।

पाठगत प्रश्न : इसमें एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित हैं, इनका उत्तर आपको देते चलना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढते चलिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से कीजिए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

आपने क्या सीखा : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है। इन मुख्य बिंदुओं को याद कीजिए। यदि आप अपने अनुभव की मिलती-जुलती कुछ नई बातें जोड़ना चाहते हैं, तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : पाठ के अंत में लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न दिए गए हैं। इन्हें आप अलग पन्नों पर लिखकर अभ्यास कीजिए।

उत्तरमाला : इनके माध्यम से आप बोध प्रश्नों तथा पाठगत प्रश्नों के उत्तर का मिलान कर सकते हैं।

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत : यह आपको सही उत्तर खोजने में सहायता करेंगे।

भारतीय संस्कृति और विरासत (223)

पाठ्यक्रम विभाजन

मॉड्यूल का नाम कुल पाठ 21	I अनुशिक्षक अंकित मूल्यांकन (पाठ्यक्रम का 40%)	II सार्वजनिक परीक्षा (पाठ्यक्रम का 60%)
	09 पाठ	12 पाठ
मॉड्यूल 1 संस्कृति	पाठ 2 भारतीय संस्कृति	पाठ 1 संस्कृतिः एक परिचय
मॉड्यूल 2 विभिन्न युगों में इतिहास और संस्कृति	पाठ 3 प्राचीन भारत	पाठ 4 मध्यकालीन भारत पाठ 5 आधुनिक भारत
मॉड्यूल 3 भाषाएं और साहित्य	पाठ 6 भारतीय भाषाएँ और साहित्य- I	पाठ 7 भारतीय भाषाएँ और साहित्य-II
मॉड्यूल 4 धर्म और दर्शन	पाठ 8 प्राचीन भारत में धर्म और दर्शन पाठ 9 मध्यकालीन भारत में धर्म और दर्शन	पाठ 10 आधुनिक भारत में धार्मिक सुधार आन्दोलन
मॉड्यूल 5 चित्रकला, प्रस्तुति कलाएँ और वास्तुकला	पाठ 13 भारतीय स्थापत्य कला	पाठ 11 भारतीय चित्रकला पाठ 12 प्रस्तुति कलाएँः संगीत, नृत्य और नाटक
मॉड्यूल 6 विज्ञान और प्रौद्योगिकी	पाठ 14 भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी पाठ 15 प्राचीन भारत के वैज्ञानिक	पाठ 16 मध्यकालीन भारत के विज्ञान और वैज्ञानिक पाठ 17 आधुनिक भारत के वैज्ञानिक
मॉड्यूल 7 शिक्षा	--	पाठ 18 भारत में शिक्षा
मॉड्यूल 8 सामाजिक संरचना	पाठ 20 वर्तमान भारत में सामाजिक सांस्कृतिक समस्याएँ	पाठ 19 भारतीय समाज की संरचना
मॉड्यूल 9 भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार	--	पाठ 21 भारतीय संस्कृति का विदेश में प्रसार

नमूना प्रश्न पत्र देखने के लिए कृपया एनआईओएस की वेबसाइट **www.nios.ac.in** पर जाएं।

विषय सूची

माड्यूल - 1 : संस्कृति

पाठ-1 : संस्कृति: एक परिचय 1

पाठ-2 : भारतीय संस्कृति 10

माड्यूल - 2 : विभिन्न युगों में इतिहास और संस्कृति

पाठ-3 : प्राचीन भारत 20

पाठ-4 : मध्यकालीन भारत 48

पाठ-5 : आधुनिक भारत 69

माड्यूल - 3 : भाषाएँ एवं साहित्य

पाठ-6 : भारतीय भाषाएँ एवं साहित्य-I 89

पाठ-7 : भारतीय भाषाएँ एवं साहित्य-II 105

माड्यूल - 4 : धर्म और दर्शन

पाठ-8 : प्राचीन भारत में धर्म और दर्शन 122

पाठ-9 : मध्यकालीन भारत में धर्म और दर्शन 139

पाठ-10 : आधुनिक भारत में धर्म-सुधार आंदोलन 152

माड्यूल - 5 : चित्रकला, प्रस्तुति कलाएँ और वास्तुविज्ञान

पाठ-11 : भारतीय चित्रकला 168

पाठ-12 : प्रस्तुति कलाएँ : संगीत, नृत्य और नाटक 184

पाठ-13 : भारतीय वास्तुविज्ञान 204

माड्यूल - 6 : विज्ञान और प्रौद्योगिकी

पाठ-14 : भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी 233

पाठ-15 : प्राचीन भारत के वैज्ञानिक 250

पाठ-16 : मध्यकालीन भारत में विज्ञान और वैज्ञानिक 261

पाठ-17 : आधुनिक भारत के वैज्ञानिक 269

माड्यूल - 7 : शिक्षा

पाठ–18 : भारतीय में शिक्षा 280

माड्यूल - 8 : सामाजिक संरचना

पाठ–19 : भारतीय सामाजिक संरचना 297

पाठ–20 : समकालीन भारत में सामाजिक–सांस्कृतिक मुद्दे 315

माड्यूल - 9 : भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार

पाठ–21 : भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार 327

पाठ्यचर्या *350*

फीडबैक फॉर्म

1

संस्कृति - एक परिचय

अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' लेटिन भाषा के 'कल्ट या कल्टस' से लिया गया है, जिसका अर्थ है जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना और पूजा करना। संक्षेप में, किसी वस्तु को यहाँ तक संस्कारित और परिष्कृत करना कि इसका अंतिम उत्पाद हमारी प्रशंसा और सम्मान प्राप्त कर सके। यह ठीक उसी तरह है जैसे संस्कृत भाषा का शब्द 'संस्कृति'। 'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषा की धातु 'कृ' (करना) से बना है। इस धातु से तीन शब्द बनते हैं 'प्रकृति' (मूल स्थिति), 'संस्कृति' (परिष्कृत स्थिति) और 'विकृति' (अवनति स्थिति)। जब 'प्रकृत' या कच्चा माल परिष्कृत किया जाता है तो यह संस्कृत हो जाता है और जब यह बिगड़ जाता है तो 'विकृत' हो जाता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:–

- संस्कृति के विचार और अर्थ को समझ सकेंगे;
- संस्कृति और सभ्यता के बीच संबंध स्थापित कर सकेंगे;
- संस्कृति और विरासत के मध्य संबंध स्थापित कर सकेंगे, और
- मानव जीवन में संस्कृति की भूमिका और प्रभाव का विवेचन कर सकेंगे।

1.1 संस्कृति की अवधारणा

संस्कृति जीवन की विधि है। जो भोजन आप खाते हैं, जो कपड़े आप पहनते हैं, जो भाषा आप बोलते हैं और जिस भगवान की आप पूजा करते हैं, ये सभी संस्कृति के पक्ष हैं। सरल शब्दों मे हम कह सकते हैं कि संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसमें हम सोचते हैं और

कार्य करते हैं। इसमें वे चीजें भी सम्मिलित हैं जो हमने एक समाज के सदस्य के नाते उत्तराधिकार में प्राप्त की हैं। एक सामाजिक वर्ग के सदस्य के रूप में मानवों की सभी उपलब्धियाँ संस्कृति कही जा सकती हैं। कला, संगीत, साहित्य, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म और विज्ञान सभी संस्कृति के पक्ष हैं। तथापि संस्कृति में रीतिरिवाज, परम्पराएँ, पर्व, जीने के तरीके, और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष का अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित हैं।

इस प्रकार संस्कृति मानव जनित पर्यावरण से सम्बन्ध रखती है जिसमें सभी भौतिक और अभौतिक उत्पाद एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्रदान किये जाते हैं। सभी समाज वैज्ञानिकों में एक सामान्य सहमति है कि संस्कृति में मनुष्यों द्वारा प्राप्त सभी आन्तरिक और बाह्य व्यवहारों के तरीके समाहित हैं। ये चिह्नों द्वारा भी स्थानान्तरित किए जा सकते हैं जिनमें मानवसमूहों की विशिष्ट उपलब्धियाँ भी समाहित हैं। इन्हें शिल्पकलाकृतियों द्वारा मूर्त रूप प्रदान किया जाता है। अत: संस्कृति का मूल केन्द्र बिन्दु उन सूक्ष्म विचारों में निहित है जो एक समूह में ऐतिहासिक रूप से उनसे सम्बद्ध मूल्यों सहित विवेचित होते रहे हैं। संस्कृति वह है जिसके माध्यम से लोग परस्पर सम्प्रेषण करते हैं, विचार करते हैं और जीवन के विषय में अपनी अभिवृत्तियों और ज्ञान को विकसित करते हैं।

संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्त है। यह हमारे साहित्य में, धार्मिक कार्यों में, मनोरंजन और आनन्द प्राप्त करने के तरीकों में भी देखी जा सकती हैं। संस्कृति के दो भिन्न उप-विभाग होते हैं– भौतिक और अभौतिक। भौतिक संस्कृति उन विषयों से जुड़ी है जो हमारे जीवन के भौतिक पक्षों से सम्बद्ध हैं, जैसे हमारी वेशभूषा, भोजन, घरेलू सामान आदि। अभौतिक संस्कृति का सम्बध विचारों, आदर्शों, भावनाओं और विश्वासों से है।

संस्कृति एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक देश से दूसरे देश में बदलती रहती है। इसका विकास एक स्थानीय, क्षेत्रीय अथवा राष्ट्रीय संदर्भ में विद्यमान ऐतिहासिक प्रक्रिया पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए हमारे अभिवादन की विधियों में, हमारे वस्त्रों में, खाने की आदतों में, सामाजिक और धार्मिक रीतिरिवाजों और मान्यताओं में परिचम से भिन्नता है। दूसरे शब्दों में, किसी भी देश के लोग अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्पराओं के द्वारा पहचाने जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. आप कैसे कह सकते हैं कि कल्चर और संस्कृति का अर्थ समान होता है?

....

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

   अ. मनुष्यों और समूहों की सभी उपलब्धियाँ .... कहलाती हैं।

   ब. संस्कृति के दो भिन्न पक्ष होते हैं– भौतिक और ....

1.2 संस्कृति और सभ्यता

संस्कृति और सभ्यता दोनों शब्द प्रायः पर्याय के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। फिर भी दोनों में भिन्नता होते हुए दोनों के अर्थ अलग-अलग हैं। 'सभ्यता' का अर्थ है जीने के बेहतर तरीके और कभी-कभी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने समक्ष प्रकृति को भी झुका देना। इसके अन्तर्गत समाजों को राजनैतिक रूप से सुपरिभाषित वर्गों में संगठित करना भी सम्मिलित है जो भोजन, वस्त्र, संप्रेषण आदि के विषय में जीवन स्तर को सुधारने का प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रकार कुछ वर्ग अपने आप को अधिक सभ्य समझते हैं, और दूसरों को हेय दृष्टि से देखते हैं। कुछ वर्गों की इस मनोवृत्ति ने कई बार संघर्षों को भी जन्म दिया है जिनका परिणाम मनुष्य के विनाशकारी विध्वंस के रूप में हुआ है।

इसके विपरीत, संस्कृति आन्तरिक अनुभूति से सम्बद्ध है जिसमें मन और हृदय की पवित्रता निहित है। इसमें कला, विज्ञान, संगीत और नृत्य और मानव जीवन की उच्चतर उपलब्धियाँ सम्मिहित हैं जिन्हें सांस्कृतिक गतिविधियाँ कहा जाता है। एक व्यक्ति जो निर्धन है, सस्ते वस्त्र पहने है, वह असभ्य तो कहा जा सकता है परन्तु वह सबसे अधिक सुसंस्कृत व्यक्ति भी कहा जा सकता है। एक व्यक्ति जिसके पास बहुत धन है वह सभ्य तो हो सकता है पर आवश्यक नहीं कि वह सुसंस्कृत भी हो। अतः जब हम संस्कृति के विषय में विचार करते हैं तो हमें यह समझना चाहिए कि यह सभ्यता से अलग है। जैसा कि हमने देखा, संस्कृति मानव के अन्तर्मन का उच्चतम स्तर है। मानव केवल शरीरमात्र नहीं हैं। वे तीन स्तरों पर जीते हैं और व्यवहार करते हैं भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक। जबकि सामाजिक और राजनैतिक रूप से जीवन जीने के उत्तरोत्तर उत्तम तरीकों को तथा चारों ओर की प्रकृति का बेहतर उपयोग 'सभ्यता' कहा जा सकता है परन्तु सुसंस्कृत होने के लिए यह पर्याप्त नहीं है। जब एक व्यक्ति की बुद्धि और अन्तरात्मा के गहन स्तरों की अभिव्यक्ति होती है तब हम उसे 'संस्कृत' कह सकते हैं।

पाठगत प्रश्न 1.2

1. संस्कृति और सभ्यता में क्या अन्तर है?

   ....

2. संस्कृति और सभ्यता में दो समानताएँ लिखिए।

   ....

1.3 संस्कृति और विरासत

सांस्कृतिक विकास एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। हमारे पूर्वजों ने बहुत सी बातें अपने पुरखों से सीखी है। समय के साथ उन्होंने अपने अनुभवों से उसमें और वृद्धि की। जो अनावश्यक था, उसको उन्होंने छोड़ दिया। हमने भी अपने पूर्वजों से बहुत कुछ सीखा। जैसे समय बीतता है, हम उनमें नए विचार, नई भावनाएँ जोड़ते चले जाते हैं और इसी प्रकार जो हम उपयोगी नहीं समझते उसे छोड़ते जाते हैं। इस प्रकार संस्कृति एक पीढी से दूसरी पीढी तक हस्तान्तरिक होती जाती है। जो संस्कृति हम अपने पूर्वजों से प्राप्त करते हैं उसे सांस्कृतिक विरासत कहते हैं। यह विरासत कई स्तरों पर विद्यमान होती है। मानवता ने सम्पूर्ण रूप में जिस संस्कृति को विरासत के रूप में अपनाया उसे मानवता की विरासत कहते हैं। एक राष्ट्र भी संस्कृति को विरासत के रूप में प्राप्त करता है जिसे राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत कहते हैं। सांस्कृतिक विरासत में वे सभी पक्ष या मूल्य सम्मिलित हैं जो मनुष्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी अपने पूर्वजों से प्राप्त हुए हैं। वे मूल्य पूजे जाते हैं, संरक्षित किए जाते हैं और अटूट निरन्तरता से सुरक्षित रखे जाते हैं और आने वाली पीढ़ियाँ इस पर गर्व करती हैं।

विरासत के संप्रत्यय को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण सहायक सिद्ध होंगे। ताजमहल, स्वामी नारायण मंदिर (गांधी नगर और दिल्ली), आगरे का लाल किला, दिल्ली की कुतुब मीनार, मैसूर महल, दिलवाड़े का जैन मंदिर (राजस्थान), निजामुद्दीन-औलिया की दरगाह, अमृतसर का स्वर्ण मंदिर। दिल्ली का शीशगंज गुरुद्वारा, सांची स्तूप, गोआ में क्रिश्चियन चर्च, इंडिया गेट आदि हमारी विरासत के महत्त्वपूर्ण स्थान हैं और ये किसी भी प्रकार संरक्षित किये जाने चाहिए।

वास्तु संबंधित इन रचनाओं, इमारतों शिल्पकृतियों के अलावा बौद्धिक उपलब्धियाँ, दर्शन, ज्ञान के ग्रन्थ, वैज्ञानिक आविष्कार और खोज भी विरासत का हिस्सा हैं। भारतीय संदर्भ में गणित, खगोल विद्या और ज्योतिष के क्षेत्र में बौधायन, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य का योगदान, भौतिकशास्त्र के क्षेत्र में कणाद और वराहमिहिर का, रसायनशास्त्र के क्षेत्र में नागार्जुन, औषधि के क्षेत्र में सुश्रुत और चरक, योग के क्षेत्र में पतञ्जलि हमारी भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रगाढ़ खजाने हैं। संस्कृति परिवर्तनशील है लेकिन हमारी विरासत परिवर्तनील नहीं है। हम प्रत्येक जो किसी संस्कृति या निश्चित समूह से संबंध रखते हैं दूसरे समुदाय/संस्कृति से सांस्कृतिक गुणों को ले सकते हैं, लेकिन हमारा जुड़ाव, भारतीय सांस्कृतिक विरासत के साथ नहीं बदलेगा। हमारी भारतीय सांस्कृतिक विरासत हमें एक-दूसरे से बाँधे रखेगी जैसे भारतीय साहित्य और धर्मग्रंथ जैसे- वेद, उपनिषद, गीता और योग आदि ने, सभ्यता की उन्नति में सही ज्ञान, सही क्रिया, व्यवहार और अभ्यास को सभ्यता के परिपूरक के रूप में देकर योगदान किया है।

पाठगत प्रश्न 1.3

1. सांस्कृतिक विरासत क्या है?

   ....

2. सांस्कृतिक विरासत के कुछ उदाहरण दीजिये।

   ....

1.4 संस्कृति की सामान्य विशेषतायें

अब हम कुछ सामान्य विशेषताओं का विवेचन करेंगे जो संपूर्ण संसार की विभिन्न संस्कृतियों में समान हैं–

1. **संस्कृति सीखी जाती है और प्राप्त की जाती है,** अर्थात् मानव के द्वारा संस्कृति को प्राप्त किया जाता है इस अर्थ में कि कुछ निश्चित व्यवहार हैं जो जन्म से या अनुवांशिकता से प्राप्त होते हैं, व्यक्ति कुछ गुण अपने माता-पिता से प्राप्त करता है लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहारों को पूर्वजों से प्राप्त नहीं करता हैं। वे पारिवारिक सदस्यों से सीखे जाते हैं, इन्हें वे समूह से और समाज से जिसमें वे रहते हैं उनसे सीखते हैं। यह स्पष्ट है कि मानव की संस्कृति शारीरिक और सामाजिक वातावरण से प्रभावित होती है। जिनके माध्यम से वे कार्य करते हैं।

2. **संस्कृति लोगों के समूह द्वारा बाँटी जाती है-** एक सोच या विचार या कार्य को संस्कृति कहा जाता है यदि यह लोगों के समूह के द्वारा बाँटा और माना जाता या अभ्यास में लाया जाता है।

3. **संस्कृति संचयी होती है-** संस्कृति में शामिल विभिन्न ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जा सकता है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, ज्यादा से ज्यादा ज्ञान उस विशिष्ट संस्कृति में जुड़ता चला जाता है, जो जीवन में परेशानियों के समाधान के रूप में कार्य करता है, पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहता है। यह चक्र बदलते समय के साथ एक विशिष्ट संस्कृति के रूप में बना रहता है।

4. **संस्कृति परिवर्तनशील होती है-** ज्ञान, विचार और परम्परायें नयी संस्कृति के साथ अद्यतन होकर जुड़ते जाते हैं। समय के बीतने के साथ ही किसी विशिष्ट संस्कृति में सांस्कृतिक परिवर्तन संभव होते जाते हैं।

5. **संस्कृति गतिशील होती है-** कोई भी संस्कृति स्थिर दशा में या स्थायी नहीं होती है। जैसे समय बीतता है संस्कृति निरंतर बदलती है और उसमें नये विचार और नये कौशल जुड़ते चले जाते हैं और पुराने तरीकों में परिवर्तन होता जाता है। यह संस्कृति की विशेषता है जो संस्कृति की संचयी प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है।

6. **संस्कृति हमें अनेक प्रकार के स्वीकृति व्यवहारों के तरीके प्रदान करती है-** यह बताती है कि कैसे एक कार्य को संपादित किया जाना चाहिये, कैसे एक व्यक्ति को समुचित व्यवहार करना चाहिए।

7. **संस्कृति भिन्न होती है-** यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें विभिन्न पारस्परिक भाग एक-दूसरे पर आश्रित हैं। यद्यपि ये भाग अलग होते हैं, वे संस्कृति को पूर्ण रूप प्रदान करने में एक दूसरे पर आश्रित होते हैं।

8. **संस्कृति अक्सर वैचारिक होती है-** एक व्यक्ति से उन विचारों का पालन करने की आशा की जाती है जिससे प्रायः यह एक आदर्श तरीका प्रस्तुत करती है जिससे उसी संस्कृति के अन्य लोगों से सामाजिक स्वीकृति प्राप्त की जा सके।

पाठगत प्रश्न 1.4

1. अनुमति देने योग्य व्यवहारिक आदर्शों से क्या अभिप्राय है?

   ....

2. आप कैसे कह सकते हैं कि संस्कृति गतिशील है।

   ....

1.5 मानव जीवन में संस्कृति का महत्त्व

संस्कृति जीवन के निकट से जुड़ी है। यह कोई बाह्य वस्तु नहीं है और न ही कोई आभूषण है जिसे मनुष्य प्रयोग कर सकें। यह केवल रंगों का स्पर्श मात्र भी नहीं है। यह वह गुण है जो हमें मनुष्य बनाता है। संस्कृति के बिना मनुष्य ही नहीं रहेंगे। संस्कृति परम्पराओं से, विश्वासों से, जीवन की शैली से, आध्यात्मिक पक्ष से, भौतिक पक्ष से निरन्तर जुड़ी है। यह हमें जीवन का अर्थ, जीवन जीने का तरीका सिखाती है। मानव ही संस्कृति का निर्माता है और साथ ही संस्कृति मानव को मानव बनाती है।

संस्कृति का एक मौलिक तत्त्व है धार्मिक विश्वास और उसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति। हमें धार्मिक पहचान का सम्मान करना चाहिए, साथ ही सामयिक प्रयत्नों से भी परिचित होना चाहिए जिनसे अन्तःधार्मिक विश्वासों की बातचीत हो सके, जिन्हें प्रायः अन्तः सांस्कृतिक वार्तालाप कहा जाता है। विश्व जैसे-जैसे जुड़ता चला जा रहा है, हम अधिक से अधिक वैश्विक हो रहे हैं और अधिक व्यापक वैश्विक स्तर पर जी रहे हैं। हम यह नहीं सोच सकते कि जीने का एक ही तरीका होता है और वही सत्य मार्ग है। सह-अस्तित्व की आवश्यकता ने विभिन्न संस्कृतियों और विश्वासों के सह-अस्तित्व को भी आवश्यक बना दिया है। इसलिए इससे पहले कि हम इस प्रकार की कोई गलती करें, अच्छा होगा कि हम अन्य संस्कृतियों को भी जानें और साथ ही अपनी संस्कृति को भी भली प्रकार

समझें। हम दूसरी संस्कृतियों के विषय में कैसे चर्चा कर सकते हैं जब तक हम अपनी संस्कृति के मूल्यों को भी भली प्रकार न समझ लें।

सत्य, शिव और सुन्दर ये तीन शाश्वत मूल्य हैं जो संस्कृति से निकट से जुड़े हैं। यह संस्कृति ही है जो हमें दर्शन और धर्म के माध्यम से सत्य के निकट लाती है। यह हमारे जीवन में कलाओं के माध्यम से सौन्दर्य प्रदान करती है और सौन्दर्यनुभूतिपरक मानव बनाती है; यह संस्कृति ही है जो हमें नैतिक मानव बनाती है और दूसरे मानवों के निकट सम्पर्क में लाती है और इसी के साथ हमें प्रेम, सहिष्णुता और शान्ति का पाठ पढ़ाती है।

पाठगत प्रश्न 1.5

1. संस्कृति एक सभ्य जीवन हेतु क्या प्रदान करती है?

   ....

2. कौनसा व्यक्ति समाज में असंस्कृत कहलाएगा?

   ....

आपने क्या सीखा

- संस्कृति शब्द लैटिन भाषा के 'Cult' या 'Cultus' शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है विकसित करना या परिष्कृत करना।
- संस्कृति संस्कृत भाषा की धातु 'कृ' से लिया गया है जिसका अर्थ है करना।
- संस्कृति को एक व्यक्ति और विशेष रूप से एक समूह की जीवन, सोच और अनुभवों और उनको संगठित करने, जीवन को बांटने और उत्सव मनाने के एक मार्ग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।
- संस्कृति की विभिन्न विशेषतायें हैं संस्कृति एक समूह के द्वारा प्राप्त की जाती हैं, नष्ट की जा सकती है, या बाँटी जाती हैं। यह संचयी है। यह परिवर्तनीय हैं, विविध है और हमें करने योग्य व्यवहारों के विविध तरीके प्रदान करती है, यह परिवर्तित हो सकती है। संस्कृति में भौतिक और गैर-भौतिक दोनों घटक आते हैं।
- गहन अर्थ में यह संस्कृति ही है जो साहित्य के विविध रूप, संगीत, नृत्य, कलाकृति, स्थापत्य और विभिन्न दूसरी कलाकृतियों, साथ ही बहुत से संगठनों और संरचनाओं को उत्पन्न करती हैं, जो समाज की क्रियाओं को सुगम और सुव्यवस्थित बनाती है।

- संस्कृति एक अच्छा जीवन जीने के लिये विचार, आदर्श और मूल्य देती है।
- आचरण में आत्म-नियंत्रण, दूसरों की भावनाओं, अधिकारों के प्रति उदार हृदय होना संस्कृति की सर्वोत्तम पहचान है।
- सांस्कृतिक विरासत का अर्थ है संस्कृति के वे सभी पक्ष या मूल्य जो मानव की अगली पीढ़ी को उनके पूर्वजों के द्वारा हस्तान्तरिक किये जाते हैं।
- वास्तुकला संबंधी रचनायें, स्मारक, बौद्धिक उपलब्धियाँ, दर्शनशास्त्र, ज्ञान के ग्रन्थ, वैज्ञानिक खोज और आविष्कार आदि सभी विरासत के अंग हैं।

पाठांत प्रश्न

1. आप संस्कृति की अवधारणा को कैसे परिभाषित करेंगे?
2. संस्कृति और सभ्यता कैसे समानार्थक हैं?
3. सांस्कृतिक विरासत क्या है?
4. संस्कृति की सामान्य विशेषतायें क्या हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1.1 1. कल्चर का शाब्दिक अर्थ है विकसित या परिष्कृत करना और संस्कृति का भी शाब्दिक अर्थ है सुसंस्कृत करना, निर्माण करना

2. अ. संस्कृति

ब. अभौतिक

1.2 1. संस्कृति वह है जो हम हैं और सभ्यता वह है जो हम प्राप्त करते हैं या प्रयोग में लाते हैं।

2. संस्कृति और सभ्यता दोनों में परिवर्तन होता है। सभ्यता संस्कृति की उच्च अवस्था है।

1.3 1. संस्कृति जो हम अपने पूर्वजों से ग्रहण करते है- हमारी सांस्कृतिक विरासत कहलाती है।

2. ताजमहल, आगरे का लाल किला, वेद, उपनिषद और गीता (वास्तुकला संबंधी स्मारक, ज्ञान के ग्रन्थ, वैज्ञानिक और विद्वत्तापूर्ण उपलब्धियाँ।

1.4 1. संस्कृति आदर्श व्यवहार के तरीके प्रदान करती है जिनका व्यक्तियों के द्वारा अनुसरण किया जाता है।

2. संस्कृति निरंतर बदलती रहती है। समय-समय पर नये विचार और नयी पद्धतियाँ उसमें जुड़ती जाती हैं।

1.5 1. संस्कृति हमें श्रेष्ठ जीवन जीने के लिये विचार, आदर्श और मूल्य प्रदान करती है।

2. वह व्यक्ति जिसके विचारों में, अनुभव में, कार्य में आत्म-नियंत्रण नहीं है वह असंस्कृत व्यक्ति कहलाता है।

2

भारतीय संस्कृति

क्या आपने कभी सोचा हैं कि मानव ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में, चाहे वह भाषा, साहित्य, कला व वास्तुकला हो या धर्म हो, हैरान कर देने वाली प्रगति की है। क्या आप कभी यह सोचकर हैरान हुए हैं कि यह संभव कैसे हुआ? निश्चित रूप से इसलिये क्योंकि हर बार हमें नई शुरुआत नहीं करनी पड़ी बल्कि, पूर्व पीढ़ी के द्वारा किये गये काम को उपयोग में लाने तथा उस पर आगे और निर्माण करने में हम सक्षम होते रहे हैं। आपने अपने लिये अपनी एक नई लिपि तैयार करने या एक नयी भाषा के निर्माण करने के बारे में कभी ध्यान ही नहीं दिया होगा। समाज के एक सदस्य के रूप में यह सब कुछ आपको पहले से ही दिया जा चुका है जिन्हें आप उपयोग में लाते हैं। फिर आप अपने योगदान से इसमें कुछ जोड़कर आने वाली पीढ़ी के लिये इसको समृद्ध करते हैं। यह एक लगातार चलने व कभी न खत्म होने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य के पास प्रारंभ से ही एक अनोखा गुण है, जिसे संस्कृति के नाम से जाना जाता है। चूंकि संस्कृति जीवन जीने का एक तरीका है इसलिये आपकी एक संस्कृति है, आपके परिवार की एक संस्कृति है और वैसे ही आपके क्षेत्र और आपके देश की भी एक संस्कृति है। आप भारतीय संस्कृति के अनोखेपन के बारे में एवं इसके विशिष्ट लक्षणों के बारे में जानने के लिये उत्सुक होंगे। इस इकाई में हम जानेंगे कि कैसे भारतीय संस्कृति विशिष्ट है और इसकी क्या विशेषताएँ हैं?

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आपः–

- संस्कृति के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन कर सकेंगे;
- भारतीय संस्कृति के केन्द्र बिन्दुओं और इसकी मुख्य विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे;

- भारतीय संस्कृति में अध्यात्मवाद की महत्ता का वर्णन कर सकेंगे;
- इसमें अंतनिर्हित एकता और विविधता के बिंदुओं की पहचान कर सकेंगे;
- भारतीय संस्कृति के साथ अन्य संस्कृतियों के समागम की प्रक्रिया को दर्शा सकेंगे।

2.1 भारतीय संस्कृति की विशेषतायें/मूलभूत लक्षण

भारतीय संस्कृति जीवन के समान ही बहुपक्षीय है। इसमें मनुष्य के बौद्धिक और सामाजिक पक्ष सम्मिलित हैं। यह मनुष्य की सौन्दर्यात्मक तथा आध्यात्मिक भावनाओं को भी दर्शाती है। वस्तुतः चरित्र का निर्माण करने वाली शक्ति के रूप में इसमें अवचेतन के प्रति प्रेरणा भी निहित है।

भारत के मानचित्र को देखिए। भारत एक ऐसा विशाल देश है जो स्वयं में भौतिक और सामाजिक वातावरण की अनेक विविधता को समाये हुए हैं। हम अपने आस-पास विभिन्न भाषाओं में बात करने वाले, विभिन्न धर्मों और रीति-रिवाजों को मानने वाले लोगों को देखते हैं। आप यह विविधता उनके खान-पान तथा पहनावे में भी देख सकते हैं। इसके अतिरिक्त नृत्य तथा संगीत के क्षेत्र में भी हमारे देश में विविधतायें हैं लेकिन इन सभी विविधताओं के साथ इन सबमें एक एकात्मकता भी है जो इनको एक साथ जोड़ने का काम करती है। भारत में सदियों से लोगों का मेल-मिलाप होता रहा है। भिन्न-भिन्न जातीय व नृजातीय (Ethnic) पृष्ठभूमि तथा विभिन्न धर्मों पर आस्था रखने वाले काफी लोग यहाँ आकर बसे हैं। हमें नहीं भूलना चाहिये कि भारतीय संस्कृति का विविध व बहु-आयामी चरित्र एक लंबी अवधि के दौरान सभी विविध सांस्कृतिक समूहों के संश्लेषण का ही देन है। भारतीय संस्कृति का यह विशिष्ट लक्षण और अनोखापन सभी भारतीयों के लिये अमूल्य धरोहर है।

2.1.1 निरंतरता और बदलाव

संसार के विभिन्न देशों और क्षेत्रों में अनेक महान संस्कृतियों का विकास हुआ। इनमें से बहुत सी लुप्त हो गईं या उनका स्थान अन्य संस्कृतियों ने ले लिया। बहरहाल भारतीय संस्कृति में सहनशीलता का गुण रहा है। कुछ बड़े बदलाव और उथल-पुथल के बावजूद भारतीय इतिहास की धारा में शुरुआत से लेकर आज तक निरंतरता की एक कड़ी देखी जा सकती है।

आपने हड़प्पा की उस सभ्यता के बारे में पढ़ा होगा, जो भारतीय उपमहाद्वीप में फली-फूली थी। यह लगभग 4500 साल से भी ज्यादा पुरानी है। पुरातत्त्वविदों को यहाँ हड़प्पा सभ्यता से भी पहले की संस्कृति के होने के प्रमाण मिले हैं। यह प्रमाण हमें बताते हैं कि हमारा इतिहास बहुत प्राचीन है। इसके बावजूद आश्चर्यजनक बात यह हैं कि आज भी भारत वर्ष के गाँवों के मकानों की बनावट हड़प्पा के समय के मकानों से बहुत ज्यादा भिन्न नहीं है।

हड़प्पा कालीन संस्कृति की कुछ प्रथायें आज भी प्रचलित हैं। जैसे मातृ देवी और पशुपति की उपासना। वैदिक, बौद्ध और जैन धर्म तथा कई अन्य धर्मों की परम्परायें आज भी प्रचलित हैं लेकिन इसके साथ बदलते तत्त्वों को भी अनदेखा नहीं करना चाहिये जैसे बंबई और दिल्ली जैसे महानगरों की बहुमंजिली इमारतें जो हड़प्पा सभ्यता के एकमंजिला मकानों से काफी भिन्न हैं। यहाँ इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि हमारी सभ्यता में निरंतरता और बदलाव साथ-साथ चलता रहता है। वास्तव में निरंतरता बनाये रखने के साथ-साथ परिवर्तन भारतीय संस्कृति की विशिष्टता रही है। जहाँ एक ओर संस्कृति के दर्शन की मूल भावना निरंतर रही है वहीं संस्कृति उन तत्त्वों को लगातार बदलती रही है जो आधुनिक युग के अनुरूप नहीं रहे हैं। हमारे लंबे इतिहास में कई उतार-चढ़ाव आये, जिसके परिणामस्वरूप कई आंदोलन विकसित हुए और बदलाव लाये गये। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जैन और बौद्ध धर्म द्वारा वैदिक धर्म में प्रवर्तन तथा आधुनिक भारत में अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ नवजागरण ऐसे उदाहरण हैं जिनके द्वारा भारतीय चिंतन और व्यवहार में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। इस प्रकार फिर भी भारतीय संस्कृति के मूल दर्शन का सूत्र टूटा नहीं और जारी है। इस प्रकार निरंतरता और परिवर्तन का क्रम भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। यह हमारी संस्कृति की गतिशीलता का परिचायक है।

2.1.2 विविधता और एकता

विगत तीन हजार वर्षों में भारतीय संस्कृति बड़ी सफलता पूर्वक लेकिन शांत रहकर अन्य धर्मों और संस्कृतियों के उत्तम धारणीय तथ्यों को देखती रही है और समय-समय पर उनको अपने अन्दर समाविष्ट भी करती रही है।

निस्सन्देह संसार में कुछ ही संस्कृतियों में ऐसी विविधता है जैसी भारतीय संस्कृति में। शायद आप हैरान होते होंगे कि क्यों पकाने के लिये केरल के लोग नारियल तेल इस्तेमाल करते हैं और उत्तर प्रदेश के लोग सरसों का तेल इस्तेमाल करते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि केरल एक समुद्रतटीय प्रदेश है और नारियल वहाँ बहुतायत में पाया जाता है जबकि उत्तर प्रदेश एक मैदानी इलाका है जो कि सरसों के उत्पादन के लिये अनुकूल है। पंजाब के भाँगड़ा नृत्य या आसाम के बिहू नृत्य में क्या समानता है? दोनों ही फसल की अच्छी उपज के बाद मनाये जाते हैं। क्या आपने कभी ध्यान दिया है कि हम अलग-अलग भाषायें बोलते हैं जैसे बंगाली, तमिल, गुजराती या उड़िया? भारत विभिन्न प्रकार के नृत्य और संगीत का भण्डार है जिसे हम सामान्यत: उत्सव के लिये और सामाजिक उत्सवों जैसे शादी या बच्चे के जन्म के समय प्रयोग में लाते हैं।

हमारे देश में बहुत सी भाषायें और बोलियाँ बोली जाती हैं जिन्होंने साहित्य को एक महान विविधता प्रदान की है। दुनिया के सभी महान धर्मों के लोग यहाँ पर भाईचारे के साथ निवास करते हैं। क्या आप जानते हैं कि भारत संसार के बहुत से धर्मों का निवास स्थान हैं जैसे जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिक्ख धर्म और हिन्दू धर्म। यहाँ पर अनेक तरह की वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला का निर्माण हुआ है। विभिन्न प्रकार के लोक तथा

शास्त्रीय संगीत और नृत्य हमारे देश में विद्यमान हैं। इसी तरह अनेक त्योहार और प्रथायें भी हैं। यही विविधता देश की संस्कृति को एक तरफ साझी या मिश्रित बनाती है तो दूसरी ओर इसे समृद्ध और सुंदर भी बनाती है। हमारी संस्कृति में इतनी विविधता क्यों है? इसके अनेक कारण हैं। देश की विशालता तथा भौगोलिक और जलवायु संबंधी विशेषताओं की भिन्नता इस विविधता का एक प्रमुख कारण है।

विभिन्न नृजातीय समूहों का परस्पर मिल जाना हमारी सांस्कृतिक विविधता का दूसरा महत्त्वपूर्ण घटक है। अनंत काल से यहाँ-वहाँ से लोग यहाँ आते रहे हैं और बसते रहे हैं। हम यहाँ पर प्रोटो आस्ट्रेलायड, नीग्रो और मंगोलायड जैसी आदिम प्रजातियों से संबंधित लोगों को पाते हैं। विभिन्न नृजाति समूह जैसे ईरानी, ग्रीक, कुषाण, शक, हूण, अरबी, तुर्की, मुगल और यूरोपियन भी यहाँ आये। वे यहीं बस गये और यहाँ के स्थानीय निवासियों के साथ घुल-मिल गये। अन्य संस्कृति के लोग अपने सांस्कृतिक गुणों, चिंतन और विचारों के साथ आये थे जो यहाँ की संस्कृति के साथ समायोजित हो गये। आप यह जानकर हैरान होंगे कि सिलाई की हुई पोशाकें जैसे कि सलवार, कुर्त्ता, टोपी आदि केवल ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी के कुषाणों शकों तथा पार्थियानों द्वारा भारत में लाई गयी थी। इससे पहले भारतीय बिना सिलाई किये हुये कपड़े पहनते थे। आधुनिक पोशाक जैसे- पैंट, शर्ट और स्कर्ट यूरोपीय लोगों के द्वारा अट्ठारहवीं सदी में लायी गयी थीं। भारत ने सदियों से हमेशा अन्य विचारों को अपनाने की अपनी असाधारण क्षमता को दिखाया है। इसने हमारी संस्कृति को समृद्ध और विविध बनाया है।

बाहरी संस्कृतियों से संपर्क के साथ-साथ भारत के भीतरी विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृतियों के बीच भी आदान-प्रदान होता रहा है। लखनऊ में चिकन का काम, पंजाब की फुलकारी, बंगाल की कांथा कढ़ाई, उड़ीसा का पटोला जैसी विविधतायें एक खास क्षेत्रीय विशेषता का अहसास कराती हैं। भारत के पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण केन्द्र अपनी-अपनी विशेषताओं के बावजूद पूर्णतः अलगाव में विकसित नहीं हुए हैं। क्षेत्रीय भौगोलिक अवरोधों के बावजूद यहाँ के लोग व्यापार व तीर्थ यात्रा के लिये भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक आते जाते रहे हैं। कुछ इलाके शासकों की विजयों और संधियों के कारण एक दूसरे से जुड़ गये। लोगों ने एक स्थान से दूसरे स्थानों तक सांस्कृतिक आचार-व्यवहार एवं विचारों को संचारित किया। सैनिक अभियानों के कारण भी यहाँ के लोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक गये। इसने भी विचारों के आदान-प्रदान में सहायता की है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में एक समानता का आगमन हुआ जिसे हमारे संपूर्ण इतिहास ने बरकरार रखा है। हमारी एकता का एक और महत्त्वपूर्ण कारण है, वह है मानसून प्रणाली। भौगोलिक विविधताओं और मौसमी विभिन्नताओं के होते हुए भी, भारत एक अन्तर्निहित एकता का अनुभव करता है। मानसून व्यवस्था भारतीय जलवायु की संरचना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है जो पूरे देश को एकता के सूत्र में पिरोता है। मानसून के आगमन ने सुनिश्चित कर दिया है कि भारतीय लोगों का मुख्य पेशा कृषि होगा। साथ ही जलवायु और भौगोलिक स्वरूपों की विभिन्नता ने खानपान, पोशाक, आवास और आर्थिक गतिविधियों को भी प्रभावित किया है जिससे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थानों का निर्माण हुआ है। इन घटकों ने

व्यक्ति की सोच और दर्शन को प्रभावित किया। भौतिक विशेषताओं और जलवायु की विभिन्नता के कारण विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का विकास हुआ है। विभिन्न क्षेत्रों की किन्हीं खास विशेषताओं ने इन संस्कृतियों को एक पहचान दी है।

हमारी संस्कृति की मिश्रित प्रकृति, हमारे संगीत, नृत्य के स्वरूपों, नाटकों, कला और अन्य कलाकृतियों जैसे चित्रकला, मूर्तिकला तथा हमारे स्मारकों की वास्तुकलाओं में हमारी सभी भाषाओं के साहित्य भी इसी प्रकृति को प्रतिबिंबित करते हैं।

हमारी राजनीतिक पद्धतियों में भी ऐसी ही विविधता में एकता प्रलक्षित होती है। वैदिक काल के शुरुआती दौर में समाज मूलतः पशुपालक था, लोग चरागाह की खोज में एक जगह से दूसरी जगह घूमा करते थे। कृषि कार्य के आरंभ के साथ वैदिक काल के लोग एक जगह स्थायी रूप से बसने लगे। इस स्थायी जीवन से सामाजिक उन्नति और शहरों का विकास हुआ जिसमें नियम और कानून की आवश्यकता महसूस हुई। तब एक राजनीतिक संगठन का उदय हुआ। इनमें सभा और समितियाँ शामिल थीं। इन राजनीतिक निकायों के द्वारा लोग सरकार चलाते थे। समय के साथ राष्ट्र की अवधारणा का उदय हुआ और एक खास क्षेत्र पर अधिकार शक्ति का नया मापदंड बना। कुछ जगहों पर गणराज्यों का भी उदय हुआ था। ईसा पूर्व छठी शताब्दी से चौथी शताब्दी को भारत में महाजनपद काल के रूप में जाना जाता है। सरकार चलाने में राजाओं की बहुत बड़ी भूमिका होती थी। इन महाजनपदों में विशाल साम्राज्य भी स्थापित हुये जहाँ सम्राट के पास निरंकुश शक्ति होती थी। अशोक, समुद्र गुप्त, हर्षवर्द्धन जैसे प्राचीन शासकों के बारे में आप शायद जानते होंगे। मुगलों ने भी भारत में एक बहुत बड़ा साम्राज्य स्थापित किया था। फिर अंग्रेजों ने अपने आपकों यहाँ स्थापित किया और 1858 में भारत ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बन गया था। परंतु एक लंबे संघर्ष के बाद हम 1947 में अपनी आजादी को प्राप्त करने में सफल हुए। आज हम एक प्रभुतासंपन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष तथा जनवादी गणतंत्र हैं और हमारे देश के एक कोने से दूसरे कोने तक सरकार की समरूप व्यवस्था है।

पाठगत प्रश्न 2.1

1. भांगड़ा किस राज्य का लोकप्रिय नृत्य हैं?
2. असम के नृत्य को क्या कहते हैं?
3. दूसरी शताब्दी ई.पू. में भारत में सलवार, कुर्त्ता, टोपी आदि को कौन लाये थे?
4. पटोला के लिये कौन-सा क्षेत्र प्रसिद्ध है?

2.1.3 धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण

भारतीय संस्कृति का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप भिन्न सांस्कृतिक समूहों का एक लंबे समय से परस्पर घुल-मिल जाने का परिणाम है। यहाँ आपस में संघर्षों के भी कई उदाहरण है,

लेकिन सामान्यत: लोग यहाँ शताब्दियों से शान्तिपूर्वक आपस में मिल-जुल कर रहते आ रहे हैं। भारत की लोकप्रिय सांस्कृतिक परम्परायें इस मिश्रित या साझी संस्कृति के सबसे अच्छे उदाहरण हैं, जिसमें काफी संख्या में भिन्न-भिन्न धर्मों के लोग आपस में मिल-जुल कर रहते हैं।

आप जानते हैं कि हमारे देश में विचारों और आचरणों में बहुत ज्यादा विविधतायें मौजूद हैं। ऐसी विविधताओं के बीच में किसी एक विशेष विचार का प्रभुत्व संभव नहीं है। आपको मालूम होगा कि भारत में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, जैनी, पारसी और यहूदी सब रहते हैं। संविधान भारत को एक धर्मनिरपेक्ष देश घोषित करता है। हर कोई अपने मन पसंद धर्म को मानने, पालन करने और प्रचार करने के लिये स्वतंत्र है। राज्य का अपना कोई धर्म नहीं है, और यह सभी धर्मों को समान नजरों से देखता है। धर्म के आधार पर किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं होता है। जनता ने भी काफी हद तक एक व्यापक दृष्टिकोण विकसित किया है और वह 'जीयो और जीने दो' की अवधारणा पर विश्वास करती है।

धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार हमारे गणतंत्र की धर्मनिरपेक्षता को दर्शाता है। पश्चिमी संदर्भों में धर्म-निरपेक्षता के विकास का मतलब धर्म और राजसत्ता का पूर्ण रूप से अलगाव होता है। भारत में धर्मनिरपेक्षता को एक सकारात्मक अवधारणा के रूप में लिया जाता है जो सभी लोगों के अधिकारों, विशेषत: अल्संख्यकों के अधिकारों की रक्षा तथा भारत की जटिल सामाजिक संरचना के हिसाब से उपयुक्त है।

2.1.4 सार्वभौमिकता

सह-अस्तित्व की अवधारणा केवल देश की भौगोलिक और राजनीतिक सीमा रेखाओं में आबद्ध नहीं है। भारत का एक विश्वपरक दृष्टिकोण है और वह संपूर्ण दुनिया में शांति और सद्भाव का संदेश फैलाता रहा है। भारत नस्लवाद और उपनिवेशवाद के खिलाफ जोरदार आवाज उठाता आ रहा है। इसने शुरू से ही दुनिया में शक्ति-खेमों के बनने का विरोध किया है। वास्तव में भारतवर्ष गुट निरपेक्ष आंदोलन का एक, संस्थापक सदस्य रहा है। विकासशील और विकसित देशों के विकास के प्रति भारतवर्ष हमेशा से प्रतिबद्ध रहा है। इस तरीके से भारत विश्व-भ्रातृत्व के भागीदार के रूप में अपनी जिम्मेदारी को निभा रहा है और दुनिया की प्रगति में अपना योगदान करता आ रहा है।

यह भी स्मरणीय है कि भारत का उपमहाद्वीप सभी राजनैतिक सीमाओं को लांघते हुए सदियाँ से एक सांस्कृतिक इकाई रहा है।

2.1.5 भौतिकवादी और अध्यात्मवादी

संस्कृति किसी जाति या राष्ट्र की मन, रुचियों, चरित्र, विचार, कला, कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में आध्यात्मिक विकास का नाम है।

भारत आध्यात्मवाद की भूमि के रूप में जाना जाता है खासकर पश्चिम में। हालांकि प्राचीन काल से वर्तमान समय तक का भारतीय इतिहास भौतिकतावादी और गैर भौतिकतावादी संस्कृतियों के साथ-साथ विकास को दर्शाता है। याद कीजिये, हड़प्पा संस्कृति शहरी थी। उन्होंने वैज्ञानिक तरीकों से शहरों का निर्माण किया था और उनके नगरों में विस्तृत निकास प्रणाली भी थी। उन लोगों के पास गणित और नाप-तौल का सशक्त ज्ञान था। हड़प्पा के लोगों का बाहरी दुनिया के साथ व्यापारिक संबंध भी था और वे सुमेर की सभ्यता के लोगों के साथ व्यापार करने के लिए समुद्र पार की यात्राएँ किया करते थे।

चिकित्सा, ग्रहों, तारों और वनस्पतियों पर उत्तम पुस्तकें लिखी गयीं। 'पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है तथा पृथ्वी गोल है' जैसे सिद्धांतों की खोज भारतीयों द्वारा पहले ही कर ली गयी थी जिसे यूरोप ने काफी बाद में माना था। उसी प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में, गणित के क्षेत्र में तथा अन्य वैज्ञानिक क्षेत्रों में प्राचीन भारत की उपलब्धि असाधारण रही है। इस तरह के ज्ञान को आगे बढ़ाने में धार्मिक या अन्य विचारों द्वारा कोई विरोध या प्रतिरोध नहीं था।

दार्शनिक चिंतन में भारत में नास्तिक सोच तक का विकास और वृद्धि हुई। आप जानते ही होंगे कि जैन और बौद्ध धर्म ईश्वर के बारे में मौन हैं। यह सब कुछ हमें क्या बताता है? यही कि भारतीय संस्कृति भौतिकवादी अथवा अध्यात्मवादी दोनों रही है।

भारत की संस्कृति उसकी जनता की सरलता और विद्वत्ता की जीवित अभिव्यक्ति है।

2.2 सांस्कृतिक पहचान, धर्म, क्षेत्र और नृजातीयता

हमारी सांस्कृतिक पहचान विभिन्न कारकों जैसे कि धर्म, प्रांत आदि पर आधारित है, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक भारतीय की कई पहचान हो सकती हैं। इनमें से कोई एक पहचान अवसर विशेष पर ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो सकती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक संदर्भ में व्यक्ति खुद को किस जगह पर पाता है। इस प्रकार हर एक व्यक्ति दूसरे के साथ अपनी कुछ समानताओं को देख सकता है, पर साथ ही साथ कुछ अन्य पहलुओं में विशाल असमानताएँ पा सकता है। उदाहरण के लिये मान्यताओं, पूजा के स्वरूप और अनुष्ठानों के अलावा, संपूर्ण देश के दृष्टिकोण से उनके बीच भी बहुत कम समानतायें हैं जो एक विशेष धर्म को मानते हैं। यहाँ तक कि पूजा और कर्मकांड के स्वरूपों में भी वर्गीय और प्रांतीय भिन्नतायें हैं।

इस प्रकार सांस्कृतिक रूप से न तो सभी हिन्दू समान हैं, न ही सभी मुसलमान समान हैं। तमिलनाडु के ब्राह्मण कश्मीर के ब्राह्मणों से काफी अलग हैं। उसी तरह केरल और उत्तर प्रदेश के मुसलमान अपनी संस्कृति में कई पक्षों में भिन्न हैं। प्रांतीय पहचान ज्यादा गहरी और वास्तविक है। विभिन्न जाति और धर्म के लोगों में क्षेत्रीय सांस्कृतिक समानतायें हैं जैसे कि भाषा, भोजन, पोशाक, मूल्यबोध और विश्व दृष्टिकोण। बंगाल में हिन्दू और मुसलमान

दोनों ही बंगाली होने पर गर्व महसूस करते हैं। अन्यत्र हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों में क्षेत्रीय संस्कृति के कई तत्त्व समान हैं।

सैद्धांतिक रूप से भिन्न-भिन्न धार्मिक समूह भिन्न-भिन्न धार्मिक सिद्धांतों के प्रति समर्पण रखते हैं। उदाहरण के लिये वेद और शास्त्र हिन्दुओं के, कुरान और हदीस मुसलमानों के, तथा बाईबल ईसाइयों के प्रेरणा स्रोत हो सकते हैं हालांकि कर्मकांड और जीवन पद्धति के स्तर पर भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुयायियों में काफी अन्तर्मिश्रण प्रचलित है।

आदिवासी समूहों के बीच में नृजातीय संस्कृति दृढ़ है। उदाहरण के लिये नागालैंड जैसे छोटे से राज्य में एक दर्जन से ज्यादा भिन्न-भिन्न नागाप्रजातियाँ तथा उनकी पोशाकें, बोली और मान्यतायें भी एक दूसरे से भिन्न हैं। छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर जिले के कई समूह अपने को अलग-अलग नृजातीय मूल के होने का दावा कर रहे हैं।

2.3 सांस्कृतिक प्रभाव

आधुनिक संदर्भ में हमारी संस्कृति पर कम से कम तीन महत्त्वपूर्ण प्रभाव हैं। वे हैं: पश्चिमीकरण, उभरती राष्ट्रीय सांस्कृतिक शैलियाँ और लोकप्रिय संस्कृति।

स्वतंत्रता से पहले कुलीन तंत्र और प्रशासनिक सेवा के लोगों के द्वारा कुछ पश्चिमी तरीके अपना लिये गये थे। इसका प्रभाव कई वर्षों में मध्यम वर्ग में तथा कुछ हद तक गावों में भी फैला है। गाँवों में अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की बढ़ती माँग इस स्थिति का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

आजादी के लिये संघर्ष के दौरान एक नयी शैली का विकास हुआ था। यह एक राष्ट्रीय शैली हो गई थी। उदाहरण के लिये गाँधी टोपी और खादी समारोहों में बस एक प्रतीक मात्र रह गया है लेकिन इसने देश की एकता में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है और संस्कृति को एक समानता प्रदान की है।

लोकप्रिय संस्कृति जो जन मीडिया का उत्पाद है, सांस्कृतिक एकता का एक और घटक है। समाज पर फिल्मों का प्रभाव बहुत ही गहरा है। रेडियो और दूरदर्शन ने भी छवि और आचार व्यवहार को काफी प्रभावित किया है। समाज पर उनकी पकड़ को हम नकार नहीं सकते हैं। आधुनिक मीडिया ने पारम्पारिक और जनहित दोनों तरह के मुद्दों को उठाया है।

पाठगत प्रश्न 2.2

1. बाहर से आकर भारत में बस जाने वाले लोगों के दो उदाहरण दें।
2. जलवायु का कौन-सा घटक भारत को एकता प्रदान करता है?
3. उन सभ्यताओं के नाम बताइये जिनके साथ हड़प्पा के लोग समुद्रपारीय व्यापार करते थे।

आपने क्या सीखा

- संस्कृति का अभिप्राय बहुत व्यापक और विस्तृत है। इसे समग्र समाकलित एवं सीखे हुए व्यवहार के रूप में परिभाषित किया गया है। यह एक समाज में रहने वाले लोगों की जीवन-शैली को बताती है।
- संस्कृति समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित ज्ञान, विश्वास, नैतिक मूल्य, कला, रीति रिवाज और विभिन्न प्रकार की कुशलताओं और आदतों से मिलकर बनती है।
- अपनाने की क्षमता और व्यापकता के कारण भारतीय संस्कृति दीर्घजीवी बनी हुई है।
- विभिन्नता में एकता भारतीय संस्कृति के प्रमुख लक्षणों में से एक है जो इसे विशिष्ट बनाती है।
- विभिन्न संस्कृतियों का संश्लेषण कई कालों से चला आ रहा है जिसने उस मिश्रित या सांझी संस्कृति को जन्म दिया जिसे आज भारतीय संस्कृति कहते हैं।
- अध्यात्म तथा मूल्यबोध पर आधारित जीवन-शैली भारतीय संस्कृति का केन्द्र-बिन्दु है पर इसमें एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी है।

पाठांत प्रश्न

1. संस्कृति के विभिन्न घटक क्या हैं?
2. भौतिक और गैर-भौतिक संस्कृति का अर्थ बतइाये।
3. भारतीय संस्कृति के धर्मनिरपेक्ष लक्षण को परिभाषित कीजिए।
4. भारतीय संस्कृति के विशिष्ट-लक्षणों का विवरण दीजिये।
5. इन पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये-

   अ) भारत में सांस्कृतिक संश्लेषण।

   ब) आध्यात्मिकता

   स) भारतीय संस्कृति में लचीलेपन (Adaptibility) की विशेषता
6. भारतीय संस्कृति के संदर्भ में विविधता में एकता की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

2.1 1. पंजाब

2. बीहू

3. कुषाण, शक और पार्थियन

4. उड़ीसा

2.2 1. कुषाण और मुगल

2. मानसून

3. सुमेरियन

3

प्राचीन भारत

क्या आप सोचते हैं कि भारतीय लोगों की संस्कृति प्रारंभ से ही एक समान रही है? इसका उत्तर है 'नहीं'। कोई भी संस्कृति एक जैसी नहीं रहती। यह बात भारत के विषय में भी सच है। यह भी अनेक परिवर्तनों से गुजरी है। क्या आप जानते है कि ये परिवर्तन क्यों होते हैं? यह इसलिए क्योंकि प्रत्येक राजवंश, प्रत्येक आक्रमणकर्त्ता जो बाहर से आकर यहीं देश में बस जाते हैं, उस देश की संस्कृति पर अपनी छाप छोड़ देता है। भारतीय लोगों की वर्तमान संस्कृति को समझने के लिए उस प्रक्रिया को समझना आवश्यक है जिस माध्यम से इसको भूतकाल में गुजरना पड़ा है। अत: इस पाठ में हम प्राचीन भारत के लोगों के जीवन पर एक दृष्टि डालने का प्रयत्न करेंगे। आप यहां प्रागैतिहासिक काल से वैदिक, मौर्य और गुप्तकालीन भारतीय इतिहास के विविध पक्षों का अध्ययन करेंगे। समाज और संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों के साथ साथ भारतीय समाज की बदलती प्रकृति पर भी बल दिया गया है। जब हम इतिहास पढ़ते हैं तो हम यह समझ पाते हैं कि कैसे विकास की लंबी शताब्दियां के बाद आधुनिक विश्व का उदय हुआ है। हमने प्राचीन काल में जो उपलब्धियाँ प्राप्त की, उनकी सराहना करना बहुत आवश्यक है जिससे हम अपने भविष्य को उपयोगी बना सकें।

उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप:–

- इतिहास के अध्ययन का महत्त्व और उसकी प्रासंगिकता की सराहना कर सकेंगे;
- हड़प्पा कालीन सभ्यता को भारत की पहली नगरीय सभ्यता के रूप में पहचान सकेंगे;
- वैदिक समाज की प्रकृति, धर्म और दर्शन की प्रकृति का निरीक्षण कर सकेंगे;
- जैन और बौद्धधर्म के उदय के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे;

- इस काल में दक्षिण भारत के प्राचीन इतिहास का क्रमिक रूप से वर्णन कर सकेंगे;
- आगामी वंशों के शासन काल के समय हुए महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक विकास की समीक्षा कर सकेंगे;
- प्राचीन भारत में सांस्कृतिक विकास की सामान्य गतिविधियों की जांच कर सकेंगे।

3.1 इतिहास के अध्ययन का महत्त्व

मुझे विश्वास है, आपने स्वयं से यह प्रश्न पूछा होगा कि तुम इतिहास क्यों पढ़ रहे हो? इतिहास का अध्ययन अपने बीते हुए समय को जानने का एक तरीका है। इतिहास हमें बताता है कि हमारे पूर्वज किस प्रकार और क्यों इस प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे, उन्हें कौन-कौन सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और कैसे उन्होंने उन पर विजय प्राप्त की। आपके लिए अपने भूतकाल से परिचित होना इसलिए भी आवश्यक है ताकि आप आज के भारत में जो कुछ भी हो रहा है उसको और भी अच्छी तरह जान सकें। आप अपने देश की कहानी को जान पाएंगे जो कई शताब्दियों पहले प्रारंभ हुई।

इतिहास अब केवल तिथियों और घटनाओं का अध्ययन मात्र नहीं रह गया है जो केवल राजनैतिक घटनाओं तक ही सीमित हो। इसके क्षेत्र में अब विस्तार हो गया है जिसमें जीवन के कई पक्ष भी समाहित हैं। इसमें जीवन की शैलियों का भी अध्ययन सम्मिलित है जिसे हम संस्कृति कहते हैं। पहले संस्कृति को कला, वास्तुशिल्प, साहित्य और दर्शन से सम्बद्ध कर परिभाषित किया जाता था परन्तु अब इसके अंतर्गत समाज की समस्त गतिविधियां समाहित हैं। अतः इतिहास का बल केवल उच्चवर्गीय लोगों तक सीमित न रह कर समाज के सभी वर्गों से जुड़ गया है। अब इसमें केवल राजाओं और राजनायकों के विषय में ही सूचनाएं नहीं होतीं बल्कि वह सामान्य व्यक्ति भी सम्मिलित है जो इतिहास बनाता है। इसमें कला और वास्तुविज्ञान, भारतीय भाषाओं का विकास, साहित्य और धर्म भी शामिल है। अब हम केवल समाज के सम्भ्रान्त वर्ग में क्या हो रहा था, इसको ही नहीं देखते बल्कि निम्न स्तरों पर भी लोगों की रुचियों और हितों का पुनर्निर्माण करने का प्रयत्न करते हैं। इससे इतिहास अधिक रोचक बन जाता है और समाज को समझने में और उसे उन्नत बनाने में हमारी सहायता भी करता है।

पहले तो, जिन लोगों ने हमारे समाज का निर्माण किया, सम्भ्रान्त वर्ग और सामान्य दोनों ही स्तरों पर, उनमें से अधिकांश लोग अन्य क्षेत्रों से आए और भारत में बस गए। उन्होंने यहां स्थानीय लोगों के साथ वैवाहिक संबंध बनाए, उनके साथ मिलजुलकर रहने लगे, और भारतीय समाज के अंग बन गए। अतः हमारा समाज विभिन्न प्रकार के लोगों की समृद्ध विरासत से युक्त है। लोगों की विपुल विभिन्नता के कारण ही यहां हमारे देश में अनेक प्रकार के धर्म, भाषाएं और रीतिरिवाज हैं।

इतिहास का शुद्ध अध्ययन दो बातों पर निर्भर है। एक तो उस संदर्भ सामग्री का आलोचनात्मक एवं ध्यानपूर्वक प्रयोग है जो हमें इतिहासकारों ने कुछ कथनों का समर्थन

करते हुए प्रदान की हैं, उनका तार्किक विश्लेषण करके ही समर्थन करना होगा। दूसरे ऐतिहासिक घटनाओं के कारण होते हैं और इन कारणों का भी संवीक्षण आवश्यक है। इन सबसे भी अधिक, हमें भूतकाल की भी समालोचनात्मक समीक्षा करनी होगी। इसी प्रकार ऐतिहासिक ज्ञान में वृद्धि हो सकेगी।

भारत का इतिहास कई हजार वर्ष पुराना है। इसके बारे में हमें उन प्रमाणों से पता लगता है जो हमारे पूर्वज पीछे छोड़ गए हैं। समीपवर्ती भूतकाल के विषय में तो हमारे पास लिखित और मुद्रित आलेख हैं। पर इससे भी पहले जब कागज का निर्माण नहीं हुआ था, आलेख सूखे ताड़ के पत्तों पर, भूर्जवृक्ष की छालों पर, तांबे की प्लेटों पर, और कुछ अवस्थााओं में बड़ी बड़ी शिलाओं पर, स्तम्भों पर, पत्थर की दीवारों पर और मिट्टी और पत्थर की बनी प्लेटों पर अंकित किए गए। इससे भी पहले एक समय था जब लिपि का भी आविष्कार नहीं हुआ था। उन पुरातन युगों के मनुष्यों के जीवन के बारे में हमें जानकारी उन वस्तुओं से प्राप्त होती है जो वे पीछे छोड़ गए हैं, उदाहरण के लिए मिट्टी के बर्तन, उनके अस्त्र शस्त्र और औजार आदि। ये वे वस्तुएं हैं जो ठोस हैं, जिन्हें आप छू सकते हैं, देख सकते हैं और जिन्हें वस्तुत: कभी-कभी धरती में से भी खोद कर निकाला गया है। ये ऐतिहासिक खजाने की तलाश के खेल में एक संकेत प्रदान करते हैं परन्तु ये सभी संस्कृति के अंग हैं। लेकिन, यह संकेत भी कई प्रकार के हो सकते हैं। जो संकेत सर्वाधिक प्रयुक्त होते हैं, वे हैं पाण्डुलिपियां। ये पाण्डुलिपियां प्राचीन पुस्तकें हैं जो या तो सूखे ताड़ के पत्तों पर या भूर्ज वृक्ष की मोटी छाल पर या कागज पर लिखी गई हैं। सामान्यतया दूसरे किस्म की पाण्डुलिपियां बच पाई हैं यद्यपि कागज पर लिखी पाण्डुलिपियां अन्य की भांति अधिक प्राचीन नहीं हैं। कुछ भाषाएं जिनमें बहुत प्राचीन पुस्तकें लिखी गई हैं, ऐसी भाषाएं हैं जिन्हें हम दैनिक व्यवहार में उपयोग में नहीं लाते जैसे पालि और प्राकृत। कुछ संस्कृत और अरबी में लिखी गई हैं जो आज भी पढ़ी जाती हैं जिन्हें हम कभी कभी धार्मिक कृत्यों के अवसर पर प्रयोग में लाते हैं यद्यपि वे घरों में प्रयुक्त नहीं होती। एक अन्य भाषा है तमिल जो दक्षिणी भारत में आज भी बोली जाती है और जिसका साहित्य भी बहुत प्राचीन काल का है, ये शास्त्रीय भाषाएँ कहलाती हैं। विश्व के अनेक प्रदेशों का इतिहास विभिन्न शास्त्रीय भाषाओं में निबद्ध है। यूरोप में प्राचीन पाण्डुलिपियां प्राय: ग्रीक और लैटिन भाषाओं में लिखी गई हैं। पश्चिमी एशिया में अरबी और हीब्रू में लिखी गईं, और चीन में शास्त्रीय चीनी भाषा का भी प्रयोग होता रहा।

3.2 प्राचीन भारत

भारत का एक दीर्घकालीन लम्बा इतिहास रहा है। बलूचिस्तान के मेहरगढ़ में ईसा से 7000 वर्ष पूर्व नव प्रस्तर युग के निवासियों का पता चला है तथापि भारत में 2700 वर्ष ईसा पूर्व ही भारत के उत्तर पश्चिमी के एक बहुत बड़े भाग में पहली उल्लेखनीय सभ्यता फली फूली। यह सभ्यता हड़प्पन सभ्यता कहलाती है। इस सभ्यता का विकास अधिकतर सिंधु, घाघरा और इसकी सहायक नदियां के आसपास के क्षेत्रों में हुआ।

हड़प्पा कालीन सभ्यता के साथ जुड़ी संस्कृति ही भारत की प्रथम नगरीय संस्कृति के रूप में जानी जाती है। हड़प्पा निवासियों ने पूरी नगर योजना शौचालय व्यवस्था, नालियां, चौड़ी सुनियोजित सड़कें बनाईं। उन्होंने दोतल्ले के पक्की ईंटों के मकान बनाए जिनमें से प्रत्येक में स्नानगृह, रसोई और कुआं होता था। चारदीवारी से घिरे इन शहरों में विशाल स्नानगृह, अनाज के भण्डार घर और सभाभवन आदि भी थे।

हड़प्पा के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले निवासियों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। शहर में रहने वाले लोगों ने अपने और विदेशी लोगों के साथ व्यापारिक संबंध विकसित किए और मेसोपोटेनिया जैसे दूसरे देशों के साथ भी संबंध स्थापित किए। वे बहुत अच्छे मिट्टी के बर्तन बनाते थे। विभिन्न स्थलों से अनेक प्रकार के बर्तन, खिलौने, मुद्राए और आकृतियां खुदाई में प्राप्त हुई हैं। हड़प्पा कालीन लोगों को धातुओं के विषय में तकनीकी जानकारी थी और वे धातु मिश्रण की तरकीब भी जानते थे। मोहेनजोदाड़ों से प्राप्त एक नर्तकी की कांस्य मूर्ति हड़प्पाकालीन लोगों की शिल्पकला और सौन्दर्यानुभूति का प्रमाण है। शंख, हाथीदांत, हड्डियों और पालिशदार बर्तनों का प्रयोग वे विभिन्न कलाओं और सामग्रीनिर्माण में करते थे। लोथल गुजरात के अहमदाबाद के धोलक तालुके में एक बंदरगाह था। यह एक बहुत सुनियोजित चारदीवारी नगरी भी थी। यह पश्चिमी देशों के साथ समुद्री व्यापार का महत्त्वपूर्ण केंद्र था। गुजरात में ही एक दूसरा महत्त्वपूर्ण केन्द्र था धौलावीरा। इसी प्रकार राजस्थान में कालीबंगा नगर था।

अनेक प्रकार की मुद्राएं जिन पर एक सींग वाले गेंडे (जिसे यूनिकार्न कहते हैं) पीपल के पत्ते, देवता आदि खुदे हुए हैं, हड़प्पन लोगों के धार्मिक विश्वासों पर रोशनी डालती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे पौधों और पशुओं की पूजा करते थे और प्राकृतिक शक्तियां की उपासना करते थे। वे परवर्ती काल के शिव जैसे ही किसी देवता और अन्य देवताओं सहित एक मातृशक्ति की भी उपासना करते थे। वे सम्भवत: मृत्यु के उपरान्त दूसरे जन्म में और जादू टोनों में भी विश्वास करते थे। पशु आकृति वाली मुद्राएं जिन पर कुब्बड़ वाले बैल, हाथी और गेंडे आदि अंकित हैं, यह दर्शाती हैं कि वे लोग इन पशुओं को पवित्र मानते थे। अनेक मुद्राओं पर 'पीपल' भी अंकित है।

हड़प्पाकालीन लोगों को लिखना भी आता था और अनेक मुद्राओं पर किसी प्रकार की लिपि भी प्राप्त होती है परन्तु दुर्भाग्यवश आजतक कोई भी उस लिपि को पढ़ने में समर्थ नहीं हुआ। परिणामत: हमारा हड़प्पा कालीन लोगों के विषय में ज्ञान केवल पुरातात्त्विक प्रमाणों पर ही आधारित है। खुदाई में प्राप्त विभिन्न मुद्राओं पर बनी पुरुषों और स्त्रियों की आकृतियों से पता चलता है कि वे लोग सूत कातना और बुनना भी जानते थे। वे सम्भवत: कपास उत्पन्न करने वाले पहले लोग थे। मेसोपोटेमिया से प्राप्त सिन्धु मुद्राओं का बहुत बड़ा भाग यह सिद्ध करता है कि सिन्धु घाटी और मेसोपोटेमिया सभ्यता के बीच शायद व्यापारिक संबंध थे।

1800 ई. पू. तक हड़प्पा सभ्यता मिटने लगी थी। ऐसा क्यों हुआ इसका वास्तविक कारण कोई नहीं जानता।

3.3 वैदिक सभ्यता

हड़प्पन सभ्यता के विनाश के कुछ शताब्दियों बाद एक नई सभ्यता उसी क्षेत्र में जन्मी और धीरे-धीरे गंगा-यमुना के मैदानों तक फैलती चली गई। यह सभ्यता आर्य सभ्यता कहलायी। इस सभ्यता और पुरानी सभ्यता में कई महत्त्वपूर्ण अंतर थे।

आर्य लोग सिन्धु और अब लुप्त सरस्वती नदी के किनारों पर बसने लगे। उन्होंने उन देवीदेवताओं के सम्मान में अनेक ऋचाओं का निर्माण किया जिनकी वे पूजा करते थे। इन ऋचाओं का संकलन चार वेदों में किया गया–ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। 'वेद' शब्द का अर्थ है पवित्र आध्यात्मिक ज्ञान। प्रारंभ में वेद मौखिक रूप से ही पढ़ाए जाते थे। क्योंकि प्रारंभिक आर्यों के विषय में जो कुछ भी हम जानते हैं वह सब वेदों पर ही आधारित है इसीलिए इस सभ्यता को वैदिक सभ्यता कहते हैं। वैदिक काल को दो भागों में विभाजित करते हैं पूर्व और उत्तर वैदिक काल। पूर्ववैदिक काल का प्रतिनिधित्व करता है ऋग्वेद और उत्तर वैदिक काल के अंतर्गत अन्य वेद, ब्राह्मण अरण्यक और उपनिषद् साहित्य समाहित है। रामायण और महाभारत दोनों महाकाव्य तथा पुराण (जिनका संकलन काफी बाद में हुआ) वैदिक युग के लोगों के जीवन और समाज के विषय में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। इस काल के ज्ञान के लिए उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में पुरातात्त्विक प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं।

ऋग्वेद में इन्द्र की स्तुति में 250 मंत्र हैं, और 200 मंत्र अग्नि देवता की स्तुति में हैं। क्या आप जानते हैं कि अग्नि देवताओं और मनुष्यों के बीच का माध्यम है।

समाज और धर्म

वैदिक युग के लोगों ने अपना घुमक्कड़ी जीवन समाप्त कर दिया और वे विभिन्न बस्तियों में बसने लगे। वे 'जन' कहलाते थे और उनकी जमीन 'जनपद' कहलाती थी। यद्यपि आर्यसभ्यता पितृसत्तात्मक थी, नारियों के साथ सम्मान और आदर से व्यवहार किया जाता था। परिवार लघुतम सामाजिक ईकाई थी, अनेक परिवार मिल कर ग्राम बनाते थे, कई ग्रामों का 'विश' कहलाता था। अनेक ग्रामों का एक समूह कबीला जन कहलाता था जिस पर एक मुखिया राजन् शासन करता था। उसका मुख्य काम कबीले की बाहरी आक्रमणों से सुरक्षा करना, नियम तथा अनुशासन बनाए रखना होता था। उसकी सहायता दो सभाओं के सदस्य किया करते थे जिन्हें 'सभा' और 'समिति' कहा जाता था। पुरोहित धार्मिक कृत्यों का आयोजन करते थे और सेनानी सैनिक गतिविधियों की देखभाल करता था। राजन् का पद यूं तो पितृ पैतामहिक था परन्तु निर्बल और कार्य में अकुशल पाये जाने पर उसे हटाया भी जा सकता था।

उत्तर वैदिक युग में समाज चार वर्णों में विभक्त था–ब्राह्मण, क्षत्रिया वैश्य और शूद्र। इसे वर्ण व्यवस्था भी कहा जाता है। प्रारंभ में यह व्यवस्था विभिन्न कार्य करने वाली श्रेणियों को संकेतित करती थी परन्तु समय के साथ साथ यह व्यवस्था वंशानुगत तथा जटिल होती चली गई। अध्यापक ब्राह्मण कहलाते थे, शासक वर्ग क्षत्रिय, किसान, व्यापारी, बैंक का काम करने वाले वैश्य तथा कलाकार, शिल्पी, श्रमिक आदि शूद्र कहलाने लगे। बाद में व्यवसाय वंशानुगत और जटिल हो गया और एक व्यवसाय से दूसरे व्यवसाय में जाना बहुत कठिन हो गया। इसी के साथ साथ समाज में ब्राह्मणवर्ग का प्रभुत्व बढ़ता चला गया।

उस समय की एक अन्य महत्त्वपूर्ण व्यवस्था थी चतुराश्रम व्यवस्था अर्थात् संपूर्ण जीवन का चार विशिष्ट भागों में विभाजन–ब्रह्मचर्य (गुरु के आश्रय में ब्रह्मचर्य का पालन, शिक्षा और अनुशासनपूर्ण जीवन), गृहस्थ (पारिवारिक जीवन), वानप्रस्थ (मोहमाया के जाल से धीरे धीरे मुक्त होने का समय), और संन्यास (संसार की मोहमाया से दूर आध्यात्मिक जीवन)। लेकिन यह व्यवस्था महिलाओं और निचली जाति के लोगों पर लागू नहीं होती थी। स्त्रियों का समाज में आदर था, उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता थी, शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं और स्वयंवर के माध्यम से अपने जीवनसाथी का चुनाव भी कर सकती थीं। पर्दा और सती प्रथा प्रचलित नहीं थी। जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति था जो धर्म अर्थ और काम के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता था। बिना किसी फल की आशा के निष्काम कर्म का उपदेश भगवदगीता में भी दिया हुआ है।

प्रारंभिक वैदिक कालीन लोग प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थे और उन्हें देवी-देवता समझते थे। इन्द्र, अग्नि, वरुण, मरुत आदि कुछ देवता थे और उषा, अदिति, पृथ्वी देवियां मानी जाती थीं। सूर्य संबंधी देवी और देवता सूर्या, सवितृ और पूषण हैं। मंत्रोधारण सहित यज्ञ किए जाते थे। देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए अग्नि में घी और सामग्री डाली जाती थी और अग्नि देवताओं और मनुष्यों के बीच माध्यम माना जाता था। वैदिक लोग जनकल्याण के लिए व्यक्तिगत रूप में और सामूहिक रूप में भी प्रार्थनाएं किया करते थे।

उत्तर वैदिक काल में धार्मिक कृत्यों में परिवर्तन आया। पूर्ववैदिक काल के देवीदेवता इन्द्र, अग्नि, वरुण और मारूत् का महत्त्व कम हो गया और इनका स्थान अन्य तीन देवताओं ने ले लिया जिनमें ब्रह्मा सर्वोच्च माने जाते थे, विष्णु पालक और शिवसंहारक सहित यह त्रिमूर्ति पूजी जाने लगी। धर्म बहुत अधिक यज्ञमय हो गया। मंत्र जिन पर ब्राह्मणों का एकाधि कार था, अब प्रत्येक धार्मिक कृत्य का अंग माने जाने लगे। इससे ब्राह्मण बहुत शक्तिशाली हो गए और यज्ञ खर्चीले। यज्ञों में ऊपर के तीन वर्ण ही भाग ले सकते थे। राजा अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए अश्वमेध, राजसूय और वाजपेय यज्ञ किया करते थे। यह भी तथ्य बड़ा रोचक है कि 3000 वर्ष के बाद भी वैदिक युग के कुछ तत्त्व आज तक शेष हैं और भारतीय संस्कृति के अंग हैं। उत्तर वैदिक युग के अंत तक समाज में परिवर्तन होने लगा था। पहली बार लोग कुछ मान्यताओं पर चर्चा करने लगे थे जैसे सृष्टि का निर्माण, मृत्यु के बाद जीवन और जीवन का मर्म। इन विषयों पर उपनिषदों में विस्तार से चर्चा की गई।

भौतिक जीवन और अर्थव्यवस्था

आर्य लोग मुख्यतया खेतीहर किस्म के लोग थे। वे गौएं, घोड़ों, भेड़ बकरियों और कुत्तों को पालते थे। वे सामान्य भोजन जैसे दालें, अनाज, फल, दूध और दूध से बने पदार्थों का सेवन करते थे। वे 'सोम' नामक पेय भी पीते थे। शतरंज, रथों की दौड़ उन के मनोरंजन के साधन थे। प्रारम्भिक युग में मुद्रा विनिमय और कर आदि नहीं थे बल्कि स्वैच्छिक दान प्रचलित था। गौओं से समृद्धि को नापा जाता था। जैसे जैसे समय गुजरता गया, लोहे के व्यापक प्रयोग से उनके भौतिक जीवन में परिवर्तन आने लगा। लोहे की कुल्हाड़ियों से उन्होंने वनों को काटकर खेती योग्य भूमि का गंगा की तराई तक विस्तार कर लिया। लोहे के औजारों से और घोड़ों की सहायता से उन्हें युद्ध करने और शत्रु से अपनी रक्षा करने में मदद मिली। लोहे के औजारों से कई तरह के शिल्प और तकनीक, खाद्य पदार्थों की प्रचुर मात्रा में उपलब्धि और जनसंख्या वृद्धि से उनके कौशलों का विकास और शहरीकरण हुआ। शहरों और कस्बों का विकास होने लगा और भौगोलिक राज्यों का उदय हुआ। उम्दा गुणों वाले मिट्टी के बर्तन 'रंगीन भूरे मृद्भाण्ड' और 'काले चमकीले बरतन' कई स्थानों से प्राप्त हुए हैं। सिक्कों का चलन प्रारंभ हुआ। जमीन से और सामुद्रिक रास्ते से व्यापार किया जाने लगा जिससे भौतिक संपन्नता में वृद्धि हुई।

3.4 लोकप्रिय धार्मिक सुधार

ई. पू. 600 से ई. पू. 200 वर्ष का काल न केवल देश की राजनैतिक एकता के दृष्टिकोण से आवश्यक है बल्कि सांस्कृतिक एकता के दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन भारत में ही अन्य महत्त्वपूर्ण धर्मों का उदय हुआ–जैन धर्म और बौद्ध धर्म जिन्होंने भारतीय जीवन और संस्कृति पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। वैदिक धर्म पहले ब्राह्मणवाद के नाम से भी जाना जाता था क्योंकि ब्राह्मणों की उस युग में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। बाद में इसे हिन्दु धर्म कहा जाने लगा। ब्राह्मणों ने यज्ञों के बाद बहुत अधिक दानराशि मांगना प्रारंभ कर दिया। इससे यज्ञ आदि अनुष्ठान महंगे हो गये। इसके अतिरिक्त ब्राह्मण अपने को अन्य लोगों से बड़ा समझने लगे और अभिमानी हो गये। इससे ब्राह्मणों की लोकप्रियता समाप्त हो गई और सुधारों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

इसके अतिरिक्त कुछ और कारण भी थे जैसे क्षत्रियों की ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के विरुद्ध प्रतिक्रिया तथा वैश्यों की भी समाज में अपनी स्थिति सुधारने के लिए मांग। वैदिक धर्म बहुत जटिल और कर्मकाण्डपरक हो गया था। पूर्व छठी शताब्दी में क्षत्रिय और गरीब जनता यज्ञों का खर्च सहन करने में असमर्थ थी, उन्होंने सुधारों की मांग की जिनके फलस्वरूप जैन धर्म और बुद्ध धर्म का उदय हुआ। इन दोनों नये जैन धर्म और बौद्ध धर्मों ने हिन्दुओं की कई रीतियों और धार्मिक विश्वासों को प्रभावित किया।

जैन धर्म के संस्थापक ऋषभदेव थे जो 24 तीर्थंकरों में सर्वप्रथम थे। अंतिम तीर्थंकर महावीर ने इस धर्म का विकास किया और जैन सिद्धांतों को अंतिम रूप प्रदान किया।

जैनी लोग कठोर तप और वैराग्य पर बल देते हैं। भगवान महावीर ने उन्हें पांच प्रतिज्ञाएं पालन करने के लिए कहा–असत्य न बोलना, अहिंसा का पालन करना, सम्पत्ति न खरीदना, चोरी न करना और ब्रह्मचर्य का पालन करना। उन्होंने लोगों को सही विश्वास, सही आचरण और सही ज्ञान के त्रिमुखी मार्ग पर चलने को कहा।

बाद में जैन धर्म दो सम्प्रदायों में बंट गया–श्वेताम्बर (सफेद वस्त्रों वाले) और दिगम्बर (नग्न) जैन धर्म के अधिकतर अनुयायी व्यापारी वर्ग से हैं।

दूसरा आंदोलन गौतम बुद्ध (563-483 ई. पू.) द्वारा प्रारंभ किया गया जो महावीर के समकालीन युवा थे। उन्होंने चार आर्य सत्यों का प्रचार किया। उन्होंने मध्य मार्ग अपनाया। वे मानते थे कि संसार दु:खमय है और तृष्णा इस दु:ख की जड़ है जिसे निम्नलिखित अष्टाङ्गिक मार्ग को अपना कर जीता जा सकता है। यह अष्टांग मार्ग है–

1. सम्यक् दृष्टि	2. सम्यक् संकल्प
3. सम्यक् वाक्	4. सम्यक् कर्म
5. सम्यक् आजीविका	6. समयक् प्रयत्न
7. सम्यक् स्मृति	8. सम्यक् समाधि

मूलत: ये दोनों आंदोलन ब्राह्मण धर्म के एकाधिकार के विरुद्ध थे। दोनों सुधारकों ने अच्छा भौतिक जीवन व्यतीत करने और नीति शास्त्र की आवश्यकता पर बल दिया। दोनों सुधारकों ने भिक्षुओं की एक श्रेणी बनाई, मठों की स्थापना की जिन्हें जैनधर्म में स्थानक और बौद्ध धर्म में 'विहार' कहा जाता था।

बाद में बुद्ध धर्म भी दो भागों में बंट गया–हीनयान और महायान। बाद में एक तीसरा खण्ड वज्रयान भी जुड़ गया। इसके बाद बुद्धधर्म का विश्व के अनेक भागों में प्रचार हुआ–श्रीलंका, म्यांमार, कम्बोडिया, वियतनाम, चीन, जापान, थाइलैण्ड, कोरिया, मंगोलिया और अफगानिस्तान। आज भी इन दोनों की अधिकांश जनता बुद्ध धर्म को मानने वाली है।

हिन्दु धर्म में भी समय के साथ-साथ कई परिवर्तन हुए। इसमें अनेक धार्मिक पक्षों, विश्वासों और मतों का प्रादुर्भाव हुआ। बौद्ध धर्म के समान हिन्दु धर्म के कुछ पन्थों का भी भारत से बाहर के देशों में विस्तार हुआ विशेष रूप से दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में। बाद में हिन्दु परम्परा ने बुद्ध को भी विष्णु का अवतार स्वीकार किया।

पाठगत प्रश्न 3.1

1. हड़प्पन सभ्यता के अवशेष सबसे ज्यादा कहा प्राप्त हुए हैं?

....

2. हड़प्पन युगीन लोगों का मुख्य पेशा क्या था?

3. नव पाषाण युग के प्रमाण कहाँ पाये जाते हैं?

4. आप कैसे कह सकते हैं कि हड़प्पा सभ्यता के समय एक भाषा भी हुआ करती थी?

5. आप कैसे कह सकते हैं कि हड़प्पा कालीन लोग शिल्प कला में निष्णात थे?

6. आर्यों के वैदिक साहित्य के कुछ ग्रन्थों के नाम लिखें।

7. मनुष्य मुक्ति/मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकता है?

8. वैदिक यज्ञ प्रारम्भ में कैसे किए जाते थे?

9. राजाओं द्वारा अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए कौन-कौन से यज्ञ किए जाते थे?

10. उत्तर वैदिक युग में धार्मिक कृत्यों में कौन-कौन से परिवर्तन आए?

11. आर्यों के प्रमुख मनोरंजन के साधन क्या थे?

12. ईसा पूर्व छठी शताब्दी में उत्तरी भारत और उत्तरी दक्षिण के कुछ महाजनपदों के नाम लिखिए।

13. जैन धर्म किन सम्प्रदायों में बंट गया था?

....

14. अष्टांगिक योग में कितने मार्ग हैं?

....

15. जैनियों और बौद्धों के मठ क्या कहलाते थे?

....

16. बौद्ध धर्म की तीन शाखाओं के नाम लिखिए।

....

3.5 फारसी आक्रमण और इसका भारतीय संस्कृति पर प्रभाव

छठी शताब्दी ई.पू. के पूर्वाद्ध में उत्तरपश्चिमी भारत में अनेक छोटे मोटे जनजातीय राज्य थे। इन लड़ने वाली जनजातियों में एकता स्थापित करने वाली कोई सर्वाधिकारवादी शक्ति नहीं थी। इस प्रदेश की राजनैतिक फूट का लाभ इखामनी शासकों ने उठाया। ईरान के इखामनी वंश के संस्थापक थे साइरस और उसके उत्तराधिकारी डेरियस जिन्होंने पंजाब और सिंध के कुछ भागों को अपने अधिकार में कर लिया। ऐसा माना जाता है कि इखामनी साम्राज्य का यह सबसे उपजाऊ और आबादी वाला क्षेत्र था। इखामनी सेना में भारतीय लोगों को भी भर्ती कर लिया गया।

उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र में फारसी शासन प्रायः दो शताब्दियों तक रहा। इस अवधि में दोनों क्षेत्रों में निश्चय ही नियमित सम्पर्क रहा होगा। संभवतः स्काइलैक्स के समुद्री अभिमान ने ईरान और भारत के बीच व्यापार और वाणिज्य को बढ़ाया होगा। कुछ प्राचीन फारसी सोने और चांदी के सिक्के भी पंजाब में मिले हैं।

यद्यपि बहुत प्राचीन काल से ही उत्तर पश्चिमी सीमा के पहाड़ी दर्रो का प्रयोग किया जाता रहा होगा परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि डेरियस पहली बार इन्हीं दर्रो से भारत में दाखिल हुआ। बाद में एलेक्जेण्डर की सेना भी इसी दर्रे से आई जब उसने पंजाब पर आक्रमण किया।

मौर्य साम्राज्य का प्रशासनिक ढांचा कुछ हद तक फारसी इखमनी शासकों के प्रशासन से प्रभावित हुआ। फारसी पद 'सत्रप' का प्रयोग भारतीय प्रादेशिक राज्यपालों द्वारा क्षत्रप के रूप में काफी समय तक किया जाता रहा।

फारसियों के साथ संबंधों का सांस्कृतिक प्रभाव भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। फारसी लेखक भारत में एक नई लिपि लेकर आए। इसे खरोष्ठी कहा जाता है। यह लिपि आरंभिक लिपि

से विकसित हुई जो दायें से बायीं ओर लिखी जाती थी। अशोक के बहुत से शिलालेख जो उत्तर पश्चिम भारत में पाये गये हैं, इसी खरोष्ठी लिपि में ही लिखे गये हैं। यह लिपि उत्तर पश्चिम भी भारत में ईसा पश्चात् तीसरी शताब्दी तक प्रयोग की जाती रही। अशोक की विज्ञप्तियों की प्रस्तावना में भी फारसी प्रभाव देखा जा सकता है। मौर्यकालीन कला और वास्तुकला पर भी फारसी कला का प्रभाव हुआ। अशोक के एक पत्थर से तराशे खम्भों पर लिखे अभिलेख और उनकी घंटियों के आकार के शीर्ष पर्सेयोलिस में मिले इखामनी शासकों के विजय स्तम्भों से कुछ कुछ मिलते जुलते हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में चन्द्रगुप्त मौर्य का अपने जन्मदिन पर शाही केश स्नान फारसी प्रभाव को प्रकट करता है। यह विशिष्ट फारसी शैली में ही होता था। अर्थशास्त्र में भी वर्णन आता है कि जब भी राजा, वैद्य अथवा किसी संन्यासी से विचार विमर्श करे तो उसे ऐसे कक्ष में बैठना चाहिए जहां पवित्र अग्नि जल रही हो। यह प्राचीन ईरानियों के फारसी धर्म के प्रभाव को प्रकट करता है।

3.6 यूनान (मकदूनिया) का आक्रमण और भारतीय संस्कृति पर इसका प्रभाव

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में यूनानी और फारसियों के बीच पश्चिमी एशिया पर अधिकार करने के लिए युद्ध हुए। अन्ततः मकदूनिया के यूनानियों ने सिकन्दर के नेतृत्व में इखामनी साम्राज्य को नष्ट कर दिया। उसने एशिया माइनर, ईराक, ईरान आदि देशों को जीत लिया और फिर भारत की ओर कूच किया। यूनानी इतिहासविद् हेरोडोटस के अनुसार, सिकन्दर भारत की बेशुमार दौलत से बहुत अधिक आकृष्ट हुआ था।

सिकन्दर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया, उत्तर पश्चिमी भारत छोटी छोटी अनेक रियासतों में बंटा हुआ था। इन रियासतों में परस्पर एकता न होने के कारण यूनानियों को एक एक करके रियासतों को जीतने में सहायता मिली। फिर भी सिकन्दर के सैनिकों ने जब मगध के नन्द की विशाल सेना और ताकत के बारे में सुना, तो उन्होंने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। सिकन्दर को वापस लौटना पड़ा। वह मकदूनिया के रास्ते वापिस जाते हुए केवल 32 वर्ष की अल्पायु में ही बेबीलान में मृत्यु को प्राप्त हुआ। सिकन्दर को अपनी जीती हुई रियासतों को सुसंगठित करने का समय ही नहीं मिला। अधिकांश जीती हुई रियासते उनके शासकों को वापिस कर दी गईं जिन्होंने उसकी सत्ता के सामने झुकना स्वीकार किया। उसने पूर्वी यूरोप और पश्चिमी एशिया के बहुत बड़े जीते हुए भाग को तीन प्रमुख भागों में विभाजित करके तीन यूनानी राज्यपालों के सुपुर्द कर दिया। अपने साम्राज्य के पूर्वी भाग को उसने सेल्यूकस निकेटर को दिया गया जिसने सिकन्दर की मृत्यु के बाद अपने आप को राजा घोषित कर दिया।

यद्यपि मकदूनियां और प्राचीन भारतीयों के संबंध बहुत थोड़े समय ही रहे परन्तु इनका प्रभाव काफी बड़ी मात्रा में पड़ा। सिकन्दर का आक्रमण यूरोप को पहली बार भारत के बहुत

समीप ले आया क्योंकि भारत और पश्चिम के मध्य समुद्री और स्थलीय मार्ग खुल गए। बहुत निकट के व्यापारिक संबंध भी स्थापित हुए। व्यापारी और शिल्पी इन रास्तों से आने जाने लगे। सिकन्दर ने अपने मित्र नियरकस को सिन्धु के मुहाने से लेकर फरात नदी तक बन्दरगाहों के लिए उचित स्थान ढूंढ़ने के लिए कहा था। यूनानी लेखकों ने हमारे लिए इन क्षेत्रों के विषय में बहुत महत्त्वपूर्ण भौगोलिक जानकारी प्रदान की है।

उत्तरपश्चिमी क्षेत्रों की परस्पर युद्धरत रियासतों को जीतकर सिकन्दर के आक्रमण ने इस क्षेत्र में राजनैतिक एकता का मार्ग प्रशस्त किया। ऐसा प्रतीत होता है कि सिकन्दर के इस अभियान से चन्द्रगुप्त को इस क्षेत्र को जीतने में सहायता मिली और उसने सेल्यूकस को हरा कर पूरे उत्तरपश्चिमी क्षेत्र अफगानिस्तान तक को जीतकर अपने अधीन कर लिया।

यूनानी कला का प्रभाव भारतीय मूर्तिकला पर भी दिखाई देता है। यूनानी और भारतीय शैलियों ने मिलकर गांधार कला शैली को जन्म दिया। भारतीयों ने यूनानियों से सोने और चाँदी के सुघड़ और सुन्दर डिजाइन वाले सिक्के बनाने सीखे। यूनानियों ने भारतीय ज्योतिष को भी कुछ सीमा तक प्रभावित किया।

आरियान, एडमिरल नियारकस और मेगस्थिनीज जैसे यूनानियों द्वारा छोड़े गए विवरणों से हमें उस समय के उत्तरी और उत्तर पूर्वी भारत की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। वे हमें उस समय की उन्नत और विकसित शिल्प कला, विश्व के अन्य भागों से सुदृढ़ व्यापारिक सम्बन्धों और देश की भौतिक समृद्धि के विषय में सूचनाएँ प्रदान करते हैं। भारतीय काष्ठ कला के विकसित व्यापार के विषय में भी पर्याप्त सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नियारकस के नेतृत्त्व में सिकन्दर द्वारा भारतीय पश्चिमी तट के साथ-साथ भेजा गया जहाजी बेड़ा भी भारत में ही बनाया गया था।

सिकन्दर के आक्रमण से पश्चिमी देशों को भारतीय जीवन और विचारों को जानने का अवसर मिला। ऐसा कहा जाता है कि प्राचीन भारतीय धर्म और दर्शन के सिद्धान्त और विचार सिकन्दर द्वारा बनाए गए मार्ग से ही रोम साम्राज्य में पहुँचे।

यूनानी लेखकों ने सिकन्दर के आक्रमण के विषय में तिथियों सहित जो लिखित विवरण छोड़े, उनसे प्राचीन भारतीय इतिहास के कालक्रम को जोड़ने में पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है। सिकन्दर के आक्रमण की तिथि 326 ई. पू. भारत की ऐतिहासिक घटनाओं को क्रम से आयोजित करने में मील का पत्थर सिद्ध होती है।

3.7 भारतीय संस्कृति के आदर्श प्रतीक-अशोक महान

भारत के इतिहास में अशोक का एक विशिष्ट स्थान है। उसकी सार्वभौमिक शांति, हिंसा और धार्मिक एकता की नीतियों का विश्व के अन्य शासकों में कहीं उदाहरण नहीं मिलता।

अशोक वह सम्राट था जिसने सफलतापूर्वक राज्यशासन को आदर्शवाद और दर्शन के साथ जोड़ा। अन्य शासकों की भांति अशोक ने भी अपना राज्य शासन 'कलिङ्ग की विजय' युद्ध से प्रारंभ किया। इस युद्ध में जीवन और सम्पत्ति के अंधाधुंध विनाश ने उसकी चेतना को इतना जबर्दस्त आघात पहुंचाया कि उसने दुबारा कभी युद्ध न करने का संकल्प किया। इसके विपरीत उसने 'धम्मविजय' की नीति को अपनाया अर्थात् 'धर्म की विजय'। अपने 13वें शिलालेख में अशोक कहता है कि अच्छी विजय वही है जो दया और गुणों से प्राप्त की जाय। एक राजा के ऐसे निर्णय ने ऐसे समय में जब सैनिक शक्ति ही ताकत का प्रतीक मानी जाती थी, उसे इतिहास में एक अद्वितीय स्थान प्राप्त करवा दिया।

अशोक पूरी तरह से मानवतावादी था। उसकी नीतियां प्रजा के कल्याणार्थ ही होती थीं। उसका धर्म सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित था। ब्राह्मणों को भृत्यादि निम्नस्तरीय लोगों को सम्मान देना, बड़ों की आज्ञा का पालन, जीवों की हत्या का निषेध आदि मूल्यों को महत्त्व देते हुए उसने धर्म में लोगों को धार्मिक एकता अपनाने के लिए कहा। इस धर्म ने सभी सम्प्रदायों के गुणों को समाहित किया। यद्यपि वह स्वयं बौद्ध धर्म का अनुयायी था उसने अपनी प्रजा पर अपना व्यक्तिगत धर्म थोपने का कभी प्रयत्न नहीं किया। अपने सुप्रसिद्ध 12वें प्रमुख शिलालेख में वह कहता है कि सभी सम्प्रदायों को आदर प्रदान करने में ही उसके अपने धर्म की विशेषता है।

अशोक ने अपनी प्रजा के कल्याण के लिए अनेक सकारात्मक उपाय किए। उन्होंने 'धम्म महामात्य' नामक अधिकारी नियुक्ति किये जो जनता के कल्याण के कार्यों की देखभाल करते थे। वे न केवल राज्य के महत्त्वपूर्ण भागों में बल्कि देश के दूरदराज के प्रान्तों में भी कार्य करते थे। साथ ही वे सभी धर्मों के अनुयायियां के बीच रहकर कार्य करते थे।

इस प्रकार अशोक एक ऐसा दयालु शासक था जिसने राजकीय विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिए एक विशिष्ट प्रकार के अधिकारियों की आवश्यकता का अनुभव किया।

अशोक ने, राजा के रूप में, अपने लिए भी एक उच्च आदर्श निर्धारित किया। वह अपने को प्रजा का पिता और प्रजा को अपनी सन्तान समझता था। उसने अपने विचारों और दर्शन को पत्थर के खम्भों और शिलाओं पर खुदवाकर जनता तक पहुंचाया। ये शिलालेख मौर्य कालीन वास्तुकला और अभियान्त्रिक कौशलों की अभूतपूर्व मिसाल हैं। ये उस समय के जीवन्त स्मारक हैं।

अशोक ने अपनी प्रजा को समझाया कि कर्मकाण्ड पर धन व्यय करना व्यर्थ है। उन्होंने लोगों को अहिंसा पर चलने का परामर्श दिया। उसने स्वयं शाही शिकार और मनोरञ्जनार्थ भ्रमण आदि छोड़ दिए। इसके स्थान पर उसने धर्म के प्रचार के लिए धर्मयात्राएं प्रारम्भ कीं। अपने साम्राज्य को एक समान धर्म; एक समान भाषा, और व्यवहारत: एक समान लिपि (ब्राह्मी) प्रदान करके उसने राजनैतिक एकता भी लाने का प्रयत्न किया। बौद्ध युग से ही भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य रहा है। यद्यपि वह स्वयं बौद्ध धर्म का अनुयायी था, उसने कभी भी दूसरों के ऊपर इस धर्म को नहीं थोपा बल्कि धार्मिक सहिष्णुता की नीति अपनाई। वह गैर बौद्ध-अनुयायियों और बौद्ध-विपक्षी मतावलंबियों को समान रूप से उपहार और अनुदान प्रदान करता था।

अशोक का यश उन प्रयत्नों पर भी निर्भर है जो उसने विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में शांति का प्रचार करने के लिए किए। उसने यूनानी साम्राज्य में अपने दूत भेजे, और पश्चिमी भारतीय सभ्यता दूर दूर तक फैलती चली गई। एक बौद्ध परम्परा के आधार पर अशोक ने अपने दूत श्रीलंका, और मध्य एशिया तक के दूर दराज के क्षेत्रों तक भेजे। बौद्ध धर्म विश्व के विभिन्न भागों में फैलता चला गया। यद्यपि आज भारत में बौद्ध धर्म कोई बहुत बड़ी शक्ति नहीं है फिर भी यह श्रीलंका और सुदूर पूर्वी देशों में आज भी अपनी लोकप्रियता बनाए हुए है।

वर्ण व्यवस्था जो प्राय: जातिव्यवस्था के रूप में जानी जाती है, वैदिक युग में प्रारंभ हुई और धीरे धीरे सामाजिक संगठन के रूप में पूरे देश में, संपूर्ण भारत में, प्रधान संगठन के रूप में उभरी। नये धर्मों और दर्शन के साथ-साथ नगरों के विकास, शिल्पकला और व्यापार के प्रसार ने हमारे देश में सांस्कृतिक एकता की इकाई को बढ़ावा दिया। अशोक ने पूरे देश को एक शासन के अंतर्गत संगठित किया और राजकीय नीति के रूप में युद्ध का परित्याग किया। दूसरी तरफ उसने प्रतिज्ञा की कि वह समस्त जीवित प्राणियों के प्रति अपने ऋण को प्रत्यर्पित करने का प्रयत्न करता रहेगा।

3.8 कला और वास्तुकला-आरंभिक मौर्यकाल

कला और वास्तुकला के क्षेत्र में मौर्यों का योगदान प्रशंसनीय रहा। अशोक ने बुद्ध के जीवन की भिन्न भिन्न घटनाओं की स्मृति में 84000 स्तूप बनवाए। मैगस्थनीज के अनुसार पाटलिपुत्र का वैभव ईरान के शहरों से कम न था।

अशोक के अभिलेख जिन स्तम्भों पर खुदवाये गये वे एक चमकीले बलुआ पत्थर के बने हैं और इनके शीर्ष पर घंटाकृतियां हैं। सर्वोत्तम सुरक्षित अशोक के शिलालेख बिहार के लौरिया नन्दनगढ़ में प्राप्त हुए हैं। यह 32 फीट लम्बे खम्बों के ऊपर 50 टन की बैठे हुए शेर की मूर्ति है, जो उत्कृष्ट अभियान्त्रिक चमत्कार का उदाहरण है। रामपुरा का स्तम्भ जिस पर बैल की मूर्ति बनी है, मौर्य शिल्पकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। सबसे अधिक प्रसिद्ध स्तम्भ सारनाथ में है जिसके ऊपर चार सिंह तथा धर्मचक्र बना हुआ है। आप इससे परिचित ही हैं क्योंकि यही आधुनिक भारत गणराज्य की राष्ट्र मुद्रा के रूप में स्वीकृत कर लिया गया है।

स्तम्भों के अतिरिक्त और भी कई मौर्यकालीन आकृतियाँ प्रकाश में आई हैं। सबसे अधिक प्रसिद्ध है दीदारगंज से प्राप्त यक्षी की मूर्ति। इन मूतियों का सौन्दर्य इनकी कारीगरी की शुद्धता और इस तथ्य में है कि ये पूरे एक समूचे पत्थर से बनाई गई है। स्तम्भों के समान इन मूर्तियों पर भी अनुपम चमक है जिसे मौर्यन पालिश कहा जाता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इन मूर्तियों की चमक में आज तक इतनी सदियों के बाद भी कोई कमी नहीं आई। इसके अतिरिक्त इन सभी शिलालेखों में जो भाषा प्रयोग की गई है, वह प्राकृत है जो उस समय देश की राष्ट्र भाषा रही होगी। इनमें सबसे प्राचीन भारतीय लिपि ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया गया है।

3.9 मौर्योत्तर काल में सांस्कृतिक विकास

यद्यपि यूनानी, शक, पार्थियन और कुषाण विदेशी थे परन्तु वे सब शीघ्र ही स्थानीय जनता में घुलमिल गए। क्योंकि ये सब योद्धा थे, अतः नीति निर्माताओं द्वारा इनको क्षत्रिय वर्ग में रखा गया । यह भी ध्यान देने योग्य है कि उत्तर मौर्य काल में ही इतने बड़े पैमाने पर विदेशियों का भारतीय समाज में मिश्रण हुआ। अनुमानतः हम कह सकते हैं कि सामान्य रूप में 200ई. पूर्व से 300ई. पश्चात् तक हमारे देश के धर्म, कला और विज्ञान तथा तकनीक में तथा राजनैतिक एवं आर्थिक स्तर पर बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। अनेकों दस्तकारियों के विकास के साथ-साथ समुद्री और भूमिगत रास्तों से विदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध सुदृढ़ हुए।

अनेक विदेशी शासकों ने वैष्णव धर्म को अपनाया। बेसनगर स्तम्भ के शिलालेख में यूनानी राजा अन्त्यल्किदास के यूनानी दूत हेल्योडोरस ने अपने को भागवत (विष्णुभक्त) घोषित किया। इसी प्रकार कनिष्क के कुछ सिक्कों पर भी शिव की मूर्ति मिली है। कुषाण वंशी एक राजा अपने आप को वासुदेव कहलाता था जिससे उसके वैष्णव होने का परिचय मिलता है।

क्या आप कनिष्क के राज्यारोहण के वर्ष अर्थात् 78 ई. का महत्व जानते हैं। यह शक संवत् के प्रारम्भ का द्योतक है।

विभिन्न विदेशी वर्गों के साथ भारतीयों की अन्तः क्रिया में उन्होंने एक न एक भारतीय धर्म अपना लिया। कुछ विदेशी ताकतों ने बौद्ध धर्म अपनाया क्योंकि इसमें जाति की समस्या से सामना नहीं करना पड़ा। मानेन्द्र ने बुद्ध धर्म अपनाया। कनिष्क ने भी इस धर्म के प्रति अपनी सेवाएँ समर्पित की। लेकिन इस बढ़ती लोकप्रियता के कारण बौद्ध धर्म में एक महान परिवर्तन आया। अपने मौलिक रूप में बौद्ध धर्म विदेशियों के लिए बहुत जटिल था। इसलिए उन्होंने इसका एक सरल रूप आविष्कृत किया जिसके माध्यम से वे अपनी धार्मिक आकांक्षाओं की पूर्ति कर सकते थे। इसी काल में बौद्ध धर्म दो शाखाओं में बंट गया - महायान (बड़ा चक्र) और हीनयान (छोटा चक्र)। महायानी मूर्ति पूजा विधि विधानों और बुद्ध के पूर्व जन्मों बोधिसत्वों में विश्वास करते थे। जबकि हीनयान प्राचीन बौद्धधर्म के नियमों पर चलते रहे। महायान को कनिष्क से शाही संरक्षण प्राप्त हुआ। जिसने इसकी शिक्षाओं का प्रचार करने के लिए चतुर्थ बौद्ध संगति का आयोजन किया और उनकी स्मृति में अनेक स्तूप भी बनवाये।

कला और मूर्तिकला

मध्य एशियाई आक्रमणों से भारतीय कला और मूर्तिकला के क्षेत्र में और अधिक विकास हुआ। पश्चिमी दुनिया के साथ निकट सम्बंधों के फलस्वरूप भारतीय कला में कई नई शैलियों का विकास हुआ। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विकास गांधार स्कूल आफ आर्ट के रूप में हुआ। इस शैली ने रोम और यूनान दोनों की ही कलाकृतियों के लक्षणों को ग्रहण

किया। कुषाण काल की बुद्ध की कई मूर्तियों में बुद्ध का चेहरा यूनानी देवता अपोलों से मिलता है। उनके बाल यूनानी रोमन शैली में बनाए गए हैं और उनके वस्त्र भी रोमन 'टोगा' की शैली में व्यवस्थित किए गये हैं। कुषाण काल में विभिन्न शैलियों में प्रशिक्षित शिल्पकारों को एक साथ काम करने का अवसर मिला।

मथुरा भी जो भारतीय कला शैली का केन्द्र थी, आक्रमणों से प्रभावित हुई। मिट्टी और लाल पत्थर की यहां से कई मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जिन पर शक-कुषाण प्रभाव परिलक्षित होता है। इनमें सबसे प्रसिद्ध मूर्ति है मथुरा की शीर्षरहित कनिष्क की मूर्ति जबकि पूर्ववर्ती बौद्धधर्मियों ने बुद्ध को प्रतीकों के माध्यम से ही चित्रित किया था, मथुरा शैली ने पहली बार बुद्ध का चेहरा और आकृति बनाई। जातक जैसी लोक कथाओं को चट्टानों के बड़े फलकों पर चित्ररूप में उकेरा गया। बुद्ध की मूर्तियों के अतिरिक्त जो उस समय बहुत बड़ी संख्या में बनाई गईं, महावीर के बुत भी बड़ी संख्या में बनाए गए।

दक्कन और दक्षिणी भारत

मौर्यों के अधीन दक्कन में सातवाहनों की स्थिति बहुत सुदृढ़ थी। अशोक की मृत्यु के बाद, वे पूर्ण रूप से स्वाधीन बन गए। वे बहुत शक्तिशाली हो गए और गोदावरी नदी के किनारे पर पैठन (प्रतिष्ठान) को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। सातवाहनों के विदेशी सत्रपों विशेषतः शकों के साथ युद्ध होने लगे। विशेषरूप से गौतमपुत्र और उसके बेटे वसिष्ठपुत्र सत्कर्णी के समय में सातवाहनों की शक्ति बहुत बढ़ गई। उन्होंने अपने राज्य का विस्तार किया, वनों को काटा, सड़कें बनाईं और अपने राज्य को भली प्रकार शासित किया। नये शहरों का विकास हुआ और दूर दराज के देशों जैसे पर्शिया, ईराक और कम्बोडिया से व्यापार करना प्रारम्भ किया।

कलिङ्ग का खारवेल

एक अन्य राज्य जो मौर्यों के बाद महत्त्वपूर्ण स्थिति को प्राप्त किया, वह था कलिङ्ग। कलिङ्ग राज्य के अंतर्गत आधुनिक उड़ीसा और उत्तरी आन्ध्र प्रदेश के भी कुछ भाग सम्मिलित थे। इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शासक था खारवेल। उदयगिरि की एक जैन गुफा में हाथीगुम्फा शिलालेख उसके राज्य के विषय में विस्तृत सूचना प्रदान करता है लेकिन दुर्भाग्यवश वह अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। इतना तो निश्चयपूर्वक ज्ञात हुआ है कि वह एक महान प्रशासक तथा बहादुर योद्धा था। उसने जनता की भलाई के लिए धर्मपरायणता और जनोपयोगी कार्य किए जैसे सड़कें बनवाईं, बगीचे बनवाए।

दक्षिण भारत

कृष्णा और तुंगभद्रा नदी के दक्षिण में जो क्षेत्र हैं वह दक्षिण भारत कहलाता है। यह चोलों का प्रदेश था। चेर और पाण्ड्या निरन्तर परस्पर युद्ध करते रहते थे।

स्रोत

इन राज्यों के बारे में और यहां के निवासियों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के प्रमुख स्रोत है संगम साहित्य। इसलिये ईसापूर्व पहली शताब्दी के प्रारंभ से लेकर ईसा पश्चात् दूसरी शताब्दी के अंत तक दक्षिण भारत के इतिहास का काल 'संगम काल' कहलाता है।

चोल

करिकाल इस राज्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शासक था। उसने चेर और पाण्ड्यों की संयुक्त सेनाओं को पराजित किया। उसने सीलोन से किए गए आक्रमणों को भी पीछे धकेल दिया। करिकल ने बहुत कल्याणकारी कार्य भी किए। उसने कई नहरें बनवाईं जिससे कावेरी का पानी सिंचाई व्यवस्था के काम आ सके। करिकाल ने कला और साहित्य की कृतियों को भी प्रोत्साहित किया। वह वैदिक धर्म का अनुयायी था।

पाण्ड्य

पाण्ड्य साम्राज्य एक महिला राजा द्वारा स्थापित किया गया। उसके पास विशाल सेना थी। उसने भी व्यापार को बढ़ावा दिया और कला और साहित्य को प्रोत्साहित किया।

जीवन और संस्कृति

इस काल के लोगों का जीवन सीधा सादा था। वे संगीत नृत्य और कवित्व के प्रेमी थे। अनेक संगीत वाद्य ढोल, वंशी, बीन बांसुरी आदि उस समय प्रचलित थे। अधिकतर लोग घाटियों में रहते थे और उनमें से अधिकांश लोग किसान थे। कुछ अन्य गडरिये थे। इनमें कलाकार और शिल्पकार भी थे जो प्रायः शहरों में रहते थे। विशेषतः समुद्रतटवर्ती इलाकों में व्यापारी थे और समुद्री मार्ग से व्यापार करते थे।

समाज

ग्रीक, कुषाण, शक,पार्थियन आदि यवन कहलाते थे। वे शीघ्र ही भारतीय समाज में घुलमिल गए और उन्होंने भारतीय नाम और अंतर्जातीय विवाह आदि भी किए। यहां तक कि उनके सिक्कों पर भी भारतीय देवताओं जैसे विष्णु, गणेश और महेश आदि की मूर्तियां बनने लगीं। उन्होंने सरलता से ही भारतीय समाज को अपना लिया था, इस तथ्य से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि विदेशी शासकों ने क्यों बौद्ध धर्म को संरक्षण दिया।

हर्षवर्धन का युग

राजा हर्षवर्धन ने यह निर्णय लिया कि इन छोटे छोटे युद्धरत शासकों को पराजित करके अपने राज्य में शामिल कर लिया जाय। उसने ऐसा करने में अपने जीवन के छः महत्त्वपूर्ण

वर्ष लगा दिए। एक चीनी यात्री ह्यूनसांग और सम्राट के दरबारी कवि बाण ने हर्ष के राज्य के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। ह्यूनसांग के अनुसार हर्षवर्धन का प्रशासन बहुत उत्तम था। उसने यह भी बताया कि उस समय परिवारों का पञ्जीकरण भी नहीं होता था और किसी प्रकार की जबर्दस्ती से मजदूरी नहीं करवाई जाती थी।

हर्ष की धार्मिक गतिविधियां

क्या आप जानते हो कि हर्ष ने अनेक चिकित्सालय और धर्मशालाएं बनवाईं। उसने बौद्ध धर्म और हिन्दु धर्म को भी अनुदान प्रदान किया। अपने जीवन के परवर्ती समय में वह बौद्धधर्म की ओर अधिक झुक गया।

हर्ष की साहित्यिक गतिविधियों में कुछ महत्त्वपूर्ण नाटक भी सम्मिलित हैं यथा नागानंद, रत्नावली और प्रियदर्शिका। उसने विद्वानों का समाज एकत्रित किया जैसा कि ह्यूसांग और बाणभट्ट के विवरणों से स्पष्ट है। बाण ने हर्ष की प्रसिद्ध जीवनी हर्षचरितम् लिखी और साहित्यिक ग्रंथ कादम्बरी की भी रचना की।

दक्कन के राज्य और दक्षिण

आपने सातवाहनों के विषय में पढ़ा जिन्होंने लंबे समय दक्कन पर राज्य किया। उनके पतन के बाद दक्कन में कई अन्य राज्य उभर कर आए। उनमें सर्वप्रथम थे वाकाटक जिन्होंने एक मजबूत राज्य की स्थापना की परन्तु वे अधिक समय तक टिक नहीं सके।

वाकाटकों के पश्चात् वातपी और कल्याणी के चालुक्य आए। चालुक्य वंश का प्रभावशाली राजा था पुलकेशिन। चालुक्यवंशीय राजा उत्तर की ओर राष्ट्रकूटों से और दक्षिण की ओर पल्लवों से लड़ते रहे। चालुक्य शासन 753 ई. पश्चात् समाप्त हो गया जब राष्ट्रकूटों ने उन्हें परास्त कर दिया।

वातपी राजधानी एक समृद्ध नगर था। अरब, ईरान और लालसागर बन्दरगाह से पश्चिमी और दक्षिणपूर्वी देशों से व्यापार होता था। पुलकेशिन द्वितीय ने पर्शिया के राजा खुसरों के पास एक दूत भेजा था। चालुक्यों ने कला और धर्म को संरक्षण प्रदान किया। उन्होंने मंदिर और दक्कन की पहाड़ियों में गुफा मंदिर बनवाए। चालुक्यवंशीय और राष्ट्रकूट राजाओं के तत्त्वावधान में ही एलोरा गुफाओं की अनेक शिल्पकलाकृतियों का निर्माण हुआ।

पाठगत प्रश्न 3.2

1. ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में उत्तरी और उत्तर पश्चिमी भारत के लोगों की सामाजिक और आर्थिक दशा को जानने के लिए सूचना के क्या स्रोत थे?

   ....

2. सम्राट अशोक के अनुसार धम्मविजय क्या है?

   ....

3. अशोक के बारहवें प्रमुख शिलालेख में उसके क्या विचार दिए गए हैं?

   ....

4. अशोक के शिलालेख कहां कहां मिलते हैं?

   ....

5. भारतीय राष्ट्रचिह्न कहां से लिया गया है?

   ....

6. गांधार स्कूल ऑफ आर्ट ने यूनानी और रोमन कलाकृतियों से किन लक्षणों को ग्रहण किया?

   ....

7. मथुरा कला स्कूल के वैशिष्ट्य का वर्णन कीजिए।

   ....

3.10 गुप्त काल में सांस्कृतिक विकास

प्राचीन भारतीय इतिहास का अंतिम चरण ई. पश्चात् चौथी शताब्दी में आरंभ होता है और लगभग आठवीं शताब्दी में समाप्त होता है। गुप्तवंशीय शासकों ने एक बहुत सुदृढ़ और शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। उनके द्वारा राज्य की एकता और राजकीय संरक्षण के कारण सांस्कृतिक गतिविधियों में कई गुणा वृद्धि हुई। आपको स्मरण होगा कि यूनानी आक्रमण के कारण विभिन्न भारतीय कलाकृतियाँ यूनानी रोमन शैलियाँ से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित हुईं। यह कला अधिकतर बुद्ध और बौद्ध धर्म के विचारों को दर्शाती थी। गुप्तकाल में कला में अधिक सृजनात्मकता आई और हिंदु देवी-देवताओं को भी प्रस्तुत किया जाने लगा।

गुप्तकाल की कलात्मक अभिव्यक्ति का अनुमान गुप्तकाल में विभिन्न प्रकार के सिक्कों पर की गई बारीक कारीगरी और डिजाइनों द्वारा किया जा सकता है। सामान्य योजना के अनुसार सिक्के के एक ओर राजा का चित्र होता था और दूसरी ओर किसी देवी-देवता को उससे संबंधित प्रतीक के साथ चित्रित किया जाता था। राजा को चित्र में कई रूपों में कभी शेर या चीते का शिकार करते हुए या सिंहासन पर बैठकर कोई संगीत वाद्य यंत्र बजाते हुए दिखाया जाता था। सिक्के के दूसरी ओर अधिकतर धन की देवी लक्ष्मी या कुछ सिक्कों पर विद्या की देवी सरस्वती का चित्र अंकित होता था।

सिक्कों के अतिरिक्त, गुप्तकाल की कला स्मारकों और मूर्तियों में भी अभिव्यक्त हुई। इस युग के कुशल कारीगरों ने भारत के आदर्श और दार्शनिक परंपराओं को भी अपने औजारों के कौशल से विभिन्न कला रूपों में सृजन किया। उन्होंने धार्मिक स्थलों के कोने-कोने को देवी देवताओं की मूर्तियों से सुसज्जित किया। देवी देवताओं की मूर्तियों को देवता का प्रतीक माना जाता था इसलिए देवताओं की चतुर्भुज या अष्टभुज मूर्तियों में एक-एक चिह्न या एक शस्त्र पकड़ा हुआ होता था यद्यपि वे मूर्तियाँ मानवाकार में ही होती थीं। देवी देवताओं के मंदिर पत्थर, टेरेकोटा और अन्य सामग्री से बनाए जाते थे।

गुप्तवंशीय कला के उदाहरण देवगढ़ के प्रसिद्ध दशावतार के मंदिर और उदयगिरि की पहाड़ियों की गुफाओं में बने मंदिरों में देखे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त गुप्त कला के सर्वाधिक प्रसिद्ध उदाहरण, जो आज भी सुरक्षित हैं, वे बैठे या खड़े हुए बुद्ध के रूप में सारनाथ में विराजमान हैं।

सारनाथ में जो कला शैली फली-फूली, उसने हमें बुद्ध की बहुत सुंदर और भव्य मूर्त्तियाँ प्रदान कीं। पत्थर के अतिरिक्त गुप्तकालीन कलाकार कांस्य की मूर्त्तियाँ बनाने में भी कुशल थे। भागलपुर के समीप सुल्तानगंज में बुद्ध की दो मीटर ऊँची कांस्य प्रतिमा मिली है। इस काल के गुफा-मंदिरों की कला के प्रतीक हैं—एलोरा के प्रसिद्ध गुफा मंदिर।

वास्तुकला

गुप्त काल की वास्तुकला के नमूने पहाड़ों को काटकर बनाई गई गुफाओं (अजंता) और मंदिरों के रूप में हैं जैसे देवगढ़ के दशावतार मंदिर में भवन पत्थर और ईंटों से बनाए गए हैं। कालिदास के काव्य में गुप्त वास्तुकला के उद्धरण प्राप्त होते हैं। कवि ने एक सुनियोजित नगर का चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें सड़कों का जाल बिछा है, बाजार है, ऊँचे-ऊँचे गगनचुंबी महल हैं और छज्जों वाले भवन हैं। महलों में कई भवन होते थे। उनमें आँगन, जेल, न्यायालय कक्ष और सभागृह होते थे। वरामदों के रोशनदान छत की ओर खुलते थे जिन पर रात को चांदनी बिखरी हुई होती थी। महलों के साथ मनोरंजन हेतु उद्यान होते थे जो सब प्रकार के मौसमी फूल और वृक्षों से सुसज्जित थे।

गुप्तकालीन वास्तुकला के प्रमाण बहुत कम मिलते हैं तथापि इन गुप्तकालीन मंदिरों के नमूने मध्य भारत के वनों में तथा बुंदेलखण्ड क्षेत्र में पाये गए हैं। इनमें कानपुर जिले के भीतरगांव के मंदिर भी शामिल हैं।

चित्रकला

गुप्तकाल में चित्रकला उन्नति के उच्च शिखर पर थी। अजंता की गुफाएँ (औरंगाबाद) और बाघ गुफाओं (ग्वालियर के पास) के भित्ति चित्र इस बात के प्रमाण हैं। यद्यपि अजंता की गुफाओं के चित्रित चित्र प्रथम शताब्दी से सातवीं शताब्दी ईसवी के हैं लेकिन इनमें से अधिकांश की रचना गुप्तकाल में ही हुई। इन चित्रों में बुद्ध के जीवन की घटनाएँ चित्रित

हैं। जिस सुंदरता से मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि के चित्र बनाए गए हैं, वे गुप्तकालीन चित्रकला की उत्कृष्टता आदि भावपूर्णता के सशक्त उदाहरण हैं। चित्रकला के माध्यम से अभिव्यक्ति महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी क्योंकि यह आध्यात्मिक आनंद प्राप्त करने का साधन मानी जाती थी।

3.11 पल्लव और चोल शासक

चेन्नई के निकट महाबलिपुरम में स्मारकों का समूह

प्राचीन भारत का इतिहास दक्षिणी भारत के दो प्रमुख वंशों पल्लवों और चोलों की कला, वास्तुकला, प्रशासन और विजयों के उल्लेख के बिना अपूर्ण ही रहेगा। ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में दक्षिण में अनेक वंशों का उदय हुआ। उनमें प्रमुख पल्लव कला और वास्तुकला के बहुत बड़े प्रशंसक थे। उनके द्वारा निर्मित महाबलीपुरम की रथ शैली के पहाड़ काट के बनाए गए मंदिरों का सुन्दर उदाहरण है। पल्लव वंशीयों ने कांचीपुरम् में कैलाशनाथ और वैकुण्ठनाथ मंदिरों जैसे ढांचागत मंदिरों का भी निर्माण करवाया। कैलाशनाथ मंदिर एक विशाल मंदिर है जिसमें हजारों मूर्तियां हैं और सम्भवत: भारत में बनाए गए विशालतम मंदिर का एकमात्र उदाहरण है। महाबलीपुरम् (मामल्लपुरम्) में मंदिर रथों के कुछ अन्य भी रूप पाये गये हैं जिसे पल्लवी शासकों द्वारा ही बनाया हुआ मना जाता है। महाबलीपुरम् में बने पगोड़ा भी ईसा पश्चात् प्रथम शताब्दी के माने जाते हैं।

सूर्य मंदिर, कोणार्क, उड़ीसा

मंदिर निर्माण का काम ई.पू. पांचवीं शताब्दी के बाद ही प्रारंभ हुआ। उत्तरी भारत में जो मंदिर बनाए गए, नागर शैली में थे जिनमें घुमावदार शिखर, गर्भगृह (मूर्ति का स्थान) और स्तम्भों से युक्त बड़े हाल आदि बनाए जाते थे जबकि दक्षिण में बने मंदिर द्रविड़ शैली में थे जिनमें विमान अर्थात् शिखर, ऊंची ऊंची

दीवारों और द्वारों के ऊपर बने गोपुरम से युक्त होते थे। पल्लवों के बाद मंदिर निर्माण की परंपरा दक्षिण में चोलों द्वारा आगे विकसित की गई।

क्या आप जानते हैं कि मंदिर का गांव में प्रमुख केंद्रीय स्थान होता था। यह गांव वालों के लिए एक ऐसा मिलन स्थल होता था जहां वे प्रतिदिन एकत्रित होते थे और समुदाय संबंधी सभी विषयों पर विचार विमर्श किया करते थे। ये विद्यालय का भी काम करते थे। त्योहारों के दिनों में मंदिर के प्रांगण में नृत्य और नाटक आदि का भी आयोजन किया जाता था।

चोल शासकों की उपलब्धियां समुद्र पार तक उनकी विजय और ग्राम-स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं को विकसित करने में निहित हैं। ग्राम पंचायत के पास जिसे सभा या उर भी कहा जाता था, व्यापक शक्तियां होती थीं। यह वित्त विषयक मामलों पर भी नियंत्रण रखती थीं। इस सभा के अधीन अनेक समितियां होती थीं जो ग्राम प्रशासन के विभिन्न पक्षों का प्रबंध करती थीं। चोल वंशीय एक शिलालेख से सभाओं की कार्यप्रणाली का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। चोल शासक बहुत अच्छे निर्माता थे। चोलवंशीय शासकों के शासनकाल में मंदिर वास्तुकला की द्रविड शैली अपनी पराकाष्ठा पर थी। इसका खूबसूरत उदाहरण राजराजेश्वर या बृहदेश्वर मंदिर है। इस काल में मूर्तिकला में भी उपलब्धियां प्राप्त की गईं।

धार्मिक तथा धर्मनिरपेक्ष दोनों प्रकार के साहित्य में भी अत्यधिक उन्नति हुई। देश के कई भागों में संस्कृत दरबारों की भाषा बन गई। तमिल साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। आलावर, नयनार, वैष्णव शैव सन्तों ने भी अपना बहुमूल्य योगदान किया। देश के कई भागों में यद्यपि संस्कृत का बोलबाला था; इस काल में कई अनेक भारतीय भाषाओं और लिपियों का भी उदय हुआ। हम कह सकते हैं कि प्राचीन काल के अंत तक भारतीय इतिहास में ऐसी संस्कृति विकसित हो चुकी थी जिसने आज तक अपनी पहचान सुरक्षित रखी है।

3.12 वैदिक ब्राह्मण धर्म का पौराणिक हिंदु धर्म में परिवर्तन

गुप्तकाल के बाद सबसे अधिक उल्लेखनीय बिंदु था प्राचीन ब्राह्मणधर्म का पौराणिक हिंदु धर्म में परिवर्तन। बौद्ध धर्म को अब पहले की तरह राजकीय संरक्षण नहीं मिल रहा था। ब्राह्मणवाद प्रमुख होने लगा था। गुप्तवंशीय शासकों ने हिंदुओं के भागवत धर्म को विशेष प्रश्रय दिया। वे अपने आप को भागवत कहते थे, विष्णु की पूजा करते थे और अश्वमेध यज्ञों का आयोजन करते थे, ब्राह्मणों को बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ देते थे और मंदिरों का निर्माण करते थे। इसी युग में पुराणों को संकलित किया गया। विष्णु पूजा का प्रमुख देवता बनकर उभरे और धर्म के रक्षक माने जाने लगे। उनसे संबंधित अनेक कथाओं ने जन्म लिया और उनके सम्मान में संपूर्ण विष्णु पुराण बनाया गया। इसी प्रकार इसी देवता के नाम पर विष्णु स्मृति की भी रचना की गई। इन सबसे अधिक सर्वोपरि चौथी शताब्दी ईसवी में 'वैष्णव कृति' श्रीमद् भागवतपुराण की रचना हुई जिसमें भगवान कृष्ण के प्रति भक्ति का वर्णन था। कुछ गुप्तकालीन शासक शिव की भी उपासना करते थे जिसे संहार का देवता माना जाता

है। भागवत् धर्म जो मूलरूप में बौद्ध धर्म और जैनधर्म के समकालीन था, और उपनिषद के विचारों से प्रादुर्भूत हुआ था, इस काल का सर्वाधिक लोकप्रिय धर्म बन गया। सर्वोच्च देवता विष्णु के दस अवतारों का सिद्धांत प्रचलित हो गया और उनमें कृष्ण को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा।

विष्णु के अतिरिक्त, ब्रह्मा, सूर्य, कार्तिकेय, गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा कम महत्त्वपूर्ण इंद्र, वरुण, यम आदि भी पूजे जाते थे। सांप, यक्ष और गंधर्व भी सम्मानित होते रहे यहां तक कि पशु-पौधे, नदियां, पर्वत आदि भी सम्मान से देखे जाते थे। बनारस और प्रयाग तीर्थ स्थान बन गए। मूर्ति पूजा लोकप्रिय हो गई। इस प्रकार आधुनिक हिंदू धर्म के मुख्य लक्षणों ने गुप्त वंश के समय से ही आकार धारण कर लिया था।

यद्यपि बौद्धधर्म का ह्रास हो रहा था, फिर भी इसके अनुयायी बहुत थे। इसके अतिरिक्त अजन्ता एलोरा की कलापूर्ण कृतियां, सारनाथ की इस समय की बुद्ध की मूर्तियां सिद्ध करते हैं कि बुद्ध धर्म भी काफी लोकप्रिय था। गुप्त काल में जैन धर्म के भी अनुयायी कम न थे।

3.13 शिक्षण के महत्त्वपूर्ण केंद्र के रूप में नालन्दा का उदय

हर्षवर्धन के राज्य में नालन्दा शिक्षा का एक महान केंद्र बन गया था। विश्व के विभिन्न प्रदेशों से छात्र यहां पढ़ने के लिए आते थे। यद्यपि नालन्दा के सभी टीलों की खुदाई नहीं हो पाई है, फिर भी एक विशाल भवन समूह के प्रमाण पाये गए हैं। कुछ भवन तो चार चार मंजिल वाले थे। ह्यूनसांग के अनुसार नालन्दा में प्राय: 10,800 विद्यार्थियों के रहने की व्यवस्था थी। इसका प्रबंध 200 गांवों से प्राप्त राजस्व से किया जाता था।

यद्यपि यह मठ जैसा शिक्षण संस्थान प्रमुख रूप से महायान बौद्ध धर्म की शिक्षा का केन्द्र था, फिर भी यहां धर्मनिरपेक्ष विषय भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित थे जैसे व्याकरण, तर्कशास्त्र, ज्ञान मीमांसा तथा विज्ञान अदि भी यहां पढ़ाए जाते थे। विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने तथा तर्क शक्ति को विकसित करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता था। सक्रिय विचार विमर्श और वाद-विवाद किए जाते थे। हर्ष ने कन्नौज में आयोजित दार्शनिक संसद में भाग लेने के लिए 1000 विद्वान बौद्ध भिक्षुओं को आमंत्रित किया था। अपने विवरण में ह्यूनसांग ने नालन्दा का विस्तृत विवरण दिया है। यह विश्वविद्यालय 12वीं शताब्दी तक बौद्धिक गतिविधियों का केन्द्र बना रहा।

पाठगत प्रश्न 3.3

1. गुप्तकाल के सिक्कों की क्या विशेषताएं थीं?

....

2. दशावतार मंदिर कहां स्थित है?

....

3. उदयगिरि के गुफा मंदिर किस लिए प्रसिद्ध हैं?

....

4. भागलपुर के पास सुलतानगंज में प्राप्त बुद्ध की कांस्य मूर्ति कितनी ऊंची है?

....

5. गुप्त कालीन चित्रकला के नमूने कहां कहां पाए जाते हैं?

....

6. हर्ष के राज्य में दार्शनिक संसद कहां आयोजित की गई थी?

....

3.14 भारत में ईसाई धर्म

परम्परा के अनुसार ईसाई धर्म को भारत में संत थामस प्रथम शताब्दी ई.पू. में लेकर आए थे। दन्तकथाओं के अनुसार पार्थियन बादशाह गोण्डोफर्नीस (19-45 ई पश्चात) ने सीरिया में एक कुशल वास्तुविद की तलाश में अपना दूत भेजा जो उसके लिए एक नया शहर बना सके। दूत अपने साथ संत थामस को लेकर आया जिसने उस बादशाह तथा उसके दरबार के अन्य सभासदों को ईसाई बना दिया। यह दन्तकथा संदिग्ध है। सम्भवतः भारत और पश्चिम के बीच जो व्यापार संबंध बढ़े, उन्हीं के कारण ईसामसीह के शिष्य संत को भारत लाया गया। व्यापारी, शिल्पकार आदि प्रचलित स्थलीय और समुद्री मार्गों से यात्राएं किया करते थे। संत थामस ने भारत के बहुत से भागों में ईसाई धर्म का प्रचार किया। वह मद्रास के पास माइलापुर में मारा गया। संत थामस का मकबरा आज भी उसी जगह बना हुआ है। ईसाइयों का एक बहुत बड़ा समुदाय जो सीरियन ईसाई कहलाते हैं, आज भी केरल में बसे हुए हैं।

ईसाई चर्च भी दो भागों में बंटा हुआ है–रोमन कैथोलिक चर्च और प्रोटेस्टेन्ट चर्च। ईसाइयों की पवित्र पुस्तक बाइबल है। बाइबल के दो भाग हैं–पुराना टेस्टेमेंट और नया टेस्टेमेंट। बाइबल हमारे देश में प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं में अनूदित हो चुकी है।

आज भारत में डेढ़ करोड़ से भी अधिक ईसाई हैं। उनके सरक्षण में अनेकों धर्मार्थ संस्थाएं सफलतापूर्वक चल रही हैं। सम्भवतः सबसे अधिक प्रसिद्ध ईसाई समाज सेविका थीं मदर टेरेसा जिन्होंने हमारे देश में निर्धनों और बेघर लोगों की भलाई के लिए बहुत कार्य किया।

पाठगत प्रश्न 3.4

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए

1. भारत में ईसाई धर्म कैसे आया?
2. ईसाई चर्च के दो भाग कौन कौन से हैं?
3. मदर टेरेसा कौन थी?
4. पल्लवों द्वारा कांचीपुरम् में बनाए गए दो संरचनात्मक मंदिरों के नाम लिखिए।
5. पल्लवों तथा चोलों के शासन काल में मंदिर वास्तुकला की विभिन्न शैलियां कौन कौन सी थीं?
6. चोलवंशीयों द्वारा बनाए गए मंदिरों के नाम लिखिए।
7. चोलकालीन मूर्तिकला की शैली क्या थी?
8. महाबलीपुरम् (ममल्लपुरम) में पाए गए उभारदार चित्रों की शैली क्या है?

आपने क्या सीखा

- भारत का एक निरंतर इतिहास रहा है जो 7000 ई.पू. से भी प्राचीन काल से निरंतर चला आ रहा है।
- हड़प्पावासियों ने सबसे प्राचीन नगरों का निर्माण किया जो नगर योजना, सफाई व्यवस्था, नालियों की व्यवस्था तथा चौड़ी-चौड़ी सड़कों से परिपूर्ण थे।
- ग्रामीण लोगों का सबसे महत्त्वपूर्ण पेशा कृषि था।
- वैदिक काल के लोगों ने साहित्य, धर्म और दर्शन आदि विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।
- उत्तर वैदिक काल में समाज चार वर्णों में विभाजित था, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। महत्त्वपूर्ण धर्म जैसे हिन्दूधर्म, जैनधर्म, बौद्धधर्म आदि धर्मों का उदय हुआ और इनके बीच अंत:मिश्रण से भारतीय संस्कृति समृद्ध बनी।
- प्रारंभिक वैदिक लोग प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थे और उन्हें देव और देवियों का दर्जा प्रदान किया।
- मौर्य राजाओं ने उत्तरी भारत में बहुत बड़ा साम्राज्य स्थापित किया और अशोक महान के शासन काल में इसने कई क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त कीं।
- पल्लव कला और वास्तुकला में मौर्यों का योगदान महत्त्वपूर्ण था। जो बहुत अच्छे निर्माता थे, उनके शासन काल में मंदिर वास्तुकला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई।

- गुप्तकालीन कला के नमूने देवगढ़ में दशावतार मंदिर और उदयगिरि के गुहा-मंदिरों में देखे जा सकते हैं।
- राजा हर्ष कष्टपूर्ण परिस्थितियों में अपने परिवार को खो देने के बाद थानेश्वर के सिंहासन पर आसीन हुए।
- हर्ष के राज्य का विवरण दो व्यक्तियों ने बड़े विस्तार से दिया है, जिनमें से एक हैं चीनी यात्री ह्यूनसांग और दूसरे हैं उनके दरबारी कवि बाणभट्ट।
- हर्ष एक कुशल और उदार हृदय शासक था। उसने कई कल्याण के कार्य किए। उसने जनता के विशिष्ट सेवकों को विपुल धनराशि प्रदान की, उच्च बौद्धिक क्षमता का प्रदर्शन करने वाले विद्वानों को पुरस्कृत किया और विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों को उपहार देकर धार्मिक गतिविधियों को प्रोत्साहित किया। उसने अनेक अस्पताल और धर्मशालाएं बनवाईं।
- हर्षवर्धन के राज्य में नालन्दा शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया था।
- हर्ष एक साहित्यकार भी थे। उन्होंने स्वयं नाटक भी लिखे और अपने चारों ओर विद्वानों को एकत्रित किया।
- चोलवंशीय राजाओं की उपलब्धियों में उनकी समुद्र पार की विजय भी सम्मिलित है और उन्होंने ग्राम स्तर पर शासन के लिए प्रजातांत्रिक संस्थाएं स्थापित कीं।

पाठान्त प्रश्न

1. आप आर्यों की संस्कृति से हड़प्पाकालीन संस्कृति की कैसे तुलना कर सकते हैं?
2. ई.पू. छठी शताब्दी में किन परिस्थितियों के कारण जैनधर्म और बौद्धधर्म का उदय हुआ?
3. भारतीय संस्कृति पर पर्शियन आक्रमणों का क्या प्रभाव पड़ा?
4. प्राचीन भारतीयों पर मकदूनियन आक्रमण के परिणाम क्या थे?
5. प्राचीन भारत में वैदिक ब्राह्मणवाद से पौराणिक हिन्दुवाद में परिवर्तन कैसे हुआ?
6. परवर्ती शासकों के शासनकाल में भारतीय संस्कृति के विकास को दिखाएँ।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

3.1 1. सिन्धु, घग्घर और इसकी सहायक नदियों के किनारों पर।

2. कृषि

3. 7000 वर्ष ई.पू. बलूचिस्तान के मेहरगढ़ में
4. मुद्राओं पर किसी प्रकार की लिपि अंकित थी।
5. मुद्राओं पर एक सींग वाला गेंडा प्राप्त हुआ जिसे यूनिकार्न कहते हैं। मोहेनजोदाड़ों में नृत्यांगना की एक कांस्य मूर्ति भी प्राप्त हुई है।
6. वेद-ऋग्वेद, अथर्ववेद, सामवेद, यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक और उपनिषद
7. धर्म, अर्थ, काम के द्वारा
8. वैदिक मंत्रों के उच्चारण के साथ किया जाता था।
9. अश्वमेध, राजसूय; वाजपेय यज्ञ
10. बहुत अधिक कर्मकाण्ड परक हो गया। इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवों के स्थान पर एक नये त्रिदेव, ब्रह्मा, विष्णु और शिव पूजे जाने लगे।
11. शतरंज, रथ प्रतियोगिता आदि खेल
12. अंग, मगध, कोसल, काशी, कुरु, पाञ्चाल
13. श्वेताम्बर (सफेद कपड़ों वाले), दिगम्बर (नग्न)
14. 8 (आठ)
15. जैनधर्म में स्थानक और बौद्धधर्म में विहार
16. हीनयान, महायान, वज्रयान

3.2

1. आरियन, एडमिरल नियरकस और मैगस्थनीज द्वारा छोड़े गए यूनानी वृत्तान्त
2. करुणा और गुणों द्वारा विजय ही सच्ची विजय हैं, अर्थात् लोगों का कल्याण
3. एक सम्प्रदाय का सम्मान अन्य सम्प्रदायों के सम्मान में है।
4. लारिया, नन्दनगढ (बिहार)
5. सारनाथ में अशोक स्तम्भ पर बनी प्रसिद्ध त्रिमूर्ति चिह्न से
6. अपोलो से मिलता जुलता चेहरा, बालों की शैली, वस्त्रों का पहनावा
7. (i) उन्होंने बुद्ध के चेहरे और आकृतियाँ बनानी प्रारंभ की

   (ii) चट्टानों पर और बड़े-बड़े चित्रफलकों पर लोककथाओं को चित्रित किया गया।

   (iii) उन्होंने मूर्त्तियां भी बनाई।

3.3 1. एक ओर राजा का विभिन्न स्थितियों में चित्र तथा दूसरी ओर देवी और उनसे संबद्ध प्रतीक चिह्न

2. देवगढ़ में

3. गुप्तकालीन कला

4. 2 मीटर ऊंची

5. (i) अजंता गुफा के भित्ति चित्र (ओरंगाबाद)

   (ii) ग्वालियर के पास बाघ गुफाएं

6. कन्नौज पर

3.4 1. संत थामस–एक कुशल वास्तुकार ईसाई था। पार्थियन राजा गोंडा फर्नेस ने C19/45 ई. पश्चात् में एक वास्तुकार के रूप में आमंत्रित किया संत थामस ने कई सदस्यों को ईसाई बनाया।

2. (i) रोमन कैथोलिक चर्च

   (ii) द प्रोटेस्टेन्ट चर्च

3. एक प्रसिद्ध ईसाई समाज सेविका जिसने निर्धन और बेघर लोगों के कल्याण के लिए बहुत कार्य किया।

4. कैलासनाथ और बैकुण्ठनाथ मंदिर

5. नागर शैली और द्रविड़ शैली

6. राजराजेश्वर/बृहदेश्वर मंदिर

7. द्रविड़ शैली

8. बैस रिलीफ (रथों के उभरे हुए चित्र)

4

मध्यकालीन भारत

मध्यकालीन भारत में, धर्म, लोककला तथा भाषा के क्षेत्र में हुए विकास कार्य भारत की संयुक्त संस्कृति के क्रमिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण मील के पत्थर साबित हुए। नये धार्मिक आंदोलन जैसे सूफी मत और सिख धर्म ने भी भक्ति आंदोलन के साथ इस प्रक्रिया में अपना योगदान किया। अगर आप चारों ओर देखें तो आपको भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर इस्लाम का प्रभाव दिखाई देगा। आपने भारत में कई प्रसिद्ध स्मारक देखे होंगे। ये स्मारक भारत में भारतीय-इस्लामी संस्कृति की सांझी प्रकृति के साक्षी के रूप में खड़े हैं। आप देख सकते हैं कि इस्लाम सहित भारत में विभिन्न धर्मों ने एक दूसरे को प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त भारत का प्रत्येक क्षेत्र किसी न किसी एक लोक कला या दूसरी के विकास के लिए प्रसिद्ध है। लोक कलाओं का विकास भारतीय संस्कृति का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है जिसके माध्यम से सामान्य जन अपनी सृजनात्मकता को अभिव्यक्त करते हैं। विभिन्न क्षेत्रीय भाषाए जो हम बोलते हैं, उनका भी एक रोचक इतिहास है जिनका विकास इसी युग में हुआ।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने को बाद आप:–

- मध्ययुग के समाज को समझ सकेंगे;
- इस्लाम और सूफी मत के उदय की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- मध्यकाल में भारत की राजनैतिक स्थिति का वर्णन कर सकेंगे;
- भारतीय धर्म पर इस्लाम के प्रभाव का विश्लेषण कर सकेंगे;
- भक्ति आंदोलन के विकास को रेखांकित कर सकेंगे;
- मध्य काल में लोक कलाओं, चित्रकला और संगीत के विकास का परीक्षण कर सकेंगे;

- आधुनिक भारतीय भाषाओं के उदय की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- भारत में सिख धर्म के उदय और सिख शक्ति के विषय में विवेचना कर सकेंगे;
- दक्षिणी भारत में विकास कार्यों को रेखांकित कर सकेंगे;

4.1. दिल्ली सल्तनत के अधीन लोगों का जीवन

जब मुस्लिम हमलावर भारत में आए तो उन्होंने भारत को ही अपना घर बनाने का निश्चय किया। उन्होंने अंतर्जातीय विवाह किए और भारतीयों की संस्कृति को अपनाया। विचारों और रीतिरिवाजों का आपसी आदान प्रदान होने लगा। वेशभूषा में, बोली में, व्यवहार में और बौद्धिक दृष्टिकोण में दोनों ने परस्पर एकदूसरे को बहुत अधिक प्रभावित किया। उनमें से कुछ परिवर्तनों का वर्णन आगे किया जा रहा है।

समाज

भारतीय समाज चार प्रमुख वर्गों विशिष्ट वर्ग, पुरोहित वर्ग, पुरवासी और कृषक वर्ग में बटा हुआ था।

विशिष्ट वर्ग

विशिष्ट वर्ग में सुलतान और उसके संबंधी, सामन्त वर्ग, और जमींदार आदि सम्मिलित थे। हिन्दु राजा, प्रधान वर्ग, हिन्दु व्यापारी और महाजन आदि भी इसी वर्ग में थे। इन्होंने सारी शक्ति और सारा धन अपने हाथों में ले लिया। कहना न होगा कि यह वर्ग बहुत शक्तिशाली लोगों का वर्ग था। ये लोग बड़ी शान से ऐशोआराम में जीवन बिताते थे। सुलतान तो इस दौड़ में सबसे आगे होता था। अपनी सर्वोच्चता और अपने पद को बनाए रखने के लिए उसे यह सब करना ही पड़ता था। उसे यह दिखाना होता था कि वह औरों से अलग है। जब कोई नया सुल्तान तख्त पर बैठता, तो मस्जिदों में शुक्रवार की नमाज के समय उसके नाम का खुत्बा या धर्मोपदेश पढ़ा जाता और उसके नाम से सिक्के भी जारी किए जाते। इस प्रकार नया शासक सिंहासन/तख्त पर आरूढ़ होता था। शासक के रूप में उसकी विशेषता बनाए रखने के लिए उसके साथ बहुत से अफसर और नौकर चाकर उसके शाहीमहल में नियुक्त किए जाते जहां वह बड़ी शानोशौकत से रहता था। यहां तक कि सामन्तगण भी उसके जीवनयापन के ढंग की नकल करते और अपने धन का प्रदर्शन करते थे।

पुरोहित वर्ग

समाज में पुरोहित वर्ग दूसरा महत्त्वपूर्ण वर्ग माना जाता था। हिन्दुओं में पुरोहित थे और मुस्लिमों में उलेमा। उन्हें अपने गुज़ारे के लिए कर मुक्त भूमि का अनुदान दिया जाता और अक्सर वे लोग बहुत शक्तिशाली हुआ करते थे। उलेमा मुस्लिम सुल्तानों पर अपना

अधिकार जमाते, और अक्सर उनकी नीतियों को भी प्रभावित करते थे पर कुछ अन्य अवसरों पर जैसे अलाउद्दीन खिलजी के राज्य में उनकी बिल्कुल परवाह नहीं की जाती थी। कभी-कभी पुरोहितगण भी धार्मिक कार्यों में रुचि नहीं रखते थे बल्कि सांसारिक क्रियाकलापों में अधिक व्यस्त रहते थे।

पुरवासी

शहरों में अमीर व्यापारी, सौदागर और शिल्पकार रहा करते थे। सरदार, अफसर और सैनिक भी शहरों में रहते थे जो प्रशासनिक और सैनिक केन्द्र हुआ करते थे। जहां सूफी और भक्ति सन्तगण रहते और जहां प्रसिद्ध मंदिर और मस्जिदें बनी हुई होती थीं, वे तीर्थ केन्द्र बन जाते थे। कलाकार अपने विशेष आवासों में रहते थे। वस्तुत: जुलाहे जुलाहों की बस्ती में रहते थे, सुनार सुनारों की बस्ती में रहते थे और अन्य कलाकार भी इसी तरह रहते थे। यह सभी कलाकारों और शिल्पकारों के लिए सामान्य विधान था। ये लोग शाही सामान बनाते थे जो व्यापार के लिए विदेशों को भी भेजा जाता था। शाही कारखाने इन लोगों को खूबसूरत वस्तुएं बनाने के लिए नियुक्त करते थे ये वस्तुएं प्राय: सुल्तानों द्वारा उपहार देने में प्रयोग की जाती थीं।

कृषकवर्ग

कृषक वर्ग तो बहरहाल गांवों में रहते थे और अकसर सबसे बुरी दशा में थे। वे राज्य को भूमिकर के रूप में बड़ी-बड़ी राशि देते थे। राज्य शासन में परिवर्तन का उनके जीवनों पर कोई प्रभाव न पड़ता था। उनका जीवन वैसे ही चलता रहता।

जाति प्रथा बहुत कठोर थी। अंतर्जातीय विवाह और अंतर्जातीय भोज पूरी तरह से निषिद्ध थे लेकिन विचारों का आदान प्रदान बड़े व्यापक स्तर पर होता था। इस्लामधर्म में परिवर्तित हो जाने पर भी वे अपनी पुरानी रीतियों को नहीं भूल पाते। अत: विचारों और रीतिरिवाजों का आदान प्रदान चलता रहा। बहुत से हिन्दु रीति रिवाज मुसलमानों द्वारा अपना लिए जाते और बहुत से मुस्लिम रीतिरिवाज हिन्दुओं द्वारा स्वीकार कर लिए जाते जैसे भोजन, वेशभूषा, वस्त्र, संगीत आदि।

व्यापार

व्यापार बहुत उन्नत था और व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए कई नए शहर बन गए। कुछ समुदाय जैसे वणिक वर्ग, मारवाड़ी और मुल्तानी लोगों ने व्यापार को अपना व्यवसाय बना लिया। बनजारे कारवों के रूप में व्यापार करते और बेचने की वस्तुओं को उठाकर निरन्तर एक स्थान से दूसरे स्थान पर यात्रा करते रहते।

दिल्ली सामान के आयात और निर्यात का केन्द्र थी। पूर्व से चावल, कन्नौज से चीनी, दोआब से गेहुँ और दक्षिण से बारीक सिल्क आदि सामान आता था। इसी के साथ अन्य शाही वस्तुएँ जैसे धातु की बनी वस्तुएँ, हाथी दाँत, आभूषण, सूती वस्त्र, और अन्य सामान

भी आता था। भारत के बाहर जैसे- पूर्वी अफ्रीका, अरब, चीन आदि विदेशों से भी सामान दिल्ली में आता था। इब्न बतूता के अनुसार दिल्ली उस समय एक शानदार शहर था।

व्यापार के विकास ने मुद्रा के प्रयोग को प्रोत्साहित किया और इस समय चाँदी के टके (सिक्के) प्रयोग में आने लगे। यह उस समय की सर्वाधिक प्रयुक्त मुद्रा थी और इनको इल्तुत्मिश ने जारी किया था। यहाँ तक कि माप तौल के बट्टों की जो व्यवस्था उस समय प्रयोग की गई, वह आधुनिक मीट्रिक प्रणाली के लागू होने तक चलती रही।

धार्मिक वातावरण

जब इस्लाम धर्म भारत में आया तब हिन्दू धर्म ही प्रचलित था। परन्तु इस समय तक हिन्दूधर्म स्वयमेव गिरता जा रहा था। इसे अन्ध विश्वासों, कर्मकाण्डों, बलिप्रथाओं ने घेर रखा था। ब्राह्मण बहुत शक्तिशाली हो गये थे और जाति प्रथा बहुत कठोर हो चुकी थी। जनता, विशेष रूप से निम्न जाति के लोगों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता। इस्लाम उन सब के विरुद्ध था जो हिन्दुओं में उस समय प्रचलित था। वे समानता, भ्रातृत्व और एक ईश्वरवाद की बात करते। इस्लाम में कोई हठधर्मिता नहीं थी। इसके विपरीत उनका सीधा सादा सिद्धान्त था और प्रजातान्त्रिक संगठन था।

इस्लाम के आने से देश के राजनैतिक ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं आया। इसकी बजाए इसने समाज के सामाजिक ढांचे को चुनौती दी। इस सम्पर्क का महत्त्वपूर्ण परिणाम हुआ–भक्ति आन्दोलन और सूफी आन्दोलन का उदय। दोनों ही आन्दोलन इस तथ्य पर आधारित थे कि ईश्वर सर्वोच्च है, उसके लिए सभी मनुष्य समान हैं और उसकी भक्ति से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है।

4.2 इस्लाम और सूफीवाद का उदय

मुसलमान पहली बार आठवीं शताब्दी में भारत में व्यापारी बनकर आये। वे इस देश के सामाजिक-सांस्कृतिक दृश्यों से मोहित हो गए और उन्होंने भारत को अपना घर बनाने का निश्चय किया। मध्य तथा पश्चिम एशिया से जो व्यापारी भारत आये थे वे अपने साथ भारतीय विज्ञान तथा संस्कृति के ज्ञान को ले गए जिसके फलस्वरूप वे भारत के सांस्कृतिक राजदूत बन गए और इस ज्ञान को इस्लाम के लोगों में तथा वहाँ से यूरोप में चारों ओर फैलाया। आप्रवासी मुस्लिमों ने स्थानीय लोगों के साथ वैवाहिक संबंध बनाने आरंभ किये तथा एकदूसरे की संगति में रहना सीखा! आपस में एकदूसरे के विचारों तथा रिवाजों को अपनाया। हिंदू और मुसलमानों ने एकदूसरे को पहचान, शिष्टाचार बातचीत, रीतिरिवाज तथा बौद्धिक अनुकरण में समान रूप से प्रभावित किया। मुसलमान भी अपना धर्म इस्लाम अपने साथ लाये थे जिसने भारतीय समाज तथा संस्कृति पर गहरा प्रभाव छोड़ा। अब हम इस पाठ में पैगम्बर मोहम्मद तथा इस्लाम के बारे में कुछ और जानेंगे।

पैंगम्बर मोहम्मद ने सातवीं शताब्दी में अरब में इस्लाम धर्म का उपदेश दिया। उनका जन्म अरब के कुरैश जनजाति में 571 ई. शताब्दी में हुआ। वह 622 ई. में मक्का से मदीना आ

गए और इससे हिजरी काल की शुरूआत हुई। मुस्लिम आस्था के अनुसार 'कुरान' अल्लाह का दिया गया संदेश है जो उन्होंने फरिश्ते गैब्रियल के द्वारा मुहम्मद तक पहुँचाया था। यह संदेश बहुत सारी भाषाओं में अनूदित किया गया।

इस्लाम के पाँच मुख्य सिद्धांत हैं :

1. तौहीद (अल्लाह में विश्वास)
2. नमाज़ (प्रार्थना, पाँच बार प्रतिदिन)
3. रोज़ा (रमजान के महीने में उपवास)
4. ज़कात (भिक्षा देना)
5. हज़ (मक्का की तीर्थयात्रा करना)

पैगम्बर मोहम्मद की सूक्तियों को हदीना या हदीस मे संजोकर रखा गया। उनकी मृत्यु के बाद खलीफात को स्थापित किया गया। इनके चार धार्मिक खलीफा थे।

इस्लाम में समानता, भाईचारा और ईश्वर के अस्तित्व के विषय में कहा गया है। इसके आगमन से विशेषरूप से भारतीय समाज के पारम्परिक ढांचे (आदर्श) पर गहरा प्रभाव पड़ा। भक्ति तथा सूफी आंदोलनों ने इस कार्य में बहुत ज्यादा योगदान किया। दोनों भक्ति तथा सूफी आंदोलन विश्वास करते थे कि सभी प्राणी एक समान हैं, प्रभु सर्वोपरि है, प्रभु की प्रेम-भक्ति ही एकमात्र मुक्ति पाने का साधन है।

4.2.1 सूफीमत का उदय

'सूफी' पद इस्लामिक रहस्यवाद के लिए प्रयुक्त होता है। सूफी अपनी धार्मिक विचारधारा के प्रति नम्र थे। वे सभी धर्मो की एकता में विश्वास करते थे। वे संगीत के द्वारा आध्यात्मिक प्रार्थनाएँ करते थे और प्रभु के साथ एकत्व का उपदेश देते थे। सूफीमत मूल रूप से ईरान में उदित हुआ और इसने भारत में तुर्की-शासन के अंतर्गत अनुकूल वातावरण पाया। उनकी ईश्वरभक्ति, सहनशीलता, दयाभाव, समानता, मैत्री विचारधारा ने बहुत से उन हिंदुओं को आकर्षित किया जो अधिकतर निम्न वर्ग के थे। इस्लाम में मोइनुद्दीन चिश्ती, निजामुद्दीन औलिया, फरीदुद्दीन गंज-ए-शकर अग्रणी सूफी थे जिनको आज भी भारत में आदर, प्रेम और श्रद्धा से पूजा जाता है।

ईसाई और बौद्ध भिक्षुओं का सूफियों पर प्रभाव पड़ा जब इन्होंने खानकाह तथा दरगाह स्थापित किए। खानकाह संस्थानों (सूफियों का डेरा) ने उत्तरीय भारत के आंचलिक क्षेत्रों में भीतर तक इस्लाम को स्थापित किया।

मज़ार (समाधि) तकिया (मुस्लिम संतों के विश्राम का स्थान) भी इस्लामिक विचारधारा को प्रचार करने के स्थान बन गए। इन केंद्रों को कुलीन वर्ग तथा आमजन दोनों के द्वारा

संरक्षण दिया जाता था। सूफी-समस्त प्राणिमात्र को जोर देकर आदर देते थे। सूफियों ने अपनी धार्मिक विचारधारा को क्रम से सिल्सिले के रूप में व्यवस्थित किया। चिश्ती, सुहरावर्दी, कादी तथा नक्शबंदी जैसे संस्थापकों के नाम पर इन 'सिल्सिलों' को नाम दिया गया। आईना-ए-अकबरी के लेखक अबुलफजल के अनुसार सोलहवीं शताब्दी में भारत में ज्यादा से ज्यादा चौदह सिल्सिले थे। इनके अपने खानकाह होते थे जहाँ सूफी संतों को तथा दरिद्रों को विश्राम की जगह मिलती थी। ये बाद में पढ़ने के केंद्र के रूप में विकसित हो गए।

अजमेर, नागौर, अजोधन पाक पट्टन (अब पाकिस्तान में) सूफी मत के महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गए। पीरी-मुरादी (गुरु और शिष्य) की परम्परा भी आरंभ हुई। दैवी आनन्द को प्राप्त करने के लिए सूफी लोग कविता तथा संगीत (साम) को सुनते थे जो मूलत: फारसी में था लेकिन बाद में उसे हिंदवी या हिस्दुस्तानी में परिवर्तित कर दिया गया। वे परमात्मा से एकत्व तथा प्रभु के प्रति अपने पूर्ण समर्पण का उपदेश देते थे जैसा कि निर्गुण भक्ति आंदोलन के उपासक करते थे। भाषा की जानकारी न होने पर भी संगीत सभी को आकर्षित करता है। धीरे-धीरे ऐसा संगीत हिन्दुओं को लुभाने लगा और वे बड़ी संख्या में दरगाहों पर जाने लगे। सूफीमत पर हिन्दुत्व का प्रभाव सिद्धों और यौगिक मुद्राओं में देखने को मिलता है।

पाठगत प्रश्न 4.1

1. पैगम्बर मोहम्मद के मदीना से मक्का आकर बसने से किस युग संवत् का आरम्भ माना जाता है?

   ....

2. रोज़ा क्या है?

   ....

3. अपनी सहिष्णुता और सहानुभूति की प्रवृत्तियों के द्वारा हिन्दुमतावलम्बियों को किसने इस्लाम की ओर आकर्षित किया?

   ....

4. आईने-ए-अकबरी के लेखक का नाम लिखिए।

   ....

4.3 राजनैतिक पृष्ठभूमि

1206 ई. से 1290 ई. तक दिल्ली के शासक मामलुकतुर्क थे। उनके बाद खिलजी, तुगलक, सैयद और लोदी आए जिन्होंने 1526 ई. तक उत्तर भारत पर दिल्ली से शासन किया। वे सभी शासक सुल्तान कहलाते थे। ये सुल्तान खलीफा या कलीफ की तरफ से प्रदेश में शासन करते थे जो मुस्लिमों में आध्यात्मिक एवं सांसारिक आधार पर प्रधान माना जाता था। खलीफा और सुल्तान दोनों के नाम से स्थानीय इमाम खुतबा (शुक्रवार की प्रार्थना) पढ़ा करते थे।

1526 ई. में दिल्ली के सुल्तानों को हटाकर मुगल शासक बने जो आरंभ में आगरा से और बाद में 1707 ई. तक दिल्ली से शासन करते थे। इसके बाद मुगलों ने 1857 तक नाममात्र का शासन किया जब उनका राजवंश समाप्त हो गया। मुगलों ने पदासीन होने के लिए खलीफाओं से कुछ नहीं कहा लेकिन उनको भेंट देना ज़ारी रखा। वे अपने नाम से खुतबा पढ़वाते थे।

तदुपरान्त क्षेत्रीय अफगान शासक शेरशाह ने मुगल शासक हुमायुँ को ललकारा और उसे दिल्ली की गद्दी से लगभग पन्द्रह वर्ष (1540 ई. – 55 ई.) तक दूर रखा। शेरशाह के शासन काल में अनेक असाधारण उपलब्धियाँ हुईं। उसने अनेक सड़कों का निर्माण करवाया जिनमें महत्त्वपूर्ण कार्य सड़क-ए-आजम या ग्रांड ट्रंक रोड है जो सोनार गांव (अब बंगलादेश में) से अतोक (पाकिस्तान में) तक तथा दिल्ली और आगरा से होती हुई 1500 कि.मी. की दूरी तय करती थी। आगरा से बुरहानपुर, आगरा से मारवाड़ तथा लाहौर से मुल्तान तक सड़कें बनवाईं। उसने सोने, चांदी तथा कांस्य में सुन्दर सिक्के बनवाये जिनकी मुगल राजाओं ने बाद में नकल भी की।

1556 ई. –1605 ई. तक मुगल शासक अकबर ने राज्य किया जो भारत के इतिहास में एक महान शासक था। इन्होंने अपनी प्रजा में जाति पाँतिगत, धार्मिक और सांस्कृतिक भेदभाव मिटाकर मिलजुल कर रहने की भावना का अन्त:करण से प्रचार किया। इन्होंने हिंदुओं के साथ मैत्री संबंधों को विकसित करने का प्रयत्न किया। अपनी साम्राज्यसंबंधी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए राजपूत शासकों के साथ वैवाहिक संबंध बनाने आरंभ किये। अकबर का, देश में राजनैतिक एकरूपता स्थापित करने में तथा प्रशासन की एक समान व्यवस्था सहित एक शक्तिशाली केन्द्रीय शासन स्थापित करने में बहुत बड़ा योगदान रहा अकबर कला, वास्तुकला तथा ज्ञान का संरक्षक था। धर्म निरपेक्ष मन वाले शासक के रूप में उसने एक नया धर्म/मत दीन-ए-इलाही आरंभ किया जिसमें विभिन्न धर्मो के विचार सम्मिलित थे। प्रत्येक गुरुवार को विभिन्न धर्म वाले विद्वान सम्राट द्वारा उठाये गये धार्मिक विषयों पर वाद-विवाद करते थे। आगरा में फतेहपुर सीकरी में इबादत-खाना का निर्माण करवाया। निरक्षर होते हुए भी अकबर विद्वानों और ज्ञानशील लोगों को संरक्षण देता था। उसके दरबार में मुल्ला दो प्याजा, हकीन हुमाम, अब्दुर्रहिम खान ए खाना, अब्दुल तायल, तानसेन, राजा टोडरमल, राजा मानसिंह, फैजी और बीरबल जैसे नो नवरत्न थे।

अकबर की उदारवादी, सहनशीलता वाली नीति को उसके वारिस जहाँगीर तथा शाहजहाँ ने जारी रखा जबकि औरंगजेब ने इस नीति को पूरी तरह त्याग दिया। औरंगजेब की अदूरदर्शी

नीतियाँ और देश में हर तरफ निरंतर युद्ध के कारण (विशेषतः दक्षिण भारत में) मुगल साम्राज्य के विघटन का कारण बनीं।

दक्षिण में मराठों का उदय, नादिरशाह और अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण, दरबार में सामंतवर्ग में अशान्ति तथा उत्तर पश्चिम भारत में सिखों के उदय के कारण जो कुछ मुगलशक्ति बची थी वह भी नष्ट हो गई। अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में भारत तब तक भी संसार का बहुत बड़ा निर्यातक था और यहाँ अतुलित धन राशि थी लेकिन इस आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सब कुछ पीछे छूट गया।

4.4 सांस्कृतिक विकास

इस समय के शासकों ने कला तथा वास्तुकला के क्षेत्र में बहुत ज्यादा रुचि दिखाई! मध्ययुगीन काल की मिश्रित सांस्कृतिक विशेषता इन क्षेत्रों में स्पष्ट झलकती है। वास्तुकला की एक नई शैली इण्डो-इस्लाम शैली इस मिश्रण से पैदा हुई। इण्डो-इस्लामिक-शैली के विशेष लक्षण थे–(क) गुम्बद, (ख) ऊंची मीनारें, (ग) मेहराब (घ) तहखाना (गुफा)।

मुगल शासक प्रकृति के बहुत बड़े प्रेमी थे। वे सुंदर किले, उद्यान आदि बनाने में अपना समय व्यतीत करने में आनन्दित होते थे। प्रसिद्ध मुगल गार्डन, जैसे शालीमार बाग तथा निशात बाग हमारी सांस्कृतिक विरासत के महत्त्वपूर्ण तत्व हैं। इन उद्यानों के आसपास बहते पानी की नहरें और फब्बारे हैं और इसके साथ इन उद्यानों में सीढ़ीनुमा कई स्तर हैं। पानी जब एक चबूतरे से दूसरे चबूतरे पर गिरता है तो वे झरने जैसे छोटी नदी की जलधारा में मिल जाते हैं, जिसके नीचे की रोशनी पानी में झिलमिलाती है और सारे वातावरण में एक विशेष सौन्दर्य आ जाता है। इसके अतिरिक्त पानी के बहाव के लिए पत्थरों को छीलछीलकर फिसलने वाली परतें बनाईं गयी हैं जिन पर बहता पानी जगमग करता है। इस का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण लाहौर का शालीमार गार्डन (अब पाकिस्तान में) है। लाहौर गार्डन में तीन (एक दूसरे से ऊपर उठते हुए) चबूतरें हैं। लेकिन भारत के पिंजौर गार्डन में इससे भी बेहतर उदाहरण देखा जा सकता है जो चण्डीगढ़ कालका मार्ग पर स्थित है जहाँ उस गार्डन में सात चबूतरे हैं। इससे ब्रिटिश लोग इतने प्रभावित हुए कि इन्होंने नई दिल्ली में वाइस-रीगल-लॉज (अब राष्ट्रपति भवन) में तीन चबूतरे बाला उद्यान बनवाया। बीसवीं शताब्दी में मैसूर में इसी प्रकार का प्रसिद्ध 'वृन्दावन गार्डन' बनाया गया।

इन दिनों संगमरमर पर पत्रादूर अर्थात् रंगीन पत्थरों से पच्चीकारी की जाती थी जो शाहजहां के समय में बहुत प्रसिद्ध थी। इसलिए दिल्ली में 'लालकिला' और आगरा में 'ताजमहल' में इस कारीगरी का सर्वोत्तम स्वरूप देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त फतेहपुर सीकरी परिसर के भवन, लाहौर और आगरे का किला, लाहौर और दिल्ली में शाही मस्जिद आदि हमारी महत्त्वपूर्ण विरासत के अंश हैं। उस समय में बनी मस्जिदें, राजाओं की कब्रें और दरगाहें पृथ्वी पर अनोखा सौन्दर्य प्रस्तुत करती हैं।

सिक्के

कला का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है 'सिक्कों का अध्ययन' (न्यूमिसमेटिक्स) जो हमारे लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और जो इतिहास के किसी भी काल के विषय में महत्वपूर्ण

जानकारी प्रदान करता है। मुस्लिम शासकों के सिक्के ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही मूल्यवान हैं। उनका डिज़ाइन, खुदाई और टकसाल के चिह्न हमें इस काल के विषय में बहुत रोचक सूचनाएँ प्रदान करते हैं। शाही उपाधियों से, टकसालों के नामों और स्थानों से हम शासन के साम्राज्य के विस्तार और उसकी स्थिति के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। मुहम्मद तुगलक के सिक्के दिल्ली, दौलताबाद और अन्य कई प्रान्तों की राजधानियों में ढाले जाते थे और उनके कम से कम पच्चीस प्रकार के विभिन्न डिजाइन उपलब्ध थे। सिक्कों पर खुदे कुछ वाक्य बड़े रोचक हैं। ईश्वर के नाम का योद्धा और जो सुल्तान की आज्ञा मानता है, वह दयावतार का कहना मानता है आदि कुछ उदाहरण हैं।

पाठगत प्रश्न 4.2

रिक्त स्थान भरें–

1. खलीफा और सुल्तान के नाम .... पढ़े जाते थे।
2. .... स्थानीय अफगान शासक ने मुगल शासक हुमायूँ को ललकारा और उसे दिल्ली की गद्दी से 15 वर्ष तक दूर रखा।
3. अकबर ने अपनी साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए .... शासकों के साथ वैवाहिक संबंध बनाए।
4. ब्रिटिश शासन के दौरान नई दिल्ली का राष्ट्रपति भवन .... के नाम से जाना जाता था।
5. संगमरमर पर रंगीन पत्थरों से पच्चीकारी करना (जड़ना) .... के दिनों में बहुत प्रसिद्ध हो गया था।

4.5 भक्ति आन्दोलन

सूफी सन्त ही उस समय के लोकप्रिय धार्मिक गुरु नहीं थे। बल्कि भक्ति काल के सन्त भी थे। उनकी शिक्षाएँ भी सूफी सन्तों के समान ही थी परन्तु वे एक लम्बे समय से प्रचार कर रहे थे। वे शहरों में कलाकारों, शिल्पकारों और व्यापारियों के बीच प्रसिद्ध थे। गाँवों में भी लोग उनको सुनने के लिए एकत्रित होते थे।

सूफी सन्तों और भक्ति सन्तों के कई उपदेशों और आचरणों में समानता थी। उनका सर्वाधिक विश्वास था ईश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित करना। वे ईश्वर के साथ सम्बन्ध का आधार प्रेम या भक्ति को मानते थे। इसी तरह तादात्म्य को प्राप्त करने के लिए गुरु या पीर की आवश्यकता होती थी।

भक्ति सम्प्रदाय के सन्तों ने धर्म में कट्टरता का और मूर्त्तिपूजा का विरोध किया। उन्होंने जाति प्रथा की उपेक्षा की और स्त्रियों को अपने धार्मिक सम्मेलनों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करते थे। भक्ति सन्त अपने उपदेश देसी भाषा में देते थे जिससे सामान्य बुद्धि वाला भी उसे सरलता से समझ सके।

भक्ति सन्त विभिन्न पृष्ठभूमियों से जुड़े होते थे विशेषकर निम्न जातियों से। कुछ तो मूल रूप में कलाकार होते थे या समृद्ध वर्ग से होते थे। वे सभी मानवों में और धर्मों में सहनशक्ति की आवश्यकता पर बल देते थे।

भक्ति आन्दोलन दक्षिण में तो लम्बे समय से प्रचलित था। सूक्तों और कथाओं के माध्यम से भक्ति का प्रचार कार्य पर परम्परागत विधि से तमिल भक्ति सम्प्रदाय के आलाबर और नयनार सन्तों ने किया। आप इसी पुस्तक में इनके विषय में बाद में पढ़ेंगे।

गुरुनानक

गुरुनानक का जन्म एक खत्री परिवार में तलवंडी गांव में हुआ जिसे आज ननकाना साहब कहा जाता है। यद्यपि गुरुनानक लेखा जोखा (accountancy) में प्रशिक्षित थे, पर उन्हें सूफी और सन्तों की संगति प्रिय थी। कुछ दिनों के बाद, उन्हें एक दिव्य दर्शन हुए। उन्होंने पीर और सन्तों की संगति के लिए घरबार छोड़ दिया। उन्होंने दोहे बनाए और उन्हें रबाब के साथ जो एक संगीत वाद्य है, गाया करते थे। उनके पद आज भी लोकप्रिय हैं उन्होंने एक मात्र ईश्वर के प्रति भक्ति और प्रेम पर बल दिया। मूर्त्ति पूजा, तीर्थयात्राओं, यज्ञों और कर्मकाण्ड आदि का ईश्वर को प्राप्त करने के मार्ग के रूप में जोर शोर से विरोध किया। वह चरित्र और शील को ईश्वर के पास जाने की पहली शर्त मानते थे। वह विश्वास करते थे कि कोई भी मनुष्य एक गृहस्थ के रूप में भी अपने कर्तव्य का पालन करते हुए आध्यात्मिक जीवन को प्राप्त कर सकता है।

रामानुज

रामानुज दक्षिण भारत से थे और वे सामान्य जनता की भाषा में उपदेश करते थे। उनके शिष्य रामानन्द थे जिन्होंने अपने गुरु के संदेश को पूरे उत्तरी भारत में फैलाया।

रामानन्द

रामानन्द का जन्म इलाहाबाद में हुआ और शिक्षा दीक्षा वाराणसी में हुई। उन्होंने दोनों स्थानों पर उपदेश दिए। वह हिन्दू धर्म से कुरीतियों और बुरे रिवाजों को दूर करना चाहते थे। वह लोगों को समझाते थे कि सभी

मनुष्य ईश्वर की दृष्टि में समान हैं और कोई भी जन्मजात ऊंचा या नीचा नहीं होता। उनके अनुयायियों में सभी स्तर के लोग होते थे। जैसे कबीर एक जुलाहा था, साधना कसाई, रविदास चमार और सेन नाई था।

कबीर

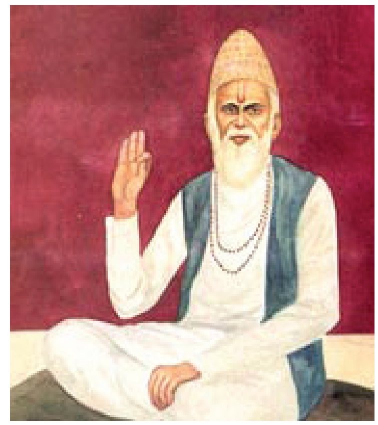

कबीर रामानन्द के प्रिय शिष्य थे। नानक के समान वे भी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की आलोचना करते थे और हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल देते थे। एक मुस्लिम जुलाहे के पुत्र, कबीर मूर्तिपूजा के तथा औपचारिक पूजा विधि जैसे नमाज पढ़ना, तीर्थयात्रा या नदियों में स्नान करना आदि के सख्त विरोधी थे। वह ऐसे धर्म का उपदेश करना चाहते थे जो सभी को स्वीकार्य हो, और जो सब धर्मों को जोड़ सके। उन्होंने एकेश्वरवाद पर बल दिया। वे उन्हें कई नामों से पुकारते थे- जैसे राम, गोबिन्द, हरि और अल्लाह। आपने हिन्दी में उनके दोहे पढ़े होंगे।

चैतन्य महाप्रभु

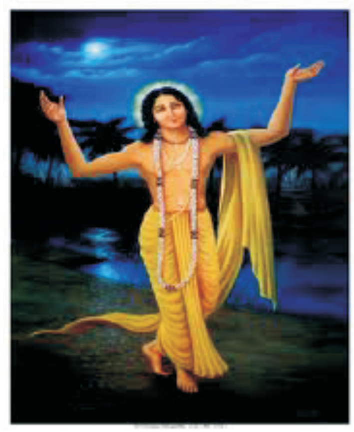

चैतन्य बंगाल के सन्त थे। वह भगवान कृष्ण के भक्त थे। यद्यपि वे ब्राह्मण थे, उन्होंने जाति व्यवस्था का विरोध किया और सबकी समानता पर बल दिया। वे सभी को बताना चाहते थे कि सच्ची पूजा तो प्रेम और भक्ति में ही निवास करती है। वह भगवान कृष्ण की स्तुति में भक्ति गीत गाते गाते बेसुध हो जाया करते थे।

मीराबाई

मीराबाई एक अन्य भक्ति सन्त थी जिन्होंने भगवान कृष्ण की पूजा की, और उनकी स्तुति में गीत रचे और गाये। चैतन्य के समान वे भी ईश्वर के प्रेम में खो जाती थीं।

नामदेव

नामदेव एक नाई थे। उन्होंने मराठी में लिखा। उनकी कविता में ईश्वर के प्रति प्रेम और गहरी श्रद्धा झलकती थी।

भक्ति आन्दोलन की लोकप्रियता

भक्ति आन्दोलन लोगों में कैसे इतना लोकप्रिय हो गया? इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण था कि इन्होंने जाति व्यवस्था का विरोध किया और ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती दी। उन्होंने समानता और भ्रातृत्व के विचारों का स्वागत किया जिसका प्रचार सूफी सन्तों ने भी किया। लोग प्रचलित धर्म से अब सन्तुष्ट नहीं थे। वे एक ऐसा धर्म चाहते थे जो विवेक और भावनाएँ दोनों को ही सन्तुष्ट कर सके।

सभी भक्त सन्तों ने एकेश्वरवाद पर बल दिया। उन्होंने कहा कि ईश्वर प्राप्ति का एक ही मार्ग है भक्ति, न कि कोई अन्य कर्मकाण्ड। उन्होंने कर्मकाण्ड और यज्ञों की निन्दा की।

उत्तरी भारत में यह आन्दोलन दो धाराओं में बंट गया– निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। निर्गुण भक्त एक निराकार ईश्वर के भक्त थे और उन्हीं को राम, गोविन्द, हरि, रघुनाथ आदि अनेक नामों से पुकारते थे। इनमें कबीर और नानक सर्वाधिक प्रमुख थे। सगुण के उपासक भक्त दशरथ पुत्र राम की अथवा वासुदेव और देवकी पुत्र कृष्ण की पूजा करते थे।

सगुण भक्तों में कुछ प्रसिद्ध उदाहरण थे तुलसीदास जिन्होंने राम को अपने रामचरितमानस में देवत्व प्रदान किया तथा सूरदास जिन्होंने अपने प्रसिद्ध सूरसागर में कृष्ण की स्तुति गाई। रसखान एक मुस्लिम कवि, जो भगवान कृष्ण का भक्त था, वह भी इसी धारा का उपासक था।

भक्ति आंदोलन का पहला आवश्यक लक्षण था एकेश्वरवाद की अवधारणा और सभी मानवों में भ्रातृत्व की भावना। यह आंदोलन व जाति या लिंग के आधार पर किसी से भेदभाव नहीं करता।

इसका दूसरा लक्षण था ईश्वर के प्रति पूर्व समर्पण जो सर्वव्यापक है और भक्तों की सभी समस्याओं को दूर करने में सक्षम है।

भक्ति का तीसरा महत्त्वपूर्ण लक्षण था परमात्मा के प्रति गहरा व्यक्तिगत समर्पण का भाव जिसमें एक अच्छे नैतिक जीवन पर बल दिया जाता है। यह अनुभव किया गया कि भगवान के नाम का निरंतर जाप आत्मा को पवित्र करता है और मनुष्य को उसकी कृपा का पात्र बनाता है। एक सच्चा भक्त न स्वर्ग चाहता है न मोक्ष। वह तो केवल बार बार ही भगवान के नाम का स्मरण करना चाहता है जिससे बार बार पुनर्जीवन प्राप्त कर उस ईश्वर का स्तुतिगान कर सके।

इसके अतिरिक्त गुरु या आध्यात्मिक शिक्षक जिनका काम था लोगों में आशा, शक्ति और हृदयों में उत्साह का संचार करना। वह ऐसा व्यक्ति होता था जो भक्ति के मार्ग पर सबका अग्रणी होता था और संभवत: उसने ईश्वर का साक्षात्कार भी किया होता था। अत: वह

सबको ईश्वर का मार्ग दिखाने में सक्षम होता था। इससे पाहुल व्यवस्था का जन्म हुआ। पाहुल वह पवित्र जल होता था जो एक गुरु अपने शिष्य को उसे ईश्वर के मार्ग पर चलने के लिए चुनकर प्रदान करता था। सिख खड्ग धोने की रस्म निभाते थे जिसे खाण्डे का पाहुल कहते थे जिससे पीरमुरीदी व्यवस्था को जीवन्त किया जाता था। (साधु-सैनिक अवधारणा)

क्या आपने भक्ति परम्परा के कुछ लक्षण ऐसे भी देखे हैं जो सूफियों के विचारों और क्रियाकलापों के समान हों।

भक्ति की लहर सम्पूर्ण भारत में फैल गई और इसका सजीव और सुन्दर वर्णन मध्यकालीन सन्तों और फकीरों की धार्मिक रचनाओं में अभिव्यक्त हुआ चाहे वे किसी भी धर्म में विश्वास करते हों। उभरी साहित्यिक रचनाएं गीत कव्वाली आदि ने लोगों को एक सूत्र में बांध दिया, जो कार्य किसी दूसरी विधि से नहीं हो सकता था। इसने प्रान्तीय भाषाओं के विकास को भी प्रोत्साहित किया।

पाठगत प्रश्न 4.3

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें–

1. भक्ति आंदोलन की दो प्रमुख धारायें कौन-कौन सी हैं?

   ....

2. किसी एक महत्त्वपूर्ण निर्गुण और एक सगुण भक्ति कवि का नाम लिखें।

   ....

4.6 लोककलाओं का विकास

ग्रामीण जनता को कई क्षेत्रों में अपने रचनात्मक कौशलों को प्रस्तुत करने के अवसर मिले। भूमि को जोतने, फसल बोने, कपास चुनने, गुड़ाई निराई जैसे कृषि संबंधी क्रिया-कलाप और कुछ अन्य सामाजिक समारोह ग्रामीणों के लिए नाचने गाने के अवसर बन गए। क्या यह सब आपको परिचित सा नहीं लगता। जी हां, जो त्योहार और रस्में आप आज मनाते हैं, वे प्राचीन काल से आज तक कुछ अपेक्षित समयोचित परिवर्तनों के साथ विद्यमान हैं।

वर्षा का आगमन नाचने और खुशियां मनाने के अवसर बन गये। मंदिरों में देवताओं का आह्वान किया जाता और विशेष पूजा का आयोजन होता। यह झूले झूलने का भी अवसर होता था। इसी प्रकार महिलाएं अन्य महिलाओं के साथ अपने-अपने चरखे लेकर बैठ जाती थीं और देर रात तक गाती रहती थीं। भारत के गांव गांव में यह एक आम दृश्य होता था।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि प्रायः प्रत्येक क्षेत्र ने अपनी अपनी विशेष नृत्यशैली विकसित की जिसमें स्थानीय तत्त्वों का पुट था। इस प्रकार गरबा, कालबेलिया, भांगड़ा, गिद्दा, बांस नृत्य, लावणी और असंख्य अन्य नृत्य अस्तित्व में आए। आज इनमें से कुछ नृत्य तो गणतंत्र दिवस समारोह एवं अन्य उत्सवों पर भी प्रदर्शित किए जाते हैं।

औपचारिक शिक्षा महिलाओं के लिए आवश्यक नहीं समझी जाती थी परन्तु इससे उन्हें अन्य क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित करने से कोई रोक नहीं सका। उन्होंने अपनी सृजनात्मकता सिलाई में दिखाई, राजस्थान में लड़कियों ने ओढ़नियों, कमीजों और घाघरों पर सुन्दर डिजाइन बनाने की कला सीखी। राजस्थानियों ने टाई और डाई (बंधेज) की कला शैली से पुरुषों और स्त्रियों के वस्त्रों पर खूबसूरत डिजाइन बनाए। आज भी भारत में राजस्थानी लोग सबसे अधिक रंग बिरंगे कपड़े पहने दिखाई देते हैं। उनकी उदारता उनके घोड़ों, बैलों, ऊटों आदि हाथियों को सजाने में दिखाई देती है। पंजाब में लड़कियां खुबसूरत फुलकारी का काम करती हैं। लखनऊ में और उसके आस पास कमीजों, सलवारों, ओढ़नियों और यहाँ तक कि साड़ियों पर भी चिकन का काम किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिन नाटककारों के विषय में भरत ने अपने नाट्यशास्त्र (पांचवी शताब्दी ई पश्चात्) में वर्णन किया है, वे पूरी तरह लुप्त नहीं हुए। महाराष्ट्र में तमाशा और लावनी नृत्यशैली विकसित हुई, मध्य भारत में पण्डवानी और उत्तरी भारत में मिरासियों ने थोड़ा बहुत परिवर्तन के साथ इन विशिष्ट नृत्यशैलियों को विकसित किया। इसी प्रकार कठपुतलीवालों, स्तुति गायकों और स्वांग रचने वालों ने जगह जगह घूम कर कई प्रकार से लोगों का मनोरंजन किया। कलाबाजों और बाजीगरों को भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते हुए देखा जा सकता है। कुछ क्षेत्रों में युद्धकलाओं का भी विकास हुआ और कुश्ती तो पूरे भारत में भी अति प्राचीन काल से ही लोकप्रिय है।

पाठगत प्रश्न 4.4

1. किन्हीं दो लोकनृत्यों के नाम लिखिए।

....

2. भारत में विकसित किसी एक कढ़ाई के काम का नाम बताइए।

....

4.7 चित्रकला

एक अन्य क्षेत्र जिस पर इस्लाम का प्रभाव पड़ा वह है चित्रकला। हुमायुं ने बारह वर्ष से भी अधिक समय फारस में शरणार्थी के रूप में बिताया। जब 1555 ई. में एक बार फिर वह दिल्ली का शासक बना तो वह अपने साथ भारत में चित्रकारों को भी लाया। उनमें से

प्रसिद्ध थे मीर सैयद अली और अब्दुस समद जिन्होंने पाण्डुलियों को चित्रित करने की परम्परा को विकसित किया। इसका एक उदाहरण है दास्ताने अमीर हम्जा जिसमें लगभग 1200 चित्र हैं। इसी काल में आकृति चित्र और सूक्ष्म चित्रकला भी विकसित हुई। तथापि आश्चर्यजनक बात यह है कि इनमें कुछ कलाकारों ने शास्त्रीय रागों को चित्रित करने का प्रयत्न किया और इसी प्रकार उन्होंने शास्त्रीय राग जैसे पूर्णतया अमूर्त विचारों को रूप और रंग प्रदान किया। मौसम बारहमासी चित्र भी इसी प्रकार कलात्मक रूप में चित्रित किए गए। क्या तुम इन कलाकरों की सृजनात्मकता का अनुमान लगा सकते हो? विश्व में कहीं पर भी शायद चीन को छोड़कर कहीं भी अन्यत्र चित्रकारों ने संगीत या ऋतुओं को चित्रित करने का प्रयत्न नहीं किया।

अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने इन कलाकारों को संरक्षण देना जारी रखा और परिणामस्वरूप चित्रकला की मुगल शैली पनपती रही। एक उदार शासक के रूप में अकबर ने अपना संरक्षण चित्रकला को भी प्रदान किया। उसने दासवंत और बसावन लाल जैसे अनेक हिन्दु चित्रकारों को नियुक्त किया। परिणामस्वरूप पारसी और भारतीय शैलियों का उसके समय में मिश्रण हुआ। भारतीय चित्रकला पर यूरोपीय प्रभाव भी दिखाई पड़ने लगा।

जहांगीर के शासनकाल में मुगल चित्रकला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई। वह स्वयं भी एक उत्तम चित्रकार था। उसका दरबार अनेक प्रसिद्ध चित्रकारों जैसे उस्ताद मंसूर और अबुल हसन से विभूषित था। मंसूर सूक्ष्म चित्रकारी के लिए प्रसिद्ध था। लेकिन अपने संकीर्ण विचारों और राजनैतिक व्यस्तताओं के कारण औरंगजेब ने संगीत और चित्रकला को संरक्षण देना बंद कर दिया। अपने बादशाहों के समान कुछ राजकुमारों ने भी चित्रकारों को अपना संरक्षण प्रदान किया। अतः मुगल शैली के अतिरिक्त राजपूत और पहाड़ी चित्रकला शैलियों को भी प्रोत्साहित किया, यहां तक कि समाज के सम्भ्रान्त लोगों ने भी चित्रकारों को संरक्षण देना प्रारंभ कर दिया। परिणामस्वरूप अमीरों की बड़ी बड़ी हवेलियां और मंदिर भी खूब सजाए जाने लगे। राजस्थान में ये हवेलियाँ आज भी अनेकों पर्यटकों को आकर्षित करती हैं। आप भी कभी राजस्थान जाने का अवसर प्राप्त करें तो इन हवेलियां को देख सकते हैं।

मुगल शैली (16वीं से 18वीं शताब्दी) ने भारतीय-फारसी शैली की लघुचित्र कला को विकसित किया। मुगल दरबार के चित्रकारों ने चेहरों, मानव आकृतियों और वेशभूषा के चित्रण सहित दृश्यों के चित्र बनाने आरम्भ किए। जब वे पारम्परिक भारतीय शैलियां के सम्पर्क में आए तो उनमें और अधिक स्वाभाविकता आ गई। लघुचित्रों पर हस्ताक्षर करने का चलन भी प्रारम्भ हुआ। चित्रकारों को अब मासिक वेतन पर नियुक्त किया जाता था। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण रचनाओं के लिए चित्र बनाए-चंगे, जफरनामा और रामायण

4.8 संगीत

मुगल बादशाह अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ ने बहुत सारे संगीतज्ञों को संरक्षण दिया। तानसेन जो अकबर के दरबार की शोभा थे, उन्होंने न केवल शास्त्रीय राग गाये बल्कि

नये-नये रागों की बंदिश की। ऐसा कहा जाता है कि शाहजहाँ स्वयं एक बहुत अच्छा गायक था। ये संगीतज्ञ दिन में विभिन्न समय और मौसम में बादशाहों का मनोरंजन उपयुक्त उचित रागों से किया करते थे।

भारत में तुर्क-अफगान राज्य के समय में इण्डो-ईरानी संगीत के मिश्रित रूप का आरंभ हुआ। मुगल शासनकाल में यह और अधिक विकसित हुआ। यह जानना दिलचस्प होगा कि औरंगजेब संगीत का विरोधी था लेकिन उसके शासन काल में ही भारतीय शास्त्रीय संगीत की फारसी में अनेक पुस्तकें लिखी गई। उत्तर भारत में विशिष्ट हिन्दुस्तानी संगीत स्कूल अलग से जाना गया और इस संगीत ने जीवन के अलग-अलग भावों के लिए मधुर और हर्षोन्मत्त धुनें बनाईं। इन्हीं के आधार पर राग रागिनियों की रचना की गई। राग और रागिनी अपने व्यक्तित्व के अनुसार प्रस्तुत किए। ख्याल, ठुमरी और गजलों का भी इस समय में विस्तार हुआ। तानसेन इस स्कूल के मार्गदर्शक थे। इस प्रकार दक्षिण में संगीत की कर्नाटक शैली विकसित हुई। यद्यपि आल्हा-ऊदल, दूल्हा भट्टी, जयमाल-फट्टा आदि जैसे स्थानीय मुख्य व्यक्तियों की स्मृति में उत्सव मनाने के लिए सामान्य जन लोकसंगीत तथा लोकगीतों को गाया बजाया करते थे।

इण्डो-मुगल संस्कृति

मुगल शासकों ने अफगान उपाधि 'सुल्तान' को रद्द कर दिया और अपने आपको 'बादशाह' (राजा) तथा दीन-ए-पनाह (विश्वास के रक्षक) कहलवाने लगे। सम्राट के प्रति प्रजा में सम्मान भाव जगाने के लिए, इन्होंने झरोखा-दर्शन या विशेषरूप से बनी खिड़कियों में सामान्य जनता को दर्शन देने की प्रथा आरंभ की। इन्होंने अपने दरबार में 'सज़्दा' यानि (राजा के सामने नतमस्तक) होने की प्रथा आरंभ की तथा समस्त धार्मिक एवं राजनैतिक ताकत को मजबूती से अपने हाथ में कर लिया।

4.9 आधुनिक भारतीय भाषाओं का उदय

इस काल का दूसरा महत्त्वपूर्ण विकास अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओं के उदय के रूप में हुआ। उर्दू शायद दिल्ली के आसपास उत्पन्न हुई। उर्दू का विकास अलाउद्दीन खिलजी की सेना में शिविर की भाषा के रूप में हुआ जब वे करीब चौदहवीं शताब्दी में दक्खन में नियुक्त किए गए। वास्तव में दक्खन में बीजापुर और गोलकुण्डा उर्दू साहित्य का विकास स्थल बन गए। इस भाषा ने शीघ्र ही अपना व्याकरण विकसित किया और यह एक विशेष भाषा बन गई।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, शिष्ट वर्ग इसका प्रयोग करने लगा। प्रसिद्ध कवि 'अमीर खुसरो' ने इस भाषा में कविताएँ रचीं और इसे लोकप्रिय बनाने में कुछ योगदान किया। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के समय में उर्दू में कविता, सुंदर गद्य, लघु कहानी, उपन्यास तथा नाटक आदि भी लिखे गए। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम आधे अंश में उर्दू पत्रकारिता ने स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

उर्दू के साथ-साथ लगभग अन्य सारी आधुनिक भारतीय भाषाएँ जैसे बंगाली, असमी, उड़िया, खड़ी बोली, पंजाबी, मराठी, सिन्धी, कश्मीरी तथा चार दक्षिण भारतीय भाषाएँ तमिल, तेलगु, कन्नड़ एवं मलयालम भी इस काल में अपने वर्तमान आकार में विकसित हुईं।

4.10 नये धर्म

इस समय में दो नये धर्म भारत में विकसित हुए सिखधर्म तथा पारसी धर्म– इसके अतिरिक्त भारत में धर्मों में सुधार करने के लिए कई सुधार आंदोलनों का प्रारम्भ हुआ।

सिख धर्म

सिख जो अधिकतर पंजाब के निवासी हैं, हमारे देश की जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा हैं। रूढ़ीवादी सिख विश्वास करते हैं कि उनका धर्म परमात्मा के द्वारा गुरु नानक को प्रदान किया गया जिसमें उनकी आत्मा रहती थी, और तदनन्तर यही भाव 'दसवें गुरु' गुरु गोविंद सिंह तक बना रहा, जिन्होंने सिखों को 'आदि ग्रंथ' जो 'गुरुग्रंथ साहब' नाम से लोकप्रिय है, उनको गुरु मानने का निर्देश दिया।

लेकिन इतिहास और धर्म के विद्यार्थी मानते हैं कि इस धर्म का बीज तो भक्ति आंदोलन के समय ही उसकी निर्गुण शाखा में उपस्थित था।

सिख, मुख्यरूप से निराकार प्रभु में विश्वास करते हैं, समस्त प्राणियों को एक समान मानते हैं, गुरु की अनिवार्यता, और पाहुल परंपरा में विश्वास करते हैं। कभी-कभी गुरूपदवी अपने पुत्र को या कभी कभी अपने सबसे अच्छे 'शिष्य' को प्रदान कर दी जाती थी। पाँचवें गुरु अर्जुनदेव ने सिखों को तीन चीजें दीं। प्रथम 'आदि ग्रंथ' के रूप में दी जिसमें पाँच गुरुओं तथा अन्य संतों की वाणी लिखी हुई है। दूसरी 'गुरुमुखी' लिपि जिसमें आदि ग्रंथ लिखा गया। और अंतिम 'हर मंदिर-साहब या गोल्डन टैंपल के लिए भूमि दी और उसको बनवाया। अमृतसर में 'अकाल तख्त' की उच्चत्तम गद्दी बनी जहाँ से सारे सिख समुदाय के लिए निर्देश जारी किये जाते थे। 1699 ई. में दसवें गुरु, गुरु गोविंद सिंह ने खालसा पंथ बनाया जिसका अर्थ 'पवित्र' होता है। इन्होंने सिखों को पाँच शपथ लेने के निर्देश दिए। ये नाम हैं–'केश' (लम्बे बाल तथा दाढ़ी) रखना, 'कंघा' 'कड़ा' (धातु की चूड़ी) 'कृपाण' (एक तलवार) तथा कच्छा (घुटने के कुछ ऊपर तक पहनने वाला अधोवस्त्र) परिणामस्वरूप ये प्रतीक सिख धर्म के चिह्न रूप में विख्यात हो गये। उन्होंने आगे कहा कि उनकी मृत्यु के बाद 'आदिग्रंथ' ही सिखों का गुरु होगा तथा उनको इस पवित्र ग्रंथ को प्रणाम करना होगा।

सिखधर्म में संगीत सदा एक महत्त्वपूर्ण घटक रहा है तथा वे विश्वास करते हैं कि संगीत के द्वारा कोई भी परम आनन्द या समाधि को प्राप्त कर सकता है।

पारसी धर्म (जोरोएस्ट्रियेनिज्म)

आठवीं-शताब्दी (ई.पू.) में जोरोस्टर या ज़रथुस्त ने पारसी धर्म की नींव रखी। वह अपने क्षेत्र में एकेश्वरवाद पर उपदेश देते थे जो अब 'पर्शिया' नाम से जाना जाता है। उन्होंने अग्नि की पूजा करनी सिखाई और अहुरमजदा तथा अहुरमान के रूप में अच्छाई और बुराई की पहचान कराई।

उन्होंने करुणा एवं दान के नैतिक सिद्धांतों की शिक्षा दी है। ये उपदेश 'जेन्द अवेस्ता' में संचित किए गए हैं।

जोरेस्ट्रियन 'ज़रथुस्त' धर्म पूरे पर्शिया में फैल गया और आठवीं शताब्दी तक यह एक प्रभावशाली धर्म बना रहा। ज्यादातर पारसी दुनिया के विभिन्न भागों में रहने चले गए। वे भारत में भी आए और गुजरात के नवसारी जिले में रहने लगे और बाद में भारत के करीब-करीब सभी भागों में फैल गए। उन्होंने भारतीय संस्कृति में बहुत योगदान दिया।

प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता "दादाभाई नौरोजी" पारसी थे जिन्होंने ब्रिटिश भारत के सभ्य बनाने के दावे को खोखला सिद्ध किया और उनको शोषण नहीं करने दिया।

एक अन्य उत्कृष्ट व्यक्ति थे जो पारसी समुदाय के थे। वे थे जमशेदजी टाटा जो एक प्रमुख भारतीय उद्योगपति थे। इन्होंने भारत में लौह एवं स्टील उद्योग की कठिन प्रतिस्पर्धा को झेलते हुए भी प्रतियोगिता की और इन्होंने उद्योग में सफलता प्राप्त की है। पारसी लोगों ने बड़ी संख्या में आम जन के लिए धर्मार्थ केंद्र खोले। ज़रथुस्त धर्म में धर्म परिवर्तन नहीं होता है तथा किसी भी परिस्थिति में नये प्रवेशों को नहीं स्वीकार किया जाता है।

इस प्रकार हम देख सकते है कि भारतीय संस्कृति निरन्तर नई आती हुई संस्कृतियों को अपने अंदर समाहित करती रही।

लोक कलाओं का विकास

ग्रामीण समूह को अनेक क्षेत्रों में अपनी रचनात्मक कौशल कुशलता को प्रस्तुत करने के अवसर प्राप्त हुए। कृषि संबंधी कार्य करते समय अनेक मौके इससे जुड़े हुए हैं उदाहरण स्वरूप भारतीय संस्कृति बहु-आयामी, बहुभाषायुक्त, बहुधर्मी होते हुए भी संयुक्त प्रकृति की बनी रही।

पाठगत प्रश्न 4.5

रिक्त स्थान भरिए–

1. .... ने खालसा पंथ की स्थापना तथा पाँच शपथें नियत कीं।
2. .... अग्नि की पूजा करते है, अच्छाई और बुराई में विश्वास करते हैं और दया, दान को बढ़ावा देते है।

4.11 दक्षिण भारत

नौवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी के बीच 'चोला' नामक राजवंश दक्षिण भारत के चोलामन्डलम्' राज्य में शासन कर रहा था। 'चोला' शासकों ने एक ताकतवर सेना और शक्तिशाली जलसेना का विकास किया। राजेंद्र चोला ने कुछ इण्डोनेशिया द्वीपों को जीत लिया था। इन्होंने ग्राम स्तर पर लोकतांत्रिक संस्थाओं को भी विकसित किया। जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म भी इस राज्य में उन्नति कर रहा था। साहित्य, ललितकला, मूर्तिकला तथा धातु से निर्मित शिल्प आदि उनके संरक्षण में बहुत उत्तम स्तर के थे।

चौदहवीं शताब्दी में विजयनगर नामक नया राज्य बना, जो अब 'कर्नाटक' कहलाता है। इस राज्य की उत्तर दिशा में 'तुंगभद्रा' नदी के पार 'बहमनी' नाम से नया मुस्लिम (इस्लामिक) राज्य बना जो अब आंध्र-प्रदेश के नाम से जाना जाता है। 'बहमनी' और 'विजयनगर' राज्य समृद्ध 'रायपुर दाब' के ऊपर अपना प्रभाव बनाने के लिए एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध करते रहते थे। 'चोलमन्डलम्' राज्य में तमिल भाषा लोकप्रिय थी। कर्नाटक में कन्नड़, आंध्र में तेलगु, केरल में मलयालम परन्तु सभी की लिपि भिन्न थी। ऐसा सम्भव है कि मूलत: सम्पूर्ण क्षेत्र ही तमिल बोलता था क्योंकि यह एक प्राचीन भाषा है। परन्तु मध्ययुग तक चारों भाषाएँ अपनी विशिष्ट पहचान बना चुकी थीं। चौदहवीं और सोलहवीं शताब्दी के बीच विजयनगर ने बहुत ऊँचाई प्राप्त की।

पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में कुछ विदेशी पर्यटकों ने जिन्होंने इन प्रदेशों का भ्रमण किया, यहाँ के राजा, शहर और लोगों की बहुत प्रशंसा की। हम्पी में प्राप्त विजयनगर के अवशेष भी संसार को आश्चर्यचकित कर देते हैं।

'चोलवंशीय राजाओं के समय' के मध्य 'कांची' शिक्षा का उच्च केन्द्र बन गई। 'विजयनगर' के सम्राटों ने भी कला ओर उसकी शिक्षा को संरक्षण प्रदान किया।

आपने क्या सीखा

- 1206 ई. -1526 ई. में प्रारम्भिक तुर्क शासक सुल्तान कहलाते थे क्योंकि वे खलीफ़ों के प्रतिनिधि के रूप में शासन करेंगे, ऐसा माना जाता था।
- मुगलों ने दिल्ली के सुलतानों की पदवी ले ली। उन्होंने संगीत, चित्रकला और वास्तुकला को संरक्षण दिया। 1707 ई. तक भारत में मजबूती से शासन किया। बहुत सारे भवन बनवाये। 1707 के बाद मुगल साम्राज्य कमजोर होने लगा और विघटित हो गया। इस अव्यवस्था में राजनैतिक शक्ति के रूप में 'ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी' प्रकट हुई।
- सूफी सन्तों की दया, सहनशक्ति, सहानुभूति, समानता की विचारधारा ने भारतीय जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा।

- चौदहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी में भक्ति आंदोलन की दो मुख्य धाराएँ प्रवाहित हुई–निर्गुण तथा सगुण।
- लोगों ने अपने क्षेत्रीय और स्थानीय लोकनृत्य और लोकसंगीत का विकास किया।
- विजयनगर के अवशेष कर्नाटक के हम्पी क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं। आंध्र प्रदेश में बहमनी राज्य विकसित हुआ।
- भारतीय समाज इस समय चार प्रमुख वर्गों में विभाजित हो गया था– अतिसम्भ्रान्त वर्ग, पुरोहित वर्ग, नागरिक और कृषक वर्ग।
- दिल्ली में आयात और निर्यात सहित समस्त व्यापार केन्द्रित होकर फला फूला।
- इस्लाम का भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस काल के दो प्रसिद्ध धार्मिक आन्दोलन हुए-सूफी और भक्ति आन्दोलन।
- सबसे महत्त्वपूर्ण सूफी सन्त थे– चिश्ती, फिरदौसी, निज़ामुद्दीन औलिया।
- कुछ प्रसिद्ध भक्ति सन्त थे– गुरुनानक, रामानुज, रामानन्द, कबीर, चैतन्य, मीरा बाई ओर नामदेव।
- मध्य काल में उर्दू का प्राकट्य हुआ। इस काल में दक्षिण में वर्तमान मराठी, तमिल, तेलगु, कन्नड़ और मलयालम तथा उत्तर में असमी, बंगाली, हिंदी या खड़ी बोली पंजाबी और गुजराती भाषाओं का उदय देखा जा सकता है।
- गुरु नानक ने सिखधर्म की स्थापना की। गुरु अर्जुन देव ने वर्तमान 'गुरुमुखी' लिपि 'आदिग्रंथ' और अमृतसर में 'हर-मंदिर' के लिए स्थान निर्धारित किया।
- आठवीं शताब्दी ईसा पूर्व में पर्शिया में जोरोएस्टर ने ज़रथ्रुस्त धर्म की स्थापना की।
- चोल शासकों ने बंगाल तथा इण्डोनेशिया के कुछ भागों पर विजय प्राप्त की। इन्होंने ग्राम्य स्तर पर लोकतान्त्रिक संस्थाओं को प्रारम्भ किया।
- काँची शिक्षा का महान केन्द्र बन गया।

पाठान्त अभ्यास

1. मध्यकाल में भारत की राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
2. हिन्दुधर्म पर इस्लाम के प्रभाव की विवेचना कीजिए।
3. भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाने में भक्ति आंदोलन की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
4. आधुनिक भारतीय भाषाओं के उदय पर टिप्पणी लिखें।
5. सिख धर्म और ज़रथ्रुस्त धर्मों का निरूपण कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

4.1 1. हिजरी संवत् का प्रारम्भ

2. रमजान के महीने में व्रत करना रोज़ा कहलाता है।

3. सूफी सन्त

4. अबुलफजल।

4.2 1. खुतबा

2. शेरशाह।

3. राजपूत।

4. वाइसराय लॉज

5. शाहजहाँ।

4.3 1. इस आंदोलन की दो मुख्य धाराएँ हैं–निर्गुणभक्ति और सगुण भक्ति।

2. नानक और कबीर (कोई एक) निर्गुण कवि, तुलसीदास और सूरदास (कोई एक) सगुण कवि।

4.4 1. गरबा, कालबेलिया, भांगड़ा (कोई दो)

2. फुलकारी–पंजाब में

चिकन–लखनऊ में (कोई एक)

4.5 1. गुरु गोविदसिंह

2. जोरोएस्ट्रियंज

टिप्पणी

5

आधुनिक भारत

हमारे देश के इतिहास को सुविधा के लिए प्राचीन, मध्यकाल तथा आधुनिक काल में बाँटा जा सकता है। प्राचीन काल बहुत पहले से ही प्रारम्भ हुआ जब से मानव धरती पर रहने लगे। पिछले पाठ में तुमने मध्ययुगीन भारत के विषय में पढ़ा। मध्ययुग लगभग 8वीं सदी से आरम्भ होकर 18वीं सदी के आरम्भ तक माना जाता है। अब हम इतिहास के आधुनिककाल के विषय में पढ़ेंगे। पिछले दो युगों के दौरान आपने देखा होगा कि समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति एवं संस्कृति एक दूसरे से कितनी भिन्न रही है। इन विभिन्नताओं को तुम प्रगति, विकास, निरन्तरता और वृद्धि भी कह सकते हो जिसने हमारे जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है।

आपको स्मरण होगा कि जो लोग भारत के बाहर से आये जैसे तुर्क, अफगान और मुगलों ने भारत को ही अपना घर बना लिया परंतु ब्रिटिश उपनिवेशी शासक सदा इस धरती पर विदेशी ही बने रहे तथापि उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक बदलाव अपनी रुचि और हितों के अनुसार किए तथा इसकी प्रगति ने भारतीय संस्कृति के अनेक पक्षों पर अपनी गहरी छाप छोड़ी। यदि आप नई दिल्ली के राष्ट्रपति भवन को देखें तो आप भारतीय स्थापत्यकला पर ब्रिटिश प्रभाव को स्पष्ट देख सकते हैं। इसी प्रकार के नमूने कलकत्ता, मुम्बई आदि देश के अनेक शहरों के भवनों में भी देखे जा सकते हैं। अब ये सब हमारी सांस्कृतिक विरासत के अंग हो गये हैं। इन वास्तुकला के अवशेषों के अतिरिक्त यह औपनिवेशिक शासन यहाँ पर एक सुगठित सरकार की शासन प्रणाली, पश्चिमी विचारों, विज्ञान तथा दर्शनशास्त्रों पर आधारित शिक्षा प्रणाली को व्यवस्थित करके गया। आपके लिए यह जानना बहुत ही दिलचस्प होगा कि उन्नीसवीं शताब्दी में आधुनिक भारत के निर्माण के लिए सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आंदोलन आरंभ किए गए थे।

भारतीय भाषाओं में लिखे आधुनिक साहित्य पर अंग्रेजी शिक्षा का गहरा प्रभाव पड़ा। इसके माध्यम से पश्चिम के संस्थानों एवं विचारों से भारत का घनिष्ठ सम्बन्ध जुड़ गया।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आपः–

- अठारहवीं शताब्दी के दौरान पश्चिम में जो घटनाएं घटीं उनका भारत पर क्या प्रभाव पड़ा इसे चिह्नित कर पायेंगे;
- अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों के भारत का वर्णन कर सकेंगे;
- उस काल में हिन्दु और मुसलमानों की सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन कर सकेंगे;
- राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती आदि सुधारकों के सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों में योगदान को सूचीबद्ध कर सकेंगे;
- लोगों में राष्ट्रीयता का विकास करने में प्रेस तथा समाचार पत्र की भूमिका की सराहना कर सकेंगे;
- भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष को समझ सकेंगे।

5.1 पश्चिम का उदय तथा इसका भारत पर प्रभाव

सन् 1450 ई. के बाद निम्नलिखित तीन प्रकार के विकास ने यूरोप का नक्शा बदल दिया–

(1) छपाई यंत्र का आविष्कार (2) पुनर्जागरण और सुधार आन्दोलन का प्रचार और प्रसार (3) व्यापार हेतु नए-नए मार्गों की खोज।

इसके बाद यूरोप ने विज्ञान, अन्वेषण और तोपखाने के क्षेत्र में उल्लेखनीय उन्नति की। जल्द ही उनकी स्थल सेना तथा जल सेना विश्व में सर्वश्रेष्ठ सेना हो गई। वैज्ञानिक शिक्षा चारों ओर फैलने लगी। तर्क और बुद्धि ऐसे मापदण्ड बन गए जिन पर पुराने सिद्धांतों और ज्ञान को परखा जाने लगा।

इन यूरोप के देशों में पहले पुर्तगाली, डच फिर फ्रैंच और अंततः ब्रिटिश भारत से व्यापार की दौड़ में एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने लगे। भारत उस समय संसार में सबसे बड़ा निर्यातक देश था। ब्रिटिश ने भारत के व्यापार पर न केवल नियंत्रण कर लिया बल्कि देश को भी अपने वश में कर लिया और लगभग दो सौ वर्ष भारत उनके स्वामित्व में रहा। भारत के समस्त मानव संसाधनों का अविवेकपूर्ण शोषण किया गया और यहाँ का सारा धन शासक देश की खुशहाली के लिए वहाँ चला गया। अंग्रेजों ने भारत की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाया। शक्तिशाली मुगल शासन के पतन के बाद अनेक छोटी-छोटी रियासतें उठ खड़ी हुई थीं। अंग्रेजों ने इस स्थिति का लाभ उठाया और एक शासक को दूसरे शासक से लड़ाते रहे या किसी राजा को सत्ता से हटाने के लिए होने वाली किसी अनधिकृत चेष्टा का समर्थन करते रहे। यद्यपि मैसूर के राजा टीपू सुल्तान ने अंग्रेजों

की इसी चाल का प्रयोग करने का प्रयास किया अर्थात् फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के बीच की शत्रुता का लाभ उठाने का प्रयास किया लेकिन पश्चिम की श्रेष्ठ कूटनीति और अंग्रेजी तोपखाने की बराबरी टीपू सुल्तान नहीं कर सका।

भारत पर अंग्रेजी राज्य निम्नलिखित चरणों में विकसित होता चला गया। **पहला चरण** भारतीय व्यापार पर नियन्त्रण था। उन्होंने भारतीय वस्तुएँ बहुत कम दामों पर खरीदीं और पश्चिमी बाजारों में उनको बहुत ऊँचे दामों पर बेचा। इस व्यापार में भारतीय सेठों और साहूकारों ने उनकी सहायता की। किसानों को कुछ भी दिए बिना उन्होंने भरपूर लाभ कमाया। **दूसरे चरण** में अंग्रेजों ने उत्पादन की गतिविधियों को ऐसे तरीकों से जिससे उनकी निर्यात की गतिविधियों को सहारा मिले, अपने वश में कर लिया। उन्होंने व्यवस्थित रूप से भारतीय उद्योगों को नष्ट किया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि भारत उनके माल का संभावित खरीददार था। **तीसरा चरण** ब्रिटिश उपनिवेशवादियों द्वारा अपने आर्थिक हितों के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सघन फैलाव और उसके द्वारा भारत के शोषण का है।

ब्रिटिश लोग भारत में व्यापार से लाभ कमाने आये थे। धीरे-धीरे उन लोगों ने देश की राजनैतिक तथा आर्थिक स्थिति पर नियन्त्रण कर लिया। 1757 ई. के प्लासी युद्ध के बाद वे बंगाल में मालिक बन गए। उन्होंने अपने राजनैतिक नियन्त्रण के कारण बंगाल में अपना व्यापार बढ़ाया और विदेशी सामान का निर्यात किया। उन्होंने व्यापार में अपने भारतीय तथा विदेशी प्रतिद्वंद्वियों को निकाल दिया और अब कोई भी प्रतिस्पर्धा नहीं रही। उनका सूती कपास पर एकछत्र राज हो गया और वे जुलाहों को बहुत अधिक कीमत पर कपास देते थे। वे ब्रिटेन में जाने वाले भारतीय माल पर भारी टैक्स लगाते थे ताकि उनके अपने उद्योग सुरक्षित रहें।

यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति होने से भारतीय उद्योग को बहुत भारी नुकसान हुआ। 1813 ई. तक भारतीय दस्तकारों ने अपने घरेलू एवं विदेशी बाजार दोनों को ही खो दिया था। भारतीय माल, ब्रिटिश माल का जो मशीनों से बनाया जाता था, मुकाबला नहीं कर सकता था।

इधर दूसरी ओर अंग्रेज व्यापारियों ने बहुत धन संग्रह किया और इस धन को उद्योग तथा व्यापार को स्थापित करने में खर्च किया। इसी बीच वहीं पर इंगलैंड के कुछ निर्माताओं ने व्यापार के मुकाबले वहीं पर सामान का उत्पादन करना लाभप्रद समझा। वे ज्यादा से ज्यादा कच्चा माल भारत से मंगवाते और उससे सामान बनाकर वापिस यहीं भेज देते थे। 1793 ई. से 1813 ई. के बीच इन ब्रिटिश निर्माताओं ने कम्पनी के विरुद्ध एक अभियान छेड़ दिया क्योंकि कम्पनी ने व्यापार पर एकाधिकार और अन्य सुविधाओं पर भी अपना हक जमा लिया था। अन्त में 1813 ई. में वे लोग ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारतीय व्यापार पर एकाधिकार समाप्त करने में सफल हो गए। इस प्रकार भारत औद्योगिक इंगलैंड की एक आर्थिक कॉलोनी मात्र बन कर रह गया।

परिमाणतः भारतीय हस्त शिल्प उद्योग समाप्त होने लगा क्योंकि ब्रिटिश मशीनों से बना सामान सस्ता होता था। ये सामान प्रायः करमुक्त या बहुत ही कम कर देकर भारत में प्रवेश कर जाते थे। भारतीयों को भी आधुनिक बनाना था जिससे वे पाश्चात्य सामान के

शौकीन बन जायें और उन्हें खरीदने लगें। भारतीय औद्योगिक कम्पनियाँ भी अंग्रेजों के हाथों शोषण का शिकार होने लगीं जो भारतीय व्यापार के हितों के विषय में बिल्कुल ही चिन्ता नहीं करते थे। वे भारतीय व्यापार का संरक्षण भी नहीं करते थे और उन्होंने भारतीय व्यापार के क्षेत्र में नई तकनीक का प्रयोग भी प्रारंभ नहीं किया। भारतीय उद्योग हस्तशिल्प की भी हानि होने लगी जब विदेशी सामान करमुक्त भारत में आने लगा। बल्कि दूसरी ओर, भारतीय हस्तशिल्प सामानों पर जब वह ब्रिटेन पहुँचता तो बहुत भारी कर देना पड़ता। भारतीय चीनी मिलें चीनी की मूल कीमत से भी तीन गुणा अधिक कर देती थीं जब उनकी चीनी ब्रिटेन पहुँचती थी। अत: भारतीय व्यापार एक प्रकार से बिल्कुल ही समाप्त प्राय: हो गया।

भारत ब्रिटिश सामान का बहुत शानदार उपभोक्ता बन गया और 1813 ई. तक कच्चे माल का बड़ी मात्रा में निर्यात करने वाला बन गया। क्योंकि इंग्लैण्ड भारत का व्यापारिक लाभ के लिए शोषण कर रहा था यानि कच्चा सामान इंग्लैंड भेजना और बना हुआ सामान वापिस भारत में बेचना, इसलिए उन्होंने पानी के जहाज और रेलवे भारत में चलानी शुरू की। रेलवे ने ब्रिटिश के लिए बहुत बड़ा बाजार खोल दिया और भारतीय कच्चे माल को विदेश भेजने की भी सुविधा प्रदान की।

क्या आप जानतें हैं कि 1853 ई. में पहली बार बम्बई से थाने तक चलने वाली रेलगाड़ी जनता के लिए खोली गई। रेलवे लाइन कच्चे माल के उत्पादक क्षेत्रों को निर्यात करने वाले बन्दरगाहों से जोड़ती थी। इस प्रकार ब्रिटिश माल से भारतीय बाजार भरने लगे। लेकिन रेलों ने देश में राष्ट्रीय जागृति के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। क्योंकि इससे लोगों के आपसी विचारों का सम्पर्क बढ़ा जिसका अंग्रेजों ने कभी अनुमान भी नहीं लगाया था। क्या यह व्यंग्यपूर्ण नहीं सिद्ध हुआ।

क्या आप जानते हैं कि 1853 ई. में डलहौजी ने प्रथम टेलीग्राफ लाइन कलकत्ता से आगरा के लिए खोली तथा भारत में डाकसेवा को शुरू किया।

पाठगत प्रश्न 5.1

1. भारत पर राजनैतिक नियन्त्रण करने में कौन सफल रहा?

   ....

2. भारतीय शासकों में किसने फ्रांसीसियों और अंग्रेजों की परस्पर शत्रुता का लाभ उठाना चाहा, पर सफल नहीं हुआ?

   ....

3. कितने चरणों में ब्रिटेन ने भारत में शासन स्थापित किया?

   ....

5.2 18वीं शताब्दी में भारत:- अर्थव्यवस्था, समाज तथा संस्कृति

18वी शताब्दी में भारत अनेक विषमताओं तथा परस्पर विरोधाभासों का ही चित्र था। आर्थिक रूप से केवल कृषि ही लोगों का मुख्य व्यवसाय थी क्योंकि उस समय शासक लगातार युद्ध करते रहते थे, उनके पास कृषि भूमि की दशा को सुधारने का समय नहीं था।

विदेशी व्यापार मुगलों की छत्रछाया में विकसित हो रहा था। भारत फारसी खाड़ी राज्यों से मोती, रॉसिल्क, ऊन, खजूर, सूखे मेवे आदि मंगवा रहा था तथा अरब से कॉफी, सोना, ड्रग्स, शहद, चाय। चीन से चीनी मिट्टी से बने बर्तन तथा रेशम और तिब्बत, सिंगापुर, इण्डोनेशिया द्वीप, अफ्रीका तथा यूरोप से विलासी साजो-समान भी भारत में आयात होता था। भारत से रौसिल्क, रेशमी कपड़ा, चीनी, मिर्च, नील, तथा अन्य वस्तुएँ निर्यात होती थीं। भारत का सूती कपड़ा पूरे संसार में बहुत प्रसिद्ध था।

व्यापार में आशाप्रद सन्तुलन होने पर भी भारत की आर्थिक अवस्था लगातार युद्ध के कारण बिगड़ती चली गई। इसके साथ ही देश के अन्दर सिख, जाट, मराठा आदि लोगों का विद्रोह तथा नादिरशाह (1739 ई.) अहमद शाह अब्दाली (1761 ई.) जैसे विदेशियों के आक्रमण जारी थे। अठारहवीं शताब्दी तक यूरोप के अन्य देश जैसे फ्रांस, इंग्लैण्ड, पुर्तगाल तथा स्पेन भी भारत के साथ व्यापार करना चाहते थे। वे देश में राजनैतिक तथा आर्थिक अस्थिरता की स्थिति पैदा करने में सहायता कर रहे थे और अन्त में उन्होंने इसकी अर्थ व्यवस्था को नष्ट कर दिया लेकिन उस समय तक, भारत की सुन्दर हस्तकला का यश सम्पूर्ण विश्व में फैल चुका था।

सामाजिक स्तर पर यहाँ लोगों के समाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में कोई एकता नहीं दिखाई देती थी। चाहे हिन्दु हो या मुसलमान, उनमें क्षेत्र जाति, कबीले धर्म, और भाषा के आधार पर भेदभाव था। विवाह, भोजन सहभोज तथा पेशा (धन्धा) चुनने में जाति व नियमों का ही पालन करना आवश्यक था। यदि कोई इन नियमों का पालन नहीं करता था तो उसे जाति से बाहर निकाल देते थे।

विज्ञान के क्षेत्र में जहाँ कभी भारत बहुत ही उन्नत था परन्तु अब वह गणित और विज्ञान को भूलते जा रहे थे। पश्चिम द्वारा उन्नत विज्ञान के क्षेत्र में की जा रही उन्नति से भारतीय प्राय: अनभिज्ञ थे।

प्राचीन समय में अध्यापकों का समाज में सम्मान होता था। शिक्षा परम्परा से परिपूर्ण होती थी। विद्यार्थियों को गणित के साथ लिखना एवं पढ़ना भी सिखाया जाता था। लड़कियाँ कम ही विद्यालय जाती थी। शिक्षा को राज्य के द्वारा संरक्षण नहीं मिलता था बल्कि इसको स्थानीय शासक, उच्च वर्ग के (अमीर) लोग तथा परोपकारी दानी ही संरक्षण देते थे।

हिन्दु-मुस्लिम सम्बन्ध

दोनों धर्मों के लोगों के बीच मित्रता के सम्बन्ध थे। सभी में धार्मिक सहिष्णुता थी। युद्ध राजनैतिक स्तर पर स्वार्थ वश किए जाते थे परन्तु धर्म के लिए नहीं? दोनों समुदायों के लोग एक दूसरे के उत्सवों में भाग लेते थे। बहुत से हिन्दु मुसलमान पीरों (सन्त) में विश्वास रखते थे और मुसलमान भी हिन्दु देवों तथा सन्तों के प्रति आदर की भावना रखते थे। वास्तव में, उच्च वर्ग के हिन्दु और मुसलमानों में कई चीजें अपनी जाति के निम्न वर्ग की अपेक्षा परस्पर एक दूसरे धर्म के समान होती थीं। इसके अलावा मुसलमानों ने भारतीय शैली तथा संस्कृति इतनी अच्छी प्रकार से अपना ली थी कि इनको एक दूसरे से अलग करना कठिन हो जाता था।

5.3 सामाजिक परिस्थितियाँ

19वीं शताब्दी तक आते-आते महिलाओं का अत्यधिक दमन होने लगा था। कन्या के जन्म लेने को दुर्भाग्यपूर्ण माना जाता था। लड़कियों का विवाह बचपन में ही कर दिया जाता था। बहुपत्नीत्व की प्रथा जारी थी। महिलाओं का संपत्ति पर कोई अधिकार न था, न ही उन्हें तलाक का अधिकार था।

चिर वैधव्य सामाजिक आदेश था, विशेष रूप से ऊँची जातियों में ये विधवाएँ रंगीन कपड़े नहीं पहन सकती थीं, न वे विवाह में भाग ले सकती थीं क्योंकि उनकी वहाँ उपस्थिति अशुभ मानी जाती थी। चूंकि बाल-विवाह बहुत आम बात थी इसीलिए कई बार शिशु-कन्याएँ भी विधवा हो जाती थीं और उन्हें आजीवन वैधव्य का दर्द सहना पड़ता था।

सामान्यत: अन्तर्जातीय विवाहों की अनुमति नहीं थी। सामाजिक संरचना ऐसी थी कि नीची जाति के व्यक्ति के साथ खाना नहीं खाया जाता था। ऊँची जाति में दास प्रथा भारतीय समाज की एक और विशेषता थी। दासों को दहेज के रूप में भी दे दिया जाता था। मुस्लिम महिलाओं की स्थिति भी वैसी ही थी। उन्हें बहुपत्नीत्व, पर्दा प्रथा, शिक्षा के अभाव और सम्पत्ति पर अधिकार न होने के कानूनों के कारण अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता था।

5.4 सामाजिक और धार्मिक सुधारक

ईसाई पुरोहित ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों के साथ उन ईसाइयों के धार्मिक कर्मकांडों के लिए भारत आए थे। ये कर्मकांड थे- बपतिस्मा, विवाह, मुर्दों को दफनाना और चर्च में सेवा। जल्द ही उन्होंने कंपनी के गैर-ईसाई कर्मचारियों में भी अपने धर्म का प्रचार आरंभ कर दिया। फिर उन्होंने यूरोपीय लोगों के लिए विद्यालय भी खोले और जल्द ही कुछ भारतीय भी इन विद्यालयों में आने लगे। इन ईसाई धर्म प्रचारकों ने ही ईसाई उपदेशों और साहित्य के प्रचार के लिए और लोगों को धर्मांतरित करने के लिए प्रिंटिंग प्रेस और पत्रिकाओं की शुरुआत की।

ईसाई प्रचार के साथ-साथ उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा को आरंभ किया, जिसका भारत के समाज और इसकी अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा। यद्यपि अंग्रेजी पढ़ाई का आरंभ ब्रिटिश लोगों की राजनैतिक एवं प्रशासनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया था, पर इसने भारतीयों के लिए भी पश्चिम के द्वार खोल दिए। उन्होंने उदारतावाद, तर्कवाद, लोकतंत्र, समता और स्वतंत्रता के पश्चिमी विचारों को आत्मसात किया। अंग्रेजी शीघ्र ही पढ़े-लिखे भारतीयों की सपंर्क भाषा बन गई और इसने उन्हें परस्पर जोड़ने की भूमिका निभाई।

राजा राममोहन राय

राजा राममोहन राय भारत में आधुनिक युग के सूत्रधार माने जाते हैं। यूनानी और लैटिन सहित उन्होंने अनेक भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। हिंदु समाज में सुधार लाने और भारत के पुनर्जागरण में इनकी भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। चूंकि हिन्दु समाज में प्रचलित अनेक सामाजिक बुराइयाँ धार्मिक आस्थाओं के साथ परस्पर गुंथी हुई थीं इसलिए उन्होंने इन पर धर्मग्रंथों के संदर्भ के सहारे ही प्रहार किया। इन सामाजिक बुराइयों की सूची में सर्वोपरि थी सती प्रथा। राजा राममोहन राय ने इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई और अंततः इस पर रोक लगवा ही दी। उन्होंने ''ब्रह्म समाज'' की स्थापना की, जो उनकी तार्किकता और सामाजिक एकता के संदेश का वाहक बनी। उनके अनुयायी एक ब्रह्म या भगवान को मानते थे। और वे मूर्ति, बहु-देव पूजा तथा कर्मकांडों का विरोध करते थे। राजस्थान और बंगाल के विभिन्न भागों में स्वयं ही महिलाएँ अपने पति के मर जाने पर उनके साथ चिता में जल जाती थीं।

ऐसा समाज जहाँ समाज के सभी सदस्य पुरुष या स्त्री चाहे वे किसी भी सामाजिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि से हों, प्रसन्न रहें और उनकी आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। अभी हम सब को एकजुट होकर इस स्थिति को लाने के लिए बहुत काम करना होगा।

देवेन्द्र नाथ टैगोर (1817 ई. -1905 ई.) राजाराम मोहन राय के बाद ब्रह्म समाज के नेता बने। उन्होंने ब्रह्म समाज में नई जान डाली और राजा राम मोहन राय के विचारों का प्रचार किया। केशब चन्द्र सेन (1838 ई. -1884 ई.) ने टैगोर के बाद नेतृत्व संभाला। उस समय समाज में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय एकता, भाई चारा, और सभी सामाजिक संगठनों तथा सामाजिक सम्बन्धों को लोकतान्त्रिक बनाने पर बल दिया जा रहा था। ब्रह्म समाज देश में राष्ट्रीय जागरूकता की भावना को व्यक्त करने वाला प्रथम सुसंगठित साधन बन गया।

प्रार्थना समाज और रानाडे

डॉ. आत्माराम पाण्डुरंग ने 1867 में बम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना की। उन्होंने समाज सुधारने हेतु अन्तर्जातीय भोजन एवं विवाह, विधवा पुनर्विवाह, महिलाओं तथा दलित वर्गों की स्थिति को सुधारने का बहुत प्रयत्न किया।

रानाडे के अनुसार धर्म में कट्टरता सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में सुधार लाने की अनुमति नहीं दे सकती थी। वे एक प्रभु में विश्वास रखते थे। और मूर्त्ति पूजा एवं जाति प्रथा का खंडन करते थे।

रामकृष्ण परमहंस– स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय समाज को पुनर्जागृत करने के लिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। वे गंगाधर चट्टोपाध्याय के शिष्य थे। बाद में रामकृष्ण परमहंस के नाम से जाने गए। विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं को अन्तिम आकार दिया। उन्होंने स्वतन्त्रता, मुक्तविचार तथा समानता पर बल दिया। 'सभी धर्म एक ही हैं' उनका नारा था। उन्होंने वेदान्त दर्शन को आगे बढ़ाया क्योंकि वे इसे विचारों की सबसे उच्च बौद्धिक व्यवस्था समझते थे।

थियोसोफिकल सोसाइटी तथा एनी बेसेन्ट

मैडम एच.पी ब्लेवेत्स्की 1837 ई. – 91 ई. तथा कर्नल एच.एस. ओल्कॉट ने सुधार आन्दोलन के लिए थियोसोफिकल समाज की स्थापना की। एनी बेसेन्ट ने प्राचीन भारतीय धर्म, दर्शन तथा सिद्धान्त को पढ़ने के लिए प्रचार किया। उन्होंने शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए केन्द्रीय हिन्दु विद्यालय खोला।

नारायण गुरु

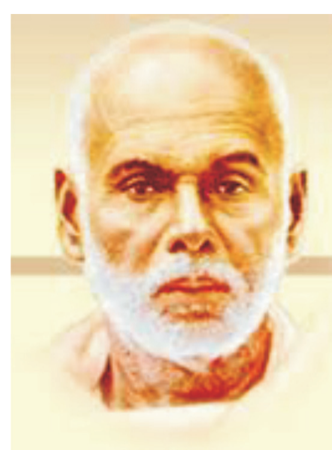

नारायण गुरु दक्षिण भारत के एक महान सन्त थे। उनका जन्म सितम्बर 1854 ई. में केरल में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय अध्यापक के निर्देशन में हुई। वे मलयालम, संस्कृत और तमिल भाषा में निपुण थे। उन्होनें अपनी किशोरावस्था में ही संन्यास मार्ग को अपनाने का विचार बना लिया था। अपने माता-पिता के देहान्त के बाद वे सच्चा ज्ञान पाने के लिए चल पड़े। उनको छत्तम्बी स्वामिंगल से संपर्क हुआ। वे दोनों मित्र बन गए। वे अपना समय सन्तों की सेवा करने, एकान्त में ध्यान लगाने और तीर्थ यात्राएँ करने में व्यतीत करते थे। स्वामिंगल और नारायण

गुरु दोनों ने माना कि केरल की चहुँमुखी उन्नति, क्रमश नायर और इजावा समुदायों के सहयोग तथा उनकी स्वेच्छा पर निर्भर करती है जिनमें वे दोनों क्रमश: पैदा हुए थे। ये दोनों समुदाय केरल को बर्बाद करने की धमकी दे रहे थे। उन दोनों ने इन दोनो समुदायों को मिलाने का निश्चय किया।

नारायण गुरु धर्म सुधारक होने के साथ-साथ समाज सुधारक भी थे। वे तपस्वी का जीवन व्यतीत करते थे। उन्होंने केरलवासियों के सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन को सुधारने के लिए प्रयत्न किया।

मुस्लिम सुधार आन्दोलन

सर सैयद अहमद खान मुसलानो के बीच प्रमुख समाज सुधारक थे। वे मानते थे कि मुसलमान आधुनिक शिक्षा द्वारा ही उन्नति कर सकेंगे। सैयद अहमद खान धार्मिक असहिष्णुता, अज्ञान तथा अन्धविश्वासों के विरुद्ध थे। वे बहुपत्नीवाद, पर्दा प्रथा और सरल तलाक के सख्त विरुद्ध थे। उन्होंने अलीगढ़ आन्दोलन प्रारम्भ किया। उन्होंने अलीगढ़ में मौहम्मड़न एंग्लो-ओरियेन्टल कालेज की स्थापना की। यह महाविद्यालय के रूप में बनाया गया था। विज्ञान एवं संस्कृति के प्रचार करने का प्रमुख केन्द्र के रूप में बनाया गया था जो बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

अलीगढ़ आन्दोलन ने मुसलमानों की साहित्य जागृति में सहायता की। इससे उर्दू सामान्य भाषा बन गई। उर्दू में संग्रह के लिए एक मुस्लिम छापाखाना भी लगाया गया। दुर्भाग्यवश, कुछ वर्ष बाद सैयद अहमद खान ने भारत के मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित होने को मना कर दिया। वे समझते थे कि मुस्लिम वर्ग के लिए शिक्षा अधिक आवश्यक है बजाए राजनीति के। एक प्रकार से उन्होंने इस समय साम्प्रदायिकता और अलगाव के विचारों को प्रोत्साहित किया।

सामाजिक सुधार

क्या आप जानते हैं कि लगभग सभी धार्मिक सुधारकों ने सामाजिक सुधार आन्दोलन में भी योगदान किया क्योंकि भारतीय समाज में बीते हुए समय में जातिवाद, लिंग भेदभाव आदि कुरीतियों को धार्मिक स्वीकृति मिली हुई थी। सामाजिक सुधार आन्दोलन के दो मुख्य उद्देश्य थे- (क) महिला उद्धार तथा पुरुष के समान सम्मान। (ख) जातिवाद की कट्टरता को दूर करना, अस्पृश्यता को दूर करना तथा दलित वर्ग को ऊपर उठाना।

महिलाओं का उद्धार

आधुनिक भारत के सामाजिक जीवन में जो चमत्कारी परिवर्तन आया वह है नारी की स्थिति में सुधार। राज्यों तथा सुधारकों के प्रयत्नों से बाल विवाह का कानूनी तौर से निषेध कर दिया गया। महिलाओं ने स्वंय उत्साह से जीवन के सभी क्षेत्रों में शिक्षा के लिए बेहतर सुविधाएँ तथा सामाजिक उत्पीड़न के लिए विरोध के अनेक सम्भव मार्ग बनाए। इसी का प्रभाव है कि महिलाओं में राजनैतिक विवेक तथा चेतना बढ़ रही है। 1930 ई. में शारदा एक्ट के अंतर्गत विवाह के लिए कम से कम लड़कों की उम्र 18 वर्ष तथा लड़की की आयु 14 वर्ष नियत की गई।

क्या आप जानते हैं कि महर्षि कर्वे को महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में अनुपम कार्य करने के कारण भारत रत्न से पुरस्कृत किया गया था।

उन्होंने लड़कियों के लिए विद्यालय, विधवाओं तथा निराश्रितों के लिए कार्य की व्यवस्था की। शीघ्र ही इस आन्दोलन ने गति पकड़ी तथा लड़कियों एवं महिलाओं के लिए विद्यालय एवं महाविद्यालय खोले गये।

जाति प्रथा के विरुद्ध संघर्ष

रामकृष्ण मिशन तथा आर्यसमाज ने इस क्षेत्र में अतुलनीय कार्य किया। आर्य समाज ने विशेषरूप से शुद्धि आन्दोलन चलाया जिसके द्वारा जिन हिन्दुओं ने इस्लाम या ईसाई धर्म को अपना लिया था वे पुनः अपने धर्म में वापिस आ सकते थे।

पिछड़ी जातियों के नायक थे श्री बी. आर. अम्बेडकर तथा महात्मा गाँधी जिन्होने उनके लाभ के लिए अनेक विद्यालय एवं महाविद्यालय खोले। इसी के साथ-साथ महात्मा गाँधी ने अछुत लोगों को जिन्हें वे हरिजन कहते थे मन्दिर में भी जाने की अनुमति दिलावाई तथा अन्य लोगों के समान ही बर्ताव करने पर बल दिया। स्वतन्त्र भारत के संविधान में भी इस आन्दोलन को कानूनी स्वीकृति दी गई। अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया। लेकिन अभी तक हमें अपने इस उद्देश्य को पाने में समय लगेगा जब समाज पूरी तरह से समानता और कानूनी सहमति पर आधारित होगा।

स्वामी दयानंद

स्वामी दयानन्द का सबसे बड़ा गुण था उनका संस्कृत भाषा पर अधिकार तथा वेदों का ज्ञान। उन्होंने अनुभव किया कि अन्धविश्वास और जो कुरीतियाँ हिन्दु समाज में विगत शताब्दियों से फैल गई हैं, ये सिर्फ वेदों के अज्ञान के कारण हैं।

1875 ई. में उन्होंने 'आर्य समाज' की स्थापना की। इस 'आर्य समाज' का मुख्य उद्देश्य था वेदों के सच्चे ज्ञान को प्रचारित करना और उन समस्त बुराइयों को दूर करना जो पूरे हिन्दु समाज में बाद में प्रवेश कर गई थीं। उन्होंने अस्पृश्यता का विरोध किया। उन्होंनें बहुदेवतावाद, अवतारवाद और कर्मकांड का विरोध किया। उनका नारा था– ''वेदों की ओर लौटो''

भारत के इतिहास में पहली बार उनकी देखरेख में वेदों का पुनः मुद्रण किया गया। उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है ''सत्यार्थ प्रकाश'' (सत्य का प्रकाश)।

1883 ई. में उनका निधन हो गया। 1886 ई. में उनके अनुयायियों ने ''दयानन्द ऐंग्लो वैदिक'' स्कूल और कालेज की लाहौर (अब पाकिस्तान में) में स्थापना की। इस डी.ए.वी. (DAV) आंदोलन ने उनके कार्य को आगे बढ़ाया है और इस समय इस एक ही संगठन के अंतर्गत 750 से भी अधिक संस्थान हैं।

बी.आर. अम्बेडकर तथा स्वामी दयानन्द के अतिरिक्त अन्य सुधारक राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राधाकांत देव, थियोसॉफिकल सोसाइटी और आर्य समाज ने जो कार्य किए उनके परिणामस्वरूप महिलाओं की स्थिति और शूद्रों की स्थिति के बारे में बहुत बड़ी संख्या में पूर्वी और उत्तरपूर्वी भारत के बहुत से लोग जागृत हुए और उपनिवेशी सरकार के सक्रिय सहयोग से अनेक सामाजिक बुराइयों पर प्रतिबंध लग गए।

ज्योतिराव गोविंदराव फुले (1827 ई. - 90 ई.)

ज्योतिबा के नाम से अधिक लोकप्रिय ज्योतिराव का जन्म (1827 ई.) में पुणे के एक निम्नजाति 'माली' परिवार में हुआ था। ज्योतिबा का विचार है कि अनेक निचली जातियों और महिलाओं की स्थिति सुधारने का एकमात्र उपाय है 'शिक्षा'। इसलिए विशेष रूप से निचली जातियों के लिए उन्होंने एक विद्यालय खोला। 1873 ई. में उन्होंने 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की।

उनका मुख्य उद्देश्य था तथाकथित अछूत और पिछड़े वर्गों के लिए सामाजिक न्याय दिलवाना। उन्हें कई सालों के बाद पहचान मिली और उन्हें पुणे की नगरपालिका का सदस्य चुना गया।

पंडिता रमा बाई (1858 ई. – 1922 ई.)

भारत में और विशेष रूप से महाराष्ट्र में महिला समाज सुधारकों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाम है ''पंडिता रमा बाई'' का। अपने माता पिता की मृत्यु के बाद वे अपने भाई के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमती रहीं और पुराणों पर भाषण देती रहीं। एक विदुषी और धार्मिक वक्ता के रूप में उनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई। यहाँ तक कि कलकत्ता के पंडितों ने भी उन्हें कलकत्तावासियों के समक्ष उपदेश देने के लिए आमंत्रित किया। सभी उनके ज्ञान और वक्तव्य से आश्चर्यचकित थे। अब लोगों ने उन्हें पंडिता कहना शुरू कर दिया। पंडिता की उपाधि विदुषी महिलाओं को दी जाती थी।

1882 ई. में रमा बाई पुणे लौट आईं। यह स्वाभाविक था कि वे प्रार्थना समाज की ओर सहज ही आकर्षित हो गईं जो महाराष्ट्र में ब्रह्म समाज के संदेश का प्रचार-प्रसार कर रही थी। अब उन्होंने महिलाओं की स्थिति सुधारने पर ध्यान केंद्रित किया। 1890 ई. में उन्होंने विधवाओं के लिए एक आश्रम खोला जिसका नाम था ''शारदा सदन''।

माधव गोविंद रानाडे, आर.जी. भण्डारकर, दादाभाई नौरोजी, बेहरामजी मालबारी आदि अन्य प्रसिद्ध व्यक्तित्व थे जिन्होंने पश्चिम भारत में समाज सुधार के कार्य में अपना योगदान किया।

5.5 प्रेस और आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा साहित्य का विकास

1798 ई. में लिथोग्राफी का आविष्कार हुआ। इसमें किसी भी लिपि, चित्र, आरेखण की अनेक प्रतियों के मुद्रण के लिए एक विशेष रूप से तैयार पत्थर की सतह का प्रयोग किया जाता था। लगभग सन् 1820 ई. के बाद से सैकड़ों पुस्तकें और पुस्तिकाएँ मुद्रित की गई और इससे भारत की बढ़ती साक्षर जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति होने लगी। पश्चिम द्वारा भारत को दिया गया यह सबसे बड़ा वरदान था। 19वीं. शताब्दी के अंत तक आते-आते जनमत को प्रभावित करने का प्रेस एक सशक्त साधन बन चुका था।

चूंकि नए छापेखानों का मूल्य अधिक नहीं था, इसलिए इनकी संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। इसके परिणामस्वरूप आधुनिक भारतीय भाषाओं के लेखक बड़ी संख्या में प्रोत्साहित हुए और उन्होंने विपुल साहित्य की रचना की।

इन लोगों ने न केवल मौलिक साहित्य-सृजन किया बल्कि प्राचीन भारतीय एवं पश्चिमी साहित्य का अनुवाद भी किया। इस प्रकार हमारी सांस्कृतिक विरासत को और समृद्ध बनाया। इससे भारतीय चेतना में भी जागृति फैली।

लगभग प्रत्येक भाषा में साप्ताहिक एवं पाक्षिक पत्रिकाएँ और दैनिक समाचार पत्र निकलने आरंभ हुए। यद्यपि भारत में समाचार पत्र पढ़ने वाले लोगों की कुल संख्या यूरोपीय देशों में समाचार पत्र पढ़ने वाले लोगों की तुलना में बहुत कम थी, लेकिन फिर भी उपन्यासों, निबंधों और कविताओं के रूप में राष्ट्रीय साहित्य के एक नए संकलन ने राष्ट्रीयता के अभ्युदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बंकिम चंद्र के ''आनंदमठ'', ''दीनबंधु मित्र के नीलदर्पण'', भारतेंदु हरिश्चंद्र के ''भारत दुर्दशा'', लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ की असमी भाषा की कृतियों ने तथा तमिल में सुब्रह्मण्यम् भारती की और उर्दू में अल्ताफ़ हुसैन की कृतियों ने भारतीयों के मस्तिष्क को झकझोर कर रख दिया।

समाचार-पत्रों की भूमिका

उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशकों में भारत में छापाखाना जनता के विचारों को सुगठित, प्रचारित, प्रसारित, प्रभावी और प्रखर करने का सशक्त माध्यम बन चुका था। अखबारों ने ब्रिटिश विरोधी विचारों को फैलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की तथा उसने सरकार की नीतियों पर तथा सामाजिक और आर्थिक विषयों पर टिप्पणी कर जनता को सरकार के खिलाफ खड़ा कर दिया। छापाखानों ने अखिल-भारतीय चेतना को बढ़ावा दिया तथा भारतीयों को महत्त्वपूर्ण राजनीतिक शिक्षा प्रदान की।

कुछ महत्वपूर्ण अखबार-

बंगाल	-	दी हिन्दू पैट्रिऑट (अंग्रेजी)
		दी अमृत बाजार पत्रिका (अंग्रेजी)
बॉम्बे	-	मराठा (अंग्रेजी), केसरी (मराठी)
मद्रास	-	दी हिन्दू (अंग्रेजी), स्वदेशमित्र (तमिल)
पंजाब	-	दी ट्रिब्यून (अंग्रेजी), कोहिनूर, अखबार आम (उर्दू)

5.6 स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का भारत

स्वतंत्र भारत को अपनी उपलब्धियों पर निश्चय ही गर्व हो सकता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि एक धर्म-निरपेक्ष और लोकतांत्रिक राष्ट्र के निर्माण की आधारशिला को स्थापित करना रहा है। आजादी के बाद से स्थापित शासन की संसदीय व्यवस्था बहुत स्थायी सिद्ध हुई और आज भारत विश्व का सबसे बड़ा संसदीय प्रजातंत्र है। भूतपूर्व रियासतों का भारतीय संघ में विलय दूसरी सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। राज्यों का पुनर्गठन सतत् प्रक्रिया का हिस्सा है तथा लोगों की जरूरतों और उनकी मांग पर नए राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों का उदय हो रहा है। सामाजिक न्याय के अनुरूप भारत की आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए आर्थिक योजनाओं को भी लागू किया गया। भारत ने आर्थिक विकास विशेष तौर पर कृषि और कृषि संबंधी उद्योगों के क्षेत्र में

उल्लेखनीय प्रगति की है। इसमें उच्च प्रौद्योगिकी के क्षेत्र भी शामिल हैं जिसमें भारत अति विकसित राष्ट्रों की बराबरी बहुत तेजी से कर रहा है। दक्षिण-एशिया में भारत की राजनैतिक और आर्थिक रूप से मजबूत स्थिति के कारण अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठियों में इसकी आवाज को सम्मान के साथ सुना जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी स्वतंत्रता की माँग को व्यापक समर्थन मिल रहा है।

5.6.1 राष्ट्रीय आन्दोलन- प्रारम्भिक चरण (शुरूआत)

भारत के सभी कार्य क्षेत्रों में पिछड़ेपन का मुख्य कारण था ब्रिटिश साम्राज्यवादी उपनिवेशवाद। भारतीय भी अब इस सच्चाई का अनुभव करने लगे थे। किसान और मजदूर भी अंग्रेजों के लालच एवं उदासीनता के सबसे ज्यादा शिकार थे। उद्योगपति और पूंजीवादी भी अंग्रेजी राज्य से प्रसन्न नहीं थे। बुद्धजीवी वर्ग ने इस समय महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। वे भारत में सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अंग्रेजों के राज की सच्चाई को समझा। उनकी आशा थी कि अंग्रेज बहुत परोपकारी शासक सिद्ध होंगे, निष्फल सिद्ध हुई। अब वो देख सकते थे कि अंग्रेज लालची और स्वार्थी थे और अपने और ब्रिटेन के हित ही उनके मन में सर्वोपरी रहते थे।

19वीं सदी तक सभी भारतीय एक हो गए और वे समझ गये कि उन सबका एक ही समान शत्रु है और वह है अंग्रेज जो अपने लाभ के लिए भारत को नष्ट करने पर तुले हुए थे। लेकिन अंग्रेजों ने देश में प्रशासनिक और आर्थिक एक रूपता लाने में सहायता की। उन्होंने संचार व्यवस्था को सुदृढ़ किया, रेलवे का निर्माण किया, डाक तार व्यवस्था की, सड़कें और मीटर तथा अन्य यातायात के साधनों का निर्माण करवाया जिससे लोगों में परस्पर एकता का विकास हुआ।

अंग्रेजो के साथ ही भारत में आए पश्चिमी विचारों तथा नई शिक्षा ने भारतीयों में नवचेतना को जागृत किया। प्रजातन्त्र विषयक आधुनिक विचार, मानवता और सम्प्रभुता आदि की अवधारणा भारतीयों को राष्ट्रीयता की ओर प्रेरित करने लेगी। प्रेस और साहित्य ने भी राष्ट्रीय भावनाओं को प्रसारित करने में उतनी ही आवश्यक भूमिका का निर्वाह किया। बहुत से देशभक्त लेखकों ने अपने लेखों से जनता को प्रेरित किया। 19वीं शताब्दी में भारत की प्राचीन महत्ता का भी पुनः प्रचार हुआ। यह कार्य कुछ प्रबुद्ध अंग्रेजों द्वारा भी किया गया जिन्होंने भारत के प्राचीन ग्रन्थों का पढ़ा और उसकी गम्भीरता तथा महत्त्व को लोगों के सामने रखा। कुछ प्रसिद्ध शिक्षित भारतीयों ने भी देश में इस चेतना का प्रचार प्रसार करके इसके पुनरुद्धार में अपना योगदान किया। अंग्रेज शासकों द्वारा भारत में अपनी जाति के प्रति घमण्ड और भेदभाव की भावनाओं ने, इल्बर्ट बिल के विरुद्ध अंग्रेजों के आन्दोलन ने, लार्ड लिटन के भारत विरोधी कानूनों ने और जब अनेक भारतीय अकाल से भूखे मर रहे थे, ऐसे समय में शानोशौकत से ब्रिटिश राज दरबार के आयोजन ने भारतीयों के मनों में तीव्र आक्रोश भर दिया। 19वीं शताब्दी में देश में राष्ट्रीयता की भावनाओं के प्रसार के ये बड़े कारण बन कर उभरे। ए. ओ. ह्यूम द्वारा आरम्भ की गई इण्डियन नेशनल कांग्रेस के नेतृत्व में इन सभी भावनाओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। कांग्रेस का इतिहास भारत में

रष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास बन गया। इस अवधि में कांग्रेस राजनैतिक स्तर बहुत कुछ उपलब्धियाँ नहीं प्राप्त कर पाई परन्तु इसकी स्थापना के बीस वर्षो में यह एक राजनैतिक जागरूकता और एकता की भावना को अवश्य जागृत कर पाई। यह काल राष्ट्रीय आन्दोलन में नरम दल का युग कहा जा सकता है।

अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' कूट नीति के पहले फल के रूप में मुस्लिम लीग का जन्म हुआ। अंग्रेज बड़े खुश थे कि वे 62 मिलियन मुसलमानों को हिन्दुओं से अलग करने में समर्थ हो गए। इस प्रकार हमारे देश में साम्प्रादायिकता के दुष्ट राक्षस का जन्म हुआ।

होम रूल आन्दोलन

1914 में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। कांग्रेस ने अंग्रेजों की सहायता करने का निश्चय किया। विशेष रूप से नरम दल के लोगों द्वारा यह माना जाने लगा कि ब्रिटिश युद्ध के बाद भारत को स्वत्रन्त्र कर देंगे। लेकिन बहुत शीघ्र ही यह अनुभव किया जाने लगा कि यह आशा पूरी नहीं होगी क्योंकि यह युद्ध तो देशों को अपने कब्जे में रखने के लिए ही किया जा रहा है। परिणामतः सन् 1915 ई. - 1916 ई. में दो होम रूल लीगों की स्थापना हुई। एक का प्रारम्भ तिलक ने पूना में किया और दूसरी का मद्रास में एनी बेसेन्ट ने। इन दोनों दलों का उद्देश्य था स्वराज्य या अपना राज्य की प्राप्ति। इससे भारतीय राष्ट्रवादियों को एक निश्चित उद्देश्य मिल गया। आन्दोलन ने क्रांतिकारी या शस्त्रों के उपयोग का बहिष्कार किया। होम रूल लीग कांग्रेस के सहायक यूनिट की तरह कार्य करने लगीं।

5.6.2 1905 ई. - 1918 ई. की अवधि

1905 ई. से 1918 ई. तक का समय हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादियों का युग कहा जाता है। उग्रवादी नरमदल की आलोचना निम्नलिखित आधार पर करने लगे- भारत के राजनैतिक लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित न कर पाना, नरम और प्रभावहीन तरीके अपनाना, और आन्दोलन को जन आन्दोलन न बना पाना। उग्रवादी सीधी राजनैतिक कार्यवाही करने में और संवैधानिक सुधारों के स्थान पर स्वराज्य मांगने के पक्ष में थे। उग्रवादियों के इस दल का नेतृत्व लाल, बाल, पाल कर रहे थे अर्थात् लाला लाजपतराय, बालगंगाधर तिलक, विपिचन्द्र पाल। बंकिम चन्द्र, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानंद सरस्वती और अरविन्द घोष आदि ने अपने विचारों और प्रवचनों से इस उग्रदल के दृष्टिकोण को समर्थन दिया। कर्जन की भारत में दमनकारी नीतियाँ जिसका अन्त साम्प्रदायिक आधार पर बंगाल के विभाजन के रूप में सामने आया और जिनका आधार था 'फूट डालो और राज्य करो' प्रत्यक्ष आंदोलन के रूप में प्रकट हुईं। बंगाल विभाजन के विरोध में भी आन्दोलन हुआ। इस आंदोलन के साधन जो अपनाए गए वे थे विदेशी सामान का बहिष्कार और स्वदेशनिर्मित वस्तुओं को अपनाना। बायकाट और स्वदेशी के प्रयोग ने पूरे देशव्यापी आंदोलन का रूप ले लिया। समाज के सभी वर्ग, विद्यार्थी और महिलाएँ सभी ने इस आन्दोलन में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। यह जन-आन्दोलन बन गया। अंग्रेज सरकार ने हर प्रकार की हिंसात्मक कार्यवाही द्वारा इसको दबाने का प्रयत्न किया।

5.6.3 1919 ई. - 1934 ई. की अवधि

मॉन्टेंग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों ने भारत शासन अधिनियम 1919 के द्वारा राज्य में द्वैध शासन पद्धति लागू कर दी। नरम दल ने इन सुधारों का स्वागत किया परन्तु उग्रवादियों ने इन प्रस्तावों को ठुकरा दिया। राजनैतिक हिंसाओं को कुचलने के लिए 1919 ई. में रॉलेट एक्ट भी पास किया गया। इस मोड़ पर भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के राजनैतिक पटल पर एक नया चेहरा उभर कर आया। ये महात्मा गांधी थे जिन्होंने कांग्रेस के उच्चस्तरीय नेतृत्व में कमी को पूरा कर दिया। गांधी ने दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के विरुद्ध भेदभाव की नीति के खिलाफ आन्दोलन चलाया था। उन्होंने सत्याग्रह (सत्य का आग्रह) का राजनैतिक शस्त्र के रूप में प्रयोग किया था। उनकी पहली विजय भारत में चम्पारन सत्याग्रह के रूप में हुई। यह स्वतन्त्रता आन्दोलन का तीसरा पक्ष था जो गांधी युग के नाम से कहा जा सकता है। रॉलेट एक्ट के विरोध में आन्दोलन छेड़ दिया गया लेकिन हिंसा के फूट पड़ने के कारण गांधी जी ने इसको वापिस ले लिया। वह हिंसा के सख्त विरोधी थे। 13 अप्रैल 1919 ई. को जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड हुआ जिसमें 1000 से भी अधिक लोग जनरल डायर के आदेश पर कत्ल कर दिए गए। नवम्बर 1919 में खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन का उद्देश्य सरकार पर दबाव डालना था कि वह टर्की के विषय में मुस्लिमों के साथ किये गये अन्याय को दूर करे। गांधी जी के नेतृत्व में यह खिलाफत आन्दोलन असहयोग आन्दोलन में बदल गया। उन्होनें 10 मार्च 1920 ई. को एक प्रचार पत्र जारी किया जिसमें अपने अहिंसक असहयोग आन्दोलन के दर्शन का प्रतिपादन किया। उन्होंने बायकाट का अपना एक विस्तृत कार्यक्रम निर्धारित किया जिसके अन्तर्गत हर वह वस्तु जो ब्रिटिश है उसका बहिष्कार निहित था यहाँ तक कि नौकरियाँ, अदालतें, स्कूल, कॉलेज समारोह और वस्तुएँ भी। इसी के साथ एक रचनात्मक कार्यक्रम भी था जिसमें स्वदेशी को अपनाना, अस्पृश्यता को दूर करना, और हिन्दु मुस्लिम एकता पर बल देना सम्मिलित था। सी. आर. दास और मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य पार्टी के झण्डे के नीचे परिषद में रहते हुए व्यवस्था को तोडने की योजना बनाई। परन्तु यह पार्टी तीन साल में ही फेल हो गई। 1922 ई. में क्रांतिकारी गतिविधियाँ तेज हो गईं और 1934 ई. तक छुटपुट रूप से चलती रहीं। कुछ प्रमुख क्रांतिकारी थे भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरु, सुखदेव, बिस्मिल, अश्फाक उल्लाह और अन्य कई। कुछ क्रांतिकारी साम्यवादी भी थे जैसे- एम. एन. राय, डांगे, मुजफ्फर आदि। कुछ साम्यावादियों को मेरठ षडयन्त्र केस में दीर्घावधि तक जेल की सजा हो गई। 1927 ई. में साइमन कमीशन बनाकर भारत की राजनैतिक परिस्थिति की जांच पड़ताल करने के लिए भेजा गया। जहाँ जहाँ भी यह कमीशन गया इसको अहिंसक परन्तु तीक्ष्ण विरोधी प्रदर्शनों का सामना करना पड़ा क्योंकि कमीशन में कोई भी भारतीय सम्मिलित नहीं किया गया था। लाहौर में एक शान्तिपूर्ण प्रदर्शन का नेतृत्व करते हुए लाला

लाजपतराय को इतनी लाठियाँ खानी पड़ी कि उनकी मृत्यु हो गई। 1928 में नेहरु रिपोर्ट के नाम से भारत के लिए संविधान की रूपरेखा बनाई गई। 1929 के कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य का नारा लक्ष्य रूप में स्वीकार किया गया। 26 जनवरी 1930 का दिन स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया गया। गांधीजी ने नमक सत्याग्रह प्रारम्भ किया जो दांडी मार्च के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह आन्दोलन 6 अप्रैल 1930 ई. को प्रारम्भ हुआ। नागरिक बहिष्कार आन्दोलन 1934 तब चलता रहा। इस बीच गोलमेज सम्मेलन भी हुआ परन्तु आन्दोलन को बन्द करना पड़ा । गांधी जी ने 1934 ई. में कांग्रेस से सेवानिवृत्ति ले ली। उन्होंने दलित वर्ग तथा अछूतों के उत्थान के लिए कार्य करना शुरु किया। वे अछूतों को हरिजन कहते थे। इसी समय हरिजन सेवक संघ की भी स्थापना हुई।

5.6.4 स्वतंत्रता की प्राप्ति

1935 ई. में भारत शासन अधिनियम स्वीकृत हुआ। इसमें अखिल भारतीय संघ की अवधारणा निहित थी। प्रांतीय स्वायत्तता का प्रारंभ किया गया। केवल 14% जनता ही वोट दे सकती थी। मुस्लिम, सिख, भारतीय ईसाई, ऐंग्लो इण्डियन और यूरोपियन तथा अन्य के लिए अलग-अलग निर्वाचन निर्धारित किए गए थे। इस अधिनियम में भारतीय एकता के विकास को निरुत्साहित करके अलगाववाद और साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया गया था। कांग्रेस ने अधिनियम को अस्वीकृत किया परंतु उसने चुनाव में भाग लेने का निश्चय किया। 1937 ई. में चुनाव हुए। 11 प्रदेशों में से 7 में कांग्रेस मंत्रीमंडल चुने गए। इससे जनता को कई प्रकार से लाभ हुआ। कांग्रेस के अंदर और बाहर समाजवादी विचार पनपने लगे। कांग्रेस के नेता जैसे नेहरू और बोस भी समाजवादी विचारों से प्रभावित हुए। अंग्रेजों की फुट डालो और राज करो नीति ने साम्प्रदायिकता को जन्म दिया। अंग्रेज शासक एक समुदाय को दूसरे से भिड़ाने लगे। वे वस्तुतः उठते हुए राष्ट्रवाद को कुचलने के लिए मुस्लिमों को प्रसन्न करके और उनको अल्पसंख्यकों के अधिकार स्वरूप और अधिक अधिकार मांगने के लिए उकसाने लगे। साम्प्रदायिक निर्वाचन भी इसी बांटने के लक्ष्य से विभाजित किए जा रहे थे जिससे राष्ट्रीय एकता न बन पाये। साम्प्रदायिकता के परिणामस्वरूप 1938 में दो राष्ट्र की अवधारणा बनी और 1940 में जिन्ना ने इसको अंतिम रूप प्रदान किया। गैर मुस्लिम साम्प्रदायिकता इतनी गंभीर परिस्थिति में नहीं पहुंची जितनी कि मुस्लिम साम्प्रदायिकता। ये तो दूसरे वर्ग की प्रतिक्रिया स्वरूप ही थी। 1933 ई. में वाराणसी में एक हिंदू महासभा का अधिवेशन आयोजित किया गया। स्वामी दयानंद द्वारा स्थापित आर्य समाज और समाज के अंतर्गत शुद्धि आंदोलन हिंदु समाज को पवित्र और शक्तिशाली बनाने में महत्वपूर्ण थे। डॉ. हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना की। इस संघ का उद्देश्य था हिन्दु जाति में जागृति पैदा करना और उन्हें सुसंगठित करना और उसके अंदर राष्ट्रीयता की सुदृढ़ भावना को कूट-कूट कर भरना। इस उद्देश्य से शाखा तकनीक का प्रयोग किया जाने लगा।

जब 1939 ई. में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया, कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य मांगना प्रारंभ कर दिया। क्रिप्स मिशन ने 1942 ई. में युद्ध की समाप्ति के बाद भारत को एक डोमिनियन स्टेटस का अधिकार देना स्वीकार किया। कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। अगस्त 1942 ई. में महात्मा गांधी ने और कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' आंदोलन प्रारंभ कर दिया। इसी अवधि में जयप्रकाश नारायण द्वारा संचालित आंदोलन भी सक्रिय हो उठा था। यद्यपि दोनों ही आंदोलन-हिंसक और अहिंसक-विफल रहे पर अंग्रेज समझ गये कि उन्हें अब भारत छोड़कर जाना ही पड़ेगा। सुभाषचंद्र बोस और रासबिहारी बोस ने भारतीय स्वतंत्रता लीग और आजाद हिन्द फौज का गठन किया। यह सब काम सिंगापुर में 1943 ई. में हुआ। जापानियों की सहायता से आजाद हिन्द फौज भारत की सीमा तक आ पहुँची और कोहिमा पर अधिकार कर लिया। पर तभी बाजी पलट गई। जापान ब्रिटिश सेना से हार गया। आजाद हिन्द फौज की गति भी समाप्त हो गई और उधर सुभाष चन्द्र बोस एक हवाई जहाज की दुर्घटना में अगस्त 1945 ई. में मारे गये। युद्ध समाप्त होने के बाद 1946 ई. के प्रारंभ में चुनाव प्रारंभ हुए। कांग्रेस ने अधिकांश सीटें जीत लीं। मार्च 1946 ई. में कैबिनेट मिशन भारतीयों को राज्य हस्तांतरित करने के लिए भारत आया। इसने 16 मई 1946 ई. को अपनी संस्तुतियाँ प्रकाशित कीं। कैबिनेट मिशन योजना बहुत विस्तृत थी जिससे सम्पूर्ण शक्ति अंतिम रूप से भारत को सौंपी जा सके लेकिन कांग्रेस और मुस्लिम लीग में योजना को लेकर असहमति हो गई। इन्हीं घटनाओं के दौरान वायसराय ने नेहरू जी के प्रतिनिधित्व में कांग्रेस को अंतरिम सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। मुस्लिम लीग भड़क उठी और फिर साम्प्रदायिक दंगे प्रारंभ हो गये और चारों ओर बहुत खून खराबा हुआ। अंतरिम सरकार कुछ न कर सकी क्योंकि मुस्लिम लीग ने साथ नहीं दिया और मुसलमानों के लिए अलग देश पाकिस्तान की मांग पर अड़ गई। ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने फरवरी में यह घोषित कर दिया कि जून 1948 तक शक्ति का हस्तांतरण कर दिया जाएगा। मार्च में लार्ड माउन्टबैटन को भारत में भेजा गया कि वह इस स्थानांतरण के लिए तैयारियाँ करें। कांग्रेस को भारत का विभाजन कई दवाबों के कारण मानना पड़ा। विशेषरूप से साम्प्रदायिक मार-काट और खून-खराबा और उधर लीग और जिन्ना का कड़ा रुख। भारत 15 अगस्त 1947 ई. को विभाजन के बाद स्वतंत्र हो गया। 14-15 अगस्त 1947 ई. की अर्धरात्रि को शक्ति का हस्तांतरण घोषित हो गया।

पाठगत प्रश्न 5.2

1. किसी लिपि को छापने के लिए विशेषरूप से तैयार की गई पत्थर की सतह की सहायता से छापने की विधि को क्या कहते हैं?
2. आनंद मठ के लेखक कौन हैं?

3. किसने यह नारा दिया - वेदों की ओर लौट लौटो।
4. ज्योतिबाई फुले ने सत्य शोधक समाज को कब प्रारंभ किया?

आपने क्या सीखा

- छापाखाने के आविष्कार, नवजागरण तथा यूरोप के पुनरुत्थान ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार में योगदान किया जिससे लोगों को अंध-विश्वासों पर प्रश्नचिह्न लगाने का प्रोत्साहन मिला।
- पश्चिम के साथ भारत के संबंधों का सकारात्मक प्रभाव पड़ा और इसने अनेकों धार्मिक और समाजिक सुधारों को प्रोत्साहित किया जिनके द्वारा अनेक सामाजिक बुराइयों जैसे सती प्रथा, बाल-विवाह, विधवा पुनर्विवाह की अनुमति न होना, अशिक्षा, कन्या की हत्या और जाति व्यवस्था को दूर करने के प्रयास किए गए।
- वेदों के प्रकांड विद्वान स्वामी दयानंद सरस्वती के अनुयायियों ने 1875 ई. में आर्य समाज की स्थापना की और उन्होंने अस्पृश्यता, बहुदेवतावाद, अवतारवाद, मूर्तिपूजा तथा मरणोपरांत कर्मकाण्डों का विरोध किया और महिलाओं के समान अधिकारों के लिए प्रयत्न किए।
- 1798 ई. में लिथोग्राफी का आविष्कार मील का पत्थर सिद्ध हुआ। इसने भारतीयों की बहुत सारे नगरों में छापाखाने खोलने में तथा पत्रिकाएँ और अखबार निकालने में मदद की। इससे आधुनिक भारतीय भाषाओं की भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई।

पाठान्त प्रश्न

1. यूरोपीय नवजागरण और पुनरुत्थान आंदोलनों का भारत पर जो प्रभाव पड़ा, उसका वर्णन कीजिए।
2. सुधार आंदोलन में आर्यसमाज की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
3. स्वामी दयानंद सरस्वती का शिक्षा के क्षेत्र में क्या योगदान था?
4. लिथोग्राफी किसे कहते हैं? इसने भारतीय भाषाओं के विकास में कैसे सहायता की?
5. राजा राम मोहनराय की भारतीयों को जगाने में क्या भूमिका रही? स्पष्ट कीजिए।
6. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर एक निबंध लिखें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

5.1
1. इंग्लैण्ड
2. मैसूर के टीपू सुल्तान
3. तीन चरणों में

5.2
1. लिथोग्राफी
2. बंकिमचंद्र चटर्जी
3. स्वामी दयानंद सरस्वती
4. 1873 ई.

6

भारतीय भाषाएँ तथा साहित्य-I

सागर और समीर छुट्टियों में अण्डमान तथा निकोबार द्वीप में भ्रमण के लिए गए। उन्होंने वहाँ समुद्र के किनारे खेलकर और अनेक छोटे द्वीपों को देखकर अच्छा समय व्यतीत किया। परन्तु उन्हें वहाँ कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ा। वे स्थानीय लोगों की भाषा को नहीं समझ पा रहे थे। परिणामस्वरूप वे ऐसी अनेक बातें नहीं जान सके जिन्हें वहाँ के जनजाति के लोगों ने अपने विषय में बताईं। इससे आप भाषा के महत्त्व को समझ सकते हैं। भाषा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने विचारों को प्रकट करते हैं जबकि साहित्य एक ऐसा दर्पण है जो हमारे समाज में प्रभावी विचारों और दर्शनों को प्रतिबिम्बित करता है। अत: किसी विशेष संस्कृति और उसकी परम्पराओं को जानने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसकी भाषाओं के क्रमिक विकास एवं साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे कविता, नाटक, धार्मिक तथा गैर धार्मिक लेखों को समझें। इस पाठ में हम भारत की मिश्रित सांस्कृतिक विरासत के निर्माण में विभिन्न भाषाओं की भूमिका के बारे में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:—

- भारत की समृद्ध साहित्यिक विरासत का परीक्षण कर सकेंगे;
- भारत में भाषा तथा साहित्य की विविधता से परिचित हो सकेंगे;
- भारत की विभिन्न भाषाओं तथा साहित्यों को सूचीबद्ध कर सकेंगे;
- भारत की भाषा तथा साहित्य में विविधता में निहित एकता की सराहना कर सकेंगे;
- विश्व-साहित्य में भारत के महत्त्वपूर्ण योगदान को पहचान सकेंगे।

6.1 भारतीय भाषाएँ- संस्कृत की भूमिका

मनुष्य ने जब से लिपियों का आविष्कार किया है तब से लेखन में संस्कृति, जीवनशैली, समाज तथा तत्कालीन सामाजिक राजव्यवस्था उसमें प्रतिबिम्बित होती रही है। इस प्रक्रिया में प्रत्येक संस्कृति ने अपनी भाषा का विकास किया तथा विशाल साहित्यिक आधार तैयार किया। किसी भी सभ्यता का यह साहित्यिक आधार उसकी भाषा तथा शताब्दियों की अवधि के मध्य उसकी संस्कृति के विकास के बारे में बताता है।

संस्कृत अधिकांश भारतीय भाषाओं की जननी है। वेद, उपनिषद, पुराण एवं धर्म-सूत्र संस्कृत में रचे गए हैं। विभिन्न प्रकार का धर्म निरपेक्ष और क्षेत्रीय साहित्य विद्यमान है। प्राचीन समय के साहित्य तथा भाषाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करके हम अपनी सभ्यता को अच्छे ढंग से समझ सकेंगे तथा अपनी संस्कृति की विविधता तथा समृद्धि के महत्त्व की सराहना कर सकेंगे। यह सब उन भाषाओं के कारण ही सम्भव हुआ जो उस समय में विकसित की गईं।

संस्कृत हमारे देश की प्राचीनतम भाषा है। यह भारतीय संविधान में अनुसूचित 22 भाषाओं में से एक है। संस्कृत का साहित्य विशाल है, जिसका आरंभ मानवजाति के प्राचीनतम माने जाने वाले ग्रन्थ ''ऋग्वेद'' से माना जाता है। संस्कृत भाषा ने ही अठारहवीं शताब्दी में भाषा विज्ञान के वैज्ञानिक अध्ययन पर बल दिया। महान व्याकरणविद पाणिनि ने अपने अद्वितीय विवरणात्मक व्याकरण ग्रंथ ''अष्टाध्यायी'' में संस्कृत तथा इसके शब्द निर्माण का विश्लेषण किया है।

बौद्ध धर्म के संस्कृत ग्रन्थों में महायान तथा हीनयान शाखाओं के समृद्ध साहित्य का वर्णन है। हीनयान शाखा का सबसे महत्वपूर्ण साहित्य 'महावस्तु' है जो कथाओं का भण्डार है। जबकि 'ललित विस्तार' में महायान शाखा की पवित्र पठन सामग्री है जिसने अश्वघोष की ''बुद्धचरित'' के लिए लेखन सामग्री प्रदान की।

संस्कृत, संभवत: एकमात्र ऐसी भाषा है, जो क्षेत्रों और सीमाओं की बाधाओं को लांघ जाती है। उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक भारत का ऐसा कोई भाग नहीं है जिसका इस भाषा में सहयोग न रहा हो, या इस भाषा के प्रभाव से वञ्चित हो। 'कल्हण' की 'राजतरंगिणी' कश्मीर के राजाओं का विस्तृत विवरण देती है। वहीं 'जोनराज' से हमें पृथ्वीराज के यश का पता चलता है। कालिदास की रचनाओं ने संस्कृत साहित्य के भण्डार को चार चांद लगा दिए।

> भारतीय साहित्य के स्वर्णकाल में अनेक महान लेखन कार्य किए गए जैसे कालिदास का ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' एवं ''रघुवंशमहाकाव्यम्'', शूद्रक का ''मृच्छकटिकम्'' भास का ''स्वप्नवासवदत्तम्'' तथा श्रीहर्ष की ''रत्नावली''। इनके अतिरिक्त अन्य प्रसिद्ध कृतियाँ है- चाणक्य का ''अर्थशास्त्र'' तथा वात्स्यायन का ''कामसूत्र''!

पाठगत प्रश्न 6.1

1. भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण प्राचीन भाषा का नाम लिखिए।

....

2. मानवजाति की सबसे प्राचीन साहित्यिक विरासत कौन-सी हैं?

....

6.2 वेद

वेद भारत का प्राचीनतम ज्ञात साहित्य है। वेद संस्कृत में रचे गए तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मौखिक रूप में सम्प्रेषित होते रहे। क्या आप जानते हैं कि आज तक वेदों को संजोकर रखना ही भारतीयों की अति उत्तम उपलब्धि है। संसार के इतिहास में इस अनमोल वैदिक संपदा को संभालने का काम बेजोड़ है, जबकि लिपि का तथा लेखन सामग्री का भी पर्याप्त अभाव था।

वेद का शाब्दिक अर्थ 'ज्ञान' होता है। हिन्दु संस्कृति में वेदों को शाश्वत और ईश्वर प्रदत्त ज्ञान माना गया है। वे समस्त विश्व को एक मानव परिवार मानते हैं "वसुधैवकुटुम्बकम्।" वेद चार हैं: ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। प्रत्येक वेद के अपने उपनिषद्, अरण्यक तथा ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद संयुक्त रूप में 'वेदत्रयी' जाने जाते हैं। कुछ समय बाद अथर्ववेद को भी इस वर्ग में सम्मिलित कर दिया गया।

ऋग्वेद

ऋग्वेद प्राचीनतम वेद है। यह वैदिक संस्कृति में लिखे 1028 सूक्तों का संग्रह है। उनमें से अनेक में प्रकृति का सुंदर वर्णन है। अधिकांश ऋचाओं में विश्व की समृद्धि की प्राप्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है। ऐसा माना जाता है कि ये ऋचाएँ ऋषियों की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति हैं जो उन्होंने इन्द्रियातीत मानसिक अनुभूति की अवस्था में की थी। इन सुविख्यात ऋषियों में वसिष्ठ, गौतम, गृत्समद, वामदेव, विश्वामित्र, अत्रि आदि हैं। ऋग्वेद के प्रमुख देव इन्द्र, अग्नि, वरुण, रुद्र, आदित्य, वायु, उषा, अदिति और अश्विनी बंधु हैं। प्रमुख देवियों में उषा-प्रभात काल की देवी, वाक्-वाणी की देवी और पृथ्वी-भूमि की देवी है।

क्या आप जानते हैं कि अधिकांश सूक्त सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत जीवन के उच्चतम मूल्यों के संबंध में बताते हैं। जैसे सच्चाई, ईमानदारी, लगन, त्याग, विनम्रता तथा सदाचार आदि। सभी प्रार्थनाएँ संसार में भौतिक समृद्धि प्राप्त करने के लिए तथा उच्च सांस्कृतिक समाज के विकास के लिए हैं।

यजुर्वेद

'यजु' का अर्थ है यज्ञ या पूजा करना। यह वेद अधिकांशतः विभिन्न यज्ञों के धार्मिक अनुष्ठान और मंत्रों से संबंधित है। यह यज्ञ करने के लिए पद्धतियाँ बताता है। इसमें गद्य-पद्य दोनों रूपों में व्याख्याएँ हैं। यह कर्मकाण्ड से संबंधित पवित्र पुस्तक होने के कारण चारों वेदों में सर्वाधिक लोकप्रिय है। यजुर्वेद की दो प्रमुख शाखाएँ हैं, शुक्ल तथा कृष्ण यजुर्वेद अर्थात् वाजसेनीयी संहिता तथा तैत्तिरीय संहिता। यह ग्रन्थ उस समय की भारतीय सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति को दर्शाता है।

सामवेद

साम का अर्थ राग या गीत है। इसके कुल 1875 मन्त्रों में से केवल 75 मूल हैं शेष ऋग्वेद से लिए गए हैं। सामवेद में ऋग्वेद की ऋचाओं का संगीतमय पाठ करने की विधि का उल्लेख किया गया है। इसीलिए इस पुस्तक को 'साम' लय गान कहा गया है। यह ग्रन्थ भारतीय संगीत के विकास का मूल है।

अथर्ववेद

अथर्ववेद को ब्रह्मवेद के रूप में भी जाना जाता है। इसमें 99 रोगों के उपचार का उल्लेख है। इस वेद के स्रोत के रूप में दो ऋषियों अंगिरस तथा अथर्व को माना जाता है। अथर्ववेद बहुत मूल्यवान है क्योंकि यह सभ्यता के प्रारंभिक काल की धार्मिक वृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी 'पैप्पलाद' तथा 'शौनक' दो शाखाएँ हैं।

वेदों को जानने के लिए वेदांग अर्थात् वेदों के अंगों को जानना आवश्यक है। वेदों के ये सहायक ग्रंथ शिक्षा, व्याकरण, कल्प (कर्मकाण्ड) व्युत्पत्ति (निरुक्त), छंदविधान (छंद) और ज्योतिष का ज्ञान देते हैं। अधिकांश साहित्य इन्हीं विषयों पर रचे गये हैं। यह सूत्र-शैली में उपदेशों के रूप में लिखे गये हैं। संक्षिप्त शैली में निबद्ध निर्देश सूत्र कहलाता हैं। इसका सर्वाधिक प्रसिद्ध उदाहरण पाणिनि की व्याकरण है, जिसे 'अष्टाध्यायी' कहा जाता है। इसमें व्याकरण के नियमों का उल्लेख किया गया है तथा यह पुस्तक उस समय के समाज, अर्थव्यवस्था तथा संस्कृति पर भी प्रकाश डालती है।

ब्राह्मण और आरण्यक

चार वेदों के पश्चात् अन्य कई कृतियाँ जिन्हें 'ब्राह्मण' कहा गया, विकसित हुईं। इन ग्रंथों में वैदिक कर्मकाण्ड की विस्तृत व्याख्या, निर्देशन तथा यज्ञ विधान का उल्लेख किया गया है। ब्राह्मण के पिछले भाग 'आरण्यक' कहे गये जबकि आरण्यक के अंतिम भाग उपनिषद नामक दार्शनिक पुस्तकें हैं, जो ब्राह्मण साहित्य की परवर्ती अवस्था के प्रतीक हैं।

चारों वेदों में से प्रत्येक के अपने ब्राह्मण ग्रन्थ है। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण हैं कौशितकी और ऐतरेय। तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद से जुड़ा है और शतपथब्राह्मण शुक्लयजुर्वेद से। ताण्ड्य, पंचविंश और जैमिनीय अथर्ववेद के उपनिषद् हैं। इनके द्वारा हमें लोगों के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन की विस्तृत जानकारी मिलती है। आरण्यक में आत्मा, जन्म और मृत्यु तथा मृत्योपरान्त जीवन का उल्लेख आता है। ये वानप्रस्थी व्यक्तियों के द्वारा पढ़े और पढ़ाये जाते थे जैसे मुनि और आरण्यकों में रहने वाले व्यक्ति।

यह सारे-ग्रन्थ संस्कृत में थे। आरंभ में यह मौखिक रूप से एक से दूसरे को दिये जाते थे परंतु बहुत बाद में लिखित रूप प्रदान कर दिया गया।

वेदों के काल को निश्चित करना बहुत कठिन कार्य है। मैक्समूलर के अनुसार ऋग्वेद को 1000 ईसा पूर्व लिखा गया जबकि लोकमान्य तिलक के अनुसार यह ग्रन्थ 6000 ईसा पूर्व का है।

श्रुति एवं स्मृति में भेद

श्रुति और स्मृति दोनों ग्रन्थों की उन श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करती हैं जिनका उपयोग हिन्दू परंपरा के अंतर्गत कानून का शासन स्थापित करने में किया जाता है। श्रुति एकमात्र दैविक उत्पत्ति है उनमें नियमों की कोई भी अवधारणा नहीं है। अत: इसको अलग-अलग श्लोकों के बजाय संपूर्णता में सुरक्षित रखा गया है। श्रुति में सस्वर पाठ और उसके दैविक गुणों को सुरक्षित रखने की इच्छा की जाती है न कि स्मृति की भाँति आवश्यक रूप से उस मौखिक परंपरा को समझने और व्याख्या करने की।

पाठगत प्रश्न 6.2

1. 'वेद' शब्द का क्या अर्थ है?

    ....

2. चारों वेदों के नाम लिखें।

    ....

3. ''यजुर'' शब्द का क्या अर्थ है? यह उस समय के विषय में क्या सूचनाएँ हमें प्रदान करता है?

    ....

4. सामवेद से कितनी संगीत राग रागिनियाँ उत्पन्न हुई हैं?

    ....

6.3 उपनिषद्

उपनिषद् शब्द उप (समीप) और निषद् (बैठना) शब्दों से बनता है जिसका अर्थ है– ''समीप बैठना''। गुरुशिष्य परम्परा में ज्ञान प्राप्त करने के लिए शिष्यों के समूह गुरु के समीप बैठते थे।

भारतीय विचारों का चरम बिंदु उपनिषदों में मिलता है जो वेदों के अंतिम भाग हैं। उपनिषदों में मूलभूत दार्शनिक समस्याओं की अमूर्त एवं गहन चर्चा निहित है। शिष्यों को इनकी शिक्षा अंत में दी जाती थी। इसीलिए उपनिषदों को वेदों का अंत कहा जाता है। वेद व्यक्त की पूजा से प्रारम्भ होते हैं और धीरे-धीरे अव्यक्त के ज्ञान में रूपान्तरित हो जाते हैं।

200 से अधिक उपनिषद् माने जाते हैं जिनमें से एक- 'मुक्तिका' 108 उपनिषदों की सूची प्रस्तुत करता है- यह संख्या हिन्दू जपमाला की पवित्र संख्या के समान होती है।

उपनिषद् हमारी साहित्यिक-विरासत का महत्त्वपूर्ण अंग हैं। ये विश्व की उत्पत्ति, जीवन तथा मृत्यु, भौतिक तथा आध्यात्मिक जगत्, ज्ञान का स्वरूप आदि अन्य अनेक प्रश्नों से संबंधित चर्चाए प्रस्तुत करते हैं। सबसे प्राचीन उपनिषद् ''बृहदारण्यक'' शुक्ल यजुर्वेद से संबंधित है और छान्दोग्य सामवेद से सम्बद्ध है। कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण उपनिषद ऐतरेय, केन, कठ उपनिषद् हैं। आप स्वयं, कुछ अन्य मुख्य उपनिषदों के नाम ढूंढिये। आप देखेंगे कि भारतीय दर्शन का नया जगत् आपके सामने प्रस्तुत हो रहा है। उपनिषद् पर अन्य कई पुस्तकें उपलब्ध हैं। पहले छोटी-छोटी कहानियाँ पढ़िए। उनमें रुचि जागृत होगी तब किसी भी उपनिषद् को पूरी तरह पढ़ जाइए।

पाठगत प्रश्न 6.3

1. उपनिषद् का क्या अर्थ है?

   ....

2. कुछ महत्त्वपूर्ण उपनिषदों के नाम बताइये।

   ....

6.4 रामायण और महाभारत

रामायण और महाभारत हमारे दो प्रसिद्ध महाकाव्य हैं। वाल्मीकि की रामायण मूल रामायण है। इसे आदिकाव्य कहा जाता है और महर्षि वाल्मीकि को आदि कवि। रामायण एक आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत करती है। दूसरा महाकाव्य, महाभारत, व्यास द्वारा रचित ग्रंथ है। यह मूलतः संस्कृत में है। प्रारम्भ में इसमें 8800 श्लोक थे, इसे 'जय' कहा जाता था अर्थात् विजय से सम्बन्धित ग्रन्थ। आगे चलकर इन श्लोकों की संख्या बढ़कर 24000 हो गई और

प्राचीनतम वैदिक जनजाति के नाम पर इसे 'भारत' के नाम से प्रसिद्धि मिली। अंतिम संकलन 100,000 श्लोकों का है, जिसे 'महाभारत' या शतसाहस्त्री संहिता के रूप में जाना जाता है। यह कौरव-पाण्डव युद्ध से संबंधित कथात्मक, वर्णनात्मक और उपदेशपरक ग्रंथ है। महाभारत और रामायण के भिन्न-भिन्न रूप अनेक भारतीय भाषाओं में पाए जाते हैं। सुविख्यात भगवत् गीता महाभारत का ही एक भाग है जिसमें दैवी प्रज्ञा का सार है और वास्तव में वह सार्वभौमिक धर्मग्रन्थ है। यद्यपि यह अत्यंत प्राचीन धार्मिक ग्रंथ है इसकी मौलिक शिक्षायें आज भी प्रयोग की जाती हैं।

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को एक योद्धा और राजा के कर्त्तव्यों को समझाया, और विभिन्न यौगिक तथा वेदान्तिक दर्शनों को उदाहरणों तथा समानान्तर कथानकों से स्पष्ट किया। गीता हिन्दु दर्शन का एक संक्षिप्त ग्रन्थ और जीवन के लिए एक संक्षिप्त, सारगर्मित निर्देशिका है। आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी तथा बहुत से अन्य लोगों ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में गीता से ही प्रेरणा प्राप्त की। ऐसा इसलिए था क्योंकि भवगद्गीता मानवीय कर्मों में सकारात्मकता को प्रधानता देती है। यह ईश्वर और मनुष्य दोनों के ही प्रति अपने कर्तव्य का पालन, बिना फल की चिन्ता किए, करने की प्रेरणा देती है। आप इस बात को जान कर प्रसन्न होंगे कि भगवद्गीता का संसार की लगभग सभी मुख्य भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

पाठगत प्रश्न 6.4

1. संस्कृत में लिखे गए दो प्राचीन महाकाव्यों का नाम बतायें।

   ....

2. रामायण और महाभारत के रचयिता कौन हैं?

   ....

3. भगवतद्गीता में कृष्ण अर्जुन को क्या समझाते हैं?

   ....

6.5 पुराण

हिन्दुओं के पवित्र साहित्य में पुराणों का विशिष्ट स्थान है। वेदों और महाकाव्यों के पश्चात् इन्हीं को महत्त्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है। संख्या में पुराण अठारह हैं और लगभग उतने ही

उप पुराण माने जाते हैं। कुछ प्रसिद्ध पुराणों के नाम है: ब्रह्म, भागवत्, पद्म, विष्णु, वायु, अग्नि, मत्स्य तथा गरुड़। इनका विकास उस समय से माना जा सकता है जब बौद्ध धर्म का महत्त्व बढ़ रहा था और वह ब्राह्मण संस्कृति का मुख्य विरोधी बन रहा था।

पुराण मिथकीय रचनाएँ हैं, जो नीति-कथाओं और कहानियों के माध्यम से धार्मिक और आध्यात्मिक संदेश देती हैं। लोगों के धार्मिक जीवन के विकास में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। पुराण महाकाव्यों की शैली पर बने हैं। सबसे प्राचीन पुराण गुप्त काल में संकलित किये गये थे। ये ग्रंथ ऐसी पौराणिक कथाओं, कहानियों, किवदंतियों व उपदेशों से भरपूर हैं, जो सामान्य व्यक्ति को शिक्षा और नैतिक ज्ञान प्रदान करती हैं। इनमें महत्वपूर्ण भौगोलिक और ऐतिहासिक जानकारियाँ दी गई हैं। ये सृष्टि और पुन: सृष्टि के रहस्यों और वंशावलियों के बारे में भी बताते हैं। इस काल में बहुत सारी 'स्मृतियों' या पद्य में लिखे 'विधि' ग्रन्थों का भी संकलन हुआ। स्मृतियों पर टीकाएँ लिखने का काम गुप्तकाल के बाद शुरू हुआ। संस्कृत शब्दकोषकार अमरसिंह के अनुसार पुराणों में पांच विषयों पर चर्चा की जाती है– 1. सर्ग (सृष्टि) 2. प्रतिसर्ग (गौण सृष्टि) 3. वंश (वंशगत) 4. मन्वन्तर (मनुकाल) 5. वंशानुचरित (साम्राज्यों का इतिहास)

पाठगत प्रश्न 6.5

1. पुराणों की संख्या कितनी है?

   ....

2. पुराणों की कुछ विशेषताओं का उल्लेख करें।

   ....

6.6 पाली प्राकृत और संस्कृत में बौद्ध तथा जैन साहित्य

जैन और बौद्ध धर्म ग्रंथ ऐतिहासिक व्यक्तियों या घटनाओं की ओर संकेत करते हैं। प्राचीनतम बौद्ध धर्म-ग्रंथ पाली भाषा में हैं जो भाषा मगध और दक्षिणी बिहार में बोली जाती थी। बौद्ध ग्रंथों को कानून विषयक एवं सामान्य उपदेशात्मक में बांटा जा सकता है।

कानूनविषयक साहित्य का सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व 'त्रिपिटक' अर्थात् तीन टोकरियाँ विनय पिटक, सुत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक करते हैं। विनय पिटक में दैनिक जीवन-व्यवहार के नियमों विनियमों का उल्लेख है तथा सुत्त पिटक में नैतिकता और धर्म संबंधी संवाद और प्रवचन हैं। जबकि अभिधम्म पिटक में दर्शन और तत्त्वमीमांसा है। इसमें अनेक विषय जैसे नैतिकता, मनोविज्ञान, ज्ञान तथा तत्त्वमीमांसा विषयक ज्ञान संबंधी समस्याएँ दी गई हैं।

सामान्य उपदेशात्मक साहित्य में सर्वोत्तम सिद्धान्त जातक हैं। जातकों में बुद्ध के पूर्व जन्म की रोचक कथाएँ हैं। यह माना जाता था कि बुद्ध ने गौतम के रूप में जन्म लेने से पूर्व

500 से भी अधिक जन्मों में धर्म की साधना की थी, यहाँ तक कि जानवरों के रूप में भी। प्रत्येक जन्म कथा को जातक कहा गया है। जातकों में छठी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक की सामाजिक और आर्थिक स्थिति विषयक महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान की गई है। उनमें बुद्ध के समय की राजनीतिक घटनाओं का भी प्रसंग के अनुसार वर्णन किया गया है।

जैन ग्रंथ प्राकृत भाषा में लिखे गए तथा उन्हें गुजरात में वल्लभी में छठी शताब्दी में अन्तिम रूप में संकलित किया गया। महत्त्वपूर्ण जैन-ग्रंथ अंग, उपांग, प्रकीर्ण, छेद-सूत्र तथा मालासूत्र हैं। महत्त्वपूर्ण जैन विद्वानों में हरिभद्र सूरी (आठवीं शताब्दी) तथा हेमचन्द्र सूरी (बारहवीं शताब्दी) हैं। जैन धर्म ने काव्य, दर्शन तथा व्याकरण आदि ग्रन्थों के रूप में एक समृद्ध साहित्य को विकसित किया। इन कृतियों में अनेक अंश पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के राजनैतिक इतिहास को समझने में सहायक हैं। जैन पुस्तकों में व्यापार और व्यापारियों का बार-बार उल्लेख किया गया है।

प्राचीन भारतीय साहित्य को दो विभागों में बाँटा जा सकता है- धार्मिक और गैर धार्मिक ग्रंथ।

(क) चार वेदः
ऋग्वेद- इस प्राचीनतम वेद में 1028 ऋचाएँ है जो 'सूक्त' (सुन्दर वचन) कहे जाते हैं।
सामवेद- इस के सूक्तों को विशेष वर्ग के पुरोहित सोम यज्ञ के समय सस्वर गाते थे।
यजुर्वेद- इसके मन्त्र साधारण यज्ञ के समय गाये जाते हैं।
अथर्ववेद में गीत, मंत्र-तंत्र, दुरात्माओं को दूर करने के लिए जादुई मन्त्र हैं।

(ख) ब्राह्मणः वेदों से जुड़े हैं। इनमें यज्ञ के महत्त्व तथा प्रभावोत्पादकता का विस्तार से वर्णन किया गया है।

(ग) अरण्यक- ये ब्राह्मण ग्रंथों के अन्तिम भाग हैं।

(घ) उपनिषद- का अर्थ है गुरु के समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करना।

(ङ) महाकाव्य- रामायण एवं महाभारत

(च) बौद्ध- साहित्य

(घ) जैन- साहित्य

पाठगत प्रश्न 6.6

1. प्राचीन बौद्ध और जैन ग्रंथ किस भाषा में लिखे गये?

....

2. त्रिपिटकों के नाम बताइए।

....

3. जातक कथाएँ हमें क्या बताती हैं?

....

4. कुछ जैन विद्वानों के नाम बताइए।

....

6.7 अन्य संस्कृत साहित्य

हमारे पास विभिन्न विज्ञानों, विधि, औषधि, व्याकरण आदि के ग्रन्थों का एक बहुत बड़ा भण्डार है। इसी वर्ग में विधि-विधान संबंधी ग्रंथ भी आते हैं, जिन्हें धर्म सूत्र तथा स्मृति कहते हैं। दोनों को मिलाकर धर्मशास्त्र कहा गया है। धर्मसूत्रों को 500-200 ई.पू. के मध्य संकलित किया गया। इनमें विभिन्न वर्णों के साथ-साथ राजाओं और उनके कर्मचारियों के कर्त्तव्य बताए गए हैं। इनमें संपत्ति रखने, बेचने और इसके उत्तराधिकार के नियम दिए गए हैं। उनमें चोरी, आक्रमण, कत्ल, यौनाचार आदि के दोषी लोगों के लिए सजा भी निर्धारित की गई है। मनुस्मृति समाज में स्त्री और पुरुष की भूमिका, उनके लिए आचार-संहिता तथा उनके आपसी संबंधों के बारे में बताती है।

कौटिल्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र' मौर्यकाल का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। यह ग्रंथ उस समय के समाज की दशा और अर्थ-व्यवस्था को दर्शाता है। प्राचीन-भारत की राज व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था के अध्ययन के लिए यह ग्रंथ प्रचुर समाग्री उपलब्ध कराता है।

भास, शूद्रक, कालिदास और बाणभट्ट की रचनाएँ गुप्त और हर्ष कालीन, उत्तरी तथा मध्य भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की झलक देती हैं। गुप्तकाल में ही पाणिनि और पतंजलि के संस्कृत व्याकरण पर आधारित व्याकरण ग्रन्थों का विकास हुआ।

गुप्तकाल के प्रसिद्ध संस्कृत लेखकः

गुप्त काल भारत की संस्कृति का सबसे उत्तम तथा प्रसिद्ध स्वर्णकाल माना जाता है। गुप्तकालीन राजाओं ने शास्त्रीय संस्कृत साहित्य को बढ़ावा दिया। वे संस्कृत के कवि तथा विद्वानों की सहायता करते थे। इससे संस्कृत भाषा समृद्ध हुई। वास्तव में संस्कृत भाषा सभ्य तथा शिक्षित लोगों की भाषा बन गई। इस काल में बहुत से महान कवि, नाटककारों और विद्वानों के ग्रन्थ संस्कृत साहित्य के उच्चकोटि के ग्रन्थ सिद्ध हुए।

1. कालिदास- कवि कालिदास ने अनेक सुंदर कविताएं और नाटक लिखे। संस्कृत में उनको काव्य साहित्य का 'रत्न' माना जाता है। उनकी आश्चर्यजनक विद्वत्ता दो खण्ड काव्य मेघदूत तथा ऋतुसंहार, दो महाकाव्य ''कुमारसंभव'' और ''रघुवंश''

आदि महान काव्यों में देखी जा सकती है। ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' तथा ''**विक्रमोर्वशीयम्**'', ''मालविकाग्निमित्रम्'' उनके सुप्रसिद्ध नाटक हैं।

2. विशाखदत्त- विशाखदत्त उस समय के एक अन्य महान नाटककार है। आपने ''मुद्राराक्षस'' तथा ''देव चन्द्रगुप्त'' जैसे दो एतिहासिक नाटक रचे।

3. शूद्रक- आपने ''मृच्छकटिकम् (मिट्टी की गाड़ी)'' जैसा सामयिक नाटक लिखा। यह उस काल की सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों का स्रोत है।

4. हरिसेन- हरिसेन गुप्त काल के अनेक महान कवियों तथा नाटककारों में से एक थे। आपने समुद्रगुप्त की वीरता की प्रशंसा में अनेक कविताएं लिखीं। ये इलाहाबाद में स्तंभों पर खुदी हुई हैं।

5. भास- आपने उस समय के जीवनदर्शन और विश्वास तथा संस्कृति के प्रतीक तेरह नाटक लिखे।

कुषाण राजाओं ने संस्कृत के विद्वानों को संरक्षण दिया। अश्वघोष ने ''बुद्धचरितम्'' की रचना की है, जिसमें बुद्ध का जीवन चरित्र है। उन्होंने ''सौन्दरानन्द'' भी लिखा जो संस्कृत भाषा की एक श्रेष्ठ कृति है।

भारतवर्ष में गणित, खगोल, ज्योतिष, कृषि तथा भूगोल जैसे विषयों पर महान साहित्य लिखा गया। चरक ने चिकित्सा शास्त्र तथा सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा संबंधी ग्रन्थ लिखे। माधव ने 'औषधिविज्ञान ग्रंथ' की रचना की। वराहमिहिर तथा आर्यभट्ट द्वारा अंतरिक्ष विज्ञान पर तथा लगधाचार्य द्वारा ज्योतिष शास्त्र पर रचित पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं। वराहमिहिर की बृहत् संहिता, आर्यभटीयम्, तथा वेदांग ज्योतिष अतुलनीय ग्रन्थ हैं।

उत्तरी भारत में मध्यकाल के बाद कश्मीर में संस्कृत साहित्य का उदय हुआ। सोमदेव का ''कथासरितसागर'' तथा कल्हण की 'राजतरंगिणी' ऐतिहासिक महत्त्व के ग्रंथ हैं। यह कश्मीर के राजाओं के विषय में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देती हैं। जयदेव का 'गीतगोविंद' इस काल के संस्कृत साहित्य की सर्वोत्तम रचना है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषय जैसे कला, वास्तुकला, शिल्पकला मूर्तिकला आदि संबंधित क्षेत्रों में भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गए।

पाठगत प्रश्न 6.7

1. धर्मशास्त्र का विषय क्या है?

....

2. राजतरंगिणी के रचयिता कौन हैं?

....

3. कालिदास के सर्वप्रसिद्ध नाटक का नाम लिखिए।

....

4. जयदेव की पुस्तक का नाम बताइए।

....

5. चिकित्सा शास्त्र के लेखक का नाम बताइए।

....

6.8 तेलगु, कन्नड़ और मलयालम साहित्य

चार द्रविड भाषाएँ– तमिल, तेलगु, कन्नड़ और मलयालम में भी साहित्य रचा गया। तमिल इन सबसे प्राचीन भाषा होने के कारण इसमें लेखन कार्य पहले प्रारम्भ हुआ और ''संगम साहित्य'' की रचना की गई जो तमिल का सबसे प्राचीन साहित्य है।

तेलगु साहित्यः

विजयनगर काल को तेलगु साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता था। बुक्का प्रथम के राजकवि नाचणा सोमनाथ ने ''उत्तरहरिवंशम्'' नामक काव्य की रचना की। विजयनगर के महानतम शासक कृष्णदेव राय (1509 ई.–29) स्वयं महान कवि थे। उनकी रचना 'अमुक्त मलयदा' तेलगु साहित्य में उत्कृष्ट प्रबंध रचना मानी जाती है। 'अष्टदिग्गज' रूप में प्रख्यात तेलगु भाषा के आठ महान साहित्यकार उनके दरबार की शोभा थे। इनमें से अल्लसनी पेड्डना महानतम साहित्यकार माने जाते थे, जिन्होंने 'मनुचरितम्' नामक ग्रंथ की रचना की। उन्हें आंध्र कविता का पितामाह कहा जाता है। अन्य सात कवियों में 'पारिजातापहरणम्' के रचयिता नंदी तिम्मणा के अतिरिक्त मदयगरी मल्लण, धुर्जती, अय्यालाराजू रामभद्र कवि, पिंगली सुराण, रामराज भूषण तथा तेनाली रामकृष्ण हैं।

शिव भक्त धूर्जती ने 'कला हस्तिस्वर माहात्म्यम्'' और 'कलाहस्तिस्वर शतकम्' नामक दो रचनाएँ लिखीं। पिंगली सुराण ने 'राघवपांडवियम्' तथा 'कलापुरानोदयम्' नामक रचनाएँ लिखीं। पहली रचना में उन्होंने रामायण और महाभारत की कथा को एक साथ रचने की कोशिश की है। राजविदूषक तेनाली रामकृष्ण कृष्णदेवराय के राज दरबार के दिलचस्प व्यक्ति थे। तत्कालीन उच्चवर्ग के लोगों से संबंधित इनके व्यावहारिक चुटकले आज भी हमें गुदगुदाते हैं। रामकृष्ण 'पांडुरंग माहात्म्यम्' के रचनाकार हैं। उनकी यह रचना तेलुगु साहित्य की महान कृति मानी जाती है। रामराजभूषण 'वासुचरितम्' के रचनाकार हैं। इन्हें भट्टमूर्ति नाम से भी जाना जाता है। नरशंभुपांडवियम् तथा हरिश्चंद्र नलोपाख्यानम्' इनकी अन्य कृतियाँ है। यह 'राघवपाण्डवीयम्' की पद्धति पर लिखी काव्य रचना है। इसमें नल और हरिश्चंद्र की कथाएँ साथ-साथ पढ़ी जा सकती हैं। मदयगरी मल्लण कृत 'राजशेखरचरित' एक प्रबंध रचना है। इसकी विषयवस्तु अवन्ती के सम्राट राजशेखर का युद्ध एवं प्रेम है। अय्यालाराजू रामभद्र 'रामाम्युदयम्' तथा सकलकथासार संग्रहम् कृतियों के रचनाकार हैं।

कन्नड़ साहित्यः-

तेलगु रचनाकारों के अलावा विजयनगर शासकों ने कन्नड़ और संस्कृत लेखकों को भी आश्रय दिया। अनेक जैन विद्वानों ने कन्नड़ साहित्य में योगदान किया। माधव ने पन्द्रहवें तीर्थंकर पर धर्मनाथ पुराण लिखा। अन्य जैन विद्वान उरित्त विलास ने 'धर्म परीक्षे' ग्रंथ की रचना की। इस काल की संस्कृत कृतियों में वेदनाथ देशिक का 'यादवाभ्युदयम्' तथा माधवाचार्य की 'पराशरस्मृति व्याख्या' शामिल है।

कन्नड़ भाषा का संपूर्ण विकास दसवीं शताब्दी के बाद हुआ। कन्नड़ की प्राचीनतम साहित्यिक कृति 'कविराजमार्ग' है जो राष्ट्रकूट के राजा नृपतुंग अधोवर्ष प्रथम द्वारा लिखी गई। पम्पा ने अपनी उत्कृष्ट काव्यात्मक कृतियाँ 'आदिपुराण' और विक्रमार्जुन विजय' दसवीं शताब्दी ई. में लिखीं। पम्पा को कन्नड़ कविता का जनक कहा जाता है। वे चालुक्य नरेश अरिकेशरी के दरबार में रहते थे। अपने काव्यात्मक ज्ञान, सौंदर्य के वर्णन, चरित्रों की व्याख्या और रसों के सृजन में पंपा का कोई जोड़ नहीं है। राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय के राज्य में रहने वाले अन्य दो कवि पोन्ना और रान्ना थे। पोन्ना ने 'शांतिपुराण' नामक एक महाकाव्य लिखा और रान्ना ने 'अजितनाथ पुराण' लिखा। इसलिए पम्पा, पोन्ना और रान्ना को रत्नत्रय' (तीन रत्न) की उपाधि दी गई।

तेरहवीं शताब्दी में कन्नड़ साहित्य में नए आयाम जुड़े। हरिश्वर ने 'हरिश्चन्द्र काव्य' और 'सोमनाथ चरित' तथा बंधुवर्मा ने 'हरिवंश- अभ्युदय' और 'जीवन संबोधन' की रचना की। होयसल शासकों के संरक्षण में अनेक साहित्यिक ग्रंथों की रचना हुई। रुद्रभट ने 'जगन्नाथ विजय' की रचना की। अनदइया का 'मदनविजय' या 'कब्बिगार काव' बिना संस्कृत के उपयोग के विशुद्ध कन्नड़ की एक रोचक पुस्तक है। मल्लिकार्जुन के द्वारा किया गया कन्नड़ सूक्तियों का पहला संकलन 'सूक्तिसुधार्णव' और व्याकरण पर केसीराजा की 'शब्दमणिदर्पण' कन्नड़ भाषा की दो अन्य मानक कृतियाँ हैं।

माना जाता है कि चौदहवीं और सोलहवीं शताब्दी के बीच विजयनगर के राजाओं के संरक्षण में कन्नड़ साहित्य फला-फूला। कुंवर व्यास ने 'भारत' और नरहरि ने 'तारव रामायण' की रचना की। सत्रहवीं शताब्दी में लक्ष्मीशा जिन्होंने 'जामिनी भारत' लिखा, उन्हें कामना-करिकुतवन-चैत्र (कर्नाटक की आम्र-उपवन की बसंत) की उपाधि मिली।

तत्कालीन समय के अन्य महत्त्वपूर्ण कवि महान 'सर्वजन' थे, जो जनता के कवि के नाम से लोकप्रिय थे। उनके द्वारा रचित त्रिपदी सूक्तियाँ, ज्ञान और आचरण का स्रोत हैं। कन्नड़ की सम्भवतः शायद पहली अद्वितीय कवयित्री, होन्नाम्मा, विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनकी रचना 'हादिबदेय धर्म' (श्रद्धावान पत्नी का कर्त्तव्य) आचरण मूल्यों का सार-संक्षेप है।

मलयालम साहित्यः मलयालम भाषा केरल और आस-पास के इलाकों में बोली जाती है। मलयालम भाषा का उद्भव लगभग 11वीं शताब्दी में हुआ। 15वीं शताब्दी तक मलयालम को एक स्वतंत्र भाषा के रूप में पहचान मिल गई।

'भाषा कौटिल्य' जो अर्थशास्त्र पर एक टिप्पणी है और 'कोकासंदिसन' मलयालम में रचित दो महान कृतियां हैं। राम पण्णिकर और रामानुजन एजहुथाचन मलयालम साहित्य के जाने-माने साहित्यकार हैं। हालांकि अन्य दक्षिण भारतीय भाषाओं की तुलना में मलयालम भाषा का विकास बहुत बाद में हुआ, फिर भी इसने अभिव्यक्ति के एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज की है। आज मलयालम में अनेक शोधपत्र, अखबार और पत्रिकाएं निकलती हैं।

6.9 तमिल या संगम साहित्य

लिखित भाषा के रूप में तमिल ईसा काल के आरंभ से ही जानकारी में थी। अत: इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि अत्यधिक संगम साहित्य की रचना ईसा काल की आरंभिक चार शताब्दियों में हुई, यद्यपि उसका अंतिम रूप से संकलन 600 ईसवी तक हुआ। राजाओं एवं सामान्तों के आश्रयाधीन सभाओं में एकत्र हुए कवियों ने तीन से चार शताब्दियों की अवधि में संगम साहित्य की रचना की। कवि, चारण, लेखक और रचनाकार दक्षिणी भारत के विभिन्न भागों से मदुरै आए। इनकी सभाओं को संगम और इन सभाओं में रचित साहित्य को संगम साहित्य कहा गया। इसमें तिरूवल्लूवर जैसे तमिल संतों की कृतियाँ 'कुरल' उल्लेखनीय हैं जिनका बाद में अनेक भाषाओं में अनुवाद किया गया। संगम साहित्य अनेक वीरों और वीरांगनाओं की प्रशंसा में रचित अनेक छोटी-बड़ी कविताओं का संग्रह है। इनका स्वरूप धर्मनिरपेक्ष है तथा ये उच्चकोटि की रचनाएँ हैं। ऐसी तीन संगम सभाएँ आयोजित हुईं। प्रथम संगम में संकलित कविताएं गुम हो गईं। दूसरे भाग की 2000 कविताएँ संकलित की गई हैं।

संगम साहित्य में 30,000 पंक्तियों की कविताएं शामिल हैं। इन्हें आठ संग्रहों में संकलित किया गया, जिन्हें एट्टूतोकोई कहा गया। इनके दो मुख्य समूह हैं- पाटिनेनकिल कनाकू (18 निचले संग्रह) और पट्टूपट्टू (10 गीत)। पहले समूह को सामान्यत: दूसरे से अधिक पुराना और अपेक्षाकृत अधिक ऐतिहासिक माना जाता है। तिरुवल्लुवर की कृति 'कुराल को तीन भागों में बांटा गया है। पहला भाग महाकाव्य, दूसरा भाग राजनीति और शासन तथा तीसरा भाग प्रेम विषयक है।

संगम साहित्य के अलावा एक रचना 'तोलक्कापियम' भी है। इस रचना का विषय व्याकरण और काव्य है। इसके अतिरिक्त 'सिलाप्पदीकारम्' तथा 'मणिमेकलई' नामक दो महाकाव्य हैं, जिनकी रचना लगभग छठी ईसवी में की गई। पहला महाकाव्य तमिल साहित्य का सर्वोत्तम रत्न माना जाता है। प्रेमगाथा को लेकर इसकी रचना की गई है। दूसरा महाकाव्य मदुरै के अनाज व्यापारी ने लिखा था। इस प्रकार दोनों महाकाव्यों में दूसरी सदी से छठी सदी तक तमिल समाज के सामाजिक, आर्थिक जीवन का चित्रण प्राप्त होता है।

छठी सदी से बारहवीं सदी ईसवी तक नयनमारों (शैव भक्ति की प्रशंसा में गाने वाले संत) ने तमिल में भक्ति पूर्ण कविताएँ लिखी और अलवरों ने भक्ति आंदोलन चलाया जिसका सम्पूर्ण भारतीय महाद्वीप में प्रचार किया। इसी समय में ''कम्ब रामायणम्'' और 'पेरिया पुराणम् तमिल साहित्य के महान ग्रन्थ रचे गए।

आपने क्या सीखा

- विरासत पीढ़ी-दर-पीढ़ी मिलने वाली बौद्धिक संपदा का योग है।
- संस्कृत भारत की प्राचीनतम भाषा है।
- ऋग्वेद मानव जाति की प्राचीनतम एवं सर्वाधिक समृद्ध साहित्यिक विरासत है।
- उपनिषदों ने विश्व के महानतम दार्शनिकों को प्रभावित किया है।
- रामायण और महाभारत महाकाव्यों का देश के सामाजिक लोकाचारों पर अभी तक प्रभाव है।
- पुराण जनसाधारण को मार्ग दिखाते हैं।
- जैन धर्म में सदाचार तथा नैतिकता पर बल दिया गया है- यह अहिंसा, सत्यता और पवित्रता का उपदेश देता है। जातक कथाएँ उस काल के लोगों के विचारों तथा जीवन की जानकारी के अमूल्य स्रोत हैं। बौद्ध संघ महान अध्ययन केन्द्र थे।
- कानून, राजनीति शास्त्र, चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, जीव विज्ञान, रसायन शास्त्र, वास्तुशिल्प पर प्राचीन भारतीय भाषाओं में अमूल्य ग्रंथ रचे गए हैं।
- तमिल साहित्य 'संगम' साहित्य के रूप में प्रसिद्ध है।

पाठांत प्रश्न

1. "संस्कृत अधिकांश भारतीय भाषाओं का मूल है।" विश्लेषण करें।
2. उपनिषदों के महत्त्व का वर्णन करें।
3. बौद्ध और जैन साहित्य के ग्रन्थों की सूची बनाएँ और उनके दो-दो ग्रन्थों के विषय में विस्तार से लिखें जो आपको रोचक लगे।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

   (1) संगम साहित्य

   (2) वेद
5. महाकाव्य 'शिल्पदिकरम्' एवं 'मणिमेकलई' की क्या कथा है?
6. तारव के रामायण की विशेषता क्या है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

6.1
1. संस्कृत
2. ऋग्वेद

6.2
1. ज्ञान
2. ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद
3. इसका अर्थ है- यज्ञ एवं पूजा, उस समय की सामाजिक और धार्मिक अवस्था
4. सोलह हजार

6.3
1. उपनिषद् का अर्थ है गुरु के समीप निष्ठापूर्वक बैठना
2. ऐतरेय, केन, कठ, बृहदारण्यक एवं छांदोग्य।
3. कृष्ण अर्जुन को एक योद्धा के रूप में उसे उसका कर्तव्यबोध कराते हैं और उदाहरणों सहित विभिन्न दर्शनों की व्याख्या करते हैं।

6.4
1. रामायण एवं महाभारत
2. वाल्मीकि एवं वेद व्यास

6.5
1. 18 पुराण तथा 18 उप-पुराण
2. पुराण सृष्टि के रहस्य, पुन:सृष्टि, वंश और वंशावलियों का उल्लेख करते हैं।

6.6
1. पाली एवं प्राकृत
2. विनयपिटक, सुत्तपिटक एवं अभिधम्मपिटक
3. भगवान बुद्ध के पिछले जन्मों के बारे में बताते हैं जिनमें उन्होंने धर्म की साधना की थी।
4. दो महत्त्वपूर्ण जैन विद्वान हरिभद्रसूरी (आठवीं सदी) तथा हेम चन्द्र सूरी (बारहवीं सदी)

6.7
1. कानून
2. कल्हण
3. अभिज्ञानशाकुंतलम्
4. गीतगोविंद
5. चरक

7

भारतीय भाषाएँ तथा साहित्य-II

किसी भी संस्कृति की समृद्धि को देखा और सराहा जा सकता है पर जब बात भाषा और साहित्य की होती है तो उसे सुनना और पढ़ना आवश्यक हो जाता है। हमें अपनी संस्कृति के इस विशिष्ट पक्ष पर गर्व होना चाहिए और इसकी सराहना करनी चाहिए। हमें इस काल में लिखी गई, जितनी सम्भव हो, पुस्तकें पढ़नी चाहिएँ जिनसे हमें यह समझने में सहायता मिलेगी कि किस समय में क्या-क्या घटित हुआ। इससे हमें अन्य पुस्तकों को भी पढ़ने में सहायता मिलेगी और आज जो कुछ हमारे चारों ओर घटित हो रहा है उन अनेक विषयों के बारे में हम परिचित हो सकेंगे।

इस पाठ में हम आधुनिक भारतीय भाषाओं तथा उनके साहित्य के विकास के बारे में पढेंगे। हम आधुनिक भारतीय भाषाओं के आरंभिक शब्दकोश और व्याकरण को तैयार करने में ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा निभाई गई भूमिका के विषय में जानेंगे, जिससे पता चलेगा कि कैसे इन लोगों ने आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास में सहायता की है। इसके अतिरिक्त हम आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास में भक्ति आंदोलन और राष्ट्रवाद की भूमिका भी जानेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आपः-

- आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास का क्रमबद्ध तरीके से उल्लेख कर सकेंगे;
- विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य और भारतीय समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के बीच आपसी संबंध को पहचान सकेंगे;
- भारतीय भाषाओं और इनके साहित्य में मूलरूप से निहित एकता और अंदरूनी विविधता का उदाहरण दे सकेंगे;

- भारतीय समाज के पुनर्जागरण में भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य के योगदान का परीक्षण कर सकेंगे;

7.1 उत्तर भारतीय भाषाएँ और साहित्य

हम यह देख चुके हैं कि प्रारंभिक मध्यकाल तक कैसे भारत में हमारी भाषाएँ विकसित हुई। प्राचीन अपभ्रंश आदि भाषाएँ कुछ क्षेत्रों में नए रूप ले चुकी थीं या दूसरे रूपों में विकसित होने की प्रक्रिया में थीं। ये भाषाएँ दो स्तरों पर विकसित हो रही थीं, बोलचाल की भाषा के स्तर पर और लिखित भाषा के स्तर पर। अशोक के काल में प्राचीन ब्राह्मी लिपि में अत्यधिक परिवर्तन हो चुका था। अशोक के काल में इसकी वर्णमाला आकार में विषम थी किन्तु हर्ष के समय तक अक्षर समान आकार के और नियमित हो गए थे, जो सुघढ़ लेखन को प्रदर्शित करते थे।

अध्ययनों से पता चलता है कि उर्दू को छोड़कर, वर्तमान उत्तर भारतीय भाषाओं की सभी लिपियों का उद्‌गम प्राचीन ब्राह्मी लिपि से हुआ है। एक सुदीर्घ और धीमी प्रक्रिया ने उन्हें यह रूप दिया। यदि हम गुजराती, हिन्दी और पंजाबी की लिपियों की तुलना करें, तो हम आसानी से इस परिवर्तन को समझ सकते हैं। जहाँ तक बोली जाने वाली भाषाओं का संबंध है, भारत में इस समय 200 से अधिक भाषाएँ या बोलियां बोली जाती हैं। कुछ का प्रयोग विस्तृत क्षेत्र में होता है और अन्य का केवल एक सीमित क्षेत्र में। इनमें से 22 भाषाओं को ही हमारे संविधान की 8वीं अनुसूची में स्थान मिला है।

अधिकांश लोग विभिन्न रूपों में हिन्दी भाषा बोलते हैं जिनमें ब्रज भाषा, अवधी (अवध क्षेत्र में बोली जाने वाली) भोजपुरी, मगधी और मैथिली (मिथिला के आसपास बोली जाने वाली), राजस्थानी और खड़ी बोली (दिल्ली के आसपास बोली जाने वाली आदि भाषाएँ सम्मिलित हैं) भी हिन्दी का ही एक भिन्न रूप या बोली है। यह वर्गीकरण सुदीर्घ अवधि में कवियों द्वारा सृजित साहित्य के आधार पर किया गया है। अत: सूरदास और बिहारी द्वारा प्रयुक्त भाषा को ब्रज भाषा का नाम दिया गया है, तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में जिस भाषा का प्रयोग किया, उसे अवधी और विद्यापति द्वारा प्रयुक्त भाषा को मैथिली कहा गया। किन्तु हिन्दी को जिस रूप में हम आज जानते हैं, यह खड़ी बोली है। यद्यपि खड़ी बोली का प्रयोग तेरहवीं शताब्दी में खुसरों ने भी किया है, परंतु इसका साहित्य में व्यापक प्रयोग उन्नीसवीं सदी से अधिक पुराना नहीं है। इस पर उर्दू का भी कुछ प्रभाव है।

7.2 फारसी तथा उर्दू

चौथी शताब्दी के अंत तक उर्दू एक स्वतंत्र भाषा के रूप में स्थापित होने लगी। तुर्कों और मुगलों के भारत में आने से फारसी और अरबी भाषा भी आ गई। फारसी कई सदियों तक अदालतों की भाषा रही। हिन्दी और फारसी के मिलने से उर्दू का एक भाषा के रूप में जन्म हुआ।

तुर्की लोग दिल्ली को जीतने (1192 ई.) के उपरांत इस क्षेत्र में ही बस गए। उर्दू का जन्म इन नए निवासियों तथा शिविर में रहने वाले सैनिकों की आम लोगों के बीच की अन्त:क्रिया से हुआ। मूलत: यह एक बोली थी परंतु धीरे-धीरे इसने एक औपचारिक भाषा का रूप धारण कर लिया जब लेखकों ने फारसी लिपि का प्रयोग करना आरंभ कर दिया था। आगे चलकर अहमदनगर, गोलकुण्डा, बीजापुर एवं बिराड़ के बहमनी राज्यों में इस भाषा के प्रयोग को और अधिक बल मिला। यह यहाँ पर दक्कनी (दक्षिणी) कहलाई। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया यह दिल्ली की विशाल जनता में प्रसिद्ध होती गई।

अठारहवीं सदी के आरंभ में उर्दू और भी लोकप्रिय हो गई। विद्वानों ने परवर्ती मुगल शासकों के बारे में उर्दू भाषा में लिखा। धीरे-धीरे इसने एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया जब गद्य और पद्य, दोनों तरह का साहित्य उर्दू भाषा में रचा जाने लगा।

अंतिम मुगल शासक बहादुरशाह जफर ने उर्दू में शायरी लिखी। हिन्दी और उर्दू-भाषी क्षेत्रों में उनके लिखे कुछ शेर आज भी काफी लोकप्रिय हैं।

उर्दू को एक गौरवशाली स्थान दिलाने में कई शायरों की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है, जिन्होंने उर्दू में शायरी की, और जो भावी पीढ़ियों को भी प्रभावित करती रहेगी। उर्दू के पहले कवि खुसरो (1253-1325) माने जाते हैं। उन्होंने सुलतान बलबन के राज्य में एक कवि के रूप में लिखना शुरू किया और वे निजामुद्दीन औलिया के अनुयायी थे। उन्होंने विभिन्न विषयों पर पुस्तकें लिखीं तथा अनेक दोहों की रचना की। उनके कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं– लैला-मजनू और आइनाए अकबरी जो अलाउद्दीन खिलजी को समर्पित थे। अन्य कवियों-शायरों में गालिब, जौक, हाली और इकबाल का नाम प्रमुख है। इकबाल का उर्दू काव्य उनके संकलन 'बांग-ए-दरा' में संकलित है। उनका 'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा' गीत भारत में अनेक राष्ट्रीय समारोहों में गाया जाता है। कोई भी सैनिक परेड इस धुन के बिना अधूरी समझी जाती है।

भारत के दिल्ली जेसे बड़े शहर में गालिब, मौमिन, बुल्लेशाह, वारिसशाह आदि अनेक प्रसिद्ध कवियों को कविता, गजल/नज्म सुनाने के लिए बुलाया जाता है। इससे आप अनुमान लगा सकते हैं कि हमारी भाषा एवं साहित्यिक सम्पदा कितनी समृद्ध है जो आज तक भी जीवित है? इसने हमारा जीवन बनाया है। यह लोगों के मिलने-जुलने का और परस्पर सम्पर्क करने के प्रमुख साधन हैं।

सर्वश्रेष्ठ गद्य लेखकों में एक नाम पंडित रतननाथ 'सरशार' का है, जिन्होंने प्रसिद्ध पुस्तक 'फसाना-ए-आजाद' लिखी थी। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार माने जाने वाले मुंशी प्रेमचंद्र ने भी अपने आरंभिक लेखनकाल में उर्दू में ही साहित्य रचना की। उर्दू भाषा ने कविता को एक नया रूप दिया है, जिसे 'नज़्म' कहा जाता है। लखनऊ के नवाबों ने उर्दू को संरक्षण दिया और मुशायरों का आयोजन करवाया। धीरे-धीरे यह भाषा बहुत लोकप्रिय हो गई। पाकिस्तान ने उर्दू भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाया है।

मुगल काल में साहित्य का उत्थान

मुगल काल में साहित्य के क्षेत्र में असाधारण विकास हुआ। बाबर तथा हुँमायु साहित्य के प्रेमी थे। बाबर स्वयं फारसी भाषा का महान् विद्वान था। उसने 'तुजुके-ए-बाबरी' नामक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी जिसका तुर्की साहित्य में विशिष्ट स्थान है। हुँमायु ने अरबी भाषा में इस ग्रन्थ का अनुवाद करवाया। वह भी विद्वत्ता का प्रेमी था और उसने एक बड़ा सा पुस्तकालय भी स्थापित किया। ''हुँमायुनामा' उस समय की उच्चतम पुस्तकों में से एक है।

अकबर भी विद्वत्ताप्रिय था। उसके ज़माने में लिखी गई प्रसिद्ध पुस्तकें हैं– अकबरनामा, सूरसागर और रामचरितमानस, मलिक मोहम्मद जायसी का ''पद्मावत'' तथा केशव की 'रामचन्द्रिका' इसी समय में लिखी गईं। जहांगीर ने साहित्य को बढ़ावा दिया। अनेक विद्वानों ने उसकी सभा को शोभित किया। वह भी ऊँची योग्यता वाला विद्वान था उसने अपनी जीवनी भी लिखी। शाहजहाँ के काल में अब्दुल हमीद लाहौरी नामक प्रसिद्ध विद्वान था। उसने बादशाह-नामा लिखा। औरंगजेब के समय में साहित्यिक कार्य बाधित हुआ। ,

मुगल शासकों के अंतिम दिनों में उर्दू साहित्य का विकास आरंभ हुआ। इसका श्रेय सर सैयद अहमद खान तथा मिर्जा गालिब को जाता है। सर सैयद अहमद खान की भाषा बहुत सरल तथा प्रभावी थी। उन की रचनाओं ने उस समय के उर्दू के प्रसिद्ध कवि मिर्जा गालिब को प्रेरणा दी। उन्होंने उर्दू शायरी को ऊँचाई पर ले जाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य उर्दू के लेखक है जिन्होंने उर्दू शायरी में रुचि दिखाई तथा उर्दू साहित्य को समृद्ध बनाया।

'मौलवी अलताब हुसैन अली', 'अकबर इलाहाबादी' तथा डा. मोहम्मद इकबाल आदि कुछ अन्य सुप्रसिद्ध नाम हैं।

कचहरी की भाषा फारसी होने के कारण उस समय में बहुत सा साहित्य फारसी भाषा में लिखा गया। अमीर खुसरो, अमीर हसन देहलवी ने फारसी में उत्तम कविताएँ लिखी। 'मीब्नहस-उस-सिराज' जिया बरानी तथा ईब्नेबतूता जो उस समय भारत में आए थे उन्होंने शासकों के महत्त्वपूर्ण राजनीतिक कार्य तथा घटनाओं की कहानियाँ फारसी भाषा में लिखीं।

मध्यकालीन भारत में फारसी भाषा को राजदरबार की भाषा के रूप में मान्यता मिली। अनेक ऐतिहासिक तथ्य, प्रशासनिक नियमावलियाँ और इससे संबंधित सहायक साहित्य फारसी में भी उपलब्ध है। मुगलशासक विद्वत्ता और साहित्य के बहुत बड़े संरक्षक थे। बाबर ने अपनी ''तुजुके-ए-बाबरी'' (आत्मकथा) तुर्की भाषा में लिखी, किन्तु उसके पोते अकबर ने उसका अनुवाद फारसी में करवाया। अकबर ने कई विद्वानों को संरक्षण दिया। तथा संस्कृत में लिखे महाभारत का अनुवाद भी फारसी भाषा में करवाया। जहांगीर की आत्मकथा ''तुजुके-ए-जहांगीरी'' फारसी भाषा में है और एक उत्तम साहित्यक ग्रन्थ है। कहा जाता

है कि नूरजहां एक उम्दा फारसी कवयित्री थीं। मुगल-दरबारियों ने विपुल मात्रा में फारसी साहित्य की रचना की है। अबुल फजल का ''अकबरनामा' एवं 'आईना-ए-अकबरी' एक उत्कृष्ट साहित्य कृति है। इससे हमें अकबर ओर उसके काल के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। फैजी ने सुंदर फारसी काव्य की रचना की। मुगलकाल के पत्रों के अनेक संग्रह (इंशा) उपलब्ध हैं। मुगल इतिहास पर प्रकाश डालने के अलावा ये, पत्र-लेखन की शैलियों का उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं। गद्य और इतिहास लेखन में एक अन्य नाम चंद्रभान का है, जो शाहजहां के समय के लेखक थे। इसी प्रकार हमारे पास ''तबकात-ए-आलमगिरी'' नामक एक कृति है जो औरंगजेब के शासन काल पर प्रकाश डालती है। बदायूँनी अकबर के काल के एक अन्य लेखक थे। बीसवीं सदी में इकबाल ने उत्कृष्ट फारसी काव्य की रचना की। अब ये सब भारतीय विरासत और संस्कृति के अंग बन गए।

इस समय के प्रसिद्ध हिन्दी (विभिन्न रूपों में हिन्दी) कवि थे कबीर, तुलसीदास, सूरदास और रहीम। कबीर के दोहे आज भी लोकप्रिय हैं जबकि तुलसीदास द्वारा रचित ''रामचरितमानस'' हिन्दु समाज में सबसे अधिक पवित्र ग्रंथ माना जाता है। बिहारी द्वारा रचित ''सतसई'' अकबर के शासन काल का प्रसिद्ध काव्य है। अकबर के दरबार में केशव मिश्र ने ''अलंकारशेखर'' की रचना की। संस्कृत रचनाओं की लेखन शैली पर यह महान कार्य था। अकबर ने अनेक संस्कृत ग्रंथ जैसे भगवद्गीता तथा उपनिषदों का भी फारसी में अनुवाद करवाया।

पाठगत प्रश्न 7.1

1. हिन्दी भाषा के क्या विविध प्रकार हैं?

   ....

2. तुलसीदास ने ''रामचरितमानस'' में कौन-सी भाषा में लेखन कार्य किया?

   ....

3. भारत में उर्दूभाषा का प्रयोग कैसे प्रारम्भ हुआ?

   ....

4. किस देश में उर्दू राष्ट्र भाषा है?

   ....

5. दक्खन में उर्दू भाषा को क्या कहते हैं?

   ....

7.3 हिन्दी साहित्य

इस काल में क्षेत्रीय भाषाएँ जैसे हिन्दी, बंगाली, असमी, उड़िया, मराठी तथा गुजराती आदि का अत्यधिक विकास हुआ। 14वीं शताब्दी में दक्षिण में मलयालम एक ऐसी ही स्वतंत्र भाषा के रूप में प्रकट हुई। इन सब भाषाओं के प्रकट होने के कारण संस्कृत का पतन होने लगा, क्योंकि फलस्वरूप ये भाषाएँ प्रशासनिक कार्य प्रणाली में काम करने का माध्यम बनने लगीं। भक्ति आंदोलन का उदय होने तथा विभिन्न संतों के द्वारा क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग करने से इन भाषाओं के विकास में वृद्धि हुई। उत्तरी और पश्चिमी भारत में विकसित विभिन्न बोलियों का हम पहले ही अध्ययन कर चुके हैं। 'पृथ्वीराज रासो' को हिन्दी भाषा की पहली पुस्तक माना जाता है। यह दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान की वीरता का लेखा-जोखा है। इसके अनुकरण में अनेक रासो ग्रंथों की रचना की गई। हिन्दी भाषा में परिवर्तन होते रहे हैं, क्योंकि जिन क्षेत्रों में यह बोली जाती थी उनका विस्तार होता गया। नई परिस्थितियों को व्यक्त करने के लिए नए शब्द या तो गढ़े गए या इसके प्रभाव के अंतर्गत आने वाले नए क्षेत्रों से ले लिए गए हैं। मार्गदर्शन के लिए हिन्दी साहित्य ने संस्कृत के शास्त्रीय ग्रंथों को आधार बनाया और भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' को हिन्दी लेखकों ने ध्यान में रखा। दक्षिण में बारहवीं-तेरहवीं शताब्दी में एक आंदोलन प्रारम्भ हुआ जिसे भक्ति आंदोलन कहा गया था। जब दक्षिण के संत उत्तर भारत पहुँचे, तो पहले से ही हिंदी में रचे जा रहे गद्य और पद्य उनके प्रभाव से मुक्त न रह सके। इस समय की कविताओं का मुख्य चरित्र भक्ति रस हो गया। कुछ कवि जैसे तुलसीदास सीमित क्षेत्र में रहे और उन्होंने काव्य रचना उस क्षेत्र की भाषा में की, जहाँ के वे निवासी थे। दूसरी ओर कबीर जैसे अन्य कवि एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते थे, और इसलिए उनकी कविता में फारसी के साथ-साथ उर्दू भाषा के शब्द भी आ गए। यह सही है कि तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना वाल्मीकि रचित 'रामायण' के आधार पर की, किन्तु लोककथाओं में उपलब्ध कुछ नए दृश्यों और स्थितियों को भी उन्होंनें इसमें जोड़ा। वाल्मीकि रामायण में सीता का निष्कासन वर्णित है, किन्तु तुलसीदास के मानस में इसका उल्लेख नहीं है। तुलसीदास ने अपने नायक को देवत्व प्रदान किया है जबकि वाल्मीकि ने अपने नायक को मनुष्य ही रहने दिया है।

7वीं तथा 8वीं शताब्दी तथा 14वीं सदी के मध्य अपभ्रंश से हिंदी विकसित हुई। इस समय की वीरता पूर्ण कविता के कारण इसको 'वीरगाथा काल' या 'आदिकाल' कहा गया। ये कवि राजपूत शासकों की वीरता तथा दया की प्रशंसा करते थे जिनका इन्हें संरक्षण प्राप्त था। उस समय के सबसे ज्यादा प्रसिद्ध संत कबीर और तुलसीदास थे। आधुनिक समय में खड़ी बोली अधिक प्रसिद्ध हो गई और संस्कृत भाषा में भी विविध साहित्य लिखा गया।

इसी प्रकार, सूरदास ने 'सूरसागर' की रचना की, जिसमें उन्होंनें कृष्ण का चित्रण एक नवजात शिशु के रूप में, नटखट लड़के के रूप में और गोपियों के साथ रास रचाने वाले युवक के रूप में किया है। श्रोताओं के मन पर इन कवियों ने गहरा प्रभाव छोड़ा। यदि राम और कृष्ण से जुड़े त्यौहार इतने अधिक लोकप्रिय हुए है तो इसका श्रेय इन कवियों को ही

जाता है। इनकी कृतियां न केवल अन्य कवियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनीं बल्कि मध्ययुगीन चित्रकारों को भी इन्होंने प्रेरित किया। इन्होंने मीराबाई, जो राजस्थानी भाषा में पद रचना करती थीं, इनको और रसखान को प्रेरित किया। यद्यपि, रसखान मुसलमान थे, पर उन्होंने कृष्ण-भक्ति के पद लिखे हैं। कृष्ण भक्त कवियों में एक महत्त्वपूर्ण नाम नंददास का है। रहीम और भूषण अलग धारा के कवि हैं। इनके काव्य का विषय भक्ति नहीं, बल्कि आध्यत्मिक था। बिहारी ने सतरहवीं सदी में 'सतसई' लिखी। इनके दोहों में श्रृंगार (प्रेम) के साथ अन्य रसों का भी सुंदर वर्णन है।

कबीर को छोड़कर उक्त सभी कवियों ने अपनी भावनाओं को अनिवार्यतः अपनी धार्मिक प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए व्यक्त किया। कबीर संस्थागत धर्म में विश्वास नहीं करते थे। वे निराकार ईश्वर के भक्त थे। उस ईश्वर का नाम लेना ही उनके लिए सब कुछ था। इन सब कवियों ने उत्तर भारतीय समाज को इस प्रकार प्रभावित किया जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। चूंकि कविता को याद रखना गद्य की अपेक्षा सरल है इसलिए ये भक्त कवि अत्यंत लोकप्रिय हुए।

पिछले 150 वर्षों में अनेक लेखकों ने आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास में योगदान दिया है जिसमें अंग्रेजी के साथ-साथ अन्य विविध क्षेत्रीय भाषाओं में भी पर्याप्त साहित्य लिखा गया। बंगाली लेखकों में से एक महान लेखक रवीन्द्रनाथ टैगोर हुए जिन्होंने प्रथम भारतीय के रूप में 1913 में अपनी 'गीतांजलि' कृति पर नोबल पुरस्कार प्राप्त किया।

तथापि, उन्नीसवीं सदी के आरंभ में ही हिन्दी गद्य अपने सही रूप में आ सका। भारतेंदु हरिश्चंद्र हिन्दी के आरंभिक नाटककारों में से एक थे। उनके कुछ नाटक संस्कृत तथा अन्य भाषाओं के नाटकों के अनुवाद हैं। उन्होंने नई परंपरा की शुरूआत की। महावीर प्रसाद द्विवेदी एक अन्य लेखक थे, जिन्होंने संस्कृत के ग्रंथों का अनुवाद अथवा रूपांतरण किया। बंकिम चंद्र चटर्जी (1838-94) ने मूलतः बांग्ला में उपन्यास लिखे जिनका हिन्दी में अनुवाद हुआ और ये बहुत लोकप्रिय हुए। ''वंदेमातरम्'' जो कि हमारा राष्ट्रीय गीत है, उनके उपन्यास 'आनंद मठ' का ही एक अंश है। हिन्दी में स्वामी दयानंद सरस्वती के योगदान को अनदेखा नहीं किया जा सकता। मूलतः वे गुजराती थे और संस्कृत के विद्वान थे, तथापि उन्होंने हिन्दी को पूरे भारत की आम भाषा बनाने का समर्थन किया। उन्होंने हिन्दी में लिखना शुरू किया और धार्मिक तथा सामाजिक सुधारों से जुड़ी पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखे। हिन्दी में ''सत्यार्थ प्रकाश'' उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। हिन्दी साहित्य को जिन लोगों ने समृद्ध बनाया है, उनमें मुंशी प्रेमचंद्र का नाम प्रमुख है जिन्होंने उर्दू से हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को ख्याति मिली क्योंकि उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से अपने समाज की रूढ़ियों पर प्रश्नचिह्न लगाए। महादेवी वर्मा पहली महिला लेखिका हैं जिन्होंने नारियों से सम्बद्ध विषयों पर लिखा। मैथिलीशरण गुप्त एक अन्य नाम है जो उल्लेखनीय है। जयशंकर प्रसाद ने उत्कृष्ट नाटक लिखे।

आधुनिक समय में हिन्दी भाषा का विकास

18वीं सदी के अंतिम समय में आधुनिक हिन्दी भाषा का विकास हुआ। इस काल के प्रमुख लेखक थे सदासुख लाल तथा इन्शाल्लाह खान। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी हिन्दी भाषा को बढ़ावा दिया। इसी प्रकार राजा लक्ष्मण सिंह ने 'शाकुंतलम्' का हिन्दी में अनुवाद किया। इस समय हिन्दी विपरीत अवस्था में भी विकास कर रही थी क्योंकि कार्यालयों का कार्य उर्दू में किया जाता था।

हिन्दी साहित्य

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल तथा श्याम सुंदर दास हिन्दी भाषा के प्रमुख गद्य लेखक थे। जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', तथा हरिवंशराय बच्चन ने हिन्दी काव्य के विकास में महान योगदान किया है। इसी प्रकार प्रेमचन्द, वृंदावन लाल वर्मा, तथा इलाचन्द्रजोशी ने उपन्यास लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया।

यदि हम उपर्युक्त लेखकों को देखें तो हम पाते हैं कि उनका लेखन उद्देश्यपूर्ण लेखन था। स्वामी दयानंद ने हिन्दू समाज को सुधारने के लिए तथा मिथ्या विश्वास एवं सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए लेखन कार्य किया। मुंशी प्रेमचंद्र ने समाज का ध्यान गरीबों की दयनीय स्थिति की ओर आकर्षित करने के लिए लिखा। महादेवी वर्मा को दूसरा उच्चतम नागरिक पुरस्कार पद्म विभूषण मिला क्योंकि आपने समाज में महिलाओं की दशा का विस्तृत वर्णन किया। निराला आधुनिक भारत के जागृति के अग्रदूत बने।

पाठगत प्रश्न 7.2

1. नाट्य शास्त्र के लेखक कौन हैं?

   ....

2. वाल्मीकि तथा तुलसीदास के राम के चरित्र में क्या भिन्नता है?

   ....

3. 'सूर सागर' के कृष्ण की भूमिका में क्या अंतर है?

   ....

4. हमारा राष्ट्रीय गीत 'वंदेमातरम्' किस पुस्तक से लिया गया है?

   ....

5. आप ऐसा क्यों महसूस करते हैं कि हिन्दी लेखक किसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए लिखते थे?

7.4 बांग्ला, असमी और ओड़िया साहित्य

बांग्ला- हिन्दी के बाद सबसे अधिक समृद्ध साहित्य वह था जिसका बंगाल में विकास हुआ। 1800 ई. में बैप्टिस्ट मिशन प्रेस की स्थापना कलकत्ता के निकट सीरमपुर में की गई थी। इसी वर्ष ईस्ट इंडिया कंपनी ने फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। इस महाविद्यालय में कंपनी के अधिकारियों को भारत के कानून, रीति-रिवाज, धर्म, भाषा एवं साहित्य का प्रशिक्षण दिया गया, ताकि वे अधिक कुशलतापूर्वक कार्य करने में सक्षम हो सके।

भक्ति आंदोलन के विकास तथा चैतन्य की विभिन्न भक्तिपूर्ण रचनाओं ने बंगाली भाषा को विकसित करने में योगदान किया। ''मंगल काव्य'' के नाम से प्रसिद्ध कथात्मक कविताएँ इस काल में बहुत प्रसिद्ध हुईं। उन्होंने चण्डी जैसी स्थानीय देवियों की स्तुति का प्रचार किया तथा पौराणिक देवों जैसे शिव तथा विष्णु को घरेलू देवों के रूप में प्रस्तुत किया।

इस संबंध में विलियम करे ने एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपलब्धि अर्जित की। उन्होंने बांग्ला का व्याकरण लिखा और एक अंग्रेजी-बांग्ला शब्दकोश भी प्रकाशित किया। इसके अलावा उन्होंने संवाद और कहानियों की भी पुस्तकें लिखीं। साहित्य के विकास में व्याकरण और शब्दकोशों का महत्त्वपूर्ण योग होता है। वे लेखकों का इस बारे में मार्गदर्शन करते हैं कि सही वाक्य क्या है, साथ ही किसी विशेष स्थिति और विचार के लिए उपयुक्त शब्दों के चयन में भी सहायता करते हैं। यद्यपि धर्म प्रचारकों द्वारा चलाए जा रहे प्रेस का मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था, लेकिन स्थानीय लोगों द्वारा चलाए जा रहे अन्य प्रेसों ने गैर-ईसाई साहित्य के विकास में सहायता की। विशाल संख्या में प्रचारपत्र, पुस्तिकाएं, छोटी और बड़ी पुस्तकें तथा अखबार प्रकाशित होने लगे। इस दौरान शिक्षा का प्रसार भी हुआ यद्यपि उसकी गति धीमी थी। जब मैकाले ने 1835 ई. में प्राच्यविदों के विरुद्ध अपनी लड़ाई जीत ली, तो शिक्षा का प्रसार तीव्र गति से हुआ। सन् 1854 ई. में सर चार्ल्स वुड की अध्यक्षता में ''वुड़ डिस्पैच'' आया और सन् 1857 में कलकत्ता, मद्रास और बंबई इन तीन विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। स्कूल और कॉलेजों की पाठ्यपुस्तकों के अलावा अन्य साहित्य भी प्रकाशित हुए। राजा राममोहन राय एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने अंग्रेजी के अलावा बांग्ला में भी लिखा। इससे बांग्ला साहित्य को बल मिला। ईश्वरचंद्र विद्यासागर (1820-91) और अक्षय कुमार दत्त (1820-86) इस आरंभिक अवधि के दो अन्य लेखक थे। इनके अलावा बंकिम चंद्र चटर्जी (1834-94) और शरत् चंद्र चटर्जी (1876-1938) और आर.सी. दत्त, जो एक जाने माने इतिहासकार और गद्यलेखक थे, सभी ने बांग्ला साहित्य में योग दिया। किन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाम रवीन्द्रनाथ टैगोर (1861-1941) का है, जिन्होंने समस्त भारत को प्रभावित किया। उन्होंने उपन्यास, नाटक, लघुकथा, आलोचना, संगीत और निबंधों की रचना की। 1913 में 'गीतांजलि' के लिए उन्हें साहित्य का नोबल पुरस्कार भी मिला।

पश्चिमी विचारों के प्रभाव के संबंध में दो-तीन बातों पर ध्यान देने की जरूरत है। उनका प्रभाव पहले बंगाल पर और बाद में देश के दूसरे हिस्सों पर पड़ा। सन् 1800 तक का अधिकांश साहित्य धर्म या दरबारी साहित्य तक ही सीमित था। विषय इहलौकिक थे। यों थोड़े बहुत धार्मिक-साहित्य की रचना भी हुई, पर उसमें कुछ नया नहीं था। पश्चिमी प्रभाव लेखकों को आम आदमी के निकट लाया।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम और बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में 'राष्ट्रवाद' साहित्य के एक नए विषय के रूप में उभरा। इस नई प्रवृत्ति में दो बातें देखी गई। एक ओर इतिहास और संस्कृति के प्रति सम्मान और अंग्रेजों द्वारा किए गए शोषण से संबंधित तथ्यों के संबंध में जागरूकता। वहीं, दूसरी ओर विदेशियों को भारत से खदेड़ने के लिए भारतीयों का आह्वान किया जाने लगा। इस नई प्रवृत्ति को सुब्रह्मण्यम भारती ने तमिल में और बांग्ला में काजी नजरूल इस्लाम ने अभिव्यक्त किया। पाठकों में राष्ट्रवादी भावनाओं को जगाने में इन दो लेखकों का योगदान आश्चर्यजनक था। इनके काव्य का अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओं में भी किया गया।

असमी- बंगाली के समान, असमी भाषा भी भक्ति आंदोलन के कारण विकसित हुई। शंकरदेव ने असम में वैष्णवधर्म का प्रचार किया और असमी भाषा के विकास में योगदान किया। इसके साथ पुराणों का भी असमी भाषा में अनुवाद किया गया।

आरंभिक असमी साहित्य में बरोंजी (दरबारी इतिहास) प्रमुख था। शंकरदेव ने अनेक धार्मिक कविताएं लिखी हैं, जिन्हें लोग हर्षोन्मुक्त होकर गाते हैं। किन्तु 1827 ई. के बाद ही असमी साहित्य के सृजन में अधिक रुचि दिखाई देने लगी। लक्ष्मीकांत बेजबरूआ और पद्मनाभ गोसाईं बरूआ, ये दो नाम ऐसे हैं जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता।

ओडिया- उड़ीसा से फकीरमोहन सेनापति और राधानाथ रे के नाम उल्लेखनीय हैं। इनका लेखन उड़िया साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। ओडिया साहित्य में एक नये युग को जन्म देने का श्रेय उपेन्द्र भंजा (1670-1720) को जाता है। ओडिया भाषा में साहित्य कार्य में सरलदास काव्य उड़िया साहित्य की प्रथम साहित्यकृति कहलाती है।

पाठगत प्रश्न 7.3

1. बैप्टिस्ट प्रेस कहाँ और कब स्थापित किया गया?

   ....

2. ''चार्ल्स वुड' घोषणा पत्र कब जारी हुआ?

   ....

3. तीनों विश्वविद्यालय कहां और कब खोले गए?

....

4. श्री. आर.एन. टैगोर को 1913 में किस कृति के लिए नोबल पुरस्कार मिला?

....

5. शंकरदेव ने असमी काव्य में किस प्रकार वृद्धि की?

....

7.5 पंजाबी और राजस्थानी साहित्य

पंजाबी एक ऐसी भाषा है जिसके अनेक प्रतिरूप हैं। यह गुरुमुखी और फारसी दो लिपियों में लिखी जाती है। उन्नीसवीं सदी के अंत तक गुरुमुखी लिपि सिखों की धर्म-पुस्तक आदि ग्रंथ तक ही सीमित रही। गुरुद्वारों में पवित्र ग्रंथ साहब का पाठ करने वाले ग्रंथियों के अलावा बहुत कम लोगों ने इस लिपि को सीखने का प्रयास किया। परंतु इस भाषा में साहित्य का अभाव नहीं रहा। गुरु नानक पंजाबी के प्रथम कवि थे। कुछ अन्य समकालीन कवि, जिनमें ज्यादातर सूफी संत थे, इस भाषा में गाया करते थे। इन सूफियों या इनके अनुयायियों ने जब अपनी कविता को लिखित रूप देना चाहा तो फारसी लिपि का प्रयोग किया। इन कवियों की सूची में पहला नाम फरीद का है। उनके काव्य को आदिग्रंथ में भी स्थान मिला है। आदिग्रंथ में अगले चार गुरुओं का काव्य भी सम्मिलित है। यह समस्त साहित्य पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी से संबंधित है। बाद के गुरुओं में नौवे गुरु गुरुतेग बहादुर के काव्य ने भी आदिग्रंथ में स्थान पाया है। दसवें गुरु गुरुगोविंद सिंह ने पटना (बिहार) में शिक्षा प्राप्त की, जहां उन्होंने फारसी और संस्कृत सीखी। उन्होंने पंजाबी में दो सवैयों की रचना की लेकिन ये आदिग्रंथ के भाग नहीं हैं।

इस भाषा ने अपने आरंभिक दिनों में ही हीर-रांझा, ससी-पुन्नु और सोहनी महीवाल की प्रेम कहानियों को अपना मूल विषय बनाया। पूरण भगत की कहानी भी कुछ कवियों के लिए प्रेरणा-स्रोत बनी। कुछ ज्ञात और अज्ञात कवियों द्वारा लिखी गई कविताएं भी इस भाषा में हमें उपलब्ध होती हैं। गत दो सौ या तीन सौ वर्षों से स्थानीय गायक इन्हें गा रहे हैं। स्थानीय रचनाकारों द्वारा रचित अनेक अन्य कथाकाव्य भी हैं। यह लोक साहित्य सुरक्षित रखा गया है। इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, वारिस शाह की 'हीर'। आरंभिक रचनाओं में यह सर्वाधिक लोकप्रिय है। पंजाबी काव्य में इसका उल्लेखनीय स्थान है। बुल्लेशाह की लोकप्रियता भी ठीक ऐसी ही है जो एक सूफी संत थे। उन्होंने अनेक गीत लिखे। उनकी रचनाओं का एक लोकप्रिय रूप था कैफी। यह शास्त्रीय तरीके से गाया जाता है। ''कैफी'' को लोग काफी उत्साह के साथ आज भी गाते हैं।

बीसवीं सदी में, पंजाबी स्वतंत्र भाषा के रूप में स्थापित हो गई। भाई वीर सिंह ने 'राणा सूरत सिंह' नामक एक महाकाव्य की रचना की। पूरनसिंह और डा. मोहन सिंह सबसे

प्रसिद्ध लेखकों में हैं। निबंध, लघु कथा, उपन्यास, आलोचना और लेखन के अन्य रूपों ने पंजाबी के साहित्यिक परिदृश्य को अलंकृत किया है।

राजस्थानी भाषा– राजस्थानी, हिन्दी की ही एक बोली है, पर इसका भी एक अपना योगदान है। भाट (घुमंत गायक) एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम-घूम कर लोगों का मनोरंजन करते रहे और वीरों की कहानियों को उन्होंने जीवित रखा। कर्नल टाड ने इन्हीं गाथागीत गायकों से राजस्थान के वीरों की कहानियों का संग्रह किया, और इन्हें एनल्स एंड एंटीक्विटीज ऑव राजस्थान (राजस्थान का इतिहास और उसकी प्राचीनता) नामक ग्रंथ में संकलित किया। परन्तु मीराबाई के धार्मिक गीतों का राजस्थानी भाषा और राजस्थानी धार्मिक संगीत के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान है। अपने प्रभु (भगवान कृष्ण) के प्रति मीराबाई का प्रेम कई बार इतना गहन हो जाता है कि आपको इस लौकिक संसार से उठाकर गायिका की भावभूमि में ले जाता है।

भक्ति आंदोलन के विकास ने विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं जैसे हिन्दी, गुजराती, मराठी, पंजाबी, कन्नड़, तमिल, तेलगु आदि का उदय करने में नेतृत्व किया।

7.6 गुजराती साहित्य

आरंभिक गुजराती साहित्य भी सामान्यत: चौदहवीं व पन्द्रहवीं शताब्दी के भक्ति गीतों के रूप में उपलब्ध है। यह प्राचीन परंपरा गुजरात में अभी भी लोकप्रिय है। नरसी मेहता का नाम इस संबंध में सर्वोपरि है। गुजरात के लोगों ने अपने लोक नृत्यों में इन भक्ति गीतों को सम्मिलित कर लिया है और धार्मिक समारोहों में धार्मिक तरीके से इनकी प्रस्तुति की जाती है।

नर्मद के काव्य ने गुजराती साहित्य को एक नई ऊर्जा दी। गोवर्धन राम के उपन्यास 'सरस्वती चंद्र' भी श्रेष्ठ रचनाओं में स्थान पा चुका है और इसने अन्य लेखकों को प्रेरणा दी है। किंतु डां. के एम. मुंशी का नाम शायद ही कभी भुलाया जा सकेगा। वे उपन्यासकार, निबंधकार और इतिहासकार थे तथा उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासों का बहुत बड़ा भंडार हमें दिया है। इन पुस्तकों में उन्होंने तथ्यों और कल्पनाओं का समन्वय करने की अपनी योग्यता का परिचय दिया है। 'पृथ्वी वल्लभ' उनका एक उत्कृष्ट उपन्यास है। नरसी मेहता का नाम विशेष रूप से लिया जाना चाहिए, जिनके कृष्ण की प्रशंसा में रचित भक्ति-गीतों ने उन्हें प्रसिद्धि ही नहीं दी बल्कि गुजराती भाषा को भी लोकप्रिय बनाया।

7.7 सिंधी साहित्य

सिंध सूफियों का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र था। सूफियों ने विभिन्न स्थानों पर खानकाह स्थापित किए थे। भक्ति संगीत के दीवाने सूफी गायकों ने इस भाषा को और भी लोकप्रिय बनाया। सिंधी में साहित्य सृजन का श्रेय मिर्जा कलिश बेग और दीवान कौरामल को भी जाता है।

7.8 मराठी साहित्य

महाराष्ट्र एक पठारी प्रदेश है, और यहाँ इस क्षेत्र में अनेक स्थानीय बोलियों का प्रयोग होता था। इन्हीं स्थानीय बोलियों से मराठी का जन्म हुआ है। पुर्तगाली धर्म प्रचारकों ने मराठी भाषा का प्रयोग अपने धार्मिक सिद्धांतों का उपदेश देने के लिए किया।

प्रारंभिक मराठी कविता और गद्य की रचना तेरहवीं शताब्दी के संत ज्ञानेश्वर ने की। उन्होंने भगवद्गीता की दीर्घ टीका भी लिखी। उन्होंने महाराष्ट्र में कीर्तन परंपरा भी आरंभ की। उनके बाद नामदेव (1270-1350), गोरा, सेना और जानाबाई आए। इन सबने मराठी भाषा में गीत गाए और इसे लोकप्रिय बनाया। पढ़रपुर तीर्थ को जाते हुए वरकारी तीर्थ यात्री आज भी इनके गीतों को गाते हैं। लगभग दो शताब्दियों के बाद, एकनाथ (1533-99) मराठी साहित्य के परिदृश्य पर उभर कर आए। उन्होंने रामायण और भागवत् पुराण पर टीकाएँ लिखीं। पूरे महाराष्ट्र में इनके गीत आज भी बहुत लोकप्रिय हैं।

इसके बाद तुकाराम (1598-1650) का आगमन हुआ। इन्हें सर्वश्रेष्ठ भक्त कवि माना जाता है। शिवाजी के गुरु, रामदास (1608-81), इन भक्त-रचनाकारों में अंतिम हैं। वे 'राम' के भक्त थे। वे शिवाजी के प्रेरणास्रोत बने। उन्नीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में मराठी साहित्य में एक बड़ा परिवर्तन आया। राष्ट्रीय आंदोलन ने मराठी गद्य को अत्यधिक लोकप्रिय और विशिष्ट बनाया। बाल गंगाधर तिलक (1857-1920) ने मराठी में अपना पत्र 'केसरी' निकालना आरंभ किया। इससे मराठी साहित्य के विकास में सहायता मिली। किन्तु केशव सुत और वी.एस. चिपलङ्कर का योगदान भी कुछ कम न था। हरिनारायण आप्टे और अगरकर ने लोकप्रिय उपन्यास लिखे। मराठी साहित्य के विकास में इन सब गद्य लेखकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। एच.जी. सालगांवकर का नाम प्रेरक काव्य रचना के लिए याद किया जाता है। इसके अलावा एम.जी. रानाडे, के.टी. तेलंग, जी.टी. माद्योलकर (कवि और उपन्यासकार) का योगदान भी कम महत्वपूर्ण न था।

7.9 कश्मीरी साहित्य

कश्मीर को साहित्यिक जगत में सम्मानजनक स्थान तब मिला जब कल्हण ने संस्कृत में राजतरंगिणी लिखी। किन्तु यह अभिजात वर्ग की भाषा में लिखी गई थी। स्थानीय लोगों के लिए, कश्मीरी लोकप्रिय भाषा थी। यहाँ भी भक्ति आंदोलन ने अपनी भूमिका निभाई। चौदहवीं सदी की लालदेबी, कश्मीरी भाषा की संभवत: पहली कवयित्री थीं। वे शैव रहस्यवादी कवयित्री थीं। इस क्षेत्र में इस्लाम के प्रसार के बाद सूफी प्रभाव स्पष्टत: दृष्टिगोचर होने लगा। हाबा खातून, महजूर, जिंदा कौल, नूरदीन के नाम से विख्यात नंद ऋषि, अख्तर मोहिउद्दीन, सूफी गुलाम मोहम्मद और दीनानाथ नदीम ने कश्मीरी में भक्ति काव्य की रचना की। इन लोगों ने कश्मीरी साहित्य के विकास में अमूल्य योगदान दिया।

उन्नीसवीं सदी के अंत तक पश्चिमी प्रभाव कश्मीर तक नहीं पहुंचा था। प्रथम सिक्ख युद्ध के बाद 1846 में जम्मू के डोगरा यहां के शासक बने। डोगरा शासक कश्मीरी की अपेक्षा

डोगरी भाषा में अधिक रुचि लेते थे। न तो वहां कोई विद्यालय था, और न ही शिक्षा की व्यवस्था थी। यहां चारों ओर गरीबी और आर्थिक पिछड़ापन था। कश्मीरी में अच्छा साहित्य न लिखे जाने के पीछे यही कारण था।

यद्यपि आधुनिक भारतीय भाषा की सूची में अनेक भाषाएँ लिखी जा सकती हैं तथापि भारत के संविधान में मूलरूप से लगभग पन्द्रह भाषाएँ राष्ट्रीय भाषा के रूप में सम्मिलित हैं– जैसे असमी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कश्मीरी, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, सिंधी, उर्दू, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मलयालम। अन्य तीन भाषाएँ नेपाली, मणिपुरी, कोङ्कनी को तथा चार भाषाएं बोडो, मैथिली, संथाली व डोगरी अब इस सूची में शामिल किया गया है।

पाठगत प्रश्न 7.4

1. गुरुमुखी और फारसी दो लिपियों में कौन सी भारतीय भाषा लिखी गई है?

   ....

2. पंजाब की कम से कम दो प्रेम कहानियों के नाम लिखें।

   ....

3. बुल्लेशाह के लेखन कार्यों की कौन-सी शैली प्रसिद्ध है?

   ....

4. गोवर्धन राम के उपन्यास का नाम बताएँ।

   ....

5. तेरहवीं शताब्दी में महाराष्ट्र में किसने कीर्तन परंपरा को प्रारम्भ किया?

   ....

6. कश्मीरी में कम साहित्य लिखे जाने का कारण बताएँ।

   ....

7.10 ईसाई धर्म प्रचारकों की भूमिका

भारत में यूरोपीय अंग्रेजों के आने से इंग्लिश, फ्रैंच, डच तथा पुर्तगाली आदि विभिन्न भाषाएँ भी आई जिनसे भारतीय भाषाएँ भी समृद्ध हुई और उन्होंने अपने शब्द भण्डार में अनेक नये-नये शब्दों को समाहित कर लिया।

ईसाई धर्म प्रचारकों ने भी भारतीय साहित्य के विकास में सार्थक योगदान दिया। सबसे पहले उन्होंने शब्दकोशों और व्याकरण की पुस्तकों को विभिन्न स्थानीय भाषाओं में प्रकाशित करवाया। उनकी पुस्तक यूरोप से आए नए पादरियों के लिए लिखी गयी थीं। इन पुस्तकों ने ईसाई धर्म प्रचारकों की भी सहायता की और स्थानीय भाषाओं के लेखकों की भी। वे शब्दकोशों की सहायता उपयुक्त शब्द तलाशने के लिए या यह देखने के लिए ले सकते थे कि कोई शब्द व्याकरण की दृष्टि से सही है या नहीं।

दूसरा तथ्य, लिथोग्राफिक छापाखाने की भूमिका है। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में इन मशीनों (प्रेसों) की स्थापना भारत में की गई। विदेशियों ने इन प्रेसों की स्थापना ईसाई धर्म में नवदीक्षित या दीक्षित होने वाले संभावित व्यक्तियों के लिए स्थानीय भाषाओं में साहित्य छापने के लिए की थी। अतः साहित्य के विकास में छापाखानों की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता। तीसरा, महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा स्कूलों और कालेजों की स्थापना की गई। यहाँ अंग्रेजी के अलावा उन्होंने स्थानीय भाषाएँ भी पढ़ाई। उनका उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था, किन्तु उन्होंने एक नवशिक्षित वर्ग भी तैयार किया, जिसकी आकांक्षा इस नव सृजित साहित्य को पढ़ने की थी। अतः ईसाई भारतीय भाषाओं और साहित्य का इतिहास लिखते समय धर्मप्रचारकों की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

भारत में अंग्रेजी साहित्य के मुख्य लेखक

भारत में अंग्रेजी साहित्य के अनेक लेखक थे। भारतीयों ने 1835 के बाद अंग्रेजी में लिखना आरंभ किया जब अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम बन गई। अनेक भारतीय लेखकों ने अपना साहित्य अंग्रेजी में लिखा।

कुछ लेखकों ने कविता में रुचि दिखाई जबकि दूसरों ने गद्य लेखन में कार्य किया। मिशेल मधु सूदन दत्ता, तारादत्ता, सरोजिनी नायडू तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अंग्रेजी काव्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम किया। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, फिरोज शाह मेहता तथा जवाहलाल नेहरु ने अंग्रेजी गद्य में रुचि दिखाई।

आपने क्या सीखा

- हिन्दी बहुसंख्यक लोगों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा थी।
- मुगल काल में उर्दू और फारसी भाषाएँ लोकप्रिय हुईं। उर्दू का जन्म नए तुर्की निवासियों और आम लोगों के बीच संवाद के माध्यम से हुआ। अबुल फैज़ी, चन्द्रभान और बदायूनी मुगल काल के प्रसिद्ध लेखक थे।
- हिन्दी साहित्य ने मार्गदर्शन के लिए संस्कृत के कालजयी साहित्य को आधार बनाया। भक्ति काव्य हिन्दी साहित्य में मील का पत्थर माना जाता है। कबीर, तुलसीदास तथा सूरदास हिन्दी साहित्य के मार्गदर्शक बने।

- उन्नीसवीं सदी के आरंभ में हिन्दी गद्य अस्तित्व में आया।
- हिन्दी के अतिरिक्त बांग्ला साहित्य बहुत संपन्न है। रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिम चन्द्र चटर्जी, शरतचन्द्र चटर्जी ने बांग्ला साहित्य के लेखन में योगदान किया। असमी साहित्य में बुरोंजी शामिल हैं। इसी प्रकार उड़िया में भी समृद्ध साहित्य प्राप्त होता है।
- उन्नीसवीं सदी के अंत तक गुरुमुखी आदिग्रंथ तक सीमित थी। हीर-रांझा जैसी प्रेम कहानियों ने इस भाषा को बढ़ावा दिया। मीराबाई के भक्ति गीतों से राजस्थानी भाषा और साहित्य को सम्मान मिला।
- गुजराती, सिंधी, मराठी और कश्मीरी भाषाओं में भी समय के साथ साहित्य की रचना हुई।
- अनेक भारतीय लेखकों ने अपना साहित्य अंग्रेजी में लिखा है।

पाठांत प्रश्न

1. भारत में ईसाई धर्म प्रचारकों का क्या योगदान था?
2. हिन्दी भाषा के विकास का संक्षिप्त वर्णन करें।
3. मध्यकालीन भारत में फारसी भाषा की भूमिका का विवेचन कीजिए।
4. भारतीय भाषाओं तथा उनके साहित्य ने भारतीय समाज में जो योगदान किया उसकी समीक्षा कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

7.1
1. ब्रजभाषा, अवधि, भोजपुरी, मगधी, राजस्थानी, खड़ी बोली।
2. अवधि
3. भारत में आश्रित तुर्की लोगों के स्थानीय लोगों के साथ अन्तर्व्यवहार से उर्दू का जन्म हुआ।
4. पाकिस्तान
5. दक्षिणी या दक्खनी (दक्षिणी)

7.2
1. भरत (मुनि)
2. तुलसीदास ने राम को ''भगवान'' के रूप में चित्रित किया जबकि वाल्मीकि ने उनको मनुष्य रूप में दिखाया।

3. सूरसागर में कृष्ण बालरूप में अपनी नटखट शरारतों में तथा एक युवक के रूप में गोपियों के साथ प्रेम भाव में भिन्नता लिये हुए है।

4. आनन्द मठ

5. स्वामी दयानन्द ने हिन्दु समाज को सुधारने के लिए लिखा। मुंशी प्रेमचन्द्र ने गरीबों की दु:खदायक स्थिति के विषय में लिखा। महादेवी ने स्त्रियों की दु:खद स्थिति पर लिखा।

7.3 1. 1800 में कलकत्ता के पास सीरमपुर में

2. 1854

3. 1857 में कलकत्ता, मद्रास, मुम्बई में

4. गीतांजलि

5. उन्होंने आसाम में वैष्णव धर्म का प्रारम्भ किया

7.4 1. पंजाबी

2. हीर/रांझा, सोहनी/महिवाल, सस्सी/पुन्नु

3. कैफ़ी/काफ़ी

4. सरस्वती चन्द्र

5. सन्त ज्ञानेश्वर

6. गरीबी, आर्थिक पिछड़ापन तथा डोगरी का प्रयोग

8

प्राचीन भारत में धर्म और दर्शन

जैसे ही नवम्बर और दिसम्बर का महीना आता है, हम बाजार में नये कैलेण्डरों की बाढ़ सी पाते हैं। कुछ कैलेण्डर तो बहुत रंगीन होते हैं। उनमें विभिन्न रंगों से चित्र बने होते हैं। कुछ में तो तिथियों पर छोटे छोटे चित्र भी बने हुए होते हैं। वे अवकाश के दिन होते हैं जिनकी हम प्रतीक्षा करते रहते हैं। आप भी उनकी प्रतीक्षा करते होंगे। हाँ वे हमारे धार्मिक पर्व होते हैं या राष्ट्रीय पर्व होते हैं और भारत में बहुत से धर्म हैं जो भली प्रकार फल फूल रहे हैं। सड़कों पर शोभा यात्राएँ, अच्छा खाना, कपड़े, उपहार, लोगों का अपने अपने पूजा स्थलों पर पूजा करना, एक दूसरे को शुभ कामनाएँ देना एक सामान्य दृश्य है। हाँ, भारत वास्तव में एक बहुत ही सुन्दर, प्यारा और रहने के लिए जीवन्त देश है। यह इसलिए क्योंकि धर्म भारत में प्राचीन काल से ही लोगों में जीवन को प्रभावित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण घटक रहा है। वास्तव में धर्म के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में धर्म के विविध दृश्यों का अध्ययन निस्सन्देह बहुत रोचक होगा। धर्म और दर्शन का सम्बन्ध बहुत गहरा है, इसलिए परस्पर सम्बद्ध तरीके से ही दोनों की वृद्धि और विकास को समझना होगा। इस पाठ में आप प्राचीन भारत में धर्म और दर्शन के विकास के बारे में पढ़ सकेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :–

1. धर्म के अर्थ की व्याख्या कर सकेंगे;
2. प्राचीन भारत के विभिन्न धार्मिक-आंदोलनों की विशेषताओं को पहचान सकेंगे;
3. वैदिक दर्शन के छः मतों के विचारों की व्याख्या कर सकेंगे;
4. चार्वाक-दर्शन की भूमिका का परीक्षण कर सकेंगे;
5. जैन-दर्शन के यथार्थ सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे;
6. बौद्ध-दर्शन के योगदान की समीक्षा कर सकेंगे।

8.1 धर्म

धर्म आत्मा का विज्ञान है। नैतिकता और आचार नीति धर्म पर ही आधारित हैं। आरंभिक काल से ही धर्म ने भारतीयों के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। धर्म ने अपने से जुड़े लोगों के भिन्न-भिन्न वर्गों के फलस्वरूप अनेक रूप धारण कर लिए। विभिन्न जन-वर्गों के धार्मिक-विचार धारणाएँ और आचार अलग-अलग हुआ करते थे और समय व्यतीत होने के साथ-साथ धर्म में परिवर्तन और विकास होने लगा। भारत में धर्म कभी भी अपने रूप में स्थायी नहीं रहा बल्कि आन्तरिक गतिपूर्ण शक्ति से परिवर्तित होता रहा।

> भारत में प्रत्येक दर्शन सत्य की खोज है जो एक ही है और जो सदा और सर्वदा एक सा ही रहता है, खोजने के रास्ते अलग-अलग हैं, तर्क अलग हैं लेकिन उद्देश्य एक ही है - सत्य तक पहुँचने का प्रयत्न।
>
> ''मुझे गर्व है कि मेरा सम्बन्ध उस धर्म से है जिसने विश्व को सहिष्णुता और सार्वभौमिक स्वीकृति का उपदेश दिया। हम न केवल सार्वभौमिक सहिष्णुता में विश्वास करते हैं बल्कि हम सभी धर्मों को 'सत्य' समझते हैं।''
>
> स्वामी विवेकानन्द शिकागो में 1893 की विश्व धर्म संसद के अवसर पर

भारतीय आध्यात्मिकता की जड़ें तो इस देश की प्राचीन दार्शनिक और धार्मिक परम्पराओं में गहरी जमी हुई हैं। भारत में दर्शन का जन्म जीवन के रहस्यों और अस्तित्व की खोज से हुआ। भारतीय ऋषियों ने इन्द्रियों और मन से परे जाकर विशिष्ट तकनीकों का विकास किया जिसे योग कहते हैं। इन तकनीकों की सहायता से चेतना की गहराईयों में उतर कर मानव और विश्व की वास्तविक प्रकृति के विषय में महत्त्वपूर्ण तथ्यों की खोज की।

ऋषियों ने जाना कि मनुष्य वास्तव में शरीर मात्र नहीं है, न ही केवल मन है जो परिवर्तनशील है और नाशवान है बल्कि वास्तविक वह तत्व है जो अमर है, शाश्वत है, और पवित्र चेतना है। इसको उन्होंने आत्मा कहा। आत्मा ही वस्तुत: मानवीय ज्ञान, प्रसन्नता और शक्ति का स्रोत है। ऋषियों ने यह भी जाना कि व्यक्ति में निहित आत्मा असीम चेतन तत्व का ही अंश है जिसे ब्रह्म कहा जाता है। ब्रह्म ही अन्तिम सत्य है और सृष्टि का कारण है। अपनी वास्तविक प्रकृति का अज्ञान ही मनुष्य के सभी दु:खों और बन्धनों का कारण है। आत्मा और ब्रह्म का सही ज्ञान के द्वारा ही दु:खों और बन्धनों से मुक्ति अमरता शाश्वत शान्ति और पूर्णता की अवस्था प्राप्त करना संभव है, यही मोक्ष है। धर्म, प्राचीन भारत में, एक जीवन शैली था जो मनुष्य को अपनी सत्यप्रकृति की पहचान करके मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ बनाता था।

दर्शन हमें सत्य का शुद्ध स्वरूप दिखाता है और धर्म जीवन की सही दृष्टि देता है तथा धर्म उसकी प्राप्ति करवाता है। दर्शन सिद्धान्त है और धर्म अभ्यास है इस प्रकार प्राचीन भारत में दर्शन और धर्म एक दूसरे के पूरक रहे हैं।

हम उसको सुनें जो हमारे मनों को प्रकाश देता है, हम चारों ओर उसी दिव्य ज्योति के दर्शन करें, हम अपने अन्दर उस पवित्र शक्तिमान की उपस्थिति का अनुभव करें और हमारे शरीर और बुद्धि के सभी कार्य उसी परमपिता ईश्वर की सेवा में लगे रहें, हमें शाश्वत शान्ति प्राप्त हो। ऋग्वेद 1.89

8.2 पूर्व वैदिक और वैदिक धर्म

पूर्व और पर ऐतिहासिक स्थलों की पुरातातात्विक खोजों से पता चलता है कि ये लोग उस सृजनशील परमात्मा की पवित्रता में विश्वास करते थे और दिव्य पुरुष के नरपक्ष और नारीपक्ष की पूजा करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वे प्रकृति की शक्तियों के पुजारी थे जैसे सूर्य और चन्द्र। यह विश्वास आर्यों के प्रारम्भिक साहित्य से भी पुष्ट होता है। आर्यों के धार्मिक विश्वासों और परम्पराओं के विषय में हमें ऋग्वेद से भी पता चलता है। वे अनेक देवताओं में विश्वास करते थे जैसे इन्द्र, वरुण, अग्नि, सूर्य और रुद्र। यज्ञ और देवताओं के सम्मान में दी गई भोज्य सामग्री और पेय सामग्री की आहुतियाँ प्रदान करना प्रमुख धार्मिक कृत्य थे। सामवेद और यर्जुवेद यज्ञीय प्रक्रिया के विभिन्न पक्षों का विस्तृत वर्णन करते हैं और यह यज्ञ प्रक्रिया आगे चलकर ब्राह्मणों में और भी अधिक स्पष्ट की गई। अथर्ववेद में बहुत प्रकार के अन्धविश्वास भी है। ऋषि वैदिक कर्मकाण्ड की उपयोगिता और प्रभाव के विषय में सन्देह करने लग गये थे। बहुदेवतावाद का स्थान एक देवतावाद ले रहा था और विभिन्न देवता एक ही परम सत्ता के विविध रूप माने जाने लगे थे।

- युगों युगों से भारत जीवन और विचारों की मूलभूत समस्याओं से जूझता रहा है। भारत में दर्शन का उदय सत्य की खोज से प्रारम्भ हुआ। सत्य न केवल लक्ष्य के रूप में है बल्कि व्यक्तित्व के विकास से जुड़ा हुआ है, जिससे अन्त में सर्वोच्च स्वतन्त्रता, आनन्द और ज्ञान की प्राप्ति होती है। इसके लिए न केवल अनुशासित दार्शनिक तर्क की आवश्यकता होती है बल्कि इसके साथ चारित्रिक अनुशासन और भावनाओं एवं संवेगों पर भी नियन्त्रण आवश्यक है।

- अत: गम्भीर दार्शनिक विश्लेषण और उन्नत आध्यात्मिक अनुशासन भारतीय दर्शन की सर्वमान्य विशेषता है और इसीलिए यह पाश्चात्य दर्शन से बिल्कुल अलग है।

- यह आशा की जाती है कि यह न केवल प्राचीन राष्ट्र की आध्यात्मिक आकांक्षओं को स्पष्ट करेगा बल्कि इन आकांक्षाओं की आज की दुनिया के साथ प्रासंगिकता भी प्रकट करेगा जिससे सार्वभौमिक बन्धुत्व की श्रृंखला भी मजबूत होगी।

- भारतीय दर्शन कोई अटकलबाजी न होकर प्रत्यक्ष और व्यक्तिगत अनुभवों का परिणाम है। एक सच्चा दार्शनिक वह है जिसका जीवन और व्यवहार वैसा ही है जैसा वह उपदेश देता है।

वैदिक साहित्य का आरण्यक और उपनिषद् अंश एक प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। उपनिषद् धर्मों के मूल और विकास की प्रारम्भिक अवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें वे तत्वमीमांसीय अवधारणाएँ हैं जिनका प्राचीन और मध्ययुगीय भारत के परवर्ती धार्मिक नेताओं और सुधारकों ने प्रयोग किया। कुछ ने परम्परागत दृष्टिकोण अपनाया जबकि कुछ अन्य उदारवादी दृष्टिकोण लेकर चले।

8.3 नास्तिक धार्मिक आन्दोलन

प्रथम शताब्दी ईसापूर्व के मध्य में महावीर और बुद्ध जैसे महापुरुषों से जुड़े धार्मिक आन्दोलन इस श्रेणी में आते हैं। इस काल में और भी कई अन्य मतमतान्तर भी थे। इनमें से कुछ के द्वारा प्रचारित मत वैदिक परम्परा के अनुरूप नहीं थे। उन्होंने वेदों की सर्वोच्चता और दिव्य मौलिकता को नकार दिया। वैदिक ऋषि जो ब्राह्मण ऋषि थे, उनसे भिन्न अनेक नये आचार्य क्षत्रिय थे। बौद्ध और जैन दोनों ही धर्म प्रारम्भ में नास्तिक थे। लेकिन बौद्ध धर्म ने कर्म के सिद्धान्त को माना और पुनर्जन्म में भी विश्वास प्रकट किया। उन्होंने लोगों के अस्तित्व को ही दु:खों से भरा हुआ माना। इनमें से बहुत से विचार प्रमुख उपनिषदों में भी पाये जाते हैं।

8.4 आस्तिक धर्म

आस्तिक और नास्तिक धर्म लगभग एक ही साथ विकसित हुए। इन धर्मों के प्रधान देवता वैदिक नहीं थे बल्कि उन्हें लोक-परंपरा से ग्रहण किया गया था। इनमें पूर्व-वैदिक तथा उत्तर-वैदिक लोक-तत्त्वों का बाहुल्य था। ऐसे धर्म-आंदोलनों की प्रधान प्रेरक-शक्ति भक्ति थी। भक्ति के अंतर्गत कोई भक्त नैतिकता के साथ निजी ईश्वर में प्राणपण से निष्ठा रखता है और भक्ति-प्रधान धर्मनिष्ठा का विकास विभिन्न धर्मों मसलन वैष्णव, शैव, शाक्त धर्म आदि के रूप में हुआ। समय बीतने के साथ इन्हें सनातनी ब्राह्मणवाद के घटक के रूप में देखा गया। इन धर्मों का बौद्ध तथा जैन धर्म के लोकप्रिय प्रकारों पर गहरा असर पड़ा।

8.5 लोक-धर्म

आदिकालीन धर्म-विश्वासों के अंतर्गत यक्ष-यक्षिणी, नाग तथा अन्य लोक-देवताओं की पूजा की प्रधानता थी। इसमें भक्ति ने आगे चलकर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। जन सामान्य के बीच पूजा की इस पद्धति के प्रसार के विपुल साक्ष्य आरंभिक साहित्य तथा पुरातत्त्व में मिलते हैं।

वासुदेव कृष्ण पूजा : पाणिनी की अष्टाध्यायी के एक सूत्र में वासुदेव (कृष्ण) को पूजने वालों का उल्लेख मिलता है। छांदोग्य उपनिषद् में भी देवकी-पुत्र कृष्ण का उल्लेख मिलता

है जो सूर्य-पूजक ऋषि घोर अंगिरस के शिष्य थे। बहुत से लोग वासुदेव (कृष्ण) की पूजा निजी ईश्वर के रूप में करते थे और इन भक्त लोगों को प्रारम्भ में भागवत के रूप में जाना गया। वासुदेव-भागवत संप्रदाय धीरे-धीरे बढ़ा-पनपा और इसने अपने भीतर वैदिक तथा ब्राह्मणवादी देवों जैसे विष्णु (पहले इन्हें सूर्य का एक रूप माना जाता था) और नारायण (विश्व देव) को समाहित कर लिया। उत्तरवर्ती गुप्त काल से इस भक्ति-संप्रदाय को वैष्णण कहा जाने लगा जिससे इसके भीतर वैदिक वैष्णव तत्त्वों की प्रधानता की जानकारी मिलती है। इसमें अवतारवाद पर जोर दिया जाता था।

8.6 दक्षिण भारत में वैष्णव-आंदोलन

गुप्तकाल के अंत से लेकर 13वीं सदी ईसवी के पहले दशक तक वैष्णव-आंदोलन का इतिहास मुख्यतया दक्षिण भारत से संबंधित है। वैष्णव भक्त-कवि 'अलवरों' (विष्णु की भक्ति में निमग्न व्यक्तियों के लिए तमिल भाषा का शब्द) ने विष्णु की भक्ति तथा उसमें एकान्त-निष्ठा के गीत गाए। इनके गीतों को समग्र रूप से 'प्रबंध' कहा जाता है।

8.7 शैव-धर्म

वैष्णव-धर्म के विपरीत, शैव-धर्म की उत्पत्ति अति प्राचीन है। पाणिनि ने शिव-पूजकों के एक समूह का उल्लेख शिव-भागवत् के रूप में किया है। ये अपने हाथ में त्रिशूल और दंड धारण करते थे तथा पशुओं की खाल से बने वस्त्र पहनते थे। पाणिनी ने शिव-भक्तों के प्रभावी विचित्र कर्मकाण्डों का अप्रत्यक्ष तथा संक्षिप्त उल्लेख किया है।

दक्षिण भारत में शैव आंदोलन : दक्षिण भारत में शैव-धर्म का विकास 63 संतों के एक समूह के प्रयास से हुआ। इन्हें तमिल भाषा में शिव-भक्त कहा जाता है। तमिल भाषा में लिखित इनके भावना-प्रधान गीतों को त्वरम् स्रोत कहा जाता है। इसका एक अन्य नाम द्रविड़ वेद भी है। इसे स्थानीय शिव-मंदिर में धार्मिक -अवसरों पर गाया जाता है। नयनारों में सभी जातियों के लोग थे। सैद्धान्तिक स्तर पर इस पक्ष को समर्थन बहुत से शैव विद्वानों ने दिया। इनके नाम शैव-आंदोलन के विभिन्न रूपों जैसे आगमंत, शुद्ध तथा वीर-शैव से जुड़े हैं।

दर्शन को एक सिद्धान्त देना चाहिए जो अपनी प्रकृति में सरलतम् हो और साथ ही उन सभी सिद्धान्तों को भी स्पष्ट करे जो विज्ञान द्वारा अनसुलझे छोड़ दिये गये। इसी के साथ साथ विज्ञान के अन्तिम परिणामों को भी साथ ले कर चले और साथ ही एक ऐसा धर्म स्थापित करे जो सार्वभौमिक हो और मतमतान्तरों या अन्धविश्वासों से सीमित न कर दिया गया हो।

जब हम दर्शन को एक विज्ञान के रूप में देखते हैं, इससे तात्पर्य है व्यवस्थाबद्ध विचार श्रंखला जिसमें एक विचार श्रंखला दूसरे विचार को न काटे और पूर्ण श्रंखला एक समस्त पूर्णता को प्रकट करे जो सम्बद्ध हो।

> विज्ञान का अर्थ है वह ज्ञान जो अंशतः जुड़ा हुआ है, लेकिन दर्शन से अभिप्राय है पूर्ण रूप से संयुक्त ज्ञान, इसे जानने के पीछे अज्ञात शक्ति है परन्तु उसी अज्ञान के क्षेत्र में आत्मा, स्वर्ग, ईश्वर और सभी से जुड़े हुए सिद्धान्तों का समाधान छुपा हुआ है।
>
> हरबर्ट स्पेन्सर

8.8 लघु धार्मिक-आंदोलन

सूर्य पूजा तथा नारी सिद्धान्तों (शक्ति) की पूजा को इस अवधि में कभी उतना महत्त्व नहीं मिला जितना दो ब्राह्मणवादी धर्म-संप्रदायों (शैव और वैष्ण धर्म) को। देवत्व का नारी स्वरूप पूर्व वैदिक काल की उपज रहा होगा। वैदिक काल में समृद्धि तथा शक्ति-स्वरूप मातृदेवी पर लोग आस्था रखते थे। फिर भी, देवी-पूजकों के एक विशिष्ट संप्रदाय की उपस्थिति के स्पष्ट साक्ष्य अपेक्षाकृत बाद के समय से मिलते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, भारत में सूर्य-पूजा आदि काल से होती आ रही है। वैदिक तथा महाकाव्यों में वर्णित पुरा-कथाओं में सूर्य तथा उसके विभिन्न रूपों की महत्वपूर्ण भूमिका है। किन्तु ये काफी समय के बाद ही धार्मिक आंदोलनों के मुख्य विषय-वस्तु बने। ईसवी सन् की आरंभिक सदियों में पूर्वी ईरान (शकद्वीपी) के सूर्यपूजक-संप्रदाय का प्रसार उत्तर भारत में हुआ। लेकिन इस देवता की धार्मिक आन्दोलनों में प्रमुख स्थान बहुत बाद में मिला।

पाठगत प्रश्न 8.1

1. वैदिक साहित्य का कौनसा अंश प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है?

   ....

2. बौद्ध धर्म द्वारा किस सिद्धान्त का समर्थन किया गया?

   ....

3. बौद्ध धर्म और जैन धर्म को प्रसिद्ध करने वाले सम्प्रदायों के नाम बताइए।

   ....

4. वैदिक युग में नारी सिद्धान्तों का सम्मान कैसे होता था?

   ....

5. शैव आन्दोलनों के विभिन्न स्वरूप क्या हैं?

   ....

8.9 वैदिक दर्शन

ऋग्वेद-काल के लोगों का धर्म बहुत सरल था। वे प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों की देव-रूप में पूजा करते थे। उत्तर वैदिक-काल में ही आत्मा के सत्-स्वरूप अथवा सार्वभौम सिद्धान्त या ब्रह्म की प्रकृति के बारे में सुनिश्चित विचार और दर्शन का विकास हो सका। इन वैदिक दार्शनिक अवधारणाओं से बाद के दिनों में छः दर्शन-संप्रदायों का उद्भव हुआ जिन्हें षड्दर्शन कहा जाता है। ये सभी दर्शन-संप्रदाय आस्तिक दर्शन कहलाते हैं क्योंकि ये वेदों की सत्ता की प्रामाणिकता स्वीकार करते हैं। अब हम लोग भारतीय दर्शन के छः संप्रदायों के बारे में अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे।

सांख्य-दर्शन

सांख्य दर्शन की मान्यता है कि सृष्टि में पुरुष और प्रकृति नामक दो परम सत्ता हैं। पुरुष और प्रकृति परस्पर पूर्णतया स्वतंत्र और निरपेक्ष हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार पुरुष विशुद्ध चेतना है इसीलिए इसमें परिष्कार या परिवर्तन नहीं हो सकता। प्रकृति के तीन निर्णायक घटक या गुण हैं - सत्त्व, रज और तम्। इन्हीं गुणों में परिवर्तन अथवा रूपान्तरण के परिणामस्वरूप सभी वस्तुओं में परिवर्तन होते हैं। सांख्य-दर्शन जगत की उत्पत्ति की व्याख्या के क्रम में पुरूष और प्रकृति के बीच कुछ संबंध स्थापित करने की कोशिश करता है। इस दर्शन के संस्थापक कपिल थे। उन्होंने सांख्य-सूत्र लिखा। वस्तुतः सांख्य शाखा द्वारा उन दिनों के उदार चिंतको के सभी प्रश्नों के उत्तर दिये गए और सिद्धांत के द्वारा सृष्टि की रचना की व्याख्या की।

योग

योग का शाब्दिक अर्थ होता है दो मूल तत्त्वों का मेल। योग का मूल पतंजलि के योग सूत्र में मिलता है जो दूसरी शताब्दी ई.पू. में लिखा गया माना जाता है। मानसिक कार्य-व्यापार की शुद्धि, नियंत्रण और परिवर्तन के माध्यम से योग व्यवस्थित रूप में पुरुष को प्रकृति से मुक्त करता है। योग-क्रियाएँ शरीर, प्राण और इंद्रियों का नियमन करती हैं। इस कारण, इस दर्शन को मोक्ष अथवा मुक्ति प्राप्त करने का साधन भी माना जाता है। यह मोक्ष अष्टांग-योग की साधना से प्राप्त किया जा सकता है। अष्टांग-योग के अंतर्गत आत्म-नियंत्रण (यम), नियम-पालन (नियम), आसन (विभिन्न योगासन), श्वास-नियंत्रण (प्राणायाम), विषय-वासनाओं से अलगाव (प्रत्याहार), किसी एक वस्तु पर मन केंद्रित करना (धारणा), चुनी हुई वस्तु पर ध्यान-मग्न होना (ध्यान) तथा मन और पदार्थ के द्वैत की समाप्ति (समाधि) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। योग-दर्शन में ईश्वर की मान्यता गुरु और शिक्षक के रूप में है।

न्याय

न्याय-दर्शन तर्कपूर्ण रीति की तकनीक से सम्बद्ध माना जाता है। न्याय-दर्शन के अनुसार वैध ज्ञान को ही यथार्थ ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है यानि किसी वस्तु को उसी

रूप में जानना जिस रूप में वह है। उदाहरणार्थ - साँप को साँप तथा प्याले को प्याले के रूप में समझना। न्याय-दर्शन ईश्वर को सृष्टि का रचयिता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता मानता है। गौतम को न्याय-सूत्र का रचयिता कहा जाता है।

वैशेषिक

वैशेषिक पद्धति विश्व का यथार्थ और वस्तुनिष्ठ दर्शन है। इस दर्शन के अनुसार यथार्थ पदार्थ के बहुत से आधार और वर्ग हैं जो कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय हैं। वैशेषिक दर्शन के चिन्तकों की मान्यता है कि विश्व की समस्त वस्तुएँ पाँच तत्वों — पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश से बनी हैं। वे ईश्वर को निर्देशक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करते हैं। जीवित प्राणियों को उनके कर्म के सद्‌गुण अथवा दुर्गुण के अनुसार पुरस्कार अथवा दंड मिलता है। सृष्टि की रचना और उसका संहार एक अनवरत प्रक्रिया है और ईश्वर की इच्छानुसार यह क्रम चलता है। कणाद् ने वैशेषिक-दर्शन का मूल ग्रंथ लिखा।

कणाद द्वारा लिखित मूल ग्रंथ पर बहुत सी टीकाएँ लिखी गईं किन्तु प्रशस्तपाद द्वारा छठी शताब्दी में लिखित टीका इनमें सर्वश्रेष्ठ है। वैशेषिक दर्शन सृष्टि की रचना को आजीवक सिद्धान्त के आधार पर स्पष्ट करता है। अणुओं और परमाणुओं के संयोजन से द्रव्य बना और इसी प्रकार सृष्टि के निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है।

मीमांसा

वस्तुत: मीमांसा-दर्शन वेद के संहिता और ब्राह्मण खंड की व्याख्या, प्रयोग और उपयोग से संबंधित है। मीमांसा के अनुसार वेद शाश्वत हैं और उनमें समस्त ज्ञान समाहित है और धर्म का अर्थ होता है वेद-विहित कर्तव्यों का सम्यक् रीति से पालन करना। यह दर्शन न्याय-वैशेषिक को अपने में समाहित करता है और वैध ज्ञान पर बल देता है। इसके मूल ग्रन्थ के रूप में जैमिनि कृत सूत्र है जिसकी रचना तीसरी सदी ईसवी पूर्व हुई। इस दर्शन के साथ कुमारिल भट्ट और शबर स्वामी का नाम जुड़ा हुआ है।

जैमिनि पद्धति के अनुसार धर्म कर्म के फल का नियामक है, अर्थात् धर्म का नियम। यह दर्शन वेद के कर्मकाण्ड यज्ञ पर बल देता है।

वेदान्त

वेदान्त-दर्शन के अंतर्गत उपनिषदों अर्थात् वेद के अंतिम भाग का दर्शन आता है। शंकराचार्य ने उपनिषद्, ब्राह्मण, ब्रह्म-सूत्र और भगवद्‌गीता पर भाष्य लिखा। शंकराचार्य के दार्शनिक-विचारों को अद्वैत-वेदान्त कहा जाता है। अद्वैत का शाब्दिक अर्थ होता है द्वैत का नकारना अर्थात् एक परम में विश्वास। शंकराचार्य ने प्रतिपादित किया कि परमसत् एक है और वह ब्रह्म है।

वेदान्त-दर्शन के अनुसार- ''ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है और उनका विश्वास था कि ब्रह्म और आत्मा में कोई अन्तर नहीं है शंकराचार्य का विश्वास है कि ब्रह्म सत्य, अपरिवर्तनीय, अन्तिम ज्ञान स्वरूप है। ब्रह्म का ज्ञान ही समस्त वस्तुओं का सार तथा परम सत्य है। रामानुज एक अन्य अद्वैतवादी विद्वान में से थे।

दर्शन के विभिन्न सिद्धांतों में से एक ऐसा दर्शन निकलकर आया, जो कि दार्शनिक विचारों की पराकाष्ठा तक पहुंचा है वही वेदांत दर्शन कहा जाता है। वेदांत दर्शन प्रत्यक्ष अहम् की सत्ता को स्वीकार नहीं करता, जैसा कि हम जानते है और इस विषय में वेदांत विश्व के दर्शन के इतिहास में अपना अद्वितीय स्थान रखता है।

वेदान्त एक दर्शन और एक धर्म है। दर्शन के रूप में यह उस सत्य का प्रतिपादन करता है जो सभी युगों और सभी देशों के महान दार्शनिकों एवं उच्च कोटि के विचारकों द्वारा खोजे गये। वेदान्त दर्शन हमें शिक्षा देता है कि विभिन्न धर्म अनेक मार्गों के समान हैं जो एक ही लक्ष्य तक पहुंचते हैं।

वेदांन्त (वेद या ज्ञान का अंत) से अभिप्राय उपनिषद्ों से है जो प्रत्येक वेद के अन्त में लिखे गए और जिनमें सत्य का वास्तविक रूप प्रतिपादित किया गया है।

वेदान्त का केन्द्रीभूत संदेश है कि प्रत्येक गतिविधि विवेक द्वारा संचालित होनी चाहिए। मन गलत काम कर सकता है परन्तु बुद्धि हमें समझाती है कि यह काम हमारे हित में है या नहीं। वेदान्त एक साधक को बुद्धि के द्वारा आत्म जगत तक ले जाता है। चाहे हम आध्यात्मिकता की ओर योग के माध्यम से जाएँ, या ध्यान, या भक्ति से, अन्त में हमारे अन्दर अभिवृतियों के परिवर्तन और दिव्य प्रकाश की अनुभूति होनी चाहिए।

8.10 चार्वाक-दर्शन

चार्वाक-दर्शन का प्रणेता बृहस्पति को माना जाता है। इसकी चर्चा वेद और बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलती है। अत: माना जाता है कि ज्ञान की इस शाखा का उद्भव इन ग्रंथों से पहले हुआ होगा। इस दर्शन की मान्यता है कि ज्ञान चार भौतिक पदार्थो के मेल से बनता है और मृत्यु के बाद इसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। चार्वाक भौतिकवादी दर्शन है। इसे लोकायत-दर्शन अथवा जन साधारण का दर्शन भी कहते हैं।

चार्वाक के अनुसार परलोक नहीं है इसलिए मृत्यु के साथ मनुष्य के अस्तित्व की समाप्ति हो जाती है और इंद्रियानंद ही जीवन का लक्ष्य है। चार्वाक दर्शन भौतिक पदार्थो के अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं मानता। इस दर्शन के अनुसार, चूँकि ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, परलोक आदि का प्रत्यक्ष नहीं होता अर्थात् ये दिखाई नहीं पड़ते, इसलिए इनका अस्तित्व नहीं है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश में से यह आकाश की सत्ता स्वीकार नहीं करता क्योंकि उसके अनुसार आकाश का प्रत्यक्षीकरण नहीं होता है। इस दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण विश्व केवल चार तत्त्वों से ही बना है।

8.11 जैन-दर्शन

चार्वाक-दर्शन के समान जैन-दर्शन भी वेदों को प्रमाण रूप में स्वीकार नहीं करता लेकिन आत्मा के अस्तित्व को मानता है। ये भी आस्तिक दर्शनों के समान मानते हैं कि दुःख वैचारिक नियंत्रण द्वारा और उचित ज्ञान एवं उचित दृष्टि तथा उचित आचरण द्वारा दूर किया जा सकता है। जैन-दर्शन के पहले प्रवर्तक तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ अजितनाथ और अरिष्टनेमि का भी नाम लिया जाता है। जैन तीर्थंकरों की संख्या 24 है जिन्होंने वास्तव में जैन-दर्शन की स्थापना की। पहले तीर्थंकर जिन्होंने जैन-दर्शन के स्रोत का अनुभव किया आदिनाथ हैं। 24 वें और अंतिम तीर्थंकर का नाम वर्धमान महावीर है। उन्होंने जैन-धर्म को गति दी। महावीर का जन्म 599 ई. पू. हुआ था। उन्होंने 30 वर्ष की उम्र में सांसारिक जीवन का त्याग कर दिया और सत्य-ज्ञान की प्राप्ति के लिए कठोर तपस्या का जीवन बिताया। वे ब्रह्मचर्य के अखंड विश्वासी थे।

जैन का यथार्थवाद : सात प्रकार के मूल तत्त्व

जैनियों का विश्वास है कि ब्रह्मांड की भौतिक और पराभौतिक वस्तुओं के सात वर्ग होते हैं। इनके नाम हैं- जीव, अजीव, अस्तिकाय, बंध, संवर, निर्जन और मोक्ष। शरीर जैसे पदार्थ जो अस्तित्व में होते हैं उन्हें अस्तिकाय कहते हैं। 'समय' अनस्तिकाय है क्योंकि उसका कोई शरीर (आकार) नहीं। द्रव्य ही गुणों का आधार है। द्रव्य में जो गुण पाये जाते हैं उन्हें धर्म कहते हैं। जैनियों का विश्वास है कि द्रव्य में गुण होते हैं। ये गुण समय गुजरने के साथ बदलते हैं। जैन-विश्वास के अनुसार द्रव्य के गुण अनिवार्य, शाश्वत तथा अस्तित्व में परिवर्तनीय होते हैं। बिना अनिवार्य गुण के कोई वस्तु नहीं होती। इसलिए, गुण सभी चीजों में पाये जाते हैं। उदाहरण के रूप में चेतना आत्मा का गुण है; इच्छा, खुशी और दुःख इसके परिवर्तनीय गुण हैं।

पाठगत प्रश्न 8.2

1. षड्दर्शन कितने प्रकार के हैं?

   ....

2. सांख्य-दर्शन के संस्थापक का नाम बतायें?

   ....

3. योग के प्रवर्तक कौन थे?

   ....

4. न्याय सूत्र का लेखक किसको कहा जाता है?

   ....

5. दर्शन का कौन सा सिद्धांत कहता है कि वेद् शाश्वत हैं और समस्त ज्ञान के भण्डार हैं?

6. उपनिषदों का दर्शन क्या है?

7. कौन सा सिद्धांत है जो ज्ञान को चार तत्त्वों के सहयोग से उत्पन्न मानता है, जो मृत्यु के बाद समाप्त हो जाते हैं?

8. जैन दर्शन में कितने तीर्थंकर हैं?

9. महावीर का जन्म कब हुआ?

10. कौन से तीर्थंकर का नाम वर्धमान महावीर है?

11. जैनियों के अनुसार सात मौलिक तत्त्वों का नाम बतायें।

8.12 बौद्ध दर्शन

बौद्ध दर्शन की नींव गौतम बुद्ध ने रखी थी। उनका जन्म 563 ईसा पूर्व नेपाल की पहाड़ियों के पास कपिलवस्तु के समीप लुम्बिनी गाँव में हुआ था। उनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। जब वह कुछ दिन के ही थे, उनकी माता माया देवी का निधन हो गया। बचपन से ही उन्हें ध्यान करना रूचिकर लगता था। उनका विवाह 16 वर्ष की आयु में एक सुंदर राजकुमारी यशोधरा के साथ हुआ। विवाह के एक वर्ष पश्चात् उनके पुत्र हुआ जिसका नाम राहुल रखा गया। लेकिन 29 वर्ष की आयु में ही उन्होंने दुनिया में व्याप्त मृत्यु, बीमारी, गरीबी इत्यादि का समाधान प्राप्त करने के लिए पारिवारिक जीवन का त्याग कर दिया। वह वन में चले गए तथा सतत उन्होंने छः वर्षों तक साधना की। इसके पश्चात उन्होंने बिहार में बोधगया में पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान लगाया। यही वह स्थान है जहाँ इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ तथा वे बुद्ध के रूप में जाने गए। उन्होंने अपने महान सत्य और मुक्ति मार्ग के प्रचार के लिए बहुत यात्राएँ की। 80 वर्ष की उम्र में उनकी मृत्यु हो गयी।

गौतम बुद्ध के तीन शिष्य उपाली, आनन्द और महाकश्यप ने गौतम बुद्ध की शिक्षाओं को याद किया तथा उन्हें उनके अनुयायिओं तक आगे बढ़ाया। यह विश्वास किया जाता है कि

बुद्ध की मृत्यु के बाद राजगृह में सभा बुलाई गई जिसमें उपाली द्वारा विनयपिटक (आदेश के नियम) और आनन्द द्वारा सुतपिटक (बुद्ध के उपदेश का सिद्धांत और नैतिकता) का संकलन और कुछ समय बाद बौद्ध दर्शन से युक्त अभिधम्मपिटक का संकलन किया गया।

मुख्य विशेषताएँ

बुद्ध ने जीवन के सरल सिद्धान्त और एक व्यवहारिक नीतिशास्त्र प्रस्तुत किया जिसका व्यक्ति सरलतापूर्वक पालन कर सके। बुद्ध संसार को दुखों से पूर्ण मानते हैं। इस दु:खपुर्ण संसार से मुक्ति खोजना मनुष्य का कर्त्तव्य है। बुद्ध ने पारम्परिक पुस्तकें (पवित्र या धार्मिक पुस्तकें) जैसे वेद में अन्धविश्वास रखने की दृढ़ता से आलोचना की है। बुद्ध की शिक्षाएँ बहुत ही व्यावहारिक हैं। उनकी शिक्षाएँ बताती हैं कि मानसिक शान्ति और इस भौतिक जगत से मुक्ति कैसे प्राप्त करें।

चार महान सत्यों की प्राप्ति – बुद्ध द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान चार आर्य सत्यों में व्यक्त होता है, जो इस प्रकार हैं :–

(अ) मानव जीवन में दु:ख : जब बुद्ध ने बीमारी, पीड़ा और मृत्यु से दु:खी व्यक्ति को देखा तब वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मानव जीवन में निश्चित रूप से दु:ख विद्यमान है। जन्म के साथ ही दु:ख भी आ जाता है। सुख से वंचित होना भी दु:खपूर्ण है। वे सारी कामनाएँ जो कि पूर्ण नहीं हो पाती दु:खपूर्ण है। दु:ख भी तभी होता है जब इन्द्रिय सुख की वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार जीवन दु:खपूर्ण है।

(ब) दु:ख का कारण है : दूसरा महान सत्य दु:ख के कारण से सम्बन्धित है। यह तृष्णा ही है जो जन्म और मृत्यु के चक्र में बाँधती है। इसीलिए तृष्णा ही दु:ख का मूल कारण है।

(स) दु:ख से मुक्ति संभव है – तीसरा आर्य सत्य है कि जब अभिलाषाएँ, इच्छाएँ और जीवन के प्रति आसक्ति पूर्णत: समाप्त हो जाती है, तब दु:ख समाप्त हो जाता है। यह सत्य दु:ख से मुक्ति का मार्ग बताता है जिससे मानव जीवन में कष्ट आते हैं। इसमें अहं, मोह, ईर्ष्या, सन्देह और दु:ख का विनाश भी सम्मिलित है। मन की यह स्थिति इच्छा, दु:ख और प्रत्येक प्रकार के मोह से छुटकारा की स्थिति होती है। यह पूर्ण शान्ति की स्थिति होती है जो कि निर्वाण का मार्ग प्रशस्त करती है।

(द) मुक्ति का मार्ग – चौथा आर्य सत्य दु:ख से मुक्ति का मार्ग है। इसका तात्पर्य है कि हमें एक ऐसे मार्ग पर चलना है जो हमें मुक्ति की ओर ले जाये। इस प्रकार बुद्ध का दर्शन निराशावाद से आरम्भ होकर आशावाद की ओर ले जाता है। मानव जीवन में निरन्तर दु:ख विद्यमान है जिसे पूर्णरूप से समाप्त किया जा सकता है। बुद्ध बताते हैं कि अष्टांगिक मार्ग, मुक्ति की ओर ले जाने वाला मार्ग है जिसके माध्यम से निर्वाण की प्राप्ति की जा सकती है।

मुक्ति (निर्वाण) का अष्टांगिक मार्ग

(i) **सम्यक् दृष्टि** — हम अज्ञानता को दूर कर सम्यक् दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं। अज्ञानता संसार और आत्मा के बीच सम्बन्धों की गलत अवधारणा को जन्म देती है। मनुष्य अज्ञान के कारण इस अस्थिर संसार को स्थिर संसार के रूप में मानता है। इस प्रकार संसार और सांसारिक वस्तुओं के प्रति सही दृष्टिकोण ही सम्यक् दृष्टि है।

(ii) **सम्यक् संकल्प** — यह उन विचारों और इच्छाओं को समाप्त करने की दृढ़ इच्छा शक्ति है जो कि दूसरों को हानि पहुँचाते हैं। इसमें दूसरों के प्रति त्याग, सद्भावना और करूणा को सम्मिलित किया जाता है।

(iii) **सम्यक् वाक्** — मनुष्य को सम्यक् संकल्प द्वारा अपनी वाणी पर नियंत्रण रखना चाहिए। इसका तात्पर्य दूसरों की निन्दा करने, झूठे और अशोभनीय शब्दों से बचना है।

(iv) **सम्यक् चरित्र** — इसका तात्पर्य मानव जीवन को हानि पहुँचाने वाले क्रियाकलापों से बचना है। इसका अर्थ है कि हमें चोरी, अत्यधिक भोजन ग्रहण करना, सौन्दर्य प्रसाधन, जवाहरात, आरामदायक आसन, स्वर्ण इत्यादि के प्रयोग से दूर रहना है।

(v) **सम्यक् आजीविका साधन** — इसका तात्पर्य अपना जीवन उचित साधनों द्वारा चलाना है। अनुचित साधनों जैसे धोखा, रिश्वत् चोरी इत्यादि जैसे गलत और बुरे साधनों द्वारा धन कमाना कभी भी उचित नहीं है।

(vi) **सम्यक् प्रयत्न** — बुरे विचारों और बुरे प्रभावों को त्यागना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसमें आत्म नियंत्रण, इन्द्रिय सुख और बुरे विचारों का निषेध और अच्छे विचारों के जन्म को शामिल किया जाता है।

(vii) **सम्यक विचार** — इसका तात्पर्य अपने शरीर, हृदय और मन को उसके वास्तविक रूप में रखना है। जब बुरे विचार मन पर हावी हो जाते हैं तो उनके वास्तविक रूप को भुला दिया जाता है। जब बुरे विचारों के अनुसार कार्य किया जाता है तब हमें दु:ख भोगना पड़ता है।

(viii) **सम्यक् ध्यान** — यदि एक व्यक्ति उपर्युक्त सात सिद्धान्तों का पालन करेगा तो वह उचित और सही रूप से ध्यान करने में समर्थ होगा। हम ध्यान के द्वारा निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।

चार्वाक दर्शन को छोड़कर आत्मा का ज्ञान भारत के सभी दर्शनों का मुख्य उद्देश्य रहा है।

विक्टर कजिन, महान फ्रांसीसी दार्शनिक, ने ठीक कहा है कि संक्षेप में भारत मे दर्शन का पूर्ण इतिहास निहित है। जब हम पूर्व के काव्य और दार्शिनिक ग्रन्थों को ध्यान से पढ़ते हैं तो विशेष रूप से भारत के जो अभी यूरोप में फैलने लगे हैं, हम उनमें सत्य के दर्शन करते हैं, वे सत्य जो गहनतम हैं, और जो उन निकृष्ट परिणामों के विरुद्ध हैं जहाँ यूरोपीय प्रतिभा कभी कभी रुक जाती है। हमें पूर्व के दर्शन के सामने घुटने टेकने पर बाध्य होना पड़ता है और हमें इस मानव जाति के पालने में उच्चतम दर्शन की जन्मभूमि के दर्शन होते हैं।

मुझे यकीन है कि आप बौद्ध धर्म के बारे में जानना पसन्द करेंगे। हम बिहार में बोध गया चलेंगे और श्रद्धापूर्वक इस प्राचीन मार्ग पर चलेंगे। महाबोधी वृक्ष से आरम्भ करें जहाँ कुछ आश्चर्यजनक हुआ। सत्य की प्राप्ति या आध्यात्मिक प्रकाश। परम्परा बताती है कि बुद्ध वहाँ बोध गया में ज्ञान प्राप्ति के बाद सात सप्ताह तक रहे।

वहाँ आपको अनिमेषलोच स्तूप के भी दर्शन करने चाहिएँ जिसमें बुद्ध की खड़ी हुई प्रतिमा है जो इस वृक्ष की ओर टकटकी लगाकर निहार रही है। बौद्धगया उन हिन्दुओं द्वारा भी सम्मान से देखा जाता है जो विष्णुवाद मन्दिर में मृत व्यक्तियों के लिए शान्ति और सुख की कामना करते हुए 'पिण्ड दान' करने जाते हैं।

आप राजगिर की भी यात्रा कर सकते हैं और चीनी यात्री फाह्यान के साथ भी अनुभवों को बांट सकते हैं जिन्होंने बुद्ध की मृत्यु के (900) साल बाद इस स्थान के दर्शन किए। वह इस बात पर रोने लगा कि क्यों वह भगवान बुद्ध द्वारा यहां दिए गए उपदेशों को नहीं सुन पाया। बहुत सी कहानियाँ जो आप बुद्ध के विषय में सुनते हैं, उनका भी मूल यहीं है। जरा कल्पना कीजिए यहाँ एक गुफा में निवास करते हुए बुद्ध अपनी पहली भिक्षा मांगने की यात्रा पर निकलते हैं। यहीं मौर्य राजा बिम्बिसार ने बुद्ध धर्म को स्वीकार किया था। आपको सम्भवत: वह कहानी भी याद होगी जब देवदत्त ने बुद्ध को मरवाने के लिए एक पागल हाथी छोड़ा था। हाँ, वह घटना यहीं पर हुई थी। अन्त में, राजगिरि से ही बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रा पर चल पड़े। पहली बुद्ध संगति यहीं सप्तपर्णी गुफा में हुई थी जहाँ अलिखित बुद्ध की शिक्षाओं को उनकी मृत्यु के बाद लिपिबद्ध किया गया। मठ सम्बन्धी संस्थाओं की अवधारणा भी यहीं पर उपजी जो बाद में शैक्षिक और धार्मिक केन्द्रों के रूप में विकसित हुई।

आप अगले पाठ स्थापत्यकला में नालन्दा विश्वविद्यालय के बारे में पढ़ेंगे। यह ईसापूर्व पांचवी शताब्दी में बना था। यह विश्व की प्राचीनतम विश्वविद्यालय है। क्योंकि बुद्ध ज्ञान को प्रोत्साहित करते थे, अनेक भिक्षु और विद्वान यहाँ प्रवचन सुनने आते थे। यहां तक कि 5वीं शताब्दी ई.पू. में नालन्दा गुप्त वंश के अन्तर्गत सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय के सम्मान को प्राप्त कर सका।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 8.3

1. गौतम बुद्ध के बचपन का नाम क्या था?

   ....

2. गौतम बुद्ध ने किस स्थान पर ध्यान किया?

   ....

3. गौतम बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति कहां हुई?

   ....

4. पिटक क्या है?

   ....

5. विनयपिटक किसने बनाई?

   ....

6. गौतम बुद्ध के चार आर्य सत्य क्या हैं?

   ....

7. भारत के किस दार्शनिक सिद्धांत में आध्यात्मिक ज्ञान के विषय में विभिन्न विचार हैं?

   ....

आपने क्या सीखा

- धर्म की उत्पत्ति पूर्व-वैदिक काल से मानी जा सकती है।
- आदि भारत में धर्म का विकास पारंपरिक रीति के साथ साथ नास्तिकता के रूप में भी हुआ।
- भारतीय दर्शन की पद्धति जो वेदों से उत्पन्न हुई उसे आस्तिक दर्शन कहा जाता है।
- सांख्य दर्शन का मानना है कि जगत पुरुष और प्रकृति अर्थात् आत्मतत्व और अनात्मतत्व से बनता है।
- योग-दर्शन आत्म-साक्षात्कार का व्यावहारिक दर्शन है।
- न्याय-दर्शन तर्कपूर्ण चिन्तन की व्यवस्था प्रदान करता है।

- वैशेषिक-दर्शन वस्तु-जगत के निर्माण-संबंधी सिद्धान्त प्रदान करता है।
- मीमांसा-दर्शन मूलतः वेद-ग्रंथों का विश्लेषण है।
- चार्वाक, जैन और बौद्ध-दर्शन नास्तिक-दर्शन कहलाते हैं।
- चार्वाक भौतिकवादी दर्शन है। इसका विश्वास है कि भौतिक तत्वों के अतिरिक्त अन्य की सत्ता नहीं होती।
- जैन-दर्शन के अनुसार, निर्वाण (मोक्ष) का अर्थ है जीव का पदार्थ (शरीर) से निकल जाना।
- महात्मा बुद्ध का ज्ञान चार आर्य-सत्य में प्रतिबिम्बित हुआ — (i) जीवन में दु:ख है, (ii) दु:ख का कारण है, (iii) दु:ख का अंत है, (iv) दु:ख-निरोध का तरीका है।
- बुद्ध ने मुक्ति का अष्टांगिक मार्ग बताया — (i) सम्यक् दृष्टि, (ii) सम्यक् संकल्प, (iii) सम्यक् वाक्, (iv) सम्यक् चरित्र, (v) सम्यक् आजीविका, (vi) सम्यक् कर्म, (vii) सम्यक् ज्ञान, (viii) सम्यक् ध्यान।

पाठान्त प्रश्न

1. प्राचीन भारत की धार्मिक आन्दोलनों की विभिन्न विशेषताएँ परिभाषित कीजिए।
2. भारत में धार्मिक आंदोलनों में चार्वाक सिद्धांत की भूमिका क्या थी?
3. चार्वाक सिद्धांत अन्य दार्शनिक सिद्धांतों से किस प्रकार भिन्न है?
4. षड् दर्शन आस्तिक दर्शन कैसे कहलाते हैं?
5. बौद्ध दर्शन किस प्रकार एक अच्छे मानव के निर्माण में सहयोग देता है?
6. आप कैसे कह सकते हैं कि मीमांसा दर्शन वैदिक ग्रन्थों का विश्लेषण है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

8.1
1. आरण्यक और उपनिषद्
2. कर्म का अधिनियम
3. वैष्णव, शैव और शक्तिवाद
4. दैवी माता, समृद्धि एवं शक्ति की देवी है।
5. अगमन्त, शुद्ध और वीर शैव धर्म

8.2 1. छः

2. कपिल, जिसने सांख्य-सूत्र लिखे

3. पतंजलि का योग सूत्र

4. गौतम

5. मीमांसा सिद्धांत

6. वेदांत वेदों का अंतिम भाग

7. चार्वाक सिद्धांत

8. 24

9. 599 ई.पू.

10. 24वें एवं अंतिम तीर्थंकर

11. जीव, अजीव, अस्तिकाय, बंध, संवर, निर्जर और मोक्ष।

8.3 1. सिद्धार्थ

2. बौद्ध गया, बिहार में पीपल वृक्ष के नीचे।

3. बौद्ध गया, बिहार

4. बुद्ध के उपदेश या सिद्धांत एवं नीति शास्त्र

5. उपाली

6. मानवीय जीवन में दु:ख है।

   दु:ख का कारण है।

   दु:ख का अंत है।

   दु:ख-निरोध का मार्ग है।

7. चार्वाक सिद्धांत

9

मध्यकालीन भारत में धर्म और दर्शन

प्रायः प्रत्येक माह शहर में किसी प्रेक्षागृह (सभागार) में कार्यक्रम होते रहते हैं जहाँ सूफी सन्तों के और भक्ति सन्तों के गीत गाए जाते हैं। इन कार्यक्रमों की लोकप्रियता वहां की उपस्थिति से देखी जा सकती है। वे सरकार द्वारा, व्यापार गृहों द्वारा, और अलग अलग व्यक्तियों द्वारा भी चलाये जाते हैं। सूफी और भक्ति संतों के संगीत आज भी उपयोगी हैं। क्या आप जानते हैं कि भारत में मध्यकालीन युग में सूफी आन्दोलन और भक्ति आन्दोलन की उन्नति और विकास हुआ? इन आन्दोलनों के कारण हिन्दू एवम् मुस्लिम समुदाय में एक नई आध्यात्मिक क्रांति हुई। सूफी फकीरों ने इस्लाम में उदारवाद की माँग की तथा सार्वभौमिक प्रेम के आधार पर एक समतावादी समाज पर बल दिया। भक्ति संतों ने भगवान को पाने के लिए भक्ति करने का प्रचार करके हिन्दू धर्म को बदल दिया। उनके लिए जाति का कोई अर्थ नहीं था और सभी मानव उनके लिए बराबर थे। सूफी एवं भक्ति संतों ने मुसलमानों एवं हिन्दुओं को साथ लाने में एक अहम भूमिका निभाई। उन्होंने स्थानीय भाषाओं का प्रयोग करके धर्म को सुलभ एवं सार्थक बनाया।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :–

- मध्यकालीन भारत में सूफी और भक्ति आन्दोलनों के उदय के कारणों को समझेंगे;
- सूफी आन्दोलन के विकास को समझेंगे;
- प्रमुख सूफी सिलसिलों की पहचान कर पाएँगे;
- सूफीवाद के मुख्य सिद्धान्तों की पहचान कर पायेंगे;

- भक्ति संतों के दर्शन की व्याख्या कर पाएँगे;
- भक्ति संतों, संत कबीर और गुरु नानक के दर्शनों की व्याख्या कर पाएँगे;
- सिक्ख धर्म के उदय को जान सकेंगे;
- वैष्णव संतों की विचारधारा की व्याख्या कर सकेंगे;
- भारतीय मिश्रित संस्कृति के विकास में सूफी एवं भक्ति संतों के योगदानों की पहचान कर पाएँगे।

9.1 सूफी आन्दोलन

पृष्ठभूमि — इस्लाम का उदय

आपको याद होगा कि इस्लाम धर्म की नीवं पैगम्बर मुहम्मद साहब ने डाली थी। इस्लाम धर्म ने अपने अन्दर कई धार्मिक और आध्यात्मिक आन्दोलनों का उदय देखा। ये आन्दोलन प्रमुख रूप से कुरान की व्याख्या पर आधारित थे। इस्लाम के अन्दर दो प्रमुख सम्प्रदायों का उदय हुआ — सुन्नी और शिया। हमारे देश में दोनों मत हैं लेकिन कई अन्य देशों में जैसे ईरान, ईराक, पाकिस्तान आदि देशों में आप केवल एक ही मत के अनुयायिों को देख पाएँगे।

सुन्नी संप्रदाय में इस्लामी कानून की चार प्रमुख विचारधाराएँ हैं। ये कुरान और हदीस (हजरत मुहम्मद साहब के कार्य और कथन) पर आधारित हैं। इनमें से आठवीं शताब्दी की इनकी विचारधारा को पूर्वीतुर्कों ने अपनाया और यही तुर्क बाद में भारत में आए।

पुरातनवंशी सुन्नी समुदाय को सबसे बड़ी चुनौती मुताजिला अर्थात तर्कप्रधान दर्शन ने दी जो कठोर एकेश्वरवाद का प्रतिपादक था। इस मत के अनुसार ईश्वर न्यायकारी है और मनुष्यों के दुष्कर्मों से उसका कोई लेना देना नहीं है। मनुष्यों के पास अपनी स्वतन्त्र इच्छा शक्ति है और वे स्वयं अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी हैं। मुताजिलों का विरोध अशरी विचारधारा ने किया। अबुल हसन अशरी (873-935 ई.पू.) द्वारा स्थापित अशरी विचारधारा ने पुरातन पंथी सिद्धान्त के समर्थन में अपने बुद्धिवादी दर्शन (कलाम) को विकसित किया। इस विचारधारा के अनुसार ईश्वर जानता है, देखता है और बात भी करता है। कुरान शाश्वत है और स्वयंभू है। इस विचारधारा के सबसे बड़े विचारक थे अबू हमीद अल गजाली (1058-1111) जिन्होंने रहस्यवाद और इस्लामी परम्परावाद के बीच मेल कराने का प्रयत्न किया। वह एक महान धर्म विज्ञानी थे जिन्होंने 1095 में एक सूफी का जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ किया। उन्हें परम्परावादी तत्वों और सूफी मतावलम्बियों दोनों के द्वारा ही बहुत अधिक सम्मानपूर्वक देखा जाता था। अल गजली ने सभी गैरपरम्परावादी सुन्नी विचारधाराओं पर आक्रमण किया। वे कहते थे सकारात्मक ज्ञान तर्क द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता बल्कि आत्मानुभूति द्वारा ही देखा जा सकता है। सूफी भी उलेमाओं की भांति ही कुरान पर निष्ठा रखते थे।

राज्य द्वारा स्थापित नई शिक्षा प्रणाली के कारण गजाली के विचारों का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा। इसके अन्तर्गत मदरसों की स्थापना हुई जहां विद्वानों को अशरी विचारधारा से परिचित करवाया जाता था। उन्हें यहाँ पुरातनपन्थी सुन्नी विचारों के अनुसार शासन चलाने की शिक्षा दी जाती थी। इन विद्वानों को उलेमा कहते थे। उलेमाओं ने मध्य भारत की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

सूफी

उलेमा के ठीक विपरीत सूफी थे। सूफी रहस्यवादी थे। वे पवित्र धर्मपरायण पुरुष थे, जो राजनैतिक व धार्मिक जीवन के अध:पतन पर दु:खी थे। उन्होंने सार्वजनिक जीवन में धन के अभद्र प्रदर्शन व 'धर्म भ्रष्ट शासकों' की उलेमा द्वारा सेवा करने की तत्परता का विरोध किया। कई लोग एकान्त तपस्वी जीवन व्यतीत करने लगे एवं राज्य से उनका कोई लेना-देना नहीं रहा। सूफी दर्शन भी उलेमा से भिन्न था। सूफियों ने स्वतंत्र विचारों एवं उदार सोच पर बल दिया। वे धर्म में औपचारिक पूजन, कठोरता एवं कट्टरता के विरुद्ध थे। सूफियों ने धार्मिक संतुष्टि के लिए ध्यान पर जोर दिया। भक्ति संतों की तरह, सूफी भी धर्म को 'ईश्वर के प्रेम' एवं मानवता की सेवा के रूप में परिभाषित करते थे। कुछ समय में सूफी विभिन्न सिलसिलों (श्रेणियों) में विभाजित हो गए। प्रत्येक सिलसिले में स्वयं का एक पीर (मार्गदर्शक) था जिसे ख्वाजा या शेख भी कहा जाता था। पीर व उसके चेले खानका (सेवागढ़) में रहते थे। प्रत्येक पीर अपने कार्य को चलाने के लिए उन चेलों में से किसी एक को वली अहद (उत्तराधिकारी) नामित कर देता था। सूफियों ने रहस्यमय भावातिरेक जगाने के लिए समां (पवित्र गीतों का गायन) संगठित किए। ईराक में बसरा सूफी गतिविधियों का केन्द्र बन गया। यह ध्यान देने की बात है कि सूफी संत एक नया धर्म स्थापित नहीं कर रहे थे अपितु इस्लामी ढांचे के भीतर ही एक अधिक उदार आन्दोलन प्रारम्भ कर रहे थे। कुरान में उनकी निष्ठा उतनी ही थी जितनी उलेमाओं की।

भारत में सूफीमत

भारत में सूफी मत का आगमन 11वीं और 12वीं शताब्दी में माना जाता है। भारत में बसे श्रेष्ठ सूफियों में से एक थे — अल हुजवारी जिनका निधन 1089 ई. में हो गया। उन्हें दाता गंजबख्श (असीमित खजाने के वितरक) के रूप में जाना जाता है। प्रारंभ में, सूफियों के मुख्य केन्द्र मुल्तान व पंजाब थे। परंतु 13वीं व 14वीं सदी तक सूफी कश्मीर, बिहार, बंगाल एवं दक्षिण तक फैल चुके थे। यह उल्लेखनीय है कि भारत में आने से पूर्व ही सूफीवाद ने एक निश्चित रूप ले लिया था। उसके मौलिक एवं नैतिक सिद्धांत, शिक्षण एवं आदेश प्रणाली, उपवास, प्रार्थना एवं खानकाह में रहने की परम्परा पहले से ही तय हो चुकी थी। सूफी अपनी इच्छा से अफगानिस्तान के माध्यम से भारत आए थे। उनके शुद्ध जीवन, भक्तिप्रेम व मानवता के लिए सेवा जैसे विचारों ने उन्हें लोकप्रिय बना दिया तथा भारतीय समाज में उन्हें आदर सम्मान भी दिलवाया।

अबुल फजल ने 'एआइने-ए-अकबरी' में सूफियों के 14 सिलसिलों का उल्लेख किया है। बहरहाल, इस पाठ में हम कुछ महत्त्वपूर्ण सिलसिलों का ही उल्लेख करेंगे। ये सिलसिले दो प्रकार के थे बेशरा और बाशरा। बाशरा के अन्तर्गत वे सिलसिले थे जो शरा (इस्लामी कानून) को मानते थे और नमाज, रोजा आदि नियमों का पालन करते थे। इनमें प्रमुख थे चिश्ती, सुहरावर्दी, फिरदौसी, कादिरी व नख्शबंदी सिलसिले थे। बे-शरा सिलसिलों में शरीयत के नियमों को नहीं मानते थे। कलन्दर, फिरदौसी, सिलसिल इसी समूह से संबंधित थे।

चिश्ती सिलसिला

यह सिलसिला ख्वाजा चिश्ती (हेरात के निकट) नामक गाँव में स्थापित किया गया था। भारत में चिश्ती सिलसिला ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (जन्म 1142 ई) द्वारा स्थापित किया गया था, जो 1192 ई. में भारत आए थे। उन्होंने अजमेर को अपनी शिक्षाओं का मुख्य केन्द्र बनाया। उनका मानना था कि भक्ति का सबसे अच्छा तरीका मनुष्य की सेवा है और इसीलिए उन्होंने दलितों के बीच काम किया। उनकी मृत्यु 1236 ई में अजमेर में हुई। मुगल काल के दौरान अजमेर एक प्रमुख तीर्थ केन्द्र बन गया क्योंकि मुगल सम्राट नियमित रूप से शेखों की दरगाहों का दौरा किया करते थे। उनकी लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि आज भी लाखों मुसलमान और हिन्दू अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए दरगाह का दौरा किया करते हैं। नागौर के शेख हमीदुद्दीन और कुतुबद्दीन बख्तियार काकी उनके चेले थे। शेख हमीदुद्दीन एक गरीब किसान थे और उन्होंने इल्तुतमीश द्वारा गांवों के दान लेने से इंकार कर दिया। कुतुबद्दीन बख्तियार काकी की खानकाह का कई क्षेत्रों के लोगों ने दौरा किया। सुल्तान इल्तुतमीश ने कुतुबमीनार को अजोधन के शेख फरीदउद्दीन को सपर्पित किया। जिन्होंने चिश्ती सिलसिलों को आधुनिक हरियाणा और पंजाब में लोकप्रिय किया। उन्होंने सभी के लिए प्यार एवं उदारता का दरवाजा खोला। बाबा फरीद (उन्हें इसी के नाम से जाना जाता था) का हिन्दुओं एवं मुसलमानों के द्वारा सम्मान किया जाता था। पंजाबी में लिखे गए उनके छन्दों को आदि ग्रंथ में उद्धृत किया गया।

बाबा फरीद के सबसे प्रसिद्ध शिष्य शेख निजामुद्दीन औलिया (1238-1325 ई.) ने दिल्ली को चिश्ती सिलसिले का महत्वपूर्ण केन्द्र बनाने का उत्तरदायित्व सम्भाला। वह 1259 ई. में दिल्ली आये थे और दिल्ली में अपने 60 वर्षों के दौरान उनहोंने 7 सुलतानों का शासन काल देखा उन्हें राज्य के शासको और रईसों के साथ से और राजकाज से दूर रहना पसंद था। उनके लिए गरीबों को भोजन एवं कपड़ा वितरित करना ही त्याग था। उनके अनुयायियों के बीच विख्यात लेखक अमीर खुसरों भी थे। एक अन्य प्रसिद्ध चिश्ती संत शेख नसीरूद्दीन महमूद थे जो नसीरूद्दीन चिराग-ए-दिल्ली के नाम से लोकप्रिय थे। उनकी मृत्यु 1356 ई में हुई और उत्तराधिकारियों के अभाव के कारण चिश्ती सिलसिले के चेले पूर्वी और दक्षिणी भारत की ओर चले गए।

सुहरवर्दी सिलसिला

यह सिलसिला शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी द्वारा स्थापित किया गया था। यह भारत में शेख बहाउद्दीन जकारिया (1182-1262) द्वारा स्थापित किया गया था। उसने मुल्तान में एक अग्रणी खानख्वाह की व्यवस्था की जिसका शासक, उच्च सरकारी अधिकारी एवं अमीर व्यापारी दौरा किया करते थे। शेख बहाउद्दीन जकारिया ने खुलकर कबाचा के विरुद्ध इल्तुतमिश का पक्ष लिया एवं उससे शेख-उल-इस्लाम (इस्लाम के नेता) की उपाधि प्राप्त की। ध्यान दें कि चिश्ती संतों के विपरीत, सुहरावर्दियों ने राज्य के साथ निकट संपर्क बनाए रखा। उन्होंने उपहार, जागीरें और यहाँ तक की चर्च संबंधित विभाग में भी सरकारी नौकरियाँ स्वीकार कीं। सुहरावर्दी सिलसिला दृढ़ता से पंजाब और सिंध में स्थापित हो गया था। इन दो सिलसिलों के अतिरिक्त फिरदौसी सिलसिला, शतारी सिलसिला, कादिरी सिलसिला एवं नख्शबंदी सिलसिला भी थे।

9.2 सूफी आंदोलन का महत्व

सूफी आन्दोलन ने भारतीय समाज में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। भक्ति संतों की तरह, जो कि हिन्दू धर्म के भीतर अन्धविश्वासों को तोड़ने में लगे हुए थे, सूफियों ने भी इस्लाम के भीतर एक नए उदारवादी दृष्टिकोण का प्रचार किया। प्राचीन भक्ति एवं सूफी विचारों के बीच अन्तर्व्यवहार ने 15वीं सदी में अधिक उदार आंदोलनों की नीवं रखी। आप पढ़ेंगे कि संत कबीर एवं गुरु नानक जी ने सार्वभौमिक प्रेम पर आधारित गैर सांप्रदायिक धर्म का प्रचार किया। सूफी वहादत-उल-वजूद (प्राणियों की एकता) की अवधारणा में विश्वास करते थे जिसको इब्न-ए-अरबी (1165-1240) द्वारा बढ़ावा दिया गया। उन्होंने कहा कि सभी प्राणियों का अस्तित्व है। विभिन्न धर्म एक समान हैं। इस सिद्धान्त को भारत में प्रसिद्धि मिली। सूफियों और भारतीय योगियों के बीच विचारों का उपयुक्त आदान-प्रदान होता था। यहाँ तक कि हठ-योग ग्रंथ अमृत कुण्ड का अरबी एवं फारसी में अनुवाद किया गया। सूफियों का उल्लेखनीय योगदान समाज के गरीब एवं दलित वर्गों की सेवा में रहा। यद्यपि सुल्तान व उलेमा अधिकतर लोगों की दैनिक समस्याओं से अलग रहे। सूफी सन्तों ने जनता से निकट संपर्क बनाए रखा। निजामुद्दीन औलिया जरूरतमंद लोगों के बीच उपहार के वितरण के लिए प्रसिद्ध थे। चाहे वे लोग किसी भी धर्म या जाति के हों। यह कहा जाता है कि वे तब तक विश्राम नहीं करते थे जब तक वह खानख्वाह पर आने वाले प्रत्येक आगंतुक की प्रार्थना नहीं सुन लेते थे। सूफियों के अनुसार ईश्वर की भक्ति करने का सर्वोच्च ढंग मानवता की सेवा थी। वे हिन्दू एवं मुसलमानों के साथ समान व्यवहार करते थे। अमीर खुसरो ने कहा है ''हालांकि हिन्दू धर्म मेरी तरह नहीं है, परन्तु वह भी उन्हीं मान्यताओं में विश्वास करता है जिसमें मैं करता हूँ।''

सूफी आन्दोलन समानता और भाईचारे पर बल देता था। वस्तुतः इस्लाम धर्म द्वारा जो बल समानता पर दिया जाता था, उसका सम्मान उलेमाओं की अपेक्षा सूफी सन्त ही अधिक करते थे। सूफी सिद्धान्तों की रूढ़िवादियों द्वारा निन्दा की जाती थी। सूफी भी उलेमाओं की

निन्दा करते थे। वे सोचते थे कि उलेमा लोग भी लालच में फंसकर दुनियादारी में फंस चुके हैं ओर कुरान के मौलिक, प्रजातान्त्रिक और समतावादी सिद्धान्तों से परे जा रहे हैं यह रूढ़िवादी और उदारवादियों के बीच का यह संघर्ष सोलहवीं, सतरहवी और अठारहवीं शताब्दी तक जारी रहा। सूफी सन्तों ने सामाजिक सुधार भी लाने के प्रयत्न किए।

भक्ति संतों की तरह, सूफी संतों ने भी क्षेत्रीय साहित्य के विकास के लिए काफी योगदान किया। सूफी संतों में अधिकतर संत कवि थे जिन्होंने स्थानीय भाषाओं को लेखन के लिए चुना। बाबा फरीद ने धार्मिक कार्यों के लिए पंजाबी के उपयोग को चुना। शेख हमीदुद्दीन, इससे पहले, हिन्दवी में लिखते थे। उनके छन्द रहस्यमय फारसी कविता के प्रारम्भिक हिन्दवी अनुवाद का सबसे उत्तम उदाहरण हैं। सैयद गेसु दराज दक्षिणी हिन्दी के प्रथम लेखक थे। वे सूफीवाद को स्पष्ट करने के लिए फारसी भाषा से अधिक हिन्दी को अभिव्यक्ति के लिए अधिक उपयुक्त मानते थे। बहुत से सूफी ग्रन्थ बंगाली में भी लिखे गये।

निजामुद्दीन औलिया के अनुयायी अमीर खुसरो (1252-1325 ई.) इस समय के सबसे उल्लेखनीय लेखक थे। अमीर खुसरो को अपने भारतीय होने पर गर्व था। वे हिन्दुस्तान के इतिहास व संस्कृति को अपनी परंपरा के अंश के रूप में देखते थे। उन्होंने हिन्दी में छंद लिखे व फारसी छंदों का हिन्दी में प्रयोग किया। उन्होंने सबक-ए-हिन्दी के नाम से एक नई शैली बनाई। पंद्रहवीं सदी तक हिन्दी ने एक निश्चित आकार ग्रहण करना शुरू कर दिया था। कबीर एवं अन्य भक्ति सन्त हिन्दी का बड़े पैमाने पर उपयोग करने लगे थे।

पाठगत प्रश्न 9.1

1. 'उलेमा' कौन थे?

   ....

2. 'कलाम' से आप क्या समझते हैं?

   ....

3. दाता गंज बख्स कौन थे?

   ....

4. आइने-ए-अकबरी में कितने सिलसिलों के विषय में बताया गया है?

   ....

5. ख्वाजा-मुईनुद्दीन चिश्ती खानकाह कहाँ स्थित है?

   ....

6. इस्लामी कानून का अन्य नाम क्या है?

....

7. किसे चिराग-ए-दिल्ली (दिल्ली का चिराग) कहा जाता है?

....

9.3 भक्ति आंदोलन

भक्ति आंदोलन का विकास सातवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच तमिलनाडु में हुआ। यह नयनार (शिव भक्त) एवं अलवर (विष्णु भक्त) की भावनात्मक कविताओं में परिलक्षित होता है। ये संत धर्म को केवल औपचारिक पूजा के रूप में नहीं अपितु एक प्रिय बंधन के रूप में देखते थे जो कि उपास्य व उपासक के बीच के प्रेम पर निर्भर है। वे स्थानीय भाषाओं तमिल एवं तलुगु में लिखते थे अतः वे अधिक से अधिक लोगों तक अपनी बात पहुंचाने में समर्थ हुए।

समय के साथ, दक्षिण के विचार उत्तर तक पहुँच गए परंतु ये बहुत ही धीमी प्रक्रिया थी। संस्कृत, जो विचारों की प्रेषिका थी, उसे भी नया रूप दिया गया। इसी से यह पता चलता है कि भागवद् पुराण (नौंवी शताब्दी) प्राचीन पौराणिक रूप में नहीं लिखा गया। कृष्ण के बचपन एवं यौवन की घटनाओं पर केन्द्रित, इस रचना ने कृष्ण के कृत्यों का उपयोग सरल शब्दों में गहन दर्शन समझाने के लिए किया। यह रचना वैष्णवी आंदोलन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण मोड़ साबित हुई जो कि भक्ति आंदोलन का महत्वपूर्ण घटक था।

भक्ति विचारधारा के प्रसार के लिए एक प्रभावी तरीका स्थानीय भाषाओं का उपयोग था। भक्ति संतों ने अपने छंदों की रचना स्थानीय भाषाओं में की। उन्होंने संस्कृत में की गई रचनाओं का भी हिन्दी में अनुवाद किया जिससे व्यापक रूप से जनता उन्हें समझ सके। इस प्रकार ज्ञानदेव ने मराठी में लिखा, कबीर, सूरदास एवं तुलसीदास ने हिन्दी में अपने ग्रंथ लिखे। दूसरी ओर शंकरदेव असमी को लोकप्रिय बना रहे थे। चैतन्य व चंडीदास बंगाली में संदेश का प्रसार कर रहे थे तो मीराबाई हिन्दी व राजस्थानी में। इसके अतिरिक्त भक्ति कविताओं की रचना कश्मीरी, तेलुगु, कन्नड़, उड़िया, मलयालम, मराठी व गुजराती भाषा में भी की गई।

भक्ति संतों का यह विश्वास था कि सभी मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। वे भगवान के समक्ष सम्प्रदाय, जाति या धर्म में भेदभाव नहीं करते थे। वे स्वयं विविध पृष्ठभूमि से आए थे। रामानन्द जिनके शिष्यों में हिन्दु और मुसलमान दोनों ही होते थे, स्वयं एक ब्राह्मण परिवार से थे। उनका शिष्य कबीर एक बुनकर था। गुरू नानक गाँव के मुंशी के पुत्र थे। नामदेव दर्जी थे। संतों ने समानता पर बल दिया, जाति व्यवस्था की अवहेलना की और संस्थागत

धर्म का विरोध किया। संतों ने स्वयं को विशुद्ध धार्मिक विचारों तक ही सीमित नहीं रखा। उन्होंने सामाजिक सुधारों का भी समर्थन किया। उन्होंने सती व कन्या भ्रूण हत्या का विरोध किया। महिलाओं को कीर्तन में सम्मित होने के लिए प्रोत्साहित किया गया। मीराबाई एवं लल्ला (कश्मीर) के रचे हुए छंद आज भी लोकप्रिय हैं।

गैर सांप्रदायिक भक्ति संतों के बीच, सबसे उत्कृष्ट योगदान कबीर व गुरुनानक द्वारा दिया गया। हिन्दू एवं मुसलमानों के बीच की खाई पाटने के उद्देश्य से इनके विचार दोनों हिन्दू व मुस्लिम परंपराओं से लिए गए। अब हम इनके विषय में विस्तार से पढ़ेंगे।

कबीर (1440 ई. - 1518 ई.) एक ब्राह्मण विधवा के पुत्र माने जाते हैं जिसने उनका परित्याग कर दिया था। उनका पालन पोषण एक मुस्लिम बुनकर के घर में हुआ। कबीर मानते थे कि ईश्वर तक पहुँचने की राह व्यक्तिगत रूप से की गई भक्ति के अनुभव के माध्यम से है। उनका मानना था कि निर्माता एक है। वे परमेश्वर को कई नामों से बुलाते थे — राम, हरि, गोविन्द, अल्लाह, रहीम, खुदा इत्यादि। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि मुस्लिम उन्हें सूफी, तो हिन्दू उन्हें राम-भक्त कहते थे। सिखों ने उनके भजनों को आदि ग्रंथ में शामिल किया। कबीर के लिए धर्म के बाहरी पहलू व्यर्थ थे। उनके विचार तथा विश्वास उनके द्वारा रचे गए दोहों में प्रतिबिम्बित होते थे। उनके एक दोहे में बताया गया है कि यदि पत्थर को पूजने से ईश्वर मिलते हैं तो मैं पर्वत को क्यों न पूजूं। इससे अच्छा तो एक आटे की चक्की का पूजन है, क्योंकि कम से कम उससे एक परिवार का पेट तो भरता है।

कबीर ने धर्म में सादगी पर बल दिया और कहा कि भगवान को पाने का सबसे आसान तरीका भक्ति है। उन्होंने किसी तर्क के बिना किसी भी प्रचलित धार्मिक विश्वास को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। उनके अनुसार एक व्यक्ति कड़ी मेहनत किए बिना सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। कर्तव्य के त्याग की अपेक्षा में उन्होंने कर्म करने पर बल दिया। कबीर के एक भगवान में विश्वास के कारण दोनों हिन्दू और मुसलमान उनके शिष्य बन गए। कबीर के विचार किसी धर्म से संबंधित नहीं थे। उन्होंन समाज की संकीर्ण सोच को बदलने का प्रयास किया। उनकी कविताएँ सशक्त एवं सीधी सादी थी। ये कविताएँ आसानी से समझी जा सकती थीं और इनमें से कई तो हमारी रोजमर्रा की भाषा में ही लिखी गई हैं।

ननकाना पंथ के एक अन्य महानप्रतिपादक थे **गुरु नानक** (1469 ई. - 1539 ई.)। उनका जन्म तलवंडी (ननकाना साहिब) में हुआ। बचपन से ही आध्यात्मिक जीवन के प्रति उनका झुकाव था। वे दरिद्र एवं जरूरतमंद लोगों की सहायता करते थे। उनके शिष्य स्वयं को सिख कहते थे। (संस्कृत में शिष्य, पालि में शिखा — शिक्षा)।

गुरु नानक का व्यक्तित्व अपने आप में सादगी और शांति की मूर्त्ति था। उनका उद्देश्य समाज में मौजूदा भ्रष्टाचार एवं अपमानजनक प्रथाओं को दूर करना था। उन्होंने एक समतावादी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए एक नया रास्ता दिखाया। कबीर की तरह ही गुरू नानक भी समाज सुधारक के साथ साथ धार्मिक शिक्षक भी थे। उन्होंने समाज में महिलाओं

की स्थिति सुधारने के लिए कहा। उन्होंने कहा कि महिला जो राजाओं को जन्म देती हैं, उसके विषय में अनुचित नहीं बोलना चाहिए। उनके और अन्य सिखों की वाणी (शब्द) गुरू ग्रन्थ साहिब (सिखों के पवित्र ग्रन्थ) में संकलित की गई है।

वैष्णवी आंदोलन

आपने पढ़ा कि कबीर, नामदेव और गुरुनानक जैसे संतों ने परमेश्वर के निराकार रूप की भक्ति का प्रचार किया। इस अवधि के दौरान परमेश्वर के साकार रूप की भक्ति पर आधारित आंदोलन भी विकसित हुआ। यह आन्दोलन, जिसे वैष्णव आन्दोलन कहा जाता है, राम और कृष्ण पूजा पर आधारित है। जो भगवान विष्णु के अवतार माने जाते हैं। इस आंदोलन के मुख्य प्रतिपादक सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास और चैतन्य थे। उनके अनुसार मुक्ति का मार्ग कविता, गीत, नृत्य और कीर्तन के माध्यम से ही है।

सूरदास (1483-1563) प्रसिद्ध शिक्षक बल्लभाचार्य के एक शिष्य थे। वह एक नेत्रहीन कवि थे जिनके गीत कृष्ण पर केन्द्रित हैं। उनकी कृति, सूरसागर में कृष्ण के बचपन एवं यौवन का वात्सल्यपूर्ण एवं स्नेहपूर्ण वर्णन है।

मीराबाई (1503-1573) ने भी अपने गीतों के माध्यम से कृष्ण के लिए अपना प्यार व्यक्त किया है। वह कम उम्र में विधवा हो गई थी लेकिन उन्होंने अपना जीवन अपने प्रभु की भक्ति में स्वयं को उनकी दासी मानते हुए व्यतीत किया। उनके पद अपने आप में ही अनूठे हैं और इसीलिए वे आज भी लोकप्रिय हैं।

वैष्णव आंदोलन **चैतन्य** (1484-1533) के प्रयासों से पूर्व में भी फैल गया। चैतन्य कृष्ण को विष्णु के एक अवतार के रूप में नहीं अपितु भगवान के सर्वोच्च रूप मैं मानते थे। वे कृष्ण की भक्ति कीर्तन के माध्यम से व्यक्त करते थे जो कि घरों में, मंदिरों में और यहाँ तक कि सड़कों पर जुलूस के रूप में भी किये जाते थे। अन्य भक्ति संतों की तरह चैतन्य भी जाति का भेदभाव न करके हर किसी का स्वागत करते थे। इन सभी संतों ने लोगों में समानता की भावना का प्रचार किया। राम की पूजा रामानंद (1400 ई. - 1470 ई.) जैसे संतों द्वारा लोकप्रिय की गई। उन्होंने राम को सर्वोच्च देवता के रूप में माना। महिलाओं एवं निर्वासितों का भी स्वागत किया गया। राम के सबसे प्रसिद्ध भक्त तुलसीदास (1532 ई. - 1623 ई.) थे जिन्होंने रामचरिमान की रचना की।

वैष्णव संतों ने हिन्दू धर्म के व्यापक ढांचे के भीतर अपने दर्शन को विकसित किया। उन्होंने धर्म में सुधार और साथियों में परस्पर प्रीति का उपदेश दिया। मुख्य तौर पर उनका दर्शन मानवतावादी था।

9.4 भक्ति और सूफी आन्दोलन का महत्त्व

आपको याद होगा कि भक्ति आन्दोलन एक सामाजिक धार्मिक आंदोलन था जिसने धार्मिक कट्टरता और सामाजिक कठोरता का विरोध किया। इन आंदोलनों में अच्छे चरित्र और शुद्ध

विचार पर बल दिया गया। ऐसे समय में जब समाज निष्क्रिय हो गया था, भक्ति संतों ने नए जीवन और शक्ति का संचार किया। इन आंदोलनों ने विश्वास की एक नई भावना जागृत की और सामाजिक और धार्मिक मूल्यों को फिर से परिभाषित करने का प्रयास किया। कबीर और नानक जैसे संतों ने समाज की पुनर्व्यवस्था पर बल दिया। समतावादी चिन्तन के साथ सामाजिक समानता के लिए उनके द्वारा की गई पुकार ने कई दलितों को आकर्षित किया। हालांकि कबीर और नानक का नए धर्मों की संस्थापना का कोई इरादा न था, परंतु उनकी मृत्यु के बाद उनके समर्थक कबीर पंथी और सिक्ख कहलाए। भक्ति एवं सूफी संतों का महत्व उनके द्वारा बनाए गए नए वातावरण में दिखाई दिया जिसने बाद की शताब्दियों में भारत के सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक जीवन को प्रभावी किया। अकबर की उदारवादी विचार धारा इसी माहौल की उपज थी जिसमें अकबर पैदा एवं बड़े हुए थे। गुरुनानक के उपदेश पीढ़ी दर पीढ़ी चलते गए और एक अलग धार्मिक समूह के रूप में अपनी अलग भाषा, लिपि गुरुमुखी और धार्मिक पुस्तक गुरुग्रंथसाहिब के रूप में सामने आए। महाराजा रणजीत सिंह जी के नेतृत्व में सिक्ख उत्तरी भारत की राजनीति में एक अजेय राजनैतिक शक्ति के रूप में विकसित हुए। भक्ति और सूफी संतों के बीच अंतर्व्यवहार से भारतीय समाज पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

वहादत अल-वजूद के सूफी सिद्धांत उल्लेखनीय हिन्दू उपनिषदों के अत्यधिक समान थे। बहुत से सूफी कवि अवधारणाओं को समझाने के लिए फारसी के बजाए हिन्दी शब्दों का प्रयोग करना पसंद करते थे। इसीलिए सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी रचनाएँ हिन्दी में लिखीं। कृष्ण राधा, गोपी, जमुना, गंगा आदि शब्द साहित्य में इतने प्रचलित हो गए कि एक प्रसिद्ध सूफी मीर अब्दुल वाहिद ने अपने ग्रंथ 'हकीकए हिन्दी' में उनके इस्लामी पर्याय स्पष्ट किए। यह अन्त:क्रिया जारी रही और अकबर तथा जहांगीर ने उदारवादी धार्मिक नीति का अनुसरण किया।

भक्ति संतों के प्रसिद्ध दोहों और भजनों ने संगीत में एक नवचेतना का जागरण किया। कीर्तन में सामूहिक रूप से गाने के लिए नई धुनें बनाई गई। आज भी मीरा के भजन और रामायण की चौपाइयाँ प्रार्थना सभाओं में गाए जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 9.2

1. कौन सा कार्य वैष्णवी आंदोलन के इतिहास में मोड़ साबित हुआ?

   ....

2. आदिग्रंथ किस धर्म की पवित्र रचना है?

   ....

3. कबीर एवं गुरु नानक किस प्रकार जनता के बीच लोकप्रिय हुए?

   ....

4. ऐसा किसने कहा, ''महिलाओं के विषय में बुरा नहीं बोलना चाहिए जो राजाओं को जन्म देती हैं।''

....

5. 'सूरसागर' के रचयिता कौन हैं?

....

मध्यकालीन भारत में दर्शन

प्रमुख धार्मिक आंदोलन रहस्यवादियों द्वारा लाए गए। उन्होंने धार्मिक विचारों एवं विश्वासों में योगदान किया। भक्ति संत जैसे — वल्लभाचार, रामानुज, निम्बार्क एक नई दार्शनिक सोच लाये जिसका मूल शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धान्त में था।

रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत

विशिष्टाद्वैत का तात्पर्य है संशोधित अद्वैतवाद। इस दर्शन के अनुसार अंतिम वास्तविक सत्ता ब्रह्म (ईश्वर) है एवं पदार्थ व आत्मा उसके गुण हैं।

श्रीकंठाचार्य का शिवाद्वैत

इस दर्शन के अनुसार परब्रह्म शिव हैं जो शक्ति से संपन्न हैं। शिव इस संसार के भीतर एवं बाहर व्याप्त हैं।

माधवाचार्य

द्वैतवाद है जो गैर द्वैतवाद एवं शंकराचार्य के अद्वैतवाद के विरुद्ध है। उनका मानना है कि ये संसार माया नहीं है अपितु मतभेदों से पूर्ण यथार्थ है।

निम्बारकाचार्य का द्वैताद्वैत

द्वैताद्वैत का तात्पर्य अद्वैतवाद। इस दर्शन के अनुसार ईश्वर ने स्वयं को संसार एवं आत्मा के रूप में प्रकट किया है। परंतु यह संसार व आत्मा ब्रह्म से भिन्न हैं। वे ईश्वर के सहारे से जीवित रह सकते हैं। वे अलग हैं, परंतु एक-दूसरे पर निर्भर हैं।

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत

वल्लभाचार्य ने वेदांत सूत्र एवं भगवद् गीता पर टीका लिखा। उनके अनुसार ब्रह्म श्रीकृष्ण थे जिन्होंने स्वयं को आत्मा और पदार्थ के रूप में प्रकट किया। परमात्मा और आत्मा अलग नहीं हैं अपितु एक हैं। उन्होंने शुद्ध अद्वैतवाद पर बल दिया। उनका दर्शन पुष्टिमार्ग (अनुग्रह की राह) एवं सम्प्रदाय रुद्रसंप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

आपने क्या सीखा

- भक्ति और सूफी आंदोलन हिन्दू और इस्लाम के अन्तर्गत उदारवादी आंदोलन थे जिन्होंने इंसान और भगवान के बीच के नए और अधिक व्यक्तिगत संबंध पर बल दिया।
- मनुष्य का सार्वभौमिक प्रकम और भाईचारा, सूफी आंदोलनों का संदेश था।
- एक ईश्वर की अवधारणा में अपने विश्वास की वजह से सूफी सन्त हिन्दू विचारों के साथ एक वैचारिक संबंध स्थापित करने में सक्षम हुए।
- भक्ति आंदोलन नयनार और अलवर के मध्य विकसित हुआ और उन्होंने भक्ति पर आधारित देवपूजा की एक नई विधि पर बल दिया।
- भक्ति संत निर्गुण और सगुण उपासकों में विभाजित हो गए।
- निर्गुण की अपेक्षा सगुण उपासक देवता को राम या कृष्ण के एक निश्चित रूप में देखते हैं।
- भक्ति और सूफी संतों ने मध्यकालीन भारतीय समाज में एक उदारता की नीवं डालने में तथा स्थानीय भाषाओं और उनके साहित्य में जबरदस्त विकास को बढ़ावा दिया।

पाठान्त प्रश्न

1. इस्लाम में सूफी आंदोलन ने प्रगति कैसे की?

   ....

2. आप चिश्ती सिलसिले और सुहरावर्दी सिलसिले में क्या अन्तर देखते हैं?

   ....

3. भक्ति संत और सूफी संत एक ही सिक्के के दो पहलू थे। विस्तार से बताएं।

   ....

4. गुरु नानक और कबीर के बीच क्या समानता थी?

   ....

5. भारत में वैष्णव आंदोलन पर एक अनुच्छेद लिखें।

   ....

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1 1. रूढ़िवादी सुन्नी विचारों वाले विद्वान

2. इस्लाम क्षेत्र के रूढ़िवादी सिद्धांत

3. अल-हुजवरी

4. चौदह

5. शरीया

6. अजमेर

7. शेख नसीरूद्दीन महमूद

9.2 1. भागवत पुराण

2. सिक्ख धर्म

3. ये विचार हिन्दू एवं मुस्लिम परम्पराओं से लिए गए थे। उन्होंने सरल भाषा का प्रयोग किया।

4. गुरु नानक

5. सूरदास

10

आधुनिक भारत में धार्मिक सुधार आन्दोलन

आज हम बहुत भाग्यशाली हैं। हम विदेशी शासन से मुक्त हैं और कई अन्य कट्टरताओं से भी मुक्त हुए हैं जिन्हें हमारे पूर्वज झेलते रहे हैं। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय समाज जातिपाँति व भेदभाव से जकड़ा हुआ था, कट्टरपन्थी और कठोर था। इसमें कुछ ऐसी प्रथाएं अपनाई जा रही थीं जो मानवता की भावनाओं या मूल्यों पर आधारित नहीं थीं बल्कि केवल धर्म के नाम पर अनुपालित की जा रही थीं। अतः समाज में परिवर्तन आवश्यक था। जब अंग्रेज भारत में आए, तो उन्होंने अंग्रेजी भाषा और साथ ही कुछ नए विचारों का भी प्रचार किया। ये विचार थे स्वतन्त्रता के, सामाजिक और आर्थिक समानता के, मातृत्व के, प्रजातन्त्रवाद के और न्याय के जिनका भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। हमारे देश के सौभाग्य से यहाँ कुछ ऐसे प्रबुद्ध भारतीय थे जैसे राजा राम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती एवं कई अन्य जो इन कुरीतियों से लड़ने और समाज को सुधारने के लिए कटिबद्ध थे जिससे भारत भी पश्चिम का मुकाबला कर सके।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आपः–

- धार्मिक और सामाजिक सुधारों की कुछ समान विशेषताओं की पहचान कर सकेंगे;
- धार्मिक सुधारों को लागू करने में राजा राम मोहन राय और उनके ब्रह्मसमाज की भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे;
- प्रार्थना समाज को एक ऐसी संस्था के रूप में जान सकेंगे जिसने धार्मिक और सामाजिक सुधारों को क्रियान्वित किया;
- आर्यसमाज और इसके सामाजिक और धार्मिक सुधारों को लागू करने वालो की विचारधारा की व्याख्या कर सकेंगे;
- 19वीं शताब्दी में भारतीय जागृति हेतु रामकृष्ण मिशन के योगदान की समीक्षा कर सकेंगे;

- प्राचीन भारतीय धर्म को प्रोत्साहित करने में थियोसोफिकल सोसायटी द्वारा किए गए प्रयासों का मूल्यांकन कर सकेंगे; तथा
- मुसलमानों में सांस्कृतिक और शैक्षिक सुधार लाने में अलीगढ़ आन्दोलन के योगदान की समीक्षा कर सकेंगे;
- सिक्खों और पारसियों द्वारा समाज को प्रबुद्ध करने के लिए किए गए सुधारों की समीक्षा कर सकेंगे।

10.1 धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनों की समान विशेषताएँ

19 वीं सदी के उत्तरार्द्ध से कई भारतीय और यूरोपीय विद्वानों ने प्राचीन भारत के इतिहास, दर्शन, विज्ञान, धर्म और साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया। भारत की अतीत की शानदार उपलब्धियों ने भारतीयों में अपनी सभ्यता के प्रति गर्व की भावना का विकास किया। इस ज्ञान से सुधारकों को अमानवीय प्रथाओं अंधविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए धार्मिक और सामाजिक सुधार कार्य करने में सहायता प्राप्त हुई।

क्योंकि अब वे धार्मिक विश्वासों से परिचित हो चुके थे, अतः सामाजिक सुधार के अधिकांश आन्दोलन धार्मिक प्रकृति के थे। ये सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलन सभी भारतीय समुदायों में प्रचलित हो गए। उन्होंने धार्मिक कट्टरता, अन्धविश्वासों और पुरोहित वर्ग के आधिपत्य का जम कर विरोध किया। उन्होंने जाति भेद और अस्पृश्ता, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बालविवाह, सामाजिक भेदभाव और निरक्षरता के विरूद्ध कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ सुधारकों का साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेज अधिकारी भी दे रहे थे और कुछ सुधारक अंग्रेजी सरकार द्वारा कुछ सुधार कार्यों के पक्ष में बनाए गए अधिनियमों का भी समर्थन कर रहे थे।

10.2 ब्रह्मसमाज और राजाराम मोहन राय

आज स्त्री और पुरुष कुछ अधिकारों और स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहे हैं। पर क्या आप जानते हैं कि ये सब हमें कुछ सुधारकों के अनथक प्रयत्नों के द्वारा ही प्राप्त हुए हैं। इस अवधि के महान सुधारकों में राजाराम मोहन राय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने पूर्व और पश्चिम का एक सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया। एक महान साहित्यिक प्रतिभा से युक्त और भारतीय संस्कृति के विशेषज्ञ होते हुए भी उन्होंने ईसाई और इस्लाम धर्म का विशेष रूप से अध्ययन किया जिससे कि हम दोनों धर्मों को भलीभांति समझ सकें। वह कुछ प्रथाओं के कट्टर विरोधी थे जो उस समय धार्मिक स्वीकृति भी प्राप्त कर चुकी थी।

उनका प्रमुख ध्यान इस ओर था कि हिन्दू धर्म का मूर्ति पूजा, यज्ञादि कर्मकाण्ड और अन्य निरर्थक धार्मिक कृत्यों से कैसे पीछा छुड़ाया जाय। वे पुरोहित वर्ग को इन प्रथाओं को प्रोत्साहित करने के लिए दोषी ठहराते थे। उनकी राय थी कि सभी प्रमुख प्राचीन ग्रन्थ एकेश्वरवाद अर्थात् एक ब्रह्म की उपासना का उपदेश देते हैं। धार्मिक सुधारों के क्षेत्र में उनकी

सबसे बड़ी उपलब्धि थी 1828 ई. में ब्रह्म समाज की स्थापना। ब्रह्म समाज सामाजिक सुधारों का एक महत्त्वपूर्ण संगठन था। ब्रह्म समाज ने मूर्तिपूजा का विरोध किया और निरर्थक रीतिरिवाजों की निन्दा की। इस समाज ने अपने सदस्यों को किसी भी धर्म का विरोध करने के लिए मना किया। इसके विपरीत यह सभी धर्मों की एकता में विश्वास करता था। राजा राममोहन राय विश्वास करते थे कि मनुष्य को सत्य और परोपकार का मार्ग अपनाना चाहिए और झूठ और अन्धविश्वासों पर आधारित प्रथाओं को छोड़ देना चाहिए।

राजा राम मोहनराय केवल धार्मिक सुधारक ही नहीं थे बल्कि सामाजिक सुधारक भी थे। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी 1929 ई. में सती प्रथा को दूर करवाना। राजा राममोहनराय ने अनुभव किया कि हिन्दु महिलाओं की समाज में बहुत ही निम्न स्थिति थी। अत: वे महिलाओं के अधिकारों के प्रबल समर्थक के रूप में कार्य करने लगे। वे कई वर्षों तक सती प्रथा को बन्द करने के लिए कठिन परिश्रम करते रहे। 1818 ई. के प्रारम्भ में वह 'सती' विषय पर जनता में जागृति लाने के लिए निकल पड़े। एक ओर वे प्राचीन पवित्र ग्रन्थों से उद्धरणों द्वारा ये सिद्ध करने पर जुटे हुए थे कि हिन्दु धर्म सती प्रथा के विरूद्ध है और दूसरी ओर वे लोगों से दया, तर्क और मानवता के आधार पर आग्रह करते थे। उन्होंने कलकत्ता में विधवाओं के रिश्तेदारों को उन्हें स्वयं को जलाने की योजना के विरूद्ध समझाने के लिए जलते हुए श्मशान घाटों का भी दौरा किया। उनके सती प्रथा के विरूद्ध अभियान ने कट्टरपंथी हिन्दुओं को नाराज कर दिया जो हर प्रकार से उन पर आक्रमण करने लगे।

राजा राममोहन राय भारतीय समाज में प्रचलित जाति व्यवस्था के भी सख्त विरोधी थे। हृदय की गहराइयों से एक मानवतावादी और प्रजातान्त्रिक विचारों के होने के कारण उन्होंने जाति व्यवस्था के विरोध में लिखना और भाषण देना प्रारम्भ किया। एक अन्य महत्त्वपूर्ण विषय जो उनकी चिन्ता का विषय बना हुआ था, वह था हिन्दु बहुदेवतावाद। और उपनिषदों के अध्ययन से उन्हें यह कहने का बल मिला कि प्राचीन हिन्दु धर्म एकेश्वरवाद में विश्वास करता है इसलिए वे बहुदेवतावाद और मूर्तिपूजा के विरूद्ध हैं। वास्तव में वह कोई नया धर्म नहीं प्रारम्भ करना चाहते थे बल्कि वैदिक धर्म को रूढ़िवादी अज्ञानतापूर्ण अन्धविश्वासों से मुक्त करवाना चाहते थे। उन्होंने घोषणा की कि सभी धर्मों और सम्पूर्ण मानवता के लिए भी एक ही भगवान है। उन्होंने बंगाली और अंग्रेजी में लिखा। वह अंग्रेजी शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। वह फारसी भाषा में भी प्रवीण थे और प्रारम्भ में उनके कुछ बहुत अधिक उदार और तर्कपूर्ण विचार उस भाषा में ही प्रकाशित हुए।

उन्होंने बहुविवाह (एक व्यक्ति का कई पत्नियाँ रखना) तथा बालविवाह का भी विरोध किया। वे महिलाओं की शिक्षा पर भी बल देते थे और उनके जायदाद में उत्तराधिकार का भी समर्थन करते थे। वे महिलाओं की पराधीनता के भी सख्त विरोधी थे और इस बात का भी पूर्ण खण्डन करते थे कि स्त्रियाँ बुद्धि में या नैतिकता में किसी भी प्रकार से कम हैं। उन्होंने विधवा विवाह का भी पूर्ण समर्थन किया।

अपने विचारों को क्रियान्वित करने के लिए राजा राम मोहन राय ने 1828 ई. में ब्रह्म सभा की की नींव डाली जो बाद में ब्रह्म समाज के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसके द्वार सभी के लिए खुले थे चाहे वे किसी भी वर्ण के, विश्वास के, जाति के, राष्ट्रीयता या धर्म के क्यों न हो। वे मानवता के सम्मान पर बल देते थे, मूर्ति पूजा का विरोध करते थे और सती प्रथा जैसी

कुरीतियों का जम कर विरोध करते थे। यह कोई अलग धर्म का प्रचार करने के लिए नहीं बनी थी बल्कि एक ऐसा स्थान था जहाँ एक ईश्वर में विश्वास रखने वाले लोग मिल सकें और प्रार्थना कर सकें। यहाँ कोई मूर्त्ति नहीं होती थी और न ही किसी प्रकार के यज्ञ या पूजा पाठ का विधान था।

द्वारकानाथ टैगोर के सुपुत्र देवेन्द्रनाथ टैगोर (1817-1905) (ब्रह्मसमाज के संस्थापाक सदस्य) ने राममोहन राय के बाद ब्रह्मसमाज का नेतृत्व संभाला और राजा राम मोहन राय के विचारों का समर्थन करते हुए ब्रह्मसमाज में नवजीवन का संचार किया। केशवचन्द्र सेन (1838-1884) ने टैगोर से समाज का नेतृत्व प्राप्त किया। ब्रह्मसमाज के आदर्श थे-व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय एकता, दृढ़ विश्वास तथा सहयोग और सभी सामाजिक संस्थाओं और सामाजिक संबंधों का लोकतान्त्रीकरण। इस प्रकार यह पहली सुसंगठित संस्था बन गई जो राष्ट्रीय जागृति को प्रोत्साहित कर रही थी और भारतीयों के लिए एक नये युग का सूत्रपात कर रही थी। लेकिन फिर आन्तरिक मतभेद के कारण यह संस्था कमजोर पड़ गई और इसका प्रभाव केवल शहर में रहने वाले पढ़ेलिखे वर्ग तक ही सीमित रहा परन्तु इसने बंगाल के बौद्धिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ा।

10.3 प्रार्थना समाज और राणाडे

प्रार्थना समाज की स्थापना सन् 1876 ई. में बम्बई में डा. आत्माराम पाण्डुरंग (1825 ई. - 2898 ई.) द्वारा की गई थी। इसका उद्देश्य था विवेकपूर्ण पूजा आराधना और समाज सुधार का कार्य करना इसके दो प्रमुख सदस्य थे श्री आर सी मजुमदार, और न्यायमूर्त्ति महादेव गोविन्द राणाडे। इन्होंने अन्तर्जातीय भोज, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा पुनर्विवाह और महिलाओं तथा दलित वर्ग के उद्धार जैसे समाज सुधार के कार्यों में अपना जीवन लगा दिया।

महादेव गोविन्द राणाडे (1842 ई. -1901 ई.) ने अपना समस्त जीवन प्रार्थना समाज को ही समर्पित कर दिया था। वे विधवा पुनर्विवाह ऐसोसिएशन (1861) तथा दक्कन एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की। उन्होंने पूना सार्वजनिक सभा को भी स्थापित किया। राणाडे के लिए धर्म सुधार और समाज सुधार में कोई अन्तर नहीं था। उनका यह भी विश्वास था कि यदि धार्मिक विचार कट्टरपंथी होंगे तो सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में सफलता नहीं मिल सकेगी।

यद्यपि प्रार्थना समाज पर ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों का गहरा प्रभाव था फिर भी इसने मूर्त्तिपूजा और जातिप्रथा का इतना गहरा विरोध नहीं किया। ये वेद को भी अन्तिम वाक्य नहीं समझते थे, ये पुनर्जन्म और अवतारवाद के सिद्धांत को भी स्वीकार नहीं करते थे। इसका एकमात्र केन्द्रीय विचार था 'एकेश्वरवाद में विश्वास करना।'

10.4 डेरोजियो और युवा बंगाल आन्दोलन

हेनरी लुई विवियन डेरोजियो ने कलकत्ता के हिन्दू कालेज में एक प्राध्यापक के रूप में कार्य करना प्रारम्भ किया। वह स्काटलैंड से कलकत्ते में घड़िया बेचने के लिए आए थे लेकिन बाद

में उन्होंने बंगाल में आधुनिक शिक्षा के प्रसार को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। डेरोजियो ने अपने अध्यापन के माध्यम से क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया और उन्होंने साहित्य दर्शन, इतिहास और विज्ञान पर वाद-विवाद एवं चर्चा करने के लिए गए संघ की भी स्थापना की। उन्होंने अपने अनुयायियों और विद्यार्थियों को सभी सत्ताओं को चुनौती देने के लिए प्रेरणा दी। डेरोजियो और उसके प्रसिद्ध अनुयायी जिन्हें लोग डोरोजियन और युवा बंगाल के नाम से बुलाते थे, आग उगलने वाले देशभक्त माने जाते थे। वे फ्रेंच विद्रोह (1789 ई.) के आदर्शों और ब्रिटेन के उदार विचारों का सम्मान करते थे। डेरोजियो मात्र 22 वर्ष की उम्र में हैजे से मृत्यु को प्राप्त हुए। डेरोजियो की सेवामुक्ति और अचानक देहान्त के बाद भी युवा बंगाल आन्दोलन जारी रहा। नेतृत्व का अभाव हो जाने पर भी इस वर्ग के सदस्यों ने अपने क्रान्तिकारी विचारों का अध्यापन और पत्रकारिता के माध्यम से जारी रखा।

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर

बंगाल के एक अन्य प्रसिद्ध सुधारक थे ईश्वर चन्द्र विद्यासागर (1820 ई. - 1891 ई.) मूर्धन्य विद्वान होते हुए उन्होंने महिलाओं की मुक्ति के विषय में अपने जीवन को समर्पित कर दिया। उन्हीं के ही अशक प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप विधवाओं के विवाह के मार्ग में आने वाली कठिनाइयाँ 1856 के एक कानून के द्वारा दूर हो सकीं। उन्होंने बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ाने में अहम भूमिका निभाई और स्वयं लड़कियों के कई स्कूल खोले और खुलवाए। विद्यासागर ने धार्मिक प्रश्नों के विषय में अधिक चिन्ता नहीं दिखाई। फिर भी वे उन लोगों के विरुद्ध थे जो धर्म के नाम पर सुधारों का विरोध करते थे।

10.5 सुधार आन्दोलनों का पश्चिमी और दक्षिणी भारत में प्रसार

बंगाल के बाद जो सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र जहाँ सुधार आन्दोलन फैले वह था पश्चिमी भारत। **बाल शास्त्री बाम्बेकर** बम्बई में प्रारम्भिक सुधारकों में से एक थे। उन्होंने ब्राह्मणों की रूढ़िवादिता पर आक्रमण किया और हिन्दु धर्म का सुधार करने का प्रयत्न किया।

1849 में **परमहंस मण्डली** पूना, सतारा और महाराष्ट्र के अन्य नगरों में स्थापित की गई। इनके अनुयायी एक ईश्वर में विश्वास करते थे और जाति प्रथा का विरोध करते थे। इनकी बैठकों में इनके सदस्य निम्न जाति के लोगों द्वारा बनाया हुआ भोजन करते थे। वे महिलाओं की शिक्षा का समर्थन करते थे और विधवा विवाह के पक्ष में थे। **महादेव राणाडे** सोचते थे कि सामाजिक सुधारों के बिना राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों में भी किसी प्रकार की उन्नति कर पाना सम्भव नहीं है। वह हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे।

पश्चिमी भारत के दो अन्य महान सुधारक थे **गोपाल हरि देशमुख लोकहितवादी,** और **ज्योतिराव गोविन्दराव फुले** जिन्हें **ज्योतिबा** फूले के नाम से जाना जाता है। उन्होंने नारियों के उद्धार के लिए कार्य किये, महिलाओं और दलितों के हितों का बीड़ा उठाया। ज्योतिबा फूले ने अपनी पत्नी के साथ 1857 ई. में पूना में एक बालिका विद्यालय खोला। उन्होंने दलितों के

बच्चों के लिए भी एक स्कूल प्रारम्भ किया। ज्योतिबा फुले महाराष्ट्र में विधवा विवाह आन्दोलन के अग्रणी सेनानी बने। उन्होंने ब्राह्मणों के आधिपत्य को चुनौती दी और जनसामान्य को संगठित करने का प्रयास किया। उन्होंने किसानों के हितों की भी वकालत की और महाराष्ट्र में ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सक्रिय योगदान किया। ज्योतिबा को उनके **दीन दु:खियों** के उद्धार कार्य के लिए 'महात्मा' की उपाधि दी गई। 1873 ई. में उन्होंने अपने आन्दोलन को सशक्त और लोकप्रिय बनाने के लिए 'सत्यशोधक संस्था' की स्थापना की।

देश के दक्षिणी भाग में **कन्दुकुरी वीरेसलिंगम** (1848 ई. - 1919 ई.) ने आन्ध्र में विधवा विवाह और बालिकाओं की शिक्षा के समर्थन में आन्दोलन का नेतृत्व किया। मद्रास में 1864 ई. में स्थापित 'वेद समाज' ने जातिगत भेदभाव का खण्डन किया और विधवा विवाह तथा नारी शिक्षा के लिए सक्रिय योगदान किया। इस समाज ने रूढ़िवादी हिन्दूधर्म के अन्धविश्वासों और रीतिरिवाजों की निन्दा की और एक सर्वोच्च परमात्मा की शक्ति में विश्वास का प्रचार किया। चेम्बेटी श्रीधरालु नायडू वेद समाज के सबसे लोकप्रिय नेता थे। उन्होंने 'वेद समाज' के ग्रन्थों को तमिल और तेलुगु में अनूदित किया।

तथाकथित दलितवर्ग और भारतीय समाज के उत्पीड़ित वर्गों के उत्थान के लिए विशेषरूप से प्रयत्नशील एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन **नारायण गुरू द्वारा** केरल में (1854 ई.-1928 ई.) में प्रारम्भ किया गया। 1903 में उन्होंने 'श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्' नामक संस्था सामाजिक सुधार कार्य को आगे बढ़ाने के लिए स्थापित की। श्री नारायण गुरू जाति के आधार पर भेदभाव को निरर्थक समझते थे और वे अपने प्रसिद्ध विचार-एक जाति, एक धर्म और एक ईश्वर' का प्रतिपादन करते थे।

पाठगत प्रश्न 10.1

1. उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिनके कारण ब्रह्मसमाज की स्थापना हुई?

   ....

2. ब्रह्मसमाज के नियम क्या थे?

   ....

3. प्रार्थना समाज ने सामाजिक विषमताओं को दूर करने में कैसे सहायता की?

   ....

4. एम जी राणाडे कौन थे?

   ....

10.6 स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824 ई. - 1883 ई.) और आर्यसमाज

आप किसी दिन आर्य समाज के सत्संग में जाकर देखिए। आप वहाँ अनेक बहनों को सत्संग में भाग लेते देखेंगे। वे यज्ञ करती हुई और वेदपाठ करती हुई भी दिखाई देंगी। यह मूलशंकर

के मौलिक योगदान का ही कमाल है जो गुजरात से धार्मिक सुधार आन्दोलन के महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि थे। बाद में वे दयानन्द सरस्वती (1824 ई. – 1883 ई.) जाने गए। उन्होंने 1875 ई. में आर्यसमाज की स्थाना की। उत्तरी भारत में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सबसे प्रभावशाली धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलन का नेतृत्व किया। उनका मानना था कि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने वेद रूपी ज्ञान मानव मात्र के लिए दिया और आधुनिक विज्ञान के सभी मूल तत्त्व वेदों में खोजे जा सकते हैं। वे मूर्त्ति पूजा के विरोधी थे, कर्मकाण्ड और पुरोहितवाद, विशेष रूप से प्रचलित जातिपांति के दुर्व्यवहार और ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित हिन्दूधर्म की कट्टरता की निन्दा करते थे। उन्होंने पश्चिमी विज्ञान के अध्ययन का समर्थन किया। इन्हीं सिद्धान्तों के प्रचार हेतु उन्होंने पूरे देश में भ्रमण किया और 1875 ई. में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की।

उनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' है। उनके लेख और प्रवचन हिन्दी भाषा में होने के कारण सम्पूर्ण उत्तरी भारत में प्रचलित हो गए। आर्यसमाज के सदस्य बालविवाह का विरोध करते थे और विधवा विवाह का समर्थन। यह आर्य समाज उत्तर प्रदेश, राजस्थान और गुजरात में तीव्रता से लोकप्रिय होता चला गया।

समूचे उत्तरी भारत में शिक्षा के प्रचार और प्रसार कार्य के लिए बालकों और बालिकाओं के विद्यालयों और महाविद्यालयों का जाल बिछा दिया गया। लाहौर दयानन्द ऐंग्लो-वैदिक स्कूल शीघ्र ही पंजाब के एक प्रसिद्ध कालेज के रूप में विकसित हुआ। इन विद्यालयों में आधुनिक विधियों से हिन्दी और अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ाई करवाई जाती थी। लाला हंसराज ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1902 में स्वामीश्रद्धानन्द ने हरिद्वार में शिक्षा के पारम्परिक शास्त्रों के अध्ययन के लिए गुरूकुल की स्थापना की। यह प्राचीन आश्रमों की परिपाटी पर बनाया गया था।

आर्यसमाज ने भारत की जनता में स्वाभिमान और आत्मविश्वास की भावना को भरने का प्रयत्न किया। इससे राष्ट्रीयता का विकास हुआ। इसी के साथ-साथ इसका एक प्रमुख उद्देश्य था हिन्दूओं के अन्य धर्मों में परिवर्तन को रोकना। जो हिन्दू मुस्लिम या ईसाई बन गए थे उनको वापिस हिन्दू धर्म में लाने के लिए शुद्धि संस्कार का भी विधान दिया गया।

10.7 रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द

गदाधर चट्टोपाध्याय (1836 ई. – 1886 ई.) एक निर्धन ब्राह्मण पुजारी थे, जो बाद में रामकृष्ण परमहंस के नाम से जाने गये। उनकी शिक्षा प्रारम्भिक स्तर से आगे न बढ़ पाई। उन्होंने दर्शन तथा शास्त्रों में कोई औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की। उन्होंने अपना जीवन ईश्वर को समर्पित कर दिया था। उनका विश्वास था कि परमात्मा तक पहुँचने के अनेक मार्ग हैं और मानव सेवा ही ईश्वर की सेवा है, क्योंकि मानव ईश्वर का ही मूर्त रूप है। उनकी शिक्षाओं में साम्प्रदायिकता का कोई स्थान न था। मानवता में ही दिव्यता दिखाई देती थी और मानवता की सेवा को ही वे मोक्ष का साधन मानते थे।

नरेन्द्र नाथ दत्त (1863 ई. - 1902 ई.) रामकृष्ण परमहंस के सबसे प्रिय शिष्य थे जो बाद में **विवेकानन्द** के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने गुरू रामकृष्ण के सन्देश को पूरे संसार में, विशेष रूप से, अमेरिका और यूरोप में प्रसारित करने का प्रयत्न किया। विवेकानन्द स्वयं भारत की आध्यात्मिक विरासत पर गर्व का अनुभव करते थे परन्तु उनका विश्वास था कि कोई भी व्यक्ति या राष्ट्र दूसरों की संगति के बिना अलग थलग रह कर जीवित नहीं रह सकता। वे जाति प्रथा, कठोर कर्मकाण्ड तथा सदियों पुराने अन्धविश्वासों के सख्त विरोधी थे और स्वतन्त्रता, स्वतन्त्र चिन्तन और समानता के पक्षपाती थे।

विवेकानन्द हृदय की गहराइयों से सच्चे देशभक्त थे। उन्हें भारतीय संस्कृति के विकास में अगाध विश्वास था। भारतीय संस्कृति के महत्त्व और गौरव को पुनर्जीवित करने का अदम्य उत्साह था। उन्होंने भारतीय संस्कृति के उत्थान में हर सम्भव प्रकार से अपना योगदान किया।

स्वामी विवेकानन्द ने सभी धर्मों में एकता के रामकृष्ण जी की शिक्षा का प्रचार करने में स्वयं को लगा दिया। उन्होंने वेदान्त दर्शन का प्रचार किया जिसे वे सबसे अधिक विवेकपूर्ण दर्शन मानते थे।

जनसाधारण के उत्थान पर अत्यधिक बल देना ही विवेकानन्द के सामाजिक दर्शन का मुख्य लक्षण था। उनके अनुसार निर्धन और दलित लोगों की सेवा ही सर्वोत्तम धर्म है। इसी सेवा को संगठित करने के लिए उन्होंने 1897 ई. में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। आज तक इस मिशन ने राष्ट्रीय आपदाओं के समय समाज सेवा जैसे बाढ़, अकाल और महामारी के समय करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इसके द्वारा अनेक विद्यालय, हस्पताल और अनाथालय चलाए जा रहे हैं।

1893 ई. में उन्होंने अमेरिका में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म सम्मेलन (धर्मों की संसद) में भाग लिया। उन्होंने सिद्ध किया कि वेदान्त सभी लोगों से ही सम्बद्ध है न कि केवल हिन्दुओं से उनके भाषण का अन्य देशों के लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा, और इस तरह विश्व की दृष्टि में भारतीय संस्कृति के महत्व और गौरव में भी आशातीत वृद्धि हुई। यद्यपि उनका मिशन केवल धार्मिक प्रकृति का ही था लेकिन स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीय जीवन के सभी पक्षों में सुधार करने में रूचि रखते थे। वह लोगों की निर्धनता और दयनीय दशा को सुधारने के लिए बहुत चिन्तित रहते थे और कहते थे कि जन साधारण की परवाह न करना एक पाप है। वह स्पष्ट रूप से कहते थे- हम स्वयं अपनी दु:खी और गिरी हुई स्थिति के लिए उत्तरदायी हैं। ''वे लोगों का अपने मोक्ष के लिए स्वयं प्रयत्नशील होने की सलाह देते थे। इसी उद्देश्य से इस कार्य के लिए पूरी निष्ठा से जुड़े हुए कार्यकर्ताओं की टोलियों को रामकृष्ण मिशन की ओर से प्रशिक्षित किया गया। इस प्रकार विवेकानन्द ने सामाजिक अच्छाई या समाज सेवा पर बल दिया।

पाठगत प्रश्न 10.2

1. आर्य समाज की स्थापना किसने की?

....

2. पहला दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज कहाँ स्थापित किया गया था?

....

3. गदाधर चट्टोपाध्याय के अनुसार आप मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

....

4. स्वामी विवेकानन्द का मूल नाम क्या था?

....

5. स्वामी विवेकानन्द के अनुसार सर्वोच्च धर्म कौन सा था?

....

10.8 थियोसोफिकल सोसाइटी और एनी बेसेन्ट

आधुनिक भारतीय संस्कृति समाज, और धर्म के इतिहास में थियोसोफिकल सोसायटी ने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसकी स्थापना अमेरिका में एक रशियन अध्यात्मज्ञानी मैडम एच.पी ब्लेवेत्स्की और एक अमेरिकन कर्नल एच एस. आलकॉट ने 1875 ई. में की। इसका मुख्य उद्देश्य था प्राचीन धर्म, दर्शन और विज्ञान का अध्ययन, मानव में अन्तर्निहित शक्तियों का विकास और एक सर्व व्यापी विश्वबन्धुत्व की भावना को प्रोत्साहित करना।

भारत में इस सोसायटी का आरम्भ सन 1879 ई. में किया गया और इसका मुख्यालय 1886 ई. में मद्रास के समीप अडयार में स्थापित किया गया था। 1893 ई. में एनी बेसेन्ट के नेतृत्व में इसका प्रभाव बढ़ता गया। एनी बेसेन्ट ने देश के स्वतन्त्रता संग्राम में अहम भूमिका का निर्वाह किया था। उन्होंने तथा उनके साथियों ने हिन्दुओं के प्राचीन धर्म, जोरास्ट्रियनिज्म और बौद्ध धर्म के पुनरोद्धार और विकास के कार्य में अपने आप को समर्पित कर दिया। उन्होंने आत्मा के शरीर बदलने (पुनर्जन्म) के सिद्धान्त को भी स्वीकार किया। उन्होंने साथ ही सार्वभौमिक भ्रातृत्व भावना पर भी बल दिया। उन्होंने शिक्षित भारतीयों को अपने देश के प्रति गर्व अनुभव करने को प्रोत्साहित किया। एनी बेसेन्ट का आन्दोलन ऐसे पाश्चात्य देशों के लोगों द्वारा चलाया जा रहा था जो भारत की धार्मिक और आध्यात्मिक परम्पराओं को बहुत महत्त्व देते थे। इससे भारतीयों को पुन: आत्म विश्वास प्राप्त करने में सहायता मिली।

वस्तुत: एनी बेसेन्ट द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किए गए कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण थे। उन्होंने बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू महाविद्यालय की स्थापना की जिसको बाद में मदन मोहन मालवीय जी को सौंप दिया। मालवीय जी ने इस महाविद्यालय को बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में विकसित किया। यद्यपि थियोसोफिकल सोसायटी बहुत अधिक जन साधारण में लोकप्रिय नहीं हो पाई, परन्तु एनी बेसेन्ट के नेतृत्व में भारतीयों को जगाने के लिए जो कार्य किया गया वह उल्लेखनीय था। उन्होंने भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास करने के लिए बहुत कार्य किया। थियोसोफिकल सोसायटी का अड्यार में मुख्यालय ज्ञान का एक प्रमुख केन्द्र बन गया जिसके पुस्तकालय में संस्कृत के दुर्लभ ग्रन्थ उपलब्ध थे।

इस सोसायटी ने अस्पृश्यता और महिलाओं के उद्धार के लिए बहुत संघर्ष किया। एनी बेसन्ट ने अपना सम्पूर्ण जीवन भारतीय समाज की सेवा में लगा दिया। उन्होंने अपने मिशन का इन शब्दों में वर्णन किया–"भारत के प्राचीन धर्मों को पुनर्जीवित करना और सुदृढ़ करना ही प्रथम उद्देश्य है। इससे नया आत्म सम्मान अतीत के प्रति गौरव, और भविष्य में विश्वास उत्पन्न होगा जिसके फलस्वरूप देश प्रेम की भावना विकसित होगी और राष्ट्र के पुनर्निर्माण को बल मिलेगा।"

भारत में एनी बेसेंट की अनेक सफलताओं में से एक सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल की स्थापना है। एनी बेसेंट ने भारत को अपना स्थायी निवास बनाया और भारतीय राजनीति में सक्रिय भाग लिया। वे कहती थीं"– भारत की कई अन्य आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता है– राष्ट्रीय भावना का विकास और एक ऐसी शिक्षा जो भारतीय विचारों पर आधारित हो और पश्चिमी संस्कृति और विचारों से मुक्त होनी चाहिए।" उन्होंने सदा भारतीयों के लिए स्वशासन (Home rule) का समर्थन किया और स्वशासन के संदेश के प्रसार के लिए होमरूल लीग की स्थापना की। पूरे भारत में थियोसोफिकल सोसाइटी की शाखाएँ स्थापित की गई। उन्होंने एक पत्रिका थियोसोफिस्ट भी निकाली जिसका व्यापक प्रसार था। सोसाईटी ने विशेषत: दक्षिणी भारत में सामाजिक और धार्मिक सुधारों में बहुत योगदान किया। इसके अधिकांश कार्य श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा ही प्रभावित थे।

पाठगत प्रश्न 10.3

1. थियोसोफिकल सोसाईटी कहाँ स्थापित की गई थी?

   ....

2. थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना किसने की?

   ....

3. भारत में थियोसोफिकल सोसाइटी का मुख्यालय कहा था?

   ....

4. सन् 1916 ई. में होमरूल लीग किसने स्थापित की?

   ....

10.9 अलीगढ़ आन्दोलन और सैयद अहमद खाँ

अभी आपने हिन्दूधर्म की प्रथाओं और सामाजिक संस्थाओं में सुधार के विषय में पढ़ा। ऐसा ही एक सुधारवादी आन्दोलन इस्लाम धर्म में भी शुरू हुआ था। उच्च वर्गीय मुसलमान पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति के सम्पर्क में आने से बचते रहे और सन 1857 ई. के विद्रोह के बाद ही उनमें धार्मिक सुधार के आधुनिक विचार पनपने प्रारम्भ हुए। इस दिशा में नवाब अब्दुल लतीफ (1828–1893) द्वारा कलकत्ता में 1863 ई. में स्थापित मुहम्मदन लिटरेरी

सोसायटी के बाद ही हुआ। इस सोसाइटी ने आधुनिक विचारों की रोशनी में धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों पर विचार विमर्श को प्रोत्साहन दिया और साथ ही उच्च और मध्य वर्ग के मुसलमानों को पश्चिमी शिक्षा (अंग्रेजी शिक्षा) अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया। मुस्लिम जनता पर चिश्ती सूफी सन्तों के आन्दोलनों का भी प्रभाव पड़ा जिन्होंने न केवल परमात्मा को समर्पण कर देने की शिक्षा दी अपितु संतों की भी पूजा को भी प्रोत्साहित किया। एक अन्य आंदोलन दिल्ली में शाह वली उल्लाह से संबंधित है, जिन्होंने कट्टर धार्मिक प्रथाओं का विरोध किया और शिया सम्प्रदाय को तथा एकेश्वरवाद को पुनर्जीवित किया। लखनऊ में फिरंगीमहल की दार्शनिक और ज्ञानमयी परम्परा को नये शैक्षिक पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया और सम्पूर्ण भारत में 18वीं और 19वीं शताब्दी में इसका प्रचार भी किया गया।

मुस्लिम सुधारकों में सबसे ज्यादा उल्लेखनीय नाम उत्तर प्रदेश में रायबरेली के सैयद अहमद का था। उन्होंने बुनकरी उद्योग नगरी इलाहाबाद और पटना में उद्योग की गिरती स्थिति के कारण मुस्लिम कलाकारों को आकर्षित किया और उन्हें सामाजिक अस्थिरता के वातावरण में एक दृढ़ विश्वास के साथ सम्मान प्राप्त करने की सलाह दी। उन्होंने अनुभव किया कि जब तक मुस्लिम ब्रिटिश राज्य के परिवर्तित वातावरण के अनुसार अपने को न ढालेंगे, तब तक वे सम्मान और सम्पन्नता के नये अवसरों से वंचित ही रहेंगे। वे आधुनिक वैज्ञानिक विचारों से बहुत अधिक प्रभावित थे और सारे जीवन इस्लाम के साथ उनका सामंजस्य स्थापित करने के लिए काम करते रहे। उन्होंने कुरान की व्याख्या बुद्धिवाद और विज्ञान की रोशनी में की। उन्होंने लोगों से आग्रह किया कि वे आलोचनात्मक दृष्टिकोण और विचारों की स्वतन्त्रता को अपनाएँ। उन्होंने धर्मान्धता, संकीर्णता और अलगथलग रहने की प्रवृत्ति के विरूद्ध भी लोगों को सावधान किया। उन्होंने लोगों को उदारवृत्ति वाला और सहनशील बनने का उपदेश दिया। 1883 ई. में उन्होंने कहा "अब हम दोनो ही (हिन्दू और मुस्लिम) भारत की हवा में ही सांस लेते हैं, गंगा और यमुना का पवित्र जल पीते हैं, और यहीं की पैदावार खाकर जीवित है। हम एक राष्ट्र हैं और देश की प्रगति और भलाई हमारी एकता, पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम पर निर्भर है जबकि पारस्परिक असहमति जिद और विरोध तथा पारस्परिक दुर्भावनाएँ निश्चय ही हमारा सर्वनाश कर देंगी।"

सैयद अहमद खां का सही विश्वास था कि अकेलेपन की प्रवृत्ति मुसलमानों को बर्बाद कर देगी और इसको रोकने के लिए उन्होंने बाहरी दुनिया की सांस्कृतिक शक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने ब्रिटिश शासकों की मुस्लिमों के प्रति दुर्भावना को भी दूर करने का प्रयत्न किया जिन्हें वे अपना असली शत्रु समझते थे।

उनका विश्वास था कि मुस्लिमों का धार्मिक और सामाजिक जीवन आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान और संस्कृति की सहायता से सुधारा जा सकता है। इसलिए आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा देना उनका पहला कार्य था। एक सरकारी अधिकारी होने के कारण उन्होंने कई स्थानों पर विद्यालय खोले। उन्होंने कई पश्चिमी पुस्तकों का उर्दु में अनुवाद करवाया। उन्होंने अलीगढ़ में मुहम्मदन ऐंग्लो-ओरियन्टल कालेज की 1875 ई. में स्थापना की। यह कालेज पाश्चात्य विज्ञानों और संस्कृति का प्रचार करने के लिए बनाया गया था। बाद में यही कालेज अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के नाम से विकसित हुआ।

सैयद अहमद खाँ द्वारा मुसलमानों के बीच शुरू किया गया उदार सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन अलीगढ़ आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ क्योंकि यह आन्दोलन अलीगढ़ से ही प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन का केन्द्र एंग्लो-ओरियन्टल कालेज ही था। यह आन्दोलन मुस्लिमों में आधुनिक शिक्षा के प्रसार हेतु चलाया गया था यद्यपि इसका उद्देश्य इस्लाम से नाता तोड़ना कतई भी न था। यह भारतीय मुस्लिमों के लिए एक केन्द्रीय शैक्षिक संस्था बन गया था। इसके बाद मुस्लिमों में जो भी जागृति आई, वह सब अलीगढ़ आन्दोलन के ही कारण थी, देश के विभिन्न भागों में बिखरी हुई मुस्लिम जनता के लिए एक केन्द्रीय स्थल प्रदान किया। इसने उन सब के विचारों को एक सामान्य भावस्थल प्रदान किया और एक समान भाषा उर्दु प्रदान की। उर्दू में ग्रन्थों को सम्पादित करने के लिए एक मुस्लिम प्रेस भी विकसित किया गया। सैयद अहमद के प्रयत्नों से सामाजिक वातावरण में भी इसी के साथ विस्तार हुआ। उन्होंने सामाजिक सुधारों के लिए भी कार्य किया। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया और पर्दा प्रथा के बहिष्कार पर भी बल दिया। वह बहुविवाह के भी विरूद्ध थे।

इसी के साथ अनेक अन्य सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन भी हुए जिन्होंने किसी न किसी रूप में मुस्लिम जनता में राष्ट्रीय जागृति लाने का प्रयत्न किया। मिर्जा गुलाम अहमद ने 1899 ई. में अहमदिया आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश में अनेक विद्यालय और महाविद्यालय खोले गए जो आधुनिक शिक्षा देते थे। धर्म के क्षेत्र में भी इस आन्दोलन के अनुयायी इस्लाम की सार्वभौमिक और मानवतावादी प्रकृति पर बल देते थे। वे हिन्दू और मुस्लिम एकता के भी पक्षपाती थे।

आधुनिक भारत के महान कवियों में से एक मुहम्मद इकबाल (1876 ई. – 1938 ई.) ने भी अपनी कविता के माध्यम से मुस्लिम युवा पीढ़ी और हिन्दुओं के दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण को अत्यधिक प्रभावित किया। उन्होंने ऐसा गतिशील दृष्टिकोण अपनाने पर बल दिया जो पूरे विश्व को बदल कर रख सकता है। वह मूलतः एक मानवतावादी थे।

10.10 पारसियों में सुधार आन्दोलन

पारसियों में धार्मिक सुधार 19वीं शताब्दी के मध्य मुम्बई में प्रारम्भ हुए। 1851 ई. में रहनुमाई मजदायसन सभा अर्थात धार्मिक सुधार संघ की स्थापना नारोजी फरदौनजी, दादाभाई नरोजी, एस एस बंगाली तथा अन्यों द्वारा की गई। उन्होंने रस्त गुफ्तार नामक एक जर्नल भी पारसियों में सामाजिक और धार्मिक सुधार के लिए प्रारम्भ किया। उन्होंने धर्म के क्षेत्र में गहरी रूढ़िवादिता के विरूद्ध प्रचार किया और लड़कियों की शिक्षा, विवाह और सामान्य रूप से महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार लाने के लिए पारसी सामाजिक रीतिरिवाजों के आधुनिकीकरण का कार्य आरम्भ किया। समय के साथ-साथ, सामाजिक दृष्टि से पारसी भारतीय समाज का सबसे अधिक पश्चिमी सभ्यता में रंगा हुआ वर्ग बन गए।

10.11 सिखों में धार्मिक सुधार

सिखों में धार्मिक सुधारों का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी के अन्त में अमृतसर में खालसा कालेज की स्थापना से हुआ। सिंह सभाओं के प्रयत्नों से (1870 ई.) और ब्रिटिश सहायता से अमृतसर में 1892 ई. में खालसा कालेज की स्थापना हुई। इसी प्रकार के प्रयत्नों से गुरूमुखी भाषा, सिख शिक्षाओं और पंजाबी साहित्य का विकास किया।

1920 ई. के बाद, सिखों में जोश आया जब पंजाब अकाली आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। अकालियों का मुख्य उद्देश्य था गुरुद्वारों और सिख संस्थाओं के प्रबन्धान में सुधार करना। ये सब पुरोहितो/महन्तों के अधीन थे जो उन्हें अपनी व्यक्तिगत जागीर समझते थे। 1925 में एक कानून पास हुआ जिसने गुरूद्वारों के प्रबन्ध का अधिकार शिरोमणि गुरूद्वारा प्रबन्धक समिति को सौंप दिया।

10.12 सुधार आन्दोलनों का प्रभाव

अंग्रेज समाज के रूढ़िवादी उच्च वर्ग को प्रसन्न करना चाहते थे। परिणामत: केवल दो ही आवश्यक कानून बन पाए। महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए भी कुछ कानूनी कदम उठाए गए। उदाहरणतया सती प्रथा को 1829 ई. में गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। भ्रूण हत्या भी गैर कानूनी घोषित कर दी गई। 1856 ई. में विधवा पुनर्विवाह का कानून भी पास हुआ। 1860 ई. में पास किए गए एक कानून के द्वारा लड़कियों की शादी की उम्र 10 तक बढ़ा दी गई। 1872 ई. में पास हुए एक कानून के द्वारा अन्तर्जातीय और अन्त:साम्प्रदायिक विवाहों को भी सहमति प्रदान कर दी गई। 1891 ई. में पास किए गए एक कानून से बालविवाह को निरुत्साहित किया गया। बाल विवाह रोकने के लिए शारदा एक्ट 1929 ई. में पास किया गया। हज कानून के द्वारा 14 साल से कम उम्र की बालिका और 18 साल से कम उम्र के बालक का विवाह गैर कानूनी है। 20वीं शताब्दी में विशेष रूप से 1919 ई. के बाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन समाज सुधार का प्रभुत्व प्रतिपादक बन गया। धीरे धीरे सुधारकों ने प्रचार कार्य भारतीय भाषाओं में प्रारम्भ किया जिससे उनकी आवाज जन-जन तक पहुँच सके। उन्होंने उपन्यासों नाटकों, लघु कथाओं, कविताओं और प्रेस को माध्यम बनाया और 1930 ई. से सिनेमा द्वारा भी उनके विचारों का प्रसार किया गया।

अनेक व्यक्तियों, सुधार समाजों और धार्मिक संगठनों ने महिलाओं में शिक्षा के प्रसार के लिए, बाल विवाहों को रोकने के लिए, पर्दे से नारियों को बाहर लाने के लिए, एक पत्नी धर्म के निर्वाह के लिए और मध्य वर्ग की महिलाओं को रोजगार करने या सरकारी नौकरी करने के लिए प्रचार हेतु बहुत अधिक परिश्रम किया। इन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप भारतीय महिलाओं ने देश के स्वतन्त्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। फलस्वरूप अनेक अन्धविश्वास दूर हो गए और कुछ अन्य दूर होने के मार्ग पर ही थे। अब विदेशों में भ्रमण के लिए जाना कोई पाप नहीं समझा जाता।

पाठगत प्रश्न 10.4

1. मुहम्मदन एंग्लो ओरियन्टल महाविद्यालय किसने प्रारम्भ किया?

....

2. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय कहां पर स्थित है?

....

3. मुस्लिम महिलाओं के विषय में सैयद अहमद खां के क्या विचार थे?

....

4. मुहम्मदन साक्षरता सभा कहाँ स्थित थी?

....

5. पारसियों के किन्हीं सुप्रसिद्ध सामाजिक-धार्मिक सुधारकों के नाम लिखिए।

....

आपने क्या सीखा

- भारत में अंग्रेजी राज्य के प्रभाव से कई सामाजिक और धार्मिक सुधारों का प्रारम्भ हुआ।
- राजा राम मोहन राय आधुनिक शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विस्तार के लिए और कई सामाजिक बुराइयों के विरूद्ध लगातार संघर्ष करने के लिए और भारतीय जागृति के केन्द्रीय व्यक्ति के रूप में जाने जाते हैं।
- आर जी भण्डारकर और एम. जी. रानाडे ने धार्मिक सुधार का कार्य महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज के माध्यम से अन्तर्जातीय विवाह, पुरोहितों के आधिपत्य से मुक्ति, और महिलाओं के स्तर में सुधार आदि कार्यो द्वारा प्रतिपादित किया।
- स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की और व्यक्तियों के वेद पढ़ने के अधिकार पर बल दिया। उन्होंने जनता को पुरोहित वर्ग के अत्याचारों से बचाया। इसी के साथ-साथ इस संस्था ने अस्पृश्यता, जातिवाद और आधुनिक शिक्षा के प्रचार हेतु भी बहुत कार्य किया।
- स्वामी विवेकानन्द एक महान मानवतावादी थे। अपने रामकृष्ण मिशन के द्वारा धार्मिक संकीर्णताओं को तिरस्कृत किया और मुक्त स्वतन्त्र विचारों को प्रोत्साहित करते हुए निर्धनों की सेवा पर बल दिया। एनी बेसेन्ट के मार्गदर्शन में थियोसोफिकल सोसायटी ने प्राचीन भारतीय धर्मों, दर्शनों और सिद्धान्तों पर बल दिया।
- सैयद अहमद खान ने मुसलमानों में धार्मिक सुधारों का बीड़ा उठाया। आपने मुस्लिम औरतों को आधुनिक शिक्षा स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित किया, बहुविवाह की निन्दा की, पर्दा व्यवस्था को समाप्त करवाया, और धार्मिक असहिष्णुता, अज्ञान और अप्रासंगिकता के विरुद्ध प्रचार किया।

पाठान्त प्रश्न

1. भारत में सामाजिक सुधारों के अन्तर्गत राजा राममोहन राय की भूमिका का विवेचन कीजिए।

2. सिद्ध कीजिए कि प्रार्थना समाज धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों के लिए प्रयत्नशील था?
3. आर्यसमाज के वेदों में विश्वास को सिद्ध कीजिए।
4. स्पष्ट कीजिए कि रामकृष्ण मिशन ने 19वीं सदी में भारत को जागृत करने के लिए क्या प्रयत्न किए।
5. मुस्लिम सम्प्रदाय की बुराइयों को दूर करने के लिए सैयद अहमद खान ने क्या प्रयत्न किया।
6. ''थियोसोफिकल सोसाइटी का भारतीय समाज में विकास के लिए किए गये योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।'' व्याख्या कीजिए।
7. सिख सुधारकों द्वारा संचालित समाज सुधारों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

10.1

1. समाज में प्रचलित व्यवहार जैसे, सती प्रथा, जातिवाद।
2. मूर्त्ति पूजा का विरोध, यज्ञों के प्रति, आहुतियों के प्रति विरोध, सती प्रथा का बहिष्कार, मानव का स्वाभिमान।
3. अन्तर्जातीय विवाहों, अन्तर्जातीय भोजों, विधवा पुनर्विवाह और महिलाओं और दलित वर्गो की दशा में सुधार
4. प्रार्थना समाज की विचारधारा के एक दृढ़ अनुयायी।

10.2

1. आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द ने की।
2. 1886 ई. में लाहौर में
3. मानवता की सेवा मुक्ति का साधन है।
4. नरेन्द्रनाथ दत्त
5. निर्धन और दलित वर्ग की सेवा।

10.3

1. यू. एस. ए
2. एच.पी. बालवत्स्की-एक रशियन, और कर्नल एच. एस. ओलोकोट-एक अमेरिकन

3. चेन्नई के समीप अडयार
4. श्रीमती एनी बेसेन्ट

10.4

1. सैयद अहमद खाँ
2. अलीगढ़
3. पर्दा प्रथा को दूर करना और महिलाओं के लिए शिक्षा
4. 1863 ई. में कलकत्ता में
5. दादाभाई नौरोजी, एस एस बंगाली नौरोजी फरदौनगी।

11

भारतीय चित्रकला

जब आप बाजार या किसी म्यूजियम में आते हैं तो आप वहाँ कई चित्र, भित्ति पर लटके चित्र या टेराकोटा पर किए गए कलात्मक कार्य देखते हैं। क्या आप जानते हैं कि इन चित्रों का मूल हमारे प्राचीन भूतकाल में विद्यमान है। वे दर्शाते हैं कि राजा और रानियाँ कैसे कपड़े पहनते थे, या राजसभा में दरबारी कैसे बैठते थे आदि। चित्रकला से संबंधित साक्षरता के आलेख यह दर्शाते हैं कि बहुत प्राचीन काल से ही चित्रकला चाहे वह धार्मिक हो या धर्मनिरपेक्ष, कलात्मक अभिव्यक्ति का एक आवश्यक माध्यम समझी जाती रही है और बड़े व्यापक स्तर पर इसका अभ्यास किया जाता रहा है। अभिव्यक्ति की इच्छा मानवीय अस्तित्व की मूलभूत आवश्यकता है और प्रागैतिहासिक काल से ही यह विभिन्न रूपों में प्रकट होती रही है। चित्रकला भी एक ऐसी ही कला है जिससे सम्भवत: आप भी किसी न किसी रूप में परिचित रहे होंगे। भारतीय चित्रकला अनेक परम्पराओं के सम्मिश्रण का परिणाम है और निरंतर अबाधगति से इसका विकास होता रहा है। नई-नई शैलियों को अपनाने के बावजूद भी भारतीय चित्रकला ने अपनी एक अलग पहचान बनाई है। अत: आधुनिक भारतीय चित्रकला एक समृद्ध पारम्परिक विरासत के साथ-साथ आधुनिक तरीकों और विचारों के अंतर्मिश्रण को भी प्रतिबिम्बित करती है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:–

- चित्रकला के उद्‌भव को प्रागैतिहासिक काल से दर्शा सकेंगे;
- मध्य युग में चित्रकला के विकास का वर्णन कर सकेंगे;
- भारतीय चित्रकला में मुगलशासकों के योगदान को पहचान सकेंगे;
- राजस्थानी और पहाड़ी जैसी चित्रकला की विशिष्ट शैलियों के उदय को प्रदर्शित कर सकेंगे;

- कांगड़ा, कुल्लु और बसौली आदि स्थानीय केन्द्रों में चित्रकला के विकास का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- भारतीय चित्रकला में राजा रविवर्मा के योगदान की सराहना कर सकेंगे;
- बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट की स्थापना में रवीन्द्रनाथ टैगोर एवं अवनीन्द्रनाथ टैगोर की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- फ्रांसिस न्यूटन सूजा के 'प्रगतिशील कलाकार संघ' की विशिष्ट भूमिका का महत्त्व बता सकेंगे;
- चित्रकला के क्षेत्र में अनेकों नई दिशाएँ जोड़ने में मिथिला चित्रकला, कलमकारी चित्रकला, वर्ली चित्रकला और कालीघाट चित्रकला आदि लोककला शैलियों के योगदान को पहचान सकेंगे।

11.1 प्राचीन युग-उद्भव

गुफाओं से मिले अवशेषों और साहित्यिक स्रोतों के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारत में एक कला के रूप में 'चित्रकला' बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रही है। भारत में चित्रकला और कला का इतिहास मध्यप्रदेश की भीमबेटका गुफाओं की प्रागैतिहासिक काल की चट्टानों पर बने पशुओं के रेखाङ्कन और चित्राङ्कन के नमूनों से प्रारंभ होता है। महाराष्ट्र के नरसिंहगढ़ की गुफाओं के चित्रों में चितकबरे हरिणों की खालों को सूखता हुआ दिखाया गया है। इसके हजारों साल बाद रेखाङ्कन और चित्राङ्कन हड़प्पाकालीन सभ्यता की मुद्राओं पर भी पाया जाता है।

हिन्दु और बौद्ध दोनों साहित्य ही कला के विभिन्न तरीकों और तकनीकों के विषय में संकेत करते हैं जैसे लेप्यचित्र, लेखाचित्र और धूलिचित्र। पहली प्रकार की कला का सम्बन्ध लोक कथाओं से है। दूसरी प्रागेतिहासिक वस्त्रों पर बने रेखा चित्र और चित्रकला से संबंद्ध है और तीसरे प्रकार की कला फर्श पर बनाई जाती है।

बौद्ध धर्म ग्रंथ विनयपिटक (4-3 ईसा पूर्व) में अनेकों शाही इमारतों पर चित्रित आकृतियों के अस्तित्व का वर्णन प्राप्त होता है। मुद्राराक्षस नाटक (पांचवी शती ई-पश्चात) में भी अनेकों चित्रों या चित्रपटों का उल्लेख है। छठी शताब्दी के सौंदर्यशास्त्र के ग्रंथ वात्स्यायनकृत 'कामसूत्र' ग्रंथ में 64 कलाओं के अंतर्गत चित्रकला का भी उल्लेख है और यह भी कहा गया है कि यह कला वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है। सातवीं शताब्दी (ई.प.) के विष्णुधर्मोत्तरपुराण में एक अध्याय चित्रसूत्र चित्रकला पर भी है जिसमें बताया गया है कि चित्रकला के छह अंग हैं- आकृति की विभिन्नता, अनुपात, भाव, चमक, रंगों का प्रभाव आदि। अत: पुरातत्त्वशास्त्र और साहित्य प्रागैतिहासिक काल से ही चित्रकला के विकास को प्रमाणित करते आ रहे हैं।

गुप्तकालीन चित्रकला के सर्वोत्तम नमूने अजन्ता में प्राप्त हैं। उनकी विषयवस्तु थी पशु पक्षी, वृक्ष, फूल, मानवाकृतियाँ और जातक कथाएँ।

भित्तिचित्र छतों पर और पहाड़ी दीवारों पर बनाए जाते हैं। गुफा नं 9 के चित्र में बौद्ध-भिक्षुओं को स्तूप की ओर जाता हुआ दर्शाया गया है। 10 नं. की गुफा में जातक कहानियाँ चित्रित की गई हैं परंतु सर्वोत्कृष्ट चित्र पांचवीं-छठी शताब्दी के गुप्त काल में प्राप्त हुए हैं। ये भित्तिचित्र प्रमुखतया बुद्ध के जीवन और जातक कथाओं में धार्मिक कृत्यों को दर्शाते हैं परंतु कुछ चित्र अन्य विषयों पर भी आधारित हैं। इनमें भारतीय जीवन के विभिन्न पक्षों को दर्शाया गया है। राजप्रासादों में राजकुमार, अन्त:पुरों में महिलाएँ, कन्धों पर भार उठाए कुली, भिक्षुक, किसान, तपस्वी एवम् इनके साथ अन्य भारतीय पशु-पक्षियों तथा फूलों का चित्रण किया गया है।

चित्रों में प्रयुक्त सामग्री, विभिन्न प्रकार के चित्रों में भिन्न-भिन्न सामग्रियों का प्रयोग किया जाता था। साहित्यिक स्रोतों में चित्रशालाओं और शिल्पशास्त्रों (कला पर तकनीकी ग्रन्थ) के संदर्भ प्राप्त होते हैं।

तथापि चित्रों में जिन रंगों का प्रमुख रूप से उपयोग किया गया है, वे है धातु राग, चटख लाल कुमकुम या सिन्दूर, हरीताल (पीला) नीला, लापिसलाजुली नीला, काला, चाक की तरह सफेद खड़ी मिट्टी, (गेरु माटी) और हरा। ये सभी रंग भारत में सुलभ थे सिवाय लापीस लेजुली ही संभवत: पाकिस्तान से आता था। कुछ दुर्लभ अवसरों पर मिश्रित रंग जैसे सलेटी आदि भी प्रयोग किए जाते थे। रंगों के प्रयोग का चुनाव विषय वस्तु और स्थानीय वातावरण के अनुसार सुनिश्चित किया जाता था।

बौद्ध चित्र कला के अवशेष उत्तर भारतीय 'बाघ' नामक स्थान पर तथा छठी और नौवीं शताब्दी के दक्षिण भारतीय स्थानों पर स्थित बौद्ध गुफाओं में प्राप्त होते हैं। यद्यपि इन चित्रों की विषयवस्तु धार्मिक है परंतु अपने अन्तर्निहित भावों और अर्थों के अनुसार इनसे अधिक धर्मनिरपेक्ष दरबारी और सम्भ्रान्त विषय नहीं हो सकते। यद्यपि इन चित्रों के बहुत कम ही अवशेष पाये जाते हैं परंतु उनमें अनेकों चित्र देवी-देवताओं, देवसदृश किन्नरों और अप्सराओं, विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी, फल-फूलों सहित प्रसन्नता, प्रेम, कृपा और मायाजाल आदि के भावों को भी दर्शाते हैं। इनके अन्य उदाहरण बादामी (कर्नाटक) की गुफा सं 3, कांचीपुरम के मन्दिरों, सितांवसल (तमिलनाडु) की जैनगुफाओं तथा एलोरा (आठवीं और नवीं शताब्दी) तथा कैलाश और जैन गुफाओं में पाए जाते हैं। बहुत से अन्य दक्षिण भारतीय मंदिरों जैसे तंजौर के बृहदेश्वर मंदिर के भित्तिचित्र महाकाव्यों और पुराण कथाओं पर आधारित हैं। जहाँ एक ओर बाघ, अजंता और बदामी के चित्र उत्तर और दक्षिण की शास्त्रीय परम्पराओं के नमूने प्रस्तुत करते हैं, सितानवसल, कांचीपुरम, मलयादिपट्टी, तिरूमलैपुरम के चित्र दक्षिण में इसके विस्तार को भलीप्रकार दर्शाते हैं। सितानवसल (जैनसिद्धों के निवास) के चित्र जैन धर्म की विषयवस्तु से संबद्ध हैं जबकि अन्य तीन स्थानों के चित्र जैन अथवा वैष्णव धर्म के प्रेरक हैं। यद्यपि ये सभी चित्र पारंपरिक धार्मिक विषय वस्तु पर आधारित हैं, तथापि ये चित्र मध्ययुगीन प्रभावों को भी प्रदर्शित करते हैं जैसे एक ओर सपाट और अमूर्त चित्रण और दूसरी ओर कोणीय तथा रेखीय डिज़ाइन।

11.2 मध्यकालीन भारत में चित्रकला

दिल्ली सल्तनत के काल में शाही महलों और शाही अन्त:पुरों और मस्जिदों से मित्ति चित्रों के वर्णन प्राप्त हुए हैं। इनमें मुख्यतया फूलों, पत्तों और पौधों का चित्रण हुआ है। इल्तुमिश (1210-36) के समय में भी हमें चित्रों के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316) के समय में भी हमें भित्ति चित्र तथा वस्त्रों पर चित्रकारी और अलह्कत पाण्डुलिपियों पर लघुचित्र प्राप्त होते हैं। सल्तनत काल में हम भारतीय चित्रकला पर पश्चिमी और अरबी प्रभाव भी देखते हैं। मुस्लिक शिष्टवर्ग के लिए ईरान और अरब देशों से पर्शियन और अरबी की अलंकृत पाण्डुलिपियों के भी आने के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।

इस काल में हमें अन्य क्षेत्रीय राज्यों से भी चित्रों के सन्दर्भ मिलते हैं। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर के महल को अलंकृत करने वाली चित्रकारी ने बाबर और अकबर दोनों को ही प्रभावित किया। 14वीं 15वीं शताब्दियों में सूक्ष्म चित्रकारी गुजरात और राजस्थान में एक शक्तिशाली आन्दोलन के रूप में उभरी और केन्द्रीय, उत्तरी और पूर्वी भारत में अमीर और व्यापारियों के संरक्षण के कारण फैलती चली गई। मध्यप्रदेश में मांडु, पूर्वी उत्तरप्रदेश में जौनपुर और पूर्वी भारत में बंगाल ये अन्य बड़े केंद्र थे जहाँ पाण्डुलिपियों को चित्रकला से सजाया जाता था।

9-10वीं शती में बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा आदि पूर्वी भारतीय प्रदेशों में पाल शासन के अंतर्गत एक नई प्रकार की चित्रण शैली का प्रादुर्भाव हुआ जिसे सूक्ष्म चित्रण कहा जाता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, ये सूक्ष्म चित्र नाशवान पदार्थों पर बनाए जाते थे। इसी श्रेणी के अंतर्गत इनसे बौद्ध, जैन और हिन्दु ग्रंथों की पाण्डुलिपियों को भोजपत्रों पर सजाया जाने लगा। ये चित्र अजंता शैली से मिलते जुलते थे परंतु सूक्ष्म स्तर पर। ये पाण्डुलिपियाँ व्यापारियों की प्रार्थना पर तैयार की जाती थीं जिन्हें वे मंदिरों और मठों को दान कर देते थे।

तेरहवीं शताब्दी के पश्चात उत्तरी भारत के तुर्की सुलतान अपने साथ पारसी दरबारी संस्कृति के महत्त्वपूर्ण स्वरूपों को भी अपने साथ लाए। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में पश्चिन प्रभाव की अलङ्कृत पाण्डृलिपियाँ मालवा, बंगाल, दिल्ली, जौनपुर, गुजरात और दक्षिण में बनाई जाने लगीं। भारतीय चित्रकारों की पर्शियन परम्पराओं से अन्त:क्रिया दोनों शैलियों के सम्मिश्रण में फलीभूत हुई जो 16वीं शताब्दी के चित्रों में स्पष्ट झलकती है। प्रारम्भिक सल्तनत काल में पश्चिमी भारत में जैन समुदाय द्वारा चित्रकला के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान किया गया। जैन शास्त्रों की अलङ्कृत पाण्डृलिपियाँ मन्दिर के पुस्तकालयों को उपहरस्वरूप दे दी गई। इन पाण्डुलिपियों में जैन तीर्थङ्करों के जीवन और कृत्यों को दर्शाया गया है। इन पाठ्यग्रंथों के स्वरूप को अलङ्कृत करने की कला को मुगल शासकों के संरक्षण में एक नया जीवन मिला। अकबर और उनके परवर्ती शासक चित्रकला और भोग विषयक उदाहरणों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए। इसी काल से किताबों की सजावट या व्यक्तिगत लघुचित्रों में भित्तिचित्रकारी का स्थान एक प्रमुख शैली के रूप में विकसित हुआ। अकबर ने कश्मीर और गुजरात के कलाकारों को संरक्षण दिया। हुमायुं ने अपने दरबार में दो पारसी

चित्रकारों को प्रश्रय दिया। पहली बार चित्रकारों के नाम शिलालेखों पर भी अङ्कित किए गए। इस काल के कुछ महान चित्रकार थे अब्दुस्समद, दासवंत तथा बसावन। बाबर नामा और अकबरनामा के पृष्ठों पर चित्रकला के सुंदर उदाहरण पाये जाते हैं। कुछ ही वर्षों में पारसी और भारतीय-शैली के मिश्रण से एक सशक्त शैली विकसित हुई और स्वतंत्र मुगल चित्रकला शैली का विकास हुआ। 1562 और 1577 ई. के मध्य नई शैली के आधार पर प्राय: 1400 वस्त्रचित्रों की रचना हुई और इन्हें शाही कलादीर्घा में रखा गया। अकबर ने प्रतिमूर्त्ति बनाने की कला को भी प्रोत्साहित किया। चित्रकला जहांगीर के काल में अपनी चरम सीमा पर थी। वह स्वयं भी उत्तम चित्रकार और कला का पारखी था। इस समय के कलाकारों ने चटख रंग जैसे मोर के गले सा नीला तथा लाल रंग का प्रयोग करना और चित्रों को त्रि-आयामी प्रभाव देना प्रारंभ कर दिया था। जहांगीर के शासन काल के मशहूर चित्रकार थे मंसूर, बिशनदास तथा मनोहर। मंसूर ने चित्रकार अबुलहसन की अत्यद्भुत प्रतिकृति बनाई थी। उन्होंने पशु-पक्षियों को चित्रित करने में विशेषता प्राप्त की थी। यद्यपि शाहजहाँ भव्य वास्तु कला में अधिक रुचि रखता था, उसके सबसे बड़े बेटे दाराशिकोह ने अपने दादा की तरह ही चित्रकला को बढ़ावा दिया। उसे भी प्राकृतिक तत्त्व जैसे पौधे, पशु आदि को चित्रित करना अधिक पसंद था। तथापि औरंगजेब के समय में शाहीसंरक्षण के अभाव में चित्रकारों को देश के विभिन्न भागों में पनाह लेने को बाध्य होना पड़ा। इससे राजस्थान और पंजाब की पहाड़ियों में चित्रकला के विकास को प्रोत्साहन मिला और चित्रकला की विभिन्न शैलियाँ जैसे राजस्थानी शैली और पहाड़ी शैली विकसित हुईं। ये कृतियाँ एक छोटी सी सतह पर चित्रित की जाती थीं और इन्हें सूक्ष्म चित्रकारी कहां जाने लगा। इन चित्रकारों ने महाकाव्यों, मिथकों और कथाओं को अपने चित्रों की विषयवस्तु बनाया। अन्य विषय थे बारहमासा, रागमाला (लय) और महाकाव्यों के विषय आदि। सूक्ष्म चित्रकला स्थानीय केन्द्रों जैसे कांगड़ा, कुल्लु, बसोली, गुलेर, चम्बा, गढ़वाल, बिलासपुर और जम्मु आदि में विकसित हुई।

पन्द्रहवीं और सोलहवीं शती में भक्ति आंदालेन के उद्‌भव ने वैष्णव भक्तिमार्ग की विषयवस्तु पर चित्र सज्जित पुस्तकों के निर्माण को प्रोत्साहित किया। पूर्व मुगल काल में भारत के उत्तरी प्रदेशों में मंदिरों की दीवारों पर भित्तिचित्रों के निर्माण को प्रोत्साहन मिला।

11.3 आधुनिक काल में कला

अठारहवीं शती के उत्तरार्ध और उन्नीसवीं शती के प्रारंभ में चित्रकला अर्ध-पाश्चात्य स्थानीय शैलियों पर आधारित थी जिसको ब्रिटिश निवासियों और ब्रिटिश आगुन्तकों ने संरक्षण प्रदान किया। इन चित्रों की विषयवस्तु भारतीय सामाजिक जीवन, लोकप्रिय पर्व और मुगलकालीन स्मारकों पर आधारित होती थीं। इन चित्रों में परिष्कृत मुगल परम्पराओं को प्रतिबिम्बित किया गया था। इस काल की सर्वोत्तम चित्रकला के कुछ उदाहरण हैं- लेडी इम्पे के लिए शेख जिया उद्‌दीन के पक्षि-अध्ययन, विलियम फ्रेजर और कर्नल स्किनर के लिए गुलाम अलीखां के प्रतिकृति चित्र।

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में कलकत्ता, मुम्बई और मद्रास आदि प्रमुख भारतीय शहरों में यूरोपीय मॉडल पर कला स्कूल स्थापित हुए। त्रावनकोर के राजा रवि वर्मा के मिथकीय और सामाजिक विषयवस्तु पर आधारित तैल चित्र इस काल में सर्वाधिक लोकप्रिय हुए।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, इ.बी हैवल और आनन्द केहटिश कुमार स्वामी ने बंगाल कला शैली के उदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बंगाल कला शैली 'शांति निकेतन' में फली-फूली जहाँ पर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'कलाभवन' की स्थापना की। प्रतिभाशील कलाकार जैसे नंदलाल बोस, विनोद बिहारी मुकर्जी, आदि उभरते कलाकारों को प्रशिक्षण देकर प्रोत्साहित कर रहे थे। नन्दलाल बोस भारतीय लोक कला तथा जापानी चित्रकला से प्रभावित थे और विनोद बिहारी मुकर्जी प्राच्य परम्पराओं में गहरी रुचि रखते थे। इस काल के अन्य चित्रकार जैमिनी राय ने उड़ीसा की पट-चित्रकारी और बंगाल की कालीघाट चित्रकारी से प्रेरणा प्राप्त की। सिख पिता और हंगेरियन माता की पुत्री अमृता शेरगिल ने पेरिस बुडापेस्ट में शिक्षा प्राप्त की तथापि भारतीय विषयवस्तु को लेकर गहरे चटख रंगों से चित्रकारी की। उन्होंने विशेषरूप से भारतीय नारी और किसानों को अपने चित्रों का विषय बनाया। यद्यपि इनकी मृत्यु अल्पायु में ही हो गई परंतु वह अपने पीछे भारतीय चित्रकला की समृद्ध विरासत छोड़ गई हैं।

धीरे-धीरे अंग्रेजी पढ़े-लिखे शहरी मध्यवर्ती लोगों की सोच में भारी परिवर्तन आने लगा और यह परिवर्तन कलाकारों की अभिव्यक्ति में भी दिखाई पड़ने लगा। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध बढ़ती जागरूकता, राष्ट्रीयता की भावना और एक राष्ट्रीय पहचान की तीव्र इच्छा ने ऐसी कलाकृतियों को जन्म दिया जो पूर्ववर्ती कला की परम्पराओं से एकदम अलग थीं।

सन् 1943 में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय परितोष सेन, निरोद मजुमदार और प्रदोष दासगुप्ता आदि के नेतृत्व में कलकत्ता के चित्रकारों ने एक नया वर्ग बनाया जिसने भारतीय जनता की दशा को नई दृश्य भाषा और नवीन तकनीक के माध्यम से प्रस्तुत किया।

दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था सन् 1948 में मुंबई में फ्रांसिस न्यूटन सूजा के नेतृत्व में प्रगतिशील कलाकार संघ की स्थापना। इस संघ के अन्य सदस्य थे एस एच रजा, एम एफ हुसैन, के एम अरा, एस के बाकरे तथा एच ए गोडे। यह संस्था बंगाल स्कूल आफ आर्ट से अलग हो गई और इसने स्वतंत्र भारत की आधुनिकतम सशक्त कला को जन्म दिया।

1970 से कलाकारों ने अपने वातावरण का आलोचनातमक दृष्टि से सर्वेक्षण करना प्रारंभ किया। गरीबी और भ्रष्टाचार की दैनिक घटनाएँ, अनैतिक भारतीय राजनीति, विस्फोटक साम्प्रदायिक तनाव, एवम् अन्य शहरी समस्याएँ अब उनकी कला का विषय बनने लगीं।

देवप्रसाद राय चौधरी एवं के सी एस पणिकर के संरक्षण में मद्रास स्कूल आफ आर्ट संस्था स्वतन्त्रतोत्तर भारत में एक महत्त्वपूर्ण कला केन्द्र के रूप में उभरी और आधुनिक कलाकारों की एक नई पीढ़ी को प्रभावित किया।

आधुनिक भारतीय चित्रकला के रूप में जिन कलाकारों ने अपनी पहचान बनाई, वे हैं- तैयब मेहता, सतीश गुजराल, कृष्ण खन्ना, मनजीत बाबा, के जी सुब्रह्मण्यन्, रामकुमार,

अंजलि इला मेनन, अकबर पद्मश्री, जतिन दास, जहांगीर सबावाला तथा ए. रामचन्द्रन आदि।

भारत में कला और संगीत को प्रोत्साहित करने के लिए दो अन्य राजकीय संस्थाएँ स्थापित हुई (1) नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट- इसमें एक ही छत के नीचे आधुनिक कला का एक बहुत बड़ा संग्रह है। (2) ललित कला अकादमी जो सभी उभरते कलाकारों को विभिन्न कला क्षेत्रों में संरक्षण प्रदान करती है और उन्हें एक नई पहचान देती है।

पाठगत प्रश्न 11.1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

1. मध्यप्रदेश में प्रसिद्ध खुदाई का स्थल कौन सा है?

   ....

2. प्राचीन काल के ब्राह्मणों और बौद्धों के साहित्य में किन तीन प्रकार की चित्रकारी के नमूने प्राप्त होते हैं?

   ....

3. धूलिचित्र चित्रकारी प्राय कहाँ की जाती है?

   ....

4. अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी का विषय क्या था?

   ....

5. इन दो स्थलों का नाम लिखिए जहाँ छठी और नवीं शताब्दी के बौद्धचित्र प्राप्त हुए?

   ....

6. सूक्ष्म चित्रकला क्या है?

   ....

7. मध्यकाल में चित्रकारों को शाही संरक्षण देना किसने मना कर दिया?

   ....

8. अंग्रेजी पढ़े हुए शहरी कलाकारों के चित्रों की विषयवस्तु क्या थी?

   ....

9. भारत में कला और संगीत की प्रोन्नति के लिए कौनसी दो सरकारी संस्थाएँ स्थापित की गईं?

   ....

10. कौन सा राज्य पट्ट चित्रकला के लिए प्रसिद्ध है?

....

11. शान्तिनिकेतन में रवीन्द्रनाथटैगोर ने किस संस्था की स्थापना की?

....

12. ट्रावनकोर के राजा रवि वर्मा क्यों प्रसिद्ध हुए?

....

11.4 अलंकृत कला

भारतीय लोगों की कलात्मक अभिव्यक्ति केवल कागज या पट्ट पर चित्र बनाने तक ही सीमित नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में घर की दीवारों पर अलंकृत कला एक आम दृश्य है। पवित्र अवसरों और पूजा आदि में फर्श पर रंगोली या अलंकृत चित्रकला के डिजाइन 'रंगोली' आदि के रूप में बनाए जाते हैं जिनके कलात्मक डिजाइन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित होते चले जाते हैं। ये डिजाइन उत्तर में रंगोली, बंगाल में अल्पना, उत्तरांचल में ऐपन, कर्नाटक में रंगावली, तमिलनाडु में कोल्लम और मध्यप्रदेश में मांडना नाम से जाने जाते हैं। साधारणतया रंगोली बनाने में चावल के आटे का प्रयोग किया जाता है लेकिन रंगीन पाउडर या फूल की पंखुड़ियों का प्रयोग भी रंगोली को ज्यादा रंगीन बनाने के लिए किया जाता है। घरों तथा झोपड़ियों की दीवारों को सजाना भी एक पुरानी परंपरा है। इस प्रकार की लोक कला के विभिन्न उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

11.5 मिथिला चित्रकला

मिथिला चित्रकला जिसे मधुबनी लोक कला भी कहते हैं, बिहार प्रदेश के मिथिला क्षेत्र की पारम्परिक कला है। इस चित्रकारी को गावं की महिलाएं सब्जी के रंगों से तथा त्रि-आयामी मूर्तियों के रूप में मिट्टी के रंगों से गोबर से पुते कागजों पर बनाती हैं और काले रंगों से बनाना समाप्त करती हैं। ये चित्र प्रायः सीता बनवास, राम लक्ष्मण के वन्य जीवन की कहानियों अथवा लक्ष्मी, गणेश हनुमान की मूर्त्तियों आदि हिन्दु मिथकों पर बनाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त स्त्रियाँ दैवी विभूतियाँ जैसे सूर्य, चन्द्र आदि के भी चित्र बनाती हैं। इन चित्रों में दिव्य पौधे 'तुलसी' को भी चित्रित किया जाता है। ये चित्र अदालत के दृश्य, विवाह तथा अन्य सामाजिक घटनाओं को प्रदर्शित करते हैं। मधुबनी शैली के चित्र बहुत वैचारिक होते हैं। पहले चित्रकार सोचता है और फिर अपने विचारों को चित्रकला के माध्यम से प्रस्तुत करता है। चित्रों में कोई बनावटीपन नहीं होता। देखने में यह चित्र ऐसे बिम्ब होते हैं जो रेखाओं और रंगों में मुखर होते हैं। प्रायः ये चित्र कुछ अनुष्ठानों अथवा त्योहारों के अवसर पर अथवा जीवन की विशेष घटनाओं के समय गांव या घरों की दीवारों पर बनाए जाते हैं। रेखागणितीय आकृतियों के बीच में स्थान को भरने के लिए जटिल फूल पत्ते, पशु-पक्षी, बनाए जाते हैं। कुछ मामलों में ये चित्र माताओं द्वारा अपनी बेटियों की शादी के

अवसर पर देने के लिए पहले से ही तैयार करके रख दिए जाते हैं। ये चित्र एक सुखी विवाहित जीवन जीने के तरीकों को भी प्रस्तुत करते हैं। विषय और रंगों के उपयोग में भी ये चित्र विभिन्न होते हैं। चित्रों में प्रयुक्त रंगों से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह चित्र किस समुदाय से संबंधित हैं। उच्च स्तरीय वर्ग द्वारा बनाए गए चित्र अधिक रंग बिरंग होते हैं जबकि निम्न वर्ग द्वारा चित्रों में लाल और काली रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। मधुबनी कला शैली बड़ी मेहनत से गांव की महिलाओं द्वारा आगे अपने बेटियों तक स्थानान्तरित की जाती हैं। आजकल मधुबनी कला का उपयोग उपहार की सजावटी वस्तुओं, बधाई पत्रों आदि के बनाने में किया जा रहा है और स्थानीय ग्रामीण महिलाओं के लिए एक अच्छी आय का स्रोत भी सिद्ध हो रहा है।

11.6 कलमकारी चित्रकला

कलमारी का शाब्दिक अर्थ है कलम से बनाए गए चित्र। यह कला पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती हुई अधिकाधिक समृद्ध होती चली गई। यह चित्रकारी आंध्र प्रदेश में की जाती है। इस कला शैली में कपड़ों पर हाथ से अथवा ब्लाकों से सब्जियों के रंगों से चित्र बनाए जाते हैं। कलमकारी काम में सब्जियों के रंग ही प्रयोग किए जाते हैं। एक छोटी-सी जगह श्रीकलहस्ती' कलमकारी चित्रकला का लोकप्रसिद्ध केन्द्र है। यह काम आन्ध्रप्रदेश में मसोलीपट्टनम में भी देखा जाता है। इस कला के अंतर्गत मंदिरों के भीतरी भागों को चित्रित वस्त्रपटलों से सजाया जाता है। 15वीं शताब्दी में विजयनगर के शासकों के संरक्षण में इस कला का विकास हुआ। इन चित्रों में रामायण, महाभारत और अन्य धार्मिक ग्रंथों से दृश्य लिए जाते हैं। यह कला शैली पिता से पुत्र को पीढ़ी दर पीढ़ी उत्तराधिकार के रूप में चलती जाती है। चित्र का विषय चुनने के बाद दृश्य पर दृश्य क्रम से चित्र बनाए जाते हैं। प्रत्येक दृश्य को चारों ओर से पेड़-पौधों और वनस्पतियों से सजाया जाता है। यह चित्रकारी वस्त्रों पर की जाती है। ये चित्र बहुत ही स्थायी होते हैं, आकार में लचीले तथा विषय वस्तु के अनुरूप बनाए जाते हैं। देवताओं के चित्र खूबसूरत बॉर्डर से सजाए जाते हैं और मंदिरों के लिए बनाए जाते हैं। गोलकुण्डा के मुस्लिम शासकों के कारण मसुलीपटनम कलमकारी प्राय: अधिकांश रूप में पारसी चित्रों और डिजाइनों से प्रभावित होती थी। हाथ से खुदे ब्लाकों से इन चित्रों की रूपरेखा और प्रमुख घटक बनाए जाते हैं। बाद में कलम से बारीक चित्रकारी की जाती है। यह कला वस्त्रों, चादरों और पर्दों से प्रारंभ हुई। कलाकार बांस की या खजूर की लकड़ी को तराशकर एक ओर से नुकीली और दूसरी ओर बारीक बालों के गुच्छे से युक्त कर देते थे जो ब्रश या कलम का काम देती थी।

कलमकारी के रंग पौधों की जड़ो को या पत्तों को निचोड़ कर प्राप्त किए जाते थे और इनमें लोहे, टिन, तांबें और फिटकरी के साल्ट्स मिलाए जाते थे।

उड़ीसा पटचित्र

कालीघाट के पटचित्रों के समान ही उड़ीसा प्रदेश से एक अन्य प्रकार के पटचित्र प्राप्त होते

हैं। उड़ीसा पटचित्र भी अधिकतर कपड़ों पर ही बनाए जाते है फिर भी ये चित्र अधिक विस्तार से बने हुए, अधिक रंगीन और हिन्दु देवी-देवताओं से संबद्ध कथाओं को दर्शाते हैं।

फाड़ चित्र

फाड चित्र एक प्रकार के लंबे मफलर के समान वस्त्रों पर बनाए जाते हैं। स्थानीय देवताओं के ये चित्र प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जाते हैं। इनके साथ पारम्परिक गीतकारों की टोली जुड़ी होती है जो स्क्राल पर बने चित्रों की कहानी का वर्णन करते जाते हैं। इस प्रकार के चित्र राजस्थान में बहुत अधिक प्रचलित हैं और प्रायः भीलवाड़ा जिले में प्राप्त होते हैं। फाड़ चित्र किसी गायक की वीरता पूर्ण कार्यों की कथा, अथवा किसी चित्रकार/किसान के जीवन ग्राम्य जीवन, पशुपक्षी और फूल-पौधों के वर्णन प्रस्तुत करते हैं। ये चित्र चटख और सूक्ष्म रंगों से बनाए जाते हैं। चित्रों की रूपरेखा पहले काले रंग से बनाई जाती है, बाद में उसमें रंग भर दिए जाते हैं।

फाड़ चित्रों की प्रमुख विषयवस्तु देवताओं और इनसे संबंधित कथा-कहानियों से संबद्ध होती है, साथ ही तत्कालीन महाराजाओं के साथ संबद्ध कथानकों पर भी आधारित होती है। इन चित्रों में कच्चे रंग ही प्रयुक्त होते हैं। इन फाड़ चित्रों की अलग एक विशेषता है मोटी रेखाएं और आकृतियों का द्वि-आयामी स्वरूप और पूरी रचना खण्डों में नियोजित की जाती है। फाड़ कला प्रायः 700 वर्ष पुरानी है। ऐसा कहा जाता है कि इसका जन्म पहले शाहपुरा में हुआ जो राजस्थान में भीलवाड़ा से 35 किमी दूर है। निरंतर शाही संरक्षण ने इस कला को निर्णयात्मक रूप से प्रोत्साहित किया जिससे पीढ़ियों से यह कला फलती-फूलती चली आ रही है।

गोंड कला

भारत के संथाल प्रदेश में उभरी एक बहुत ही उन्नत किस्म की चित्रकारी है जो बहुत ही सुंदर और अमूर्त कला की द्योतक है। गोदावरी बेल्ट की गोंड जाति जो जन जाति की ही एक किस्म है और जो संथाल जितनी ही प्राचीन है, अद्‌भुत रंगों में खूबसूरत आकृतियाँ बनाती रही है।

बाटिक प्रिंट

सभी लोक कलाएँ और दस्तकारी मूल में पूरी तरह से भारतीय नहीं है। कुछ दस्तकारी तथा शिल्पकला और उनकी तकनीकी जैसे बाटिक प्राच्य प्रदेश से आयात की गई हैं परंतु अब इनका भारतीयकरण हो चुका है और भारतीय बाटिक एक परिपक्व कला का द्योतक है जो प्रचलित तथा महंगी भी हैं।

पाठगत प्रश्न 11.2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

1. निम्नलिखित अलङ्कृत कला का उनके मूल राज्य से मिलान कीजिए।

अ	ब
रंगोली	तमिलनाडु
अल्पना	मध्यप्रदेश
ऐपन	उत्तरी भारत
रंगावली	बंगाल
कोल्लम	उत्तरांचल
मांडना	कर्णाटक

2. किन चित्रों के द्वारा युवा कन्याओं को सलाह दी जाती थी?

....

3. कलमकारी काम कैसे किया जाता है?

....

4. कलमकारी चित्रकला की क्या विशेषता है?

....

5. कलमकारी के लिए कौन सा स्थान सबसे अधिक प्रसिद्ध है?

....

11.7 वर्ली चित्रकला

वर्ली चित्रकला के नाम का संबंध महाराष्ट्र के जन जातीय प्रदेश में रहने वाले एक छोटे से जनजातीय वर्ग से है। ये अलंकृत चित्र गोंड तथा कोल जैसे जनजातीय घरों और पूजाघरों के फर्शों और दीवारों पर बनाए जाते हैं। वृक्ष, पक्षी, नर तथा नारी मिल कर एक वर्ली चित्र को पूर्णता प्रदान करते हैं। ये चित्र शुभ अवसरों पर आदिवासी महिलाओं द्वारा दिनचर्या के एक हिस्से के रूप में बनाए जाते हैं। इन चित्रों की विषयवस्तु प्रमुखतया धार्मिक होती है और ये साधारण और स्थानीय वस्तुओं का प्रयोग करके बनाए जाते हैं जैसे चावल की लेही तथा स्थानीय सब्जियों का गोंद और इनका उपयोग एक अलग रंग की पृष्ठभूमि पर वर्गाकार, त्रिभुजाकार तथा वृत्ताकार आदि रेखागणितीय आकृतियों के माध्यम से किया जाता है। पशु-पक्षी तथा लोगों का दैनिक जीवन भी चित्रों की विषयवस्तु का आंशिक रूप होता है। शृंखला के रूप में अन्य विषय जोड़-जोड़ कर चित्रों का विस्तार किया जाता है। वर्ली जीवन शैली की झांकी सरल आकृतियों में खूबसूरती से प्रस्तुत की जाती है। अन्य

आदिवासीय कला के प्रकारों से भिन्न वर्ली चित्रकला में धार्मिक छवियों को प्रश्रय नहीं दिया जाता और इस तरह ये चित्र अधिक धर्मनिरपेक्ष रूप की प्रस्तुति करते हैं।

11.8 कालीघाट चित्रकला

कालीघाट चित्रकला का नाम कलकत्ता में स्थित कालीघाट नामक स्थान से जुड़ा है। कलकत्ते में काली मंदिर के पास ही कालीघाट नामक बाजार हैं 19वीं शती के प्रारंभ में पटुआ चित्रकार ग्रामीण बंगाल से कालीघाट में आकर बस गए देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाने के लिए। कागज पर पानी में घुले चटख रंगों का प्रयोग करके बनाए गए। इन रेखाचित्रों में स्पष्ट पृष्ठभूमि होती है। काली, लक्ष्मी, कृष्ण, गणेश, शिव और अन्य देवी-देवताओं को इनमें चित्रित किया जाता है। इसी प्रक्रिया में कलाकारों ने एक नए प्रकार की विशिष्ट अभिव्यक्ति को विकसित किया और बंगाल के सामाजिक जीवन से संबंधित विषयों को प्रभावशाली रूप में चित्रित करना प्रारंभ किया। इसी प्रकार की पट-चित्रकला उड़ीसा में भी पाई जाती है। बंगाल की उन्नीसवीं शती की क्रान्ति इस चित्रकला का मूल स्रोत बनी।

जैसे-जैसे इन चित्रों का बाजार चढ़ता गया, कलाकारों ने अपने आप को हिन्दु देवी-देवताओं के एक ही प्रकार के चित्रों से मुक्त करना प्रारंभ किया और अपने चित्रों में तत्कालीन सामाजिक-जीवन को चित्रों की विषय वस्तु बनाने के तरीकों को खोजना प्रारंभ कर दिया। फोटोग्राफी के चलन से भी इन कलाकारों ने प्रेरणा प्राप्त की, पश्चिमी थियेटर के कार्यक्रम ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासनिक व्यवस्था से उत्पन्न हुई बंगाल की बाबू संस्कृति तथा कोलकाता के नये-नये बने अमीर लोगों की जीवन शैली ने कला को प्रभावित किया। इन सभी प्रेरक घटकों ने मिलकर बंगला साहित्य, थियेटर, और दृश्य कला को एक नवीन कल्पना प्रदान की। कालीघाट चित्रकला इस सांस्कृतिक और सौंदर्यपूर्ण परिवर्तन का आइना बन कर उभरी। हिन्दु देवी देवताओं पर आधारित चित्र बनाने वाले ये कलाकार अब रंगमंच पर नर्तकियों, अभिनेत्रियों, दरबारियों, शानशौकत वाले बाबुओं, घमण्डी छैलों के रंगबिरंगे कपड़ों, उनके बालों की शैली तथा पाइप से धूम्रपान करते हुए और सितार बजाते हुए दृश्यों को अपने चित्र पटल पर उतारने लगे। कालीघाट के चित्र बंगाल से आई कला के सर्वप्रथम उदाहरण माने जाने लगे।

11.9 भारतीय हस्तशिल्प

भारत सर्वोत्कृष्ट हस्तशिल्प का खजाना माना जाता है। दैनिक-जीवन की सामान्य वस्तुएँ भी कोमल कलात्मक रूप में घड़ी जाती है। यह हस्तशिल्प भारतीय कलाकारों की रचनात्मकता को नया रूप प्रदान करने लगे। भारत का प्रत्येक क्षेत्र अपने विशिष्ट हस्तशिल्प पर गर्व कर सकता है। उदाहरणार्थ कश्मीर कढ़ाई वाली शालों, गलीचों, नामदार सिल्क तथा अखरोट की लकड़ी के बने फर्नीचर के लिए प्रसिद्ध है। राजस्थान बंधनी काम के वस्त्रों, कीमती हीरे जवाहरात जड़े आभूषणों, चमकते हुए नीले बरतन और मीनाकारी के काम के लिए

प्रसिद्ध है। आंध्रप्रदेश अपने बीदरी के काम तथा पोचमपल्ली की सिल्क साड़ियों के लिए प्रख्यात है। तमिलनाडु ताम्र मूर्त्तियों एवं कांजीवरम साड़ियों के लिए जाना जाता है। मैसूर रेशम और चंदन की लकड़ी की वस्तुओं के लिए तथा केरल हाथी दांत की नक्काशी और शीशम की लकड़ी के फर्नीचर के लिए प्रसिद्ध है। मध्य प्रदेश की चंदेरी और कोसा सिल्क, लखनऊ की चिकन, बनारस की ब्रोकेड़ और जरी वाली सिल्क साड़ियाँ तथा असम का बेंत का फर्नीचर, बांकुरा का टेराकोटा तथा बंगाल का हाथ से बुना हुआ कपड़ा भारत के विशिष्ट पारम्परिक सजावटी दस्तकारी के कुछ उदाहरण हैं। ये आधुनिक भारत की विरासत के भाग हैं। ये कलाए हजारों सालों से पीढ़ी दर पीढ़ी पोषित होती रही हैं और हजारों कलाकारों को रोजगार प्रदान करती है। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि किस तरह भारतीय कलाकार अपने जादुई स्पर्श से एक बेजान धातु, लकड़ी या हाथी दांत को कलाकृति में बदल देते हैं।

पाठगत प्रश्न 11.3

1. वर्ली चित्रकारी कहाँ प्राप्त होती है?

   ....

2. वर्ली चित्रों के लिए कौन सा कबीला प्रसिद्ध है?

   ....

3. वर्ली चित्रों की विशेषता क्या है?

   ....

4. कश्मीर प्रदेश की कला और दस्तकारी की कुछ प्रमुख रचनाएँ क्या हैं?

   ....

आपने क्या सीखा

भारत में रचनात्मक चित्रकारी के प्राचीनतम उदाहरण प्रागैतिहासिक काल में खोजे जा सकते हैं।

- ब्राह्मणों तथा बौद्धों दोनों के ही साहित्यों में विविध चित्रकला और उसकी तकनीकों के उल्लेख पाये जाते हैं।
- पश्चिमी दक्कन के पहाड़ों में बनी अजन्ता बौद्ध गुफाएं भित्तिचित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं।
- मुगलों ने भारतीय चित्रकला को पारसी परम्पराओं से जोड़ कर एक नए युग का सूत्रपात किया।

टिप्पणी

- भारतीय चित्रकला को और अधिक समृद्ध बनाने में राजस्थानी और पहाड़ी शैलियों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।
- 18वीं शताब्दी के अंत तथा 19वीं सदी के प्रारंभ में भारतीय विषयवस्तु के आधार पर चित्रकला अर्ध-पाश्चात्य स्थानीय शैलियों के रूप में विकसित हुई।
- भारत के प्रमुख शहरों मुंबई, कलकत्ता तथा मद्रास में यूरोपीय मॉडल के आधार पर कला-विद्यालयों की स्थापना और विशेष रूप से बंगाल स्कूल आफ आर्ट आधुनिक काल में भारतीय चित्रकला के क्षेत्र में मील के पत्थर सिद्ध हुए हैं।
- प्रगतिशील कलाकार जैसे फ्रांसिस न्यूटन सूजा, एस एच रजा, एम एफ हुसैन आदि स्वतंत्र भारत की आधुनिक सशक्त कला का प्रतिनिधित्व करने के लिए बंगाल स्कूल आफ आर्ट से अलग हो गए।
- विभिन्न लोक कला शैलियाँ जैसे मिथिला चित्रकला (मधुबनी, कलमकारी चित्रकला, वर्ली चित्रकला तथा कालीघाट चित्रकला ने भारतीय चित्रकला में अनेक नई दिशाएँ जोड़ कर उसे नई ऊंचाईयों तक पहुँचा दिया।

पाठान्त प्रश्न

1. मध्यकाल में आप चित्रकला के विकास का वर्णन किस प्रकार करेंगे?
2. मधुबनी कला शैली को परिभाषित कीजिए। मधुबनी चित्रों की रचना कैसे बहुत अधिक वैचारिक है?
3. कलमकारी चित्रकला और मिथिला चित्रकला में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. कालीघाट के चित्रों में अनेक प्रकार की बंगाली संस्कृति झलकती है। स्पष्ट कीजिए।
5. 'भारतीय कलाकर एक धातु के टुकड़े को तथा लकड़ी और हाथी के दांत जैसी वस्तु को अपने जादुई स्पर्श से कलाकृति में बदल देते हैं।' विस्तार कीजिए।
6. मुगलों की चित्रकला का कला के रूप में क्या योगदान था?
7. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–

   (i) कलमकारी कला

   (ii) पहाड़ी कला

   (iii) कालीघाट कला

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

11.1 1. भीमबेटका

2. लेप्यचित्र, लेखाचित्र और धूलिचित्र
3. ये फर्शों पर बनाए जाते हैं।
4. ये जातक कहानियों और बौद्ध विषवस्तु से दृश्य दिखाते हैं।
5. उत्तर में बाघ, (कर्नाटक) दक्षिण में बदामी
6. एक छोटे स्तर पर रामयण महाभारत, मिथक, परम्परागत कथाएँ, ऋतुएँ और रागमाला (संगीत की धुनें)
7. औरंगजेब
8. (अ) ब्रिटिश शासन की दुष्प्रकृति
   (ख) राष्ट्रीयता के आदर्श
   (ग) राष्ट्रीय परिचय की इच्छा
9. (अ) नैशनल गैलेरी आफ मॉडर्न आर्ट
   (ब) ललित कला अकादमी
10. उड़ीसा राज्य
11. कलाभवन
12. आधुनिक भारत में मिथिकपूर्ण और सामाजिक विषय वस्तु को दर्शाते हुए तेल चित्र बहुत प्रसिद्ध हो गए।

11.2 1.

रंगोली	उत्तरी भारत
अल्पना	बंगाल
ऐपन	उत्तरांचल
रंगावली	कर्णाटक
कोल्लम	तमिलनाडु
मांडना	मध्यप्रदेश

2. मिथिला चित्रकारी
3. इसमें सब्जियों के रंग प्रयोग किये जाते हैं।
4. ये हिन्दु धार्मिक मिथकों पर आधारित होते हैं जो एक दृश्य के क्रम से बनाए जाते हैं। ऊपर और नीचे यह फूलों के सजे हुए नमूनों से घिरे होते हैं।
5. श्री कलहस्ती

11.3 1. भारत के महाराष्ट्र राज्य में

2. गोंड और कोल कबीले

3. यह रेखागणितीय आकृतियों का उपयोग करती हैं और विषय पर विषय सीढ़ीनुमा आकृति में प्रस्तुत किए जाते हैं।

4. कढ़ी हुई शालें, गलीचे, नामदार सिल्क और अखरोट की लकड़ी का फर्नीचर।

12

प्रस्तुति कलाएँ – संगीत, नृत्य तथा नाटक

हमारे देश में संगीत, नृत्य, नाटक, लोकमंच या कठपुतली आदि प्रस्तुति कलाओं की भरमार है। ओह! कोई ढोल (संगीत वाद्य) बजा रहा है। वहाँ संगीत बज रहा है। हम वहाँ जाकर देखते हैं कि वहाँ क्या हो रहा है? वाह! यह तो लोहड़ी पर्व है जो हमारे देश के उत्तर भाग में प्रति वर्ष 13 जनवरी को मनाया जाता है। लोग बहुत हर्षोल्लास के साथ गा और नाच रहे हैं। ये पंजाब में भांगड़ा तथा गिद्धा नृत्य कहे जाते हैं। ये गीत तथा नृत्य हमारे जीवन के विभिन्न पक्षों को दर्शाते हैं। ये पहले ग्रामीण लोगों के सामाजिक-धार्मिक रिवाजों तथा प्रथाओं को ही प्रतिबिम्बत करते थे परन्तु अब ये सब आधुनिक शहर की भी संस्कृति का प्रमुख भाग बन गए हैं। कोई भी विद्यालय का कार्यक्रम इनके बिना पूरा नहीं होता। यहाँ उत्सव मनाने के इतने कारण हैं कि उनकी सूची बनाना भी कठिन है, आप भी क्यों न इन क्रियाकलापों की सूची बना लें और जानें कि इन्हें क्यों और कब मनाते हैं? आपको ये क्रियाएँ न केवल मनोरंजनक लगेंगी बल्कि आप इस सूची को समाप्त भी नहीं कर सकोगे। आप जानते हैं क्यों? क्योंकि हमारे देश में इनकी इतनी प्रचुरता है कि आप समूचे नृत्य, संगीत और नाटकों की मात्रा को कभी जान भी नहीं पाओगे।

भारत समृद्ध संस्कृति तथा विरासत से सम्पन्न देश है। हमारी सभ्यता के आरंभ से ही संगीत, नृत्य, नाटक हमारी संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं और प्रारंभिक दौर में ये कला के अंग धर्म और समाज सुधार आन्दोलनों को प्रसारित करने का माध्यम थे जिनको लोकप्रिय बनाने के लिए संगीत और नृत्य को समाविष्ट किया गया था। वैदिककाल से मध्ययुगीन काल तक प्रस्तुतिकलाएँ जनसामान्य को शिक्षित करने का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनी हुई थीं। वैदिक मन्त्रों को लय में तथा त्रुटिहीन गाने के लिए वेदों में नियम बताए गए थे?

विभिन्न मंत्रों को सुर तथा स्वराघात में उच्चारण को शुद्ध करके गाने की विधि भी वर्णित है। इनके माध्यम से शिक्षा और सामाजिक सुधार की अपेक्षा अनुकरणीय उच्चारण पर भी

अधिक बल दिया गया है। वर्तमान काल में ये कलाविधाएं समस्त संसार में सामान्य लोगों के लिए मनोरंजन का साधन बन गई हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आपः–

- कई चरणों को पार करती हुई प्रस्तुति कलाओं के विकास क्रम के लक्ष्य व उद्देश्यों की विवेचना कर सकेंगे;
- प्राचीन काल और मध्यकाल में प्रस्तुति कलाओं के उपयोग का वर्णन कर सकेंगे;
- संगीत के क्षेत्र में सूफी और भक्ति काल के संतों के योगदान को पहचान सकेंगे;
- हिन्दुस्तानी शास्त्रीय-संगीत और कर्नाटक-संगीत के अन्तर को समझ सकेंगे;
- भारतीय संस्कृति में शास्त्रीय नृत्य, लोक संगीत एवं साथ ही साथ लोक नृत्यों के योगदान को पहचान सकेंगे;
- भारत में कई चरणों में हुए नाटकों के विकास का विश्लेषण कर सकेंगे तथा इस क्षेत्र में लोक नाटकों के योगदान को पहचान सकेंगे;
- मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में कला के तीन प्रकारों की भूमिका की जांच कर सकेंगे; तथा
- संगीत, नृत्य तथा नाटक के वर्तमान परिदृश्य का विश्लेषण कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तुति कलाओं की अवधारणा

कला क्या है? मानव मस्तिष्क की सौन्दर्य विषयक विशेषताओं को प्रकट करना 'कला' है। ये विशेषताएँ अर्थात् विभिन्न मानवीय भावनाएं 'रस' मानी जाती हैं। हिन्दी भाषा में रस का शाब्दिक अर्थ है मीठा रस। यह 'आनन्द' की अंतिम-संतुष्टि को बताता है। मानव की भावनाओं को 'नवरस' नामक उपशीर्षकों के अंतर्गत विभाजित कर सकते हैं।

1. हास्य .... हंसी
2. भयानक .... डरावना दृश्य
3. रौद्र .... वीरता तथा दया (सामन्ती व्यवहार)
4. करुण .... दया पूर्ण
5. वीर .... साहस
6. अद्‌भुत .... आश्चर्यजनक

7. वीभत्स .... घृणित, डरावना
8. शान्त .... शान्ति
9. श्रृंगार .... प्रेम रस

कला मानव की भावनाओं को स्वाभाविक रूप से प्रकट करती है; मनुष्य अपने मन के विचारों को स्वाभाविक रूप से विभिन्न कलात्मक रूपों में प्रकट करते हैं। इस प्रकार बुद्धिमान मानव का कलात्मक झुकाव कला को जन्म देता है। वह अपनी भावना को गायन, नृत्य, रेखा चित्र, चित्रकला, अभिनय तथा मूर्तिकला के माध्यम से व्यक्त करता है। कुछ अपनी भावना को जीवन्त प्रस्तुति तथा अन्य दृश्य कला के माध्यम से प्रकट करते हैं। रेखाचित्र बनाना, चित्रकारी, मूर्तिकला दृश्य कलाएँ हैं। गायन, नृत्य, अभिनय प्रस्तुति कला की सहज विशेषताएँ हैं। भारत की सबसे प्राचीन लोकप्रिय कला संगीत कला रही है।

भारतीय संगीत की सबसे प्राचीन परंपरा को हम सामवेद में खोज सकते हैं, जिसके मन्त्र संगीत बद्ध रूप में गाये जाते हैं। आज भी धार्मिक अनुष्ठानों में वैदिक मंत्रों का एक खास स्वर और स्वाराघात में उच्चारण किया जाता है। सबसे प्राचीन पुस्तक, जिसमें प्रस्तुति कलाओं का वर्णन और चर्चा विशिष्ट रूप में की गई है, वह है, भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' जो ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी और ईसा पश्चात् दूसरी शताब्दी के बीच संकलित किया गया था। इसमें संगीत पर छः अध्याय हैं। दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक है, मातंग की 'बृहद्देशी' जिसे आठवीं और नवीं शताब्दी के बीच लिखा गया था। इस पुस्तक में 'रागों' का पहली बार नामकरण एवं उन पर विस्तृत रूप से चर्चा की गई है। सारंगदेव ने 13वीं शताब्दी में 'संगीत-रत्नाकर' लिखा, जिसमें 264 रागों का वर्णन किया गया है। तार और वायु वाद्ययत्रों के कई प्रकारों की खोज बाद के समय में हुई। प्राचीन पुस्तकों में बांसुरी, ढोल, वीणा, तारों के वाद्ययंत्र, मंजीरा आदि वाद्ययन्त्रों की चर्चा है। बहुत सारे शासकों जैसे समुद्रगुप्त, धारा के राजा भोज और कल्याण के राजा सोमेश्वर ने भी संगीत को संरक्षण दिया था। गुप्त सम्राट समुद्र गुप्त स्वयं कुशल संगीतकार थे। कुछ सिक्कों में वे स्वयं वीणा बजाते हुए दिखाए गए हैं। मंदिरों में देवी एवं देवताओं की पूजा करते हुए संगीत का प्रयोग होता है। 12वीं शताब्दी में उड़ीसा के जयदेव ने 'गीत-गोविंद'' जैसे उत्कृष्ट रागकाव्य की रचना की जिसका प्रत्येक गीत रागों पर आधारित था। ''गीत-गोविंद राधा और कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों पर रचित काव्य है। अभिनवगुप्त (सन् 993-1055 ई.) द्वारा रचित 'अभिनवभारती' ग्रन्थ संगीत के बारे में उपयोगी जानकारी प्रदान करता है। तमिल संगीत की बहुत सारी शब्दावलियां और धारणाएं संस्कृत शास्त्रों के समानांतर हैं। शैववादी 'नयनार' और वैष्णववादी 'अलवारों' ने अपनी कविताओं की रचना संगीत के आधार पर की।

इसी प्रकार मध्यकाल में सूफी और भक्ति संतों ने संगीत को बढ़ावा दिया। सूफी खानकाहों में कव्वालियां गाई जाती थीं, वहीं भक्ति संतों के कारण भक्ति संगीत जैसे कीर्तन और भजन आदि लोकप्रिय हुए। कबीर, मीराबाई, सूरदास, चंडीदास, तुलसीदास, विद्यापति आदि नाम भक्ति संगीत से जुड़े हैं। अमीर खुसरो जैसे महान विद्वानों ने भी संगीत के विकास में योगदान किया। मालवा के प्रसिद्ध शासक बाजबहादुर और उनकी पत्नी रानी रूपमती ने नए

रागों की रचना की। इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय द्वारा 17वीं शताब्दी में 'किताबे नवरस' लिखा गया था, जो मुस्लिम संतों और हिन्दू देवी-देवताओं की प्रशंसा में लिखे गए कविताओं का संग्रह है। तानसेन, अकबर के राजदरबार के सबसे प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। जिनका मुकाबला कोई नहीं कर सकता था यद्यपि दरबार में अनेक कवि थे। बैजू बावरा, अकबर के काल में ही एक और प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। प्राचीन और मध्यकालीन शासकों द्वारा संगीत को दिये गये संरक्षण ने, भक्ति परंपरा को जीवित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। वास्तव में मुगल शासक संगीत के संरक्षक थे। 'लेनपूले' के अनुसार–बाबर भी स्वयं संगीत का शौकीन था। उन्होंने 'कव्वाली' 'ख्याल' आदि संगीत विधाओं को विकसित किया। हुमायूँ ने संगीत विषयक भारतीय ग्रंथों के उदाहरण प्रस्तुत किए। अकबर ने गीतों को रागात्मक रूप में बांधा और संगीतकारों को प्रोत्साहित किया। स्वामी हरिदास तथा उनके शिष्यों ने अनेक गीतों को विभिन्न धुनों में बाँधा। पुण्डरीक विट्ठल संगीत के बड़े विद्वान थे। उन्होंने प्रसिद्ध 'रागमाला' लिखी। मीराबाई, तुलसीदास और सूरदास ने अपने भक्तिपूर्ण गीतों को गाकर हिन्दुस्तानी संगीत को समृद्ध किया।

पाठगत प्रश्न 12.1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

1. प्रस्तुति कलाओं के कितने विभिन्न रूप हैं?

   ....

2. मनोरंजन और मन बहलाने के अतिरिक्त प्रस्तुति कला के अन्य क्या प्रभाव हैं?

   ....

3. पूरी तरह प्रस्तुति कलाओं को समर्पित प्राचीनतम ग्रन्थ कौनसा है?

   ....

4. आठवीं तथा नौवीं शताब्दी के मध्य प्रस्तुति कलाओं के विषय में रचित ग्रन्थ का नाम लिखें।

   ....

5. हमें किस पुस्तक में पहली बार रागों के नाम मिलते हैं? जिसमें उनकी विस्तार पूर्वक चर्चा है।

   ....

6. 'संगीतरत्नाकर' में कितने रागों को बताया गया है?

   ....

7. जयदेव की 'गीतगोविंद' का क्या विषय है?

....

8. तमिल के जिस दो कवियों ने अपनी कविताओं को संगीत में निबद्ध किया, उनके नाम लिखें।

....

9. किसने किताबे-नवरस लिखी?

....

10. मालवा के शासक वाजबहादुर तथा उनकी पत्नी रूपमती का संगीत में क्या योगदान था?

....

12.2 भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रकार

मध्यकाल में भारतीय शास्त्रीय संगीत मुख्य रूप से दो परंपराओं में विभाजित था–पहला, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत जो उत्तर भारत में लोकप्रिय था एवं दूसरा, कर्नाटक संगीत, जो दक्षिण भारत में प्रसिद्ध था।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति का काल दिल्ली सल्तनत और अमीर खुसरो (सन् 1233 ई.-1325 ई.) तक का माना जा सकता है। अमीर खुसरों ने एक विशेष तरीके से संगीत की वाद्ययन्त्रों सहित प्रस्तुति की कला को बढ़ावा दिया। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उन्होंने ही सितार और तबला का आविष्कार किया था और नए रागों की भी रचना की थी। हिन्दुस्तानी संगीत के ज्यादातर संगीतज्ञ स्वयं को तानसेन की परंपरा का वाहक मानते हैं। ध्रुपद, ठुमरी, ख्याल, टप्पा आदि शास्त्रीय संगीत की अलग-अलग विधाएँ हैं। ऐसा कहा जाता है कि तानसेन के संगीत में जादू का सा प्रभाव था। वे यमुना नदी की उठती हुई लहरों को रोक सकते थे और 'मेघ मल्हार' राग की शक्ति से वर्षा करवा सकते थे। वास्तव में आज भी भारत के सभी भागों में उनके सुरीले गीत रुचिपूर्वक गाये जाते हैं। अकबर के दरबार में बैजूबावरा, सूरदास आदि जैसे संगीतकारों को संरक्षण दिया गया था।

कुछ अत्यंत लोकप्रिय राग हैं–बहार, भैरवी, सिंधु भैरवी, भीम पलासी, दरबारी, देश, हंसध्वनि, जय जयंती, मेघमल्हार, तोड़ी, यमन पीलू, श्यामकल्याण, खम्बाज आदि।

भारत में वाद्य संगीत की बहुत विधाएँ हैं। इनमें सितार, सरोद, सन्तूर, सारंगी जैसे प्रसिद्ध वाद्य हैं। पखावज, तबला, और मृंदगम ताल देने वाले वाद्य हैं। इसी प्रकार बांसुरी, शहनाई और नादस्वरम् आदि मुख्य वायु वाद्य हैं।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय-संगीत के संगीतज्ञ सामान्यत: एक घराने या एक विशिष्ट संगीत विधा से संबंधित होते हैं। 'घराना' संगीतज्ञों की वंशानुगत संबद्धता से जुड़ा हुआ शब्द है, जो किसी खास संगीत विधा के सारभाग को सूचित करता है तथा अन्य रागों से विभिन्नता प्रदर्शित करता है। घराना, गुरु-शिष्य परंपरा से निर्धारित होते हैं, अर्थात् एक विशेष गुरु से संगीत की शिक्षा प्राप्त शिष्य समान घराने के कहलाते हैं। ग्वालियर घराना, किरण घराना, जयपुर घराना आदि जाने माने घराने हैं।

कीर्तन, भजन, राग जैसे भक्तिपूर्ण संगीत 'आदिग्रंथ' में समाहित हैं। मौहर्रम के दौरान मजलिस में गायकी का भारतीय संगीत में विशेष स्थान है। इसके साथ-साथ लोक-संगीत भी सांस्कृतिक विरासत की सम्पन्नता को दिखाता है।

12.3 कर्नाटक संगीत

कर्नाटक संगीत की रचना का श्रेय सामूहिक रूप से तीन संगीतज्ञों श्याम शास्त्री, थ्यागराजा और मुत्थुस्वामी दीक्षितर को दिया जाता है, जो 1700 ई. से 1850 ई. के बीच के काल के थे। पुरंदरदास, कर्नाटक संगीत के एक दूसरे महत्त्वपूर्ण रचनाकार थे। थ्यागराजा का सम्मान एक महान कलाकार और संत दोनों रूपों में किया जाता है। वे कर्नाटक संगीत के साक्षात् मूर्त्त प्रतीक हैं। उनकी मुख्य रचनाओं को ''कृति'' के रूप में जाना जाता है, जो भक्ति प्रकृति की है। तीन महान संगीतज्ञों ने नए तरीकों का प्रयोग किया। महावैद्यनाथ अय्यर (सन् 1844-93), पतनम सुब्रह्मण्यम आयंगर (सन् 1854-1902 ई.), रामनद श्रीनिवास आयंगर (सन् 1860-1919 ई.) आदि कर्नाटक संगीत के अन्य महत्त्वपूर्ण संगीतज्ञ हैं। बांसुरी, वीणा, नादस्वरम्, मृदगम्, घटम् कर्नाटक संगीत में प्रयुक्त मुख्य वाद्ययंत्र हैं।

हिन्दुस्तानी और कर्नाटक संगीत में कुछ असमानताओं के बावजूद उनमें कुछ समान विशेषताएं मौजूद है, जैसे कर्नाटक संगीत का 'आलपन' हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के 'आलाप' के समान है। कर्नाटक संगीत में व्यवहृत 'तिलाना' हिन्दुस्तानी संगीत के 'तराना' से मिलता जुलता है। दोनों संगीत विधाएं 'ताल' या तालम् पर जोर देते हैं।

12.4 आधुनिक भारतीय संगीत

अंग्रेजी शासन के साथ पश्चिमी संगीत भी हमारे देश में आया। भारतीय संगीत की मांग को संतुष्ट करने के लिए भारतीयों ने वायलिन और शहनाई वाद्ययंत्रों को अपनाया। मंच पर संगीत का वृन्दवादन एक नया विकास है। कैसेटों के उपयोग ने धुनों और रागों के मौखिक प्रदर्शन को प्रतिस्थापित कर दिया है। संगीत, जो कुछ सुविधा-सम्पन्न धनी लोग के बीच ही सीमित था, अब व्यापक जनता को उपलब्ध है। देश में मंचीय प्रदर्शनों के द्वारा हजारों संगीत प्रेमी आनंद उठा सकते हैं। संगीत की शिक्षा अब गुरु-शिष्य व्यवस्था पर ही निर्भर नहीं है, अब इसकी शिक्षा संगीत सिखाने वाले संस्थानों में भी दी जाती है।

संगीतज्ञ

अमीर खुसरो, सदारंग अदरंग, मियां तानसेन, गोपाल नायक, स्वामी हरिदास, पंडित वी. डी. पलुस्कर, पंडित वी.एन. भातखंडे, थ्यागराजा, मुत्थुस्वामी दीक्षितर, पंडित ओंकारनाथ ठाकुर, पंडित विनायक राव पटवर्द्धन, उस्ताद चांद खान, उस्ताद बड़े गुलाम अली खान, उस्ताद फैयाज खान, उस्ताद निसार खान, उस्ताद अमीर खान, पंडित भीमसेन जोशी, पंडित कुमार गंधर्व, केसरबाई केरकर तथा श्रीमती गंगूबाई हंगल आदि प्रमुख संगीत गायक हैं।

वादकों में बाबा अलाउद्दीन खान, पंडित रविशंकर, उस्ताद बिस्मिल्ला खान, उस्ताद अल्लाहरखा खान, उस्ताद जाकिर हुसैन प्रमुख संगीतज्ञ हैं।

12.5 लोक संगीत

शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त भारत के पास लोक संगीत या लोकप्रिय संगीत की एक समृद्ध विरासत है। यह संगीत जनभावनाओं को प्रस्तुत करता है। साधारण गीत, जीवन के प्रत्येक घटनाओं को चाहे वह कोई पर्व हो, नई ऋतु का आगमन हो, विवाह या किसी बच्चे के जन्म का अवसर हो, ऐसे उत्सव मनाने के लिए रचे जाते हैं। राजस्थानी लोकसंगीत जैसे मांड़, भाटियाली और बंगाल की भटियाली पूरे देश में लोकप्रिय है। रागिनी हरियाणा का प्रसिद्ध लोक गीत है।

लोक गीतों का एक खास अर्थ तथा संदेश होता है। वे अक्सर ऐतिहासिक घटनाओं और महत्त्वपूर्ण अनुष्ठानों का वर्णन करते हैं। कश्मीरी 'गुलराज' सामान्यत: एक लोक कथा है। मध्य प्रदेश का 'पंड्याणी' भी एक कथा है, जिसे संगीतबद्ध कर प्रस्तुत किया जाता है। मुस्लिम मुहर्रम के अवसर पर सोजख्वानी या शोकगीत गाते हैं। ईसाइयों के त्यौहरों के अवसर पर कैरोल और आनंद गीत, समूह में गाए जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 12.2

1. भारतीय शास्त्रीय संगीत के दो भाग कौन से हैं?

   ....

2. हिन्दुस्तानी संगीत की विभिन्न शैलियां क्या हैं?

   ....

3. हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में 'घराना' क्या है?

   ....

4. भारत के कुछ प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी संगीत घरानों के नाम बतायें।

   ....

5. कर्नाटक संगीत में 'कृति' क्या है?

....

6. भारत के कर्नाटक संगीत के कुछ संगीत रचनाकारों के नाम बतायें।

....

7. कर्नाटक संगीत में कौन से सहायक मुख्य वाद्य यन्त्र प्रयोग किए जाते हैं?

....

8. हिन्दुस्तानी संगीत तथा कर्नाटक संगीत दोनों में समान दो लक्षण कौन से हैं?

....

12.6 भारत के नृत्य

ऋग्वेद में 'नृति' तथा नृतु का उल्लेख मिलता है तथा उषा काल की सुन्दरता की तुलना सुन्दर बेशभूषायुक्त नृत्यांगना से की है। जैमिनी तथा कौशीतकी ब्राह्मण ग्रन्थों में नृत्य और संगीत का एक साथ उल्लेख किया गया है। महाकाव्यों में स्वर्ग तथा पृथ्वी पर नृत्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

संगीत के समान भारतीय नृत्य की भी समृद्ध शास्त्रीय परंपरा विकसित हो चुकी थी। कथा कहते हुए, नृत्य, भावनाओं को व्यक्त करने का सशक्त साधन है।

भारत में नृत्य कलाओं के इतिहास का प्रारम्भ हडप्पा संस्कृति में खोजा जा सकता है। हड़प्पा में मिली नृत्यांगना की एक कांस्य मूर्ति का साक्ष्य इस बात को साबित करता है कि वहां स्त्रियों द्वारा नृत्य का प्रदर्शन होता था।

भारतीय परम्परागत संस्कृति में नृत्यों के द्वारा धार्मिक विचारों को सांकेतिक अभिव्यक्ति दी जाती थी। नटराज के रूप में शिव की मुद्रा, सृष्टि चक्र के निर्माण व ध्वंस को दर्शाती है। नटराज के रूप में शिव की लोकप्रिय प्रतिमा भारतीय जन मानस पर नृत्य के प्रभाव को दर्शाती है। देश के विशेष रूप से दक्षिणी भाग में कोई भी ऐसा मंदिर नहीं है जहां नृत्य करते देवों की विभिन्न मुद्राओं वाली मूर्ति न हो। कत्थकली, मणिपुरी, भरतनाट्यम्, कत्थक, कुचीपुड़ी तथा ओडिसी कुछ भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के प्रकार हैं जो हमारी सांस्कृतिक विरासत का आवश्यक अंग है।

यह कहना कठिन है कि नृत्य का किस समय पर आविर्भाव हुआ परन्तु यह स्पष्ट है कि खुशी को व्यक्त करने के लिए नृत्य अस्तित्व में आया। धीरे-धीरे नृत्य को लोक तथा शास्त्रीय दो भागों में बांटा गया। शास्त्रीय नृत्य को मंदिरों तथा शाही राजदरबारों में प्रस्तुत किया जाता था। मंदिरों में नृत्य धार्मिक उद्देश्य से किये जाते थे जबकि राज दरबार में यह केवल मनोरंजन का साधन मात्र था। दोनों ही अवसरों पर दक्षिण भारत

में भरतनाट्यम् व मोहिनीअट्टम् मंदिरों में धार्मिक अनुष्ठानों के एक महत्त्वपूर्ण पहलू के रूप में विकसित हुए। यक्षगान, जो कि, केरल के कथकली नृत्य का एक प्रकार है, इस कला में पारंगत नर्तकों के लिए यह ईश्वर की पूजा से कम न था। रामायण व महाभारत की कथाओं की नृत्य-प्रस्तुति की जाती है जबकि कत्थक व मणिपुरी अधिकाशंतः भगवान कृष्ण की कथाओं एवं उनके रास नृत्य से संबद्ध होते हैं। ओडिसी नृत्य भगवान जगन्नाथ की पूजा से संबंधित है। उत्तर भारत में कत्थक को विशेष रूप से मंदिरों में कृष्ण लीला और भगवान शिव की कथाओं को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है, लेकिन साथ ही साथ इस नृत्य को मध्यकाल में राजदरबारों में भी प्रस्तुत किया जाने लगा। राजा के दरबार में प्रेम भावना युक्त ठुमरी और गजल वाद्ययन्त्रों सहित प्रस्तुत किये जाते थे, जो मनोरंजन पक्ष को प्रतिबिंबित करते थे। मणिपुरी नृत्य भी धार्मिक प्रयोजनों के लिए ही प्रस्तुत किया जाता था। लोक नृत्य आम लोगों के जीवन से विकसित हुए जिन्हें समूह में प्रस्तुत किया जाता था। असम में फसलों की कटाई के समय के आगमन को बीहू नृत्य के माध्यम से उत्सव के रूप में मनाया जाता है। इसी प्रकार गुजरात का गरबा, पंजाब का गिद्धा और भांगड़ा, मिजोरम का बांस नृत्य, महाराष्ट्र में मछुआरों का कोली नृत्य; कश्मीर का धूमल, बंगाल का छाऊ नृत्य आदि प्रस्तुति कलाओं के माध्यम से आम लोगों के द्वारा अपने हर्ष और शोक को अभिव्यक्त करने के अनूठे उदाहरण हैं।

जहां तक इस नृत्य के विश्लेषणात्मक अध्ययन का प्रश्न है, भरत मुनि का नाट्य शास्त्र इस संदर्भ का प्राथमिक स्रोत है। मूलतः नाट्यशास्त्र, नाट्य कला से संबंधित है परंतु नाटक के अभिन्न अंश के रूप में भरत मुनि ने नृत्य व उसके अनेक अंगों की विस्तृत चर्चा की है। मुखाकृति, शारीरिक भाव भंगिमाएं, हस्तमुद्रा तथा पद संचालन सभी को तीन भागों में विभाजित करते हुए उन्हें 'नृत्त' (पद संचालन), नृत्य (अंग संचालन) तथा नाट्य (अभिनय) की संज्ञा दी गई है। प्रारंभ में पुरुषों और महिलाओं दोनों ने नृत्य में विशेष रुचि ली थी, परन्तु एक ऐसा समय भी आया जब समाज महिला नर्तकी को हेय दृष्टि से देखने लगा। अब एक बार फिर ये सब चीजें बदल गई हैं। महान संगीतविदों के प्रयत्नों और धार्मिक व सामाजिक सुधार आंदोलनों के फलस्वरूप लोग अब महिला कलाकारों को सम्मान की नजरों से देखने लगे हैं।

मध्ययुगीन काल में मुगल शासकों ने कत्थक नृत्य को प्रोत्साहन दिया। सुना जाता है कि मुगल शासकों में 'औरंगजेब' को छोड़कर ये नृत्य प्रस्तुतियाँ दरबार में पेश की जाती थीं। दक्षिणी भारत में, मंदिर, दरबार तथा भवनों में नर्तकों के लिए विशेष मंच प्रदान किया जाता था। नव रस, राम, कृष्ण, गणेश, दुर्गा आदि की पौराणिक कथाओं को नृत्य के द्वारा अभिनीत किया जाता था। उत्तर भारत के कुछ शासक जैसे वाजिद अली शाह संगीत और नृत्य के बड़े संरक्षक थे। लखनऊ घराना या नृत्य की पाठशाला के बीज यहीं बोये गए। यहीं लखनऊ घराना शुरु हुआ। आधुनिक समय में पंडित बिरजु महाराज लखनऊ घराना के ही नर्तक हैं। मध्ययुगीन काल में, प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के नृत्य के कठोर नियमों को दक्षिण नृत्य शैली ने आत्मसात कर लिया था। दक्षिणी राज्य नृत्य की शिक्षा के प्रमुख केन्द्र बन गये तथा दक्षिण में अनेक नृत्य संस्थान खुलते चले गये।

आधुनिक काल में हमें दक्षिण भारतीय शास्त्रीय नृत्य धारा में अधिकतम नृत्य रूप प्राप्त होते हैं। कुचीपुड़ी भरतनाट्यम्, मोहिनीयअट्टयम्, कथकली तथा पूर्व दिशा में ओडिशी नृत्य विकसित हो रहा था।

शास्त्रीय नृत्य शैली के साथ लोकनृत्य भी विकसित हो रहा था। अनेक राज्यों में स्थानीय नृत्य भी लोकप्रिय हो गये। मणिपुरी नृत्य, संथालनृत्य रवीन्द्रनाथ की नृत्य नाटिकाएँ, छाऊ, रास, गिद्‌दा, भांगड़ा, गरबा आदि कुछ लोकनृत्य भारत में प्रचलित हो रहे थे। वे समान रूप से लोकप्रिय हैं तथा नवीन कुशाग्रता और गवेषणाओं से संप्रेरित हैं।

हमारे देश के प्राय: सभी राज्यों ने अपने लोकनृत्यों की समृद्ध परंपरा विकसित कर ली है। उदाहरण के लिए आसाम का बिहु, लद्‌दाख का मुखौटा नृत्य, मेघालय का वांगला, सिक्किम का भूतिया या लेप्चा नृत्य। इसके साथ ही कुछ मार्शल डांस हैं जैसे उत्तराचंल का छोलीया, केरल का कलारी पैट्टु, मणिपुर का थांग-ता आदि प्रसिद्ध नृत्य हैं।

वर्तमान में देश में तीनों ही कलाएं विकसित हो रही हैं। संगीत के संस्थान खुलने से अनेक लोगों को संगीत सीखने का अवसर मिल रहा है। विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संगीत विभाग खुल गए हैं। खैरगढ़ का इंदिरा कला विश्वविद्यालय संगीत का विश्वविद्यालय है। गन्धर्व महाविद्यालय, कत्थक केन्द्र तथा दक्षिण के कई संस्थान संगीत का अपने तरीके से प्रसार कर रहे हैं।

संगीत सभाएं, बैठकें, भाषण, प्रदर्शन आदि देश के कोने-कोने में संगीत का प्रसार कर रहे हैं, सामाजिक संस्थाएँ जैसे स्पिक-मैके, भारतीय अन्तर्देशीय ग्रामीण सांस्कृतिक केन्द्र (IIRCC) कलाकारों तथा आधुनिक पीढ़ी के बीच गहरे संबंध स्थापित करने में बहुत परिश्रम से कार्य कर रहे हैं।

विदेशों में भी संगीतकार सम्मान प्राप्त कर रहे हैं। पंडित रविशंकर, उस्ताद अली अकबर खान, अल्लारक्खा आदि द्वारा खोले गये संगीत के विभिन्न संस्थान विदेशियों के लिए बहुमूल्य शिक्षण केन्द्र हैं। अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में 'कला' के लिए विद्यार्थियों को डिप्लोमा और डिग्री देने की भी सुविधाएँ हैं। समस्त विश्व में भारतीय कलाकारों को कला प्रस्तुति के लिए निमंत्रण दिए जाते हैं तथा वे विभिन्न उत्सव समारोहों में भाग लेते हैं।

आधुनिक भारत के प्रसिद्ध नर्तक

कथक :

- पं. बिरजु महाराज, पं. शम्भुमहाराज, सितारादेवी, पं. गोपी कृष्ण, एवं पं. लच्छू महाराज।

भरतनाट्यम :

- सरोजा वैद्यनाथन्, पद्मा सुब्रह्मण्यम्, गीता चन्द्रन।

ओडिसी :

- केलुचरण महापात्रा, संयुक्ता पाणिग्राही, किरण सहगल, माधवी मुद्‌गल आदि।

कुचीपुड़ी :

- स्वप्न सुंदरी, सत्यनारायण शर्मा, राजा रेड्डी, राधारेड्डी और सोनल मानसिंह आदि।

संगीतविद्

- भरत, मातगंमुनि, नारदमुनि, पं. शार्ङ्गदेव, पं. सोमनाथ, पं. अहोबल।
- पं. वेंकटमखी, पं. रमामात्य, एस.एम. टैगोर और आचार्य के.सी.डी. बृहस्पति।

पिछले कुछ दशकों में नृत्य कला व नृत्यकारों के स्तर में एक परिवर्तन आया है। अब, सम्मानित परिवारों के युवक, नृत्य को व्यक्तिगत गुण के रूप में सीखने लगे हैं, जो कि उनके व्यक्तित्व को निखारती है। कुछ विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में नृत्य की शिक्षा के लिए पृथक् विभाग खोले गए हैं। अनेक शास्त्रीय नृत्य कलाकारों को पद्‌मश्री, पद्‌मभूषण आदि राष्ट्रीय पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया है।

सिन्धु घाटी सभ्यता से लेकर जहाँ नृत्यांगना की मूर्त्ति प्राप्त हुई थी, इतिहास के विभिन्न कालों से लेकर वर्तमान तक भारतीय जनता अपनी खुशी और गम विविध कलात्मक रूपों संगीत और नृत्यों के द्वारा ही प्रकट करती रही है। वे कला के द्वारा अपने प्रेम, घृणा, प्रेरणा, संघर्ष आदि भावों को अभिव्यक्त करके अन्तत: हमारी संस्कृति को ही समृद्ध बना रहे हैं।

पाठगत प्रश्न 12.3

1. भगवान शिव की नटराज आकृति क्या प्रस्तुत करती है?

   ....

2. नृत्य की दो शैलियाँ क्या हैं?

   ....

3. निम्नलिखित को मिलाएं :

नृत्य	राज्य	नृत्य	राज्य
1. बीहू	बंगाल	4. बांस नृत्य	कश्मीर
2. गरबा	मिजोरम	5. कोली	पंजाब
3. भांगड़ा और गिद्‌दा	महाराष्ट्र	6. धूमल	गुजरात
		7. छाऊ	आसाम

4. नृत्य की तीन सामान्य श्रेणियाँ क्या हैं?

....

5. कत्थक के दो प्रसिद्ध नर्तकों के नाम लिखिए।

....

6. 'भरतनाट्यम्' के कुछ प्रसिद्ध नर्तकों के नाम लिखिए।

....

12.7 नाटक

प्राचीन परंपरा तथा आधुनिक शोध भारतीय नाटक का मूल वेदों में पाते हैं। रामायण में महिलाओं के नाटकमण्डलों का वर्णन है और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में संगीतज्ञों, नर्तकों तथा नाटकों के मंचन का वर्णन प्राप्त होता है।

नाटक प्रस्तुति कला की एक अन्य विधा है, जो अनन्त काल से चली आ रही है। शायद, नाटक बच्चों के खेलों के माध्यम से ही उत्पन्न हुआ होगा। बच्चा नकल करता है, हास्यजनक चरित्र व व्यक्तित्व को दर्शाता है और यही निश्चित रूप से नाटक का आरंभ रहा होगा।

प्राचीन काल से देवी-देवताओं के राक्षसों से युद्ध की मिथकीय कथाएं प्रचलित रही हैं। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र लिखा और जनसाधारण के लिए 'असुर-पराजय' और 'अमृतमंथन' नामक नाटक लिखे गये नाट्यशास्त्र नाटक और दूसरी प्रस्तुति कलाओं के क्षेत्र में लिखी गई महान पुस्तक है।

महान लेखक भास ने 'उदयन' की कथा तथा रामायण और महाभारत पर आधारित नाटक लिखे। 'स्वप्नवासवदता' उनकी महान रचना थी। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में पंतजलि के महाभाष्य में नाटक के बहुत से पक्षों जैसे अभिनेता, संगीत, रंगमंच, कंसवध और बालिबन्ध जैसे नाटकों में रस का उल्लेख किया है।

नाटक के संदर्भ में भरत मुनि ने नट (पुरुष कलाकार) नटी (स्त्री कलाकार) संगीत, नृत्य, वाद्यों, संवाद, विषय, मंच आदि के बारे में लिखा है। अत: हम देखते हैं कि भरत मुनि के काल में नाटक सम्पूर्णता के स्तर तक पहुंच चुका था। भरत मुनि के अनुसार नाटक संप्रेषण का सर्वोत्तम माध्यम है इन्होंने नाटक के लिए एक चारदीवारी से युक्त क्षेत्र की भी कल्पना की थी। इन्होंने नाटक के लिऐ एक विशेष पात्र 'शैलूष' का वर्णन किया है जिनके पास व्यावसायिक नाटक कंपनियाँ होती थीं। साहसिक कहानियों का गायन को जनता में काफी लोकप्रिय हुआ जिसके फलस्वरूप ये पेशेवर कलाकार जिनको 'कुशीलव' कहा जाता था, अस्तित्व में आए।

बुद्ध और महावीर के काल में नाटक, उनके धर्म के सिद्धांतों को जनसाधारण तक पहुंचाने का माध्यम था। लघु नाटक और लंबे नाटक जन साधारण को उपदेश और शिक्षा देने के लिए आयोजित किए जाते थे। नृत्य और संगीत, नाटक के प्रभाव को बढ़ाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

प्राचीन काल में 10वीं शताब्दी तक शिक्षित लोगों की भाषा संस्कृत थी। अतः नाटक भी अधिकांशतः इसी भाषा में होते थे। हालांकि, जो कलाकार निम्न वर्गों और महिलाओं की भूमिका निभाते थे, उन्हें प्राकृत भाषा में संवाद बोलने पड़ते थे। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वात्स्यायन का कामसूत्र, कालिदास का ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' सब संस्कृत में ही लिखे गये थे। भास, दूसरे प्रसिद्ध नाटककार थे। उन्होंने 13 नाटक लिखे। प्राकृत भाषा में नाटक 10वीं शताब्दी तक काफी लोकप्रिय बन गए थे। विद्यापति 14वीं शताब्दी के महत्त्वपूर्ण नाटककार थे। उन्होंने हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को गीतों की शैली में प्रस्तुत किया था। उमापति मिश्र और शारदा तनय ने भी इस काल में नाटक को प्रोत्साहित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

नाटक के संदर्भ में दो प्रकार विकसित हुए, एक शास्त्रीय प्रकार जिसमें नाट्य कला की सभी बारीकियाँ विद्यमान थीं, और दूसरी सहज और तात्कालिक लोक नाट्य कला थी। लोक नाटकों में स्थानीय बोली का प्रयोग होता था; फलतः भिन्न-भिन्न राज्यों में अनेक प्रकार के लोकनाटक विकसित हुए। संगीत और नृत्य के संयोग के साथ नाट्य शैली लोकप्रिय थी। भिन्न-भिन्न राज्यों में लोकनाटकों के प्रकारों को अलग-अलग नामों से जाना जाता है जैसे–

1. बंगाल– जात्रा, कीर्तनिया नाटक
2. बिहार– बिदेसिया
3. राजस्थान– रास, झूमर, ढोलामारू
4. उत्तर प्रदेश– रास, नौटंकी, स्वांग, भांड
5. गुजरात– भवाई
6. महाराष्ट्र– लाड़ित, तमाशा
7. तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक–कथकली, यक्षगान ['कुन्तलेश्वर दैत्यम्' नामक नाटक से प्रमाणित होता है कि कालिदास गुप्त काल में ही हुए थे।] ढोल, करताल, मंजीरा, खंजीरा आदि कुछ वाद्य यंत्र लोक नाटकों में प्रयुक्त होते थे।

मध्यकाल संगीत और नृत्य में समृद्ध था, किन्तु नाटक को इस काल में अधिक महत्त्व नहीं दिया गया था। बेशक, वाजिद अली शाह जैसा कला संरक्षक बादशाह, नाट्य कला के भी संरक्षक थे। वह कलाकारों को नाटकों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करता था स्थानीय बोली में मंचित लोक नाटक बहुत ज्यादा लोकप्रिय थे।

अंग्रेजों के आगमन ने भारतीय समाज के चरित्र को बदल दिया। अठारहवीं शताब्दी में कलकत्ता में एक अंग्रेज द्वारा एक नाटक ग्रुप की स्थापना की गई। एक रूसी, जिसका नाम होरासिम लेबेदेव था, ने भारत में एक बंगाली थियेटर की नींव डाली, जिसको भारत में

आधुनिक भारतीय थियेटरों की शुरूआत का द्योतक माना जाता है। भारतीय नाटक को अंग्रेजी नाटक विशेष रूप से शेक्सपीयर के नाटकों ने काफी प्रभावित किया था। शिक्षित भारतीयों द्वारा विकसित मंच, पारंपरिक भारतीय खुले मंचों से भिन्न थे। मंचों के पास अब जल्दी खींचने वाले पर्दे हो गए थे तथा मंचों पर परिदृश्यों को बदला जाता था। मुंबई में स्थापित एक पारसी थियेटर कंपनी ने यह दिखाया कि थियेटर का उपयोग व्यावसायिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी किया जा सकता था। नाटकों में त्रासदी, हास्य और मानव जीवन की जटिलताओं को अभिनीत किया जाने लगा। नाटकों को अब विभिन्न भाषाओं में लिखा जाने लगा। साथ ही साथ, लोक नाटक जैसे जात्रा, नौटंकी, और नाच भी फलेफूले। इसी के साथ-साथ जिसने प्रदर्शन कलाओं पर प्रभाव डाला वह था–लोक नाटकों को शास्त्रीयता में ढालना। विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों ने अपनी कलाओं को जनसाधारण की सेवा के लिए प्रचार के माध्यम के रूप में प्रयोग किया था। नाटक के विषय में भी यही स्थिति रही। मध्यकाल में लिखे गए लोकप्रिय नाटक ''विद्यासुन्दर'' पर जात्रा का प्रभाव था। जबकि ''गीतगोविंदम्'' जिसमें महान कवि जयदेव ने कृष्ण की लीलाओं से संबंधित कहानियां को वर्णित किया, उन पर भी कीर्तनिया नाटक और जात्रा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वर्तमान में, नाटक के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए जा रहे हैं। शम्भुमित्र, फैजल अलकाजी, बदल सरकार, विजय तेंदूलकर तथा अन्य नाटकारों के नाटकों पर पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

आजकल कई प्रकार के नाटक प्रचलित हैं जिनमें से कुछ हैं–

1. मंच थियेटर
2. रेडियो थियेटर
3. नुक्कड़ या वीथि नाटक
4. एकामिनय (एक यात्रीय प्रदर्शन)
5. संगीतमय थियेटर
6. लघु झलकियाँ
7. एकांकी नाटक

नृत्य और नाटक की विषयवस्तु के सम्बद्ध पक्षों के लिए हमें सृजनात्मक साहित्य की कृतियों का परीक्षण करना होगा। सबसे प्रमुख साहित्यिक कृति जिसने न केवल नृत्य और नाटक को ही प्रभावित किया बल्कि चित्रकला भी प्रभावित हुई, वह है 13वीं शताब्दी में जयदेव का गीतगोविन्द।

इसका प्रभाव नृत्य और नाटक पर पूरे भारत में देखा जा सकता है– पूर्व में मणिपुर और आसाम से पश्चिम में गुजरात, उत्तर में मथुरा और वृन्दावन, दक्षिण में तमिलनाडु और केरल, सम्पूर्ण देश में गीतगोविन्द पर असंख्य व्याख्याएँ प्रचलित हैं। गीत गोविन्द विषयक अनेकों पाण्डुलिपियाँ हैं जो गीतगोविन्द को नृत्य और नाटक की सामग्री के रूप में वर्णित करती हैं। यह कृति अनेक क्षेत्रीय रंगमंचीय परम्पराओं के लिए साहित्यिक पाठ्यपुस्तक के रूप में प्रयुक्त की जाती है। इस काल में वैष्णवधर्म के विस्तार ने भी विभिन्न प्रकार के नृत्य, नाटक और संगीत के विकास में पर्याप्त योगदान किया।

12.8 कुछ महत्त्वपूर्ण नाटक और उनके लेखक

नाटक एक ऐसी कला है जिसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भारत में काफी लंबी है, लेकिन इसका नाटकीय अध्ययन और विश्लेषण सहित समीक्षा भरतमुनि द्वारा नाट्य शास्त्र में प्रस्तुत की गई। इस ग्रंथ में उल्लेख किया गया है कि संगीत और नृत्य, नाटक के अनिवार्य अंग हैं। रामायण तथा महाभारत सहित कालिदास और भास द्वारा लिखे नाटक तीनों, कलाओं के संश्लेषण के महान उदाहरण है। कुछ प्रमुख नाटकों को निम्नलिखित सूची में दिया गया है।

क्रम संख्या	नाम	लेखक
1.	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास
2.	पद्मावती	मधुसूदन
3.	नीलदेवी	भारतेंदु
4.	सत्य हरिश्चन्द्र	भारतेंदु
5.	अंधेरनगरी	भारतेंदु
6.	चंद्रावल	जयशंकरप्रसाद
7.	अजातशत्रु	जयशंकर प्रसाद
8.	राज्यश्री	जयशंकर प्रसाद
9.	चंद्रगुप्त	जयशंकर प्रसाद
12.	प्रायश्चित्त	जयशंकर प्रसाद
13.	करुणालय	जयशंकर प्रसाद
14.	भारतेंदु	जयशंकर प्रसाद

पाठगत प्रश्न 12.4

1. नाटक का आरम्भिक रूप क्या था?

   ....

2. भरतमुनि के दो नाटकों के नाम बताएं।

   ....

3. भरतमुनि के अनुसार संप्रेषण का सर्वसम्पूर्ण उचित माध्यम क्या था?

   ....

4. व्यावसायिक नाटक कम्पनी किस समुदाय की थी?

   ....

5. कुशीलव कौन थे?

   ....

6. इन दिनों किस प्रकार के विभिन्न नाटक विकसित हो रहे हैं?

....

7. कालिदास के कोई दो नाटकों के नाम लिखें।

....

8. "पद्मावती" किस ने लिखा है?

....

9. जयशंकर प्रसाद के किन्हीं दो नाटकों के नाम लिखें।

....

12.9 प्रस्तुति कला के स्वरूपों का वर्तमान परिदृश्य

वर्तमान में, देश में कला के तीनों स्वरूप–नृत्य, संगीत तथा चित्रकला फल-फूल रहे हैं। पिछले 50 वर्षों से भी अधिक समय से 'गंधर्व महाविद्यालय' और 'प्रयाग संगीत समिति' की शाखाएं संपूर्ण भारत में शास्त्रीय संगीत एवम् नृत्य की शिक्षा के प्रसार में संलग्न हैं। अनेक विद्यालयों, महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों ने इन कलाओं को अपने पाठ्यक्रम के अंग के रूप में स्वीकार किया है। खैरागढ़ में "इन्द्रा कला संगीत विश्वविद्यालय", संगीत का एक विश्वविद्यालय है।

कत्थक केन्द्र, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, भारतीय कला केन्द्र तथा अनेकों संस्थाएं अपने-अपने तरीकों से संगीत का प्रचार प्रसार कर रही हैं। संगीत सभाओं, बैठकों, व्याख्यानों, प्रदर्शनों आदि का आयोजन किया जाता रहता है तथा संगीतकारों, संगीतविज्ञों, संगीत शिक्षकों और संगीत विशेषकों द्वारा संगीत तथा नाटक को लोकप्रिय बनाने के प्रयास किये जा रहे हैं। स्पीक-मैकेसी, संगीत नाटक अकादमी आदि संस्थाएं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय संगीत, नृत्य तथा नाट्य कला को संरक्षित, विकसित तथा लोकप्रिय बनाने का अथक प्रयास कर रही हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर संगीतज्ञों का सार्थक योगदान रहा है। पं. रवि शंकर, उस्ताद अली अकबर खान तथा उस्ताद अली रखाखान आदि द्वारा शुरू की गयी विभिन्न संगीत संस्थाएं विदेशियों को भी भारतीय संगीत की शिक्षा दे रही हैं। अनेकों विदेशी विश्वविद्यालयों में भारतीय प्रस्तुतिकलाओं के विभाग खोले जा चुके हैं जहां छात्रों को डिग्रियां और डिप्लोमा दिये जा रहे हैं। अनेकों उत्सवों के अवसर पर भारतीय कलाकारों को भाग लेने तथा कलाओं के प्रदर्शन के लिए दुनिया भर में आमंत्रित किया जाने लगा है। बहुत सी सरकारी संस्थाएं जैसे आई.सी.सी.आर. (ICCR) और मानव संसाधन विकास मंत्रालय आदि निरंतर इन कलाओं को प्रोत्साहित करने के लिए छात्रवृत्तियां, शोधवृत्तियां आदि, प्रबुद्ध व उदीयमान कलाकरों को देते हैं तथा संगीत, नाटक व नृत्य के क्षेत्र में विदेशों के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं।

12.10 कला की विधाएँ और मानव व्यक्तित्व का विकास

इन कला विधाओं से सम्बद्धता मनुष्यों को एक श्रेष्ठतर इंसान बनाती है। क्योंकि ये कला विधाएँ मानव आत्मा को उदात्त बनाती हैं और एक आनंददायक वातावरण का निर्माण करती हैं। इन कलाओं का ज्ञान व अभ्यास व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करता है, इन कलाओं में संलग्न व्यक्ति आत्म संतुलन, आत्म–शांति, आत्म नियंत्रण और दूसरों के लिए स्वयं में प्रेम का भाव प्राप्त कर सकता है। उनका कला–प्रदर्शन उन्हें आत्मविश्वासी, आत्मनियंत्रित और स्वयं को परिस्थितियों के अनुकूल ढाल लेने वाला बनाता है। उनमें नकारात्मक भावनाएं लुप्त हो जाती हैं, क्योंकि नृत्य, संगीत और नाटक का मूल मर्म हमें दूसरों से प्रेम करने और दूसरों की भलाई करने की शिक्षा देता है।

पाठगत प्रश्न 12.5

1. भारत सरकार के किस मंत्रालय ने प्रस्तुति कला के तीनों प्रकारों के प्रचार का कार्य किया है? नाम बताएँ।

   ....

2. प्रस्तुति कला के विकास के लिए भारत सरकार की कौन सी एजेंसी कार्य कर रही है नाम बताएँ।

   ....

3. सरकार ने प्रसिद्ध कलाकारों का किस प्रकार उत्साह बढ़ाया है?

   ....

4. प्रस्तुति कलाएँ हमारी किस प्रकार सहायक हैं?

   ....

आपने क्या सीखा

- तीन कला विधाएँ संगीत, नृत्य और नाटक भारतीय संस्कृति के अभिन्न पक्ष हैं।
- नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि के योगदान के लिए हम उनके ऋणी हैं।
- देश में कई वर्षों के राजनीतिक उथल–पुथल ने भी इन कलाओं के प्रभाव को कम नहीं किया।
- जनसाधारण और विशेषज्ञों ने कला विधाओं की शास्त्रीयता को बनाये रखने के लिए अथक प्रयास किये।

- भारतीय प्रस्तुति कलाओं को पश्चिम ने भी काफी हद तक प्रभावित किया है।
- आज भी इन कला विधाओं की देश विदेश में काफी धूम है।

पाठांत प्रश्न

1. भारत में प्रस्तुति कला के लक्ष्य तथा उद्देश्य क्या हैं?
2. भारत में प्रस्तुति कला के विकास को रेखाङ्कित कीजिए।
3. आधुनिक भारतीय संगीत में परिवर्तनों का वर्णन कीजिए।
4. लोक गीतों का क्या महत्त्व है? कुछ लोक गीतों के नाम बताएं।
5. शास्त्रीय नृत्य का क्या महत्त्व है? कुछ शास्त्रीय नृत्यों के प्रकार बताएं।
6. अंग्रेजों के आगमन से नाटक में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है–स्पष्ट करें।
7. 'भारत में प्रस्तुति कलाओं के विकास की बहुत अधिक संभावना है। व्याख्या करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

12.1 1. नृत्य, नाटक, संगीत

2. यह एक विशाल जनशिक्षा का भी स्रोत है।
3. भरत का 'नाट्य शास्त्र'। यह सम्भवतः ईसा पूर्व दूसरी सदी तथा ईसा पश्चात तीसरी सदी के बीच में संकलित हुआ।
4. मातंग की बृहद्देशी
5. बृहद्देशी
6. 264 राग
7. राधा और कृष्ण के प्रेम प्रसंग
8. शैववादी 'नयनार और वैष्णववादी 'अलवार'
9. इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय
10. उन्होंने नए रागों का विकास किया।

12.2 1. (a) उत्तर भारत का हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत

(b) दक्षिण भारत का कर्नाटक संगीत

2. ध्रुपद, धमार, ठुमरी, ख्याल तथा टप्पे

3. गुरु-शिष्य परंपरा पर उनकी संगीत की एक विशेष शैली है।
4. जयपुर घराना, किराणा घराना, ग्वालियर घराना
5. मुख्य रचना
6. (a) श्याम शास्त्री
   (b) त्यागराज
   (c) मुथुस्वामी
   (d) पुरेन्दरदास

7. बांसुरी, वीणा, नादस्वरम्, मृदंगम्, घटम्
8. (a) कर्नाटक 'अलापना' हिन्दुस्तानी संगीत के 'अलाप' के समान है।
   (b) कर्नाटक संगीत का 'तिलाना' हिन्दुस्तानी संगीत के 'तराना' से मिलता है।
   (c) दोनों विधाएं 'ताल' या 'तालम्' पर जोर देती हैं।
9. (a) माण्ड–राजस्थान
   (b) भटिआली–बंगाल
10. ये साधारण गाने जीवन के हर मौके पर उत्सव मनाने में प्रयोग होते हैं।

12.3
1. सृष्टिचक्र का निर्माण और विनाश
2. नृत्य की शास्त्रीय शैली और लोक नृत्य
3. बीहू – आसाम (असम)
   गरबा – गुजरात
   भांगडा तथा गिद्दा – पंजाब
   बांस नृत्य – मिजोरम
   कोली नृत्य – महाराष्ट्र (मछुआरों का नृत्य)
   धूमल – कश्मीर
   छाऊ – बंगाल
4. (a) 'नृत्त' (पद संचालन)
   (b) 'नृत्य' (अंग संचालन)
   (c) 'नाट्य' (अभिनय)
5. पंडित बिरजू महाराज, पं. शम्भु महाराज, सितारा देवी, पं. गोपी कृष्ण तथा पं. लच्छु महाराज

6. (a) गीता चन्द्रन

   (b) डॉ. पद्मा सुब्रह्मण्यम्

   (c) श्रीमती सरोज वैद्यनाथन्

12.4 1. बच्चा नकल करता है, उपहास करता है, व्यंग्य करता है

2. असुर-पराजय, अमृतमंथन

3. नाटक

4. शैलूष

5. साहसिक कहानियों के गायन को नाटक के रूप में प्रस्तुत करना

6. (a) मंच नाटक

   (b) रेडियो नाटक

   (c) नुक्कड़ नाटक

   (d) एकल नाटक

   (e) संगीत नाटक

   (f) लघु नाटक

   (g) एकांकी नाटक

7. (a) अभिज्ञानशाकुन्तलम् (b) विक्रमोर्वशीयम् (c) मालविकाग्निमित्रम्

8. मधुसूदन

9. (a) अजातशत्रु

   (b) चंद्रगुप्त

   (c) प्रायश्चित्त

   (d) करुणालय

12.5 1. मानव संसाधन तथा विकास मंत्रालय

2. (आई.सी.सी.आर.)

3. निरंतर इन कलाओं को प्रोत्साहित करने के लिए, छात्रवृत्तियाँ शोधवृत्तियां आदि देते हैं और कलाकारों का आदान प्रदान कार्यक्रम आयोजित करते हैं।

4. प्रस्तुति कला हमें मस्तिष्क का सन्तुलन, स्वयं पर नियंत्रण, सभी प्राणियों से प्रेमभाव रखना सिखाती है।

   यह हमें सभी परिस्थितियों के अनुकूल तादात्म्य स्थापित करने योग्य बनाती है तथा अपने ऊपर भरोसा करने योग्य बनाती है।

13

भारतीय स्थापत्य कला

कभी-कभी यह याद दिलाना भी बहुत आवश्यक हो जाता है कि हमारी ही वह सभ्यता है जो प्राय: 4500 वर्ष पुरानी है और जिसने हमारे जीवन और समाज की प्राय: प्रत्येक वस्तु पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। कल्पना कीजिए, यूनेस्को ने 830 विश्वप्रसिद्ध विरासत के स्मारकों की सूची बनाई है जिसमें से 20 भारत में ही हैं। यह केवल छ: देशों से कम हैं। क्या यह इस प्राचीन भूमि के, लोगों के, और प्रकृति प्रदत्त वरदानों के श्रम और रचनात्मक प्रतिभा का पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं। चाहे वो एक ओर भीमबेट का की प्रागैतिहासिक गुफाएँ हों या असख्य महल हों, मस्जिदें हों, मन्दिर हों, गुरुद्वारे हों, गिरजाघर हों या मकबरे हों या फिर विस्तृत शहर और गम्भीर स्तूप हों। दिल्ली, आगरा, जयपुर, मुम्बई और कलकत्ता आदि शहरों का भ्रमण करते हुए आपको अनेक सौन्दर्यपूर्ण भवन दिखाई देंगे। उनमें से कुछ स्मारक हैं, शाही महल हैं, मन्दिर, चर्च, मस्जिद और स्मृतिगृह आदि हैं। इनमें से बहुत से ईशवी पूर्व बनाए गए और कुछ अन्य ईसा के बाद। इस स्थापत्य कला की साक्षी कई पीढ़ियाँ रह चुकी हैं। ये भवन आज भी सशक्त और ऊँचा सिर किए खड़े हैं और हमें उस शानदार बीते हुए युग की याद दिलाते हैं जो हमारा रहा है।

कला और स्थापत्य शैली भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग हैं। बहुत से विशिष्ट पक्ष जो आज हम स्थापत्य कला में देखते हैं, वे भारत के लम्बे इतिहास के मध्य ही विकसित हुए। भारतीय स्थापत्य कला के सबसे प्राचीन और विशिष्ट साक्ष्य हड़प्पा सभ्यता के शहरों में पाये गए हैं। जिनसे वहाँ की शहरी-योजना की अनोखी शैली की विलक्षण जानकारी मिलती है। हड़प्पा काल के बाद की स्थापत्य शैलियों को हिन्दू, बौद्ध और जैन स्थापत्य के रूप में बाँटा गया। मध्यकाल स्थापत्य की फारसी और देशी शैलियों के संश्लेषण का दौर था। इसके बाद औपनिवेशिक काल में भारतीय स्थापत्य पर पश्चिमी स्थापत्य शैलियों के प्रभाव पड़े। इस प्रकार भारतीय स्थापत्य कला का निर्माण देशी-शैलियों और बाहरी प्रभावों के संश्लेषण से हुआ जिसके फलस्वरूप इसकी अपनी एक अनोखी विशेषता बन पाई है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :-

- विभिन्न कालों में भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला की विशेषताओं और शैलियों की पहचान कर सकेंगे;
- विभिन्न कालों के दौरान भारतीय स्थापत्य के विकास क्रम का उल्लेख कर सकेंगे;
- भारतीय स्थापत्य के विकास में बुद्ध धर्म और जैन धर्म के योगदान को पहचान सकेंगे;
- समृद्ध मंदिर-स्थापत्य कला को विकसित करने में गुप्त, पल्लव तथा चोल शासकों की भूमिका की सराहना कर सकेंगे;
- मध्यकाल के स्थापत्य को प्रभावित करने वाले विभिन्न प्रभावों को पहचान सकेंगे;
- औपनिवेशिक शासन के दौरान महत्त्वपूर्ण स्थापत्य शैलियों को चिह्नित कर सकेंगे।

13.1 स्थापत्य-कला उद्भव और भारतीय परिप्रेक्ष्य

स्थापत्य कला कोई आधुनिक परिदृश्य नहीं है। यह तब जन्मा जब आदिम मानव ने रहने के लिए अपना आश्रय गुफाओं में बनाना शुरू किया। जब मनुष्य घने जंगलों के प्राकृतिक निवास से निकला तो उसने अपने लिए घर बनाना शुरू किया। जब मानव का सौन्दर्य बोध जागा तो उसने बेहतर स्थान खोजकर अपने लिए आंतरिक और खुद को लुभाने वाले आकर्षक मकानों का निर्माण आरम्भ किया। इस प्रकार आवश्यकता, कल्पना, सामग्री, कौशल, स्थान और बनाने वालों की क्षमताओं के संगम से वास्तुकला का जन्म हुआ।

स्थापत्य कला के रूप और निर्माण का विवरण

विभिन्न कालों में वास्तु या स्थापत्यकला ने स्थानीय और प्रादेशिक सांस्कृतिक परंपराओं, उपलब्ध सामग्री, सामाजिक आवश्यकताओं, आर्थिक समृद्धि, विभिन्न समय के आनुष्ठानिक प्रतीकों को ध्यान में रखा है। अतः वास्तुशास्त्र का अध्ययन हमें सांस्कृतिक विभिन्नताओं का ज्ञान कराता है और हमें भारत की समृद्ध परम्पराओं को समझने में सहायता करता है। भारतीय वास्तुशिल्प का विभिन्न कालों में, देश के विभिन्न भागों में, विकास हुआ। प्राक्-इतिहास और ऐतिहासिक कालों में हुए स्वाभाविक और प्राकृतिक विकास के अतिरिक्त इतिहास में घटित महान व महत्त्वपूर्ण घटनाओं से भी भारतीय वास्तुशिल्प प्रभावित हुआ। स्वाभाविक रूप से उपमहाद्वीप के महान साम्राज्यों और राजवंशों के उत्थान और पतन ने भारतीय वास्तुशिल्प के विकास पर गहरा प्रभाव डाला। बाहरी प्रभावों और साथ ही देश के विभिन्न भागों के प्रभावों से भी भारतीय वास्तुकला का स्वरूप प्रभावित हुआ। आइये, भारतीय वास्तुशिल्प के विकास पर एक नजर डाले।

13.2 हड़प्पा काल

हड़प्पा और मोहनजोदाड़ों तथा सिंधु घाटी सभ्यता के अनेक स्थलों पर हुई खुदाई से एक अत्यंत आधुनिक शहरी सभ्यता का पता चलता है, जहाँ विशिष्ट नगरीय सभ्यता और निर्माण कौशल मौजूद था। अत्याधुनिक निकासी प्रणाली तथा योजनाबद्ध पथों और घरों से पता चलता है कि आर्यों के आने से पहले भारत में एक अति विकसित संस्कृति का अस्तित्व था। सिंधु घाटी सभ्यता के स्थलों की खुदाई भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण की देखरेख में हुई जिसकी स्थापना अंग्रेजों द्वारा की गई थी।

हड़प्पा के लोगों ने मुख्यतया तीन प्रकार के भवनों का निर्माण किया–निवास गृह, स्तम्भों वाले बड़े हॉल और सार्वजनिक स्नानागार।

हड़प्पा के अवशेषों के मुख्य लक्षण हैं–

1. ये अवशेष ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी के माने जाते हैं।
2. कुछ महत्त्वपूर्ण निवास स्थल सिन्धु नदी के किनारों पर पाए गए विशेष रूप से उन मोड़ों पर जहाँ जल की आपूर्ति अधिक थी, उत्पादों के परिवहन के साधन थे और नदी के एक ओर प्राकृतिक रूप से सुरक्षित स्थल थे।
3. सभी स्थलों में पाए गए नगरों के चारों ओर बड़ी-बड़ी दीवारें बनवाई गई थीं जिनसे सुरक्षा होती थी।
4. इन नगरों के आयताकार नमूने थे जिनमें सड़कें बनाई गईं जो एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं।
5. सिन्धु घाटी के लोग भवन निर्माण सामग्री के लिए एक विशेष नाप के आकार की पकाई गई ईंटों का प्रयोग करते थे।
6. यहाँ बड़े भवनों के निर्माण के साक्ष्य भी मिले हैं जो शायद प्रशासनिक या व्यापार केन्द्र, स्तम्भों वाले बड़े हॉल, अहाते तथा सार्वजनिक भवन हुआ करते थे। मंदिर के कोई साक्ष्य नहीं मिले हैं।
7. सार्वजनिक भवनों में अन्न भंडार भी हुआ करते थे जहां अनाज का भंडारण किया जाता था। इससे वहां के सुव्यवस्थित संग्रह और वितरण प्रणाली का पता चलता है।
8. बड़े सार्वजनिक भवनों के साथ ही वहां एक कमरे के छोटे घरों के साक्ष्य भी मिलते है जो शायद कामगारों के निवास लगते हैं।
9. हड़प्पा के लोग कुशल इंजीनियर थे, ऐसा उस सार्वजनिक स्नानागारों से पता चलता है जो कि मोहनजोदाड़ो में मिला है। ''विशाल स्नानागर' जैसा कि इसे कहा जाता है अभी तक बना हुआ हैं और इस निर्माण में कोई भी दरार या रिसाव नहीं हुआ है। ऐसा निर्माण जो सार्वजनिक स्नानागार सा प्रतीत होता है इस संस्कृति के कर्मकाण्डीय स्नान और स्वच्छता का प्रतीक है। यह महत्त्वपूर्ण है कि अधिकतर घरों में निजी कुँए, और स्नानघर होते थे।

10. पश्चिमी भागों में जहां पर सार्वजनिक भवन और अन्नागार हुआ करते थे वहाँ पर एक प्रमुख दुर्ग मिला है। इसे नगरों पर किसी प्रकार के राजनैतिक सत्ता के शासन के साक्ष्य के रूप में माना जा सकता है।
11. इसके भी साक्ष्य मिले हैं कि दीवारों वाले नगर के चारों ओर किलाबंदी होती थी और उनमें मुख्य द्वार होता था। इससे पता चलता है कि उन्हें हमला हो जाने का खतरा रहा होगा।
12. गुजरात में एक खुदाई स्थल लोथल में बंदरगाह के अवशेष मिले हैं जिनसे इस बात की पुष्टि होती है कि उस समय में समुद्री रास्तों के जरिए व्यापार का विकास हुआ।

एक और असाधारण लक्षण यह था कि नगरों के रिहायशी इलाकों में एक सुनियोजित निकासी व्यवस्था मौजूद थी। घरों की छोटी नालियां मुख्य सड़कों के नजदीक बड़ी नालियों से जुड़ी थीं। यह नालियां ढकी हुई हुआ करती थीं और इनकी सफाई के उद्देश्य से इन्हें पृथक ढक्कनों से ढका जाता था। रिहायशी मकानों की योजना भी बहुत सावधानी से की गई थी। सीढ़ियों की मौजूदगी के भी प्रमाण मिले हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि मकान अक्सर दो मंजिला हुआ करते थे। घरों में दरवाजे किनारें की गलियों की तरफ हुआ करते थे ताकि मुख्य सड़क से धूल घर के अंदर न घुस पाए।

हड़प्पा की स्थापत्य कला का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्षण है उनका उत्कृष्ट नगर योजना कौशल और उनके नगर, जिनका निर्माण ज्यामितीय पद्धति या जालीदार प्रारूप के आधार पर किया गया था। सड़कें एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं और बहुत अच्छी तरह से बिछाई गई थीं। सिन्धु घाटी के नगर नदियों के किनारे बसे हुए थे इसलिए अक्सर वे भंयकर बाढ़ों से बर्बाद हो जाते थे। इसके बावजूद सिंधु घाटी के निवासी उन्हीं स्थानों पर पुन: निर्माण करते थे। इसी कारण खुदाई के दौरान परत दर परत निवास स्थान और भवन मिले हैं। सिंधु घाटी सभ्यता का ह्रास और अंतत: विनाश सम्भवत दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व में हुआ कैसे हुआ, यह अब तक रहस्यमय बना हुआ है।

समस्त निर्माणकार्य को अति मजबूत बनाने के लिए खड़िया, मिट्टी, गारे को बहुत अच्छी प्रकार से पका कर ईंटों से मोटी परतें बनायी जाती थीं। इन भवनों की मजबूती आज भी देखी जा सकती है। पिछले पांच हजार वर्ष पहले नष्ट किए जाने पर भी भवनों के यह अवशेष आज भी बचे हुए हैं।

हड़प्पा के लोगों को मूर्तिकला एवं हस्तकला का भी ज्ञान और कौशल प्राप्त था। दुनिया की पहली तांबे की नृत्यांगना की मूर्ति मोहनजोदाड़ो में पाई गई है। योग की मुद्रा में एक पुरुष की मूर्ति खुदी हुई चित्रलिपि वाली मोहरें, पहनने वाले सुंदर आभूषण एवं कूबड़ युक्त बैलों की मूर्तियाँ, एक सींग वाले पशुपति आदि की तस्वीरें भी प्राप्त हुई हैं। चित्र लिपि वाली खुदी हुई मोहरें आदि भी उत्खनन में मिली हैं इसके बाद जो वैदिक आर्य आये, वे लकड़ी, बांस और सरकंडों के मकानों में रहने लगे। आर्य संस्कृति कृषकों की थी अत: बड़े भवनों का अभाव मिलता है। आर्य अपने शाही महलों को बनाने में नष्ट होने वाली सामग्री जैसे लकड़ी आदि का प्रयोग करते थे अत: वे समय बीतने पर नष्ट हो गए। वैदिक काल का

एक महत्त्वपूर्ण पहलू 'वेदी' को बनाना है जो शीघ्र ही लोगों की सामाजिक धार्मिक जीवन का आधार बन गई। आज भी हिन्दु घरों में विशेषतया विवाह में अग्निवेदी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

आंगन तथा मण्डप में यज्ञशाला की वेदी स्थापत्य कला की महत्त्वपूर्ण आकृति है। हमें गुरुकुलों और आश्रमों के भी प्रसंग मिलते हैं। दुर्भाग्यवश वैदिक काल का कोई भी ढांचा नहीं मिलता है। स्थापत्य कला के इतिहास में भवन निर्माण में ईंट-पत्थर के साथ लकड़ी का प्रयोग महत्त्वपूर्ण योगदान है।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में भारत ने अपने इतिहास के महत्त्वपूर्ण चरण में प्रवेश किया। यहाँ दो नए धर्म जैनधर्म और बौद्धधर्म का उदय हुआ और वैदिक धर्म में परिवर्तन होने लगा।

लगभग उसी समय में बड़े राज्यों का विकास हुआ। इस समय से अर्थात् मगध के साम्राज्य के रूप में विस्तृत होने से स्थापत्य कला को और अधिक प्रोत्साहन मिला। इसके बाद से भारतीय स्थापत्य कला की प्रायः सम्पूर्ण शृंखला की रूपरेखा प्रस्तुत करना सम्भव है।

बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म के उद्‌भव ने भारत की प्रारंभिक स्थापत्य कला के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। बौद्ध स्तूपों का निर्माण वहीं हुआ जहां बुद्ध के अवशेष रखे गये थे, तथा उन प्रमुख स्थानों में जहां बुद्ध के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएं घटीं। मिट्‌टी के गारे से सावधानी से तपाई गई छोटी-छोटी ईंटों को जोड़कर स्तूप बनाये। एक स्तूप उनके जन्म-स्थान लुम्बिनी में बना है, दूसरा स्तूप गया में बना है जहां पीपल के पेड़ के नीचे बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ, तीसरा स्तूप सारनाथ में बना है जहां बुद्ध ने अपना पहला उपदेश दिया तथा चौथा स्तूप कुशीनगर में बना है जहां उन्होंने अस्सी वर्ष की उम्र में महापरिनिर्वाण प्राप्त किया।

बुद्ध के अवशेषों को जहां रखा गया तथा वे स्थान जहां बुद्ध के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएं घटीं, वे सभी स्थान आज भारत की महत्त्वपूर्ण स्थापत्य कला के प्रतिमान हैं। जिस संघ में भिक्षु और भिक्षुणी रहते थे आज वे महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल के रूप में जाने जाते हैं। विहार तथा पठन पाठन एवं उपदेश के स्थान भी महत्त्वपूर्ण स्थान के रूप में उभर कर सामने आए हैं। आम लोगों तथा भिक्षुओं के मध्य शिक्षा तथा आपसी विचार-विमर्श हेतु सामुदायिक भवनों (चैत्य) का निर्माण भी किया गया।

तभी से धर्म ने स्थापत्य-कला को प्रभावित करना शुरू किया। जहां बौद्धों और जैनों ने स्तूपों, विहारों तथा चैत्यों का निर्माण शुरू किया वहीं गुप्त वंश के शासन काल में मंदिरों का प्रथमतः निर्माण शुरू हुआ।

पाठगत प्रश्न 13.1

1. भारतीय संस्कृति के उदय का क्या अर्थ है?

....

2. हड़प्पा वासियों ने अपनी सभ्यता कैसे बचाई?

....

3. हड़प्पा के लोगों की यान्त्रिक कुशलता के साक्ष्य कैसे पता लगे?

....

4. बुद्ध के अवशेष कहाँ रखे गये हैं?

....

5. बुद्ध की मूर्तियाँ कहां पाई गयी हैं?

....

6. भारत में पहला मंदिर कब बना?

....

7. स्तूप, विहार तथा चैत्य के क्या अर्थ हैं?

....

8. कहां पर खुदाई में बंदरगाह के अवशेष प्राप्त हुए हैं?

....

13.3 प्राचीन ऐतिहासिक-काल या प्राचीन काल

भारतीय स्थापत्य के एक महत्त्वपूर्ण चरण की शुरुआत मौर्यों के शासन के साथ होती है। मौर्यो की भौतिक समृद्धि तथा नई धार्मिक चेतना ने भारत को हर क्षेत्र में सफलता दिलवाई। यूनानी शासक सेल्यूकस निकेटोर का राजदूत मेगास्थनीज मौर्यों के दरबार में आया। मेगास्थनीज ने चन्द्रगुप्त मौर्य के महल को स्थापत्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बताया है। चंद्रगुप्त मौर्य का महल विशाल था और लकड़ी का बना हुआ था।

(सांची का बौद्ध स्तूप)

ईसा पूर्व सन् 322-182बीसी में मौर्य काल में विशेषकर अशोक के राज्य में स्थापत्य कला ने अत्यधिक उन्नति की। मौर्यों की कला और स्थापत्य, फारसी और यूनानी प्रभाव को दर्शाते है। अशोक के शासन-काल में अनेक एकाश्म पत्थरों के खंभे स्थापित किए गए। इन खंभों में 'धम्म' की शिक्षाओं को अंकित किया गया है। शीर्ष पर जानवरों

की आकृतियों वाले यह चमकदार खंभे, बहुत ही विशिष्ट और विलक्षण हैं। सारनाथ का खंभा जिसके शीर्ष पर शेर की आकृति है, भारत गणतंत्र के राष्ट्रीय चिह्न के रूप में स्वीकृत हुई है। हर खंभे का वजन 50 टन तथा उसकी ऊंचाई 50 फीट थी। सांची और सारनाथ के स्तूप मौर्यों की स्थापत्य-कला की उपलब्धि के प्रतीक हैं। सांची स्तूप के प्रवेश द्वार पर जातक-कथाओं का चित्रण उस समय के कलाकारों के सौंदर्यबोध और उनके कौशल का नमूना है।

यूनानी और भारतीय कला के मिश्रण से बाद में गंधर्व-कला विकसित हुई। दूसरी कलाएँ और स्थापत्य की शैली 'मथुरा-शैली' और 'अमरावती शैली' देशी थीं। कुषाण शासकों के प्रभाव में पहली सदी के बाद इन शैलियों के कलाकारों द्वारा बड़ी संख्या में बुद्ध की मूर्तियां बनाई गईं। गान्धार-कला विद्यालय के अंतर्गत बुद्ध की जीवन्त मूर्तियों में बोधिसत्त्व को यूनानी देवता के समान बनाया गया जबकि समस्त विचार, प्रेरणा तथा विषय भारतीय थे। उनके शारीरिक सौन्दर्य के लिए महंगे गहने, पोशाक का प्रयोग किया जाता था। सभी मूर्तियां पत्थर, टेराकोटा, सीमेंट जैसे पदार्थों से बनीं थी और कुछ मिट्टी की मूर्तियां भी बनी।

मथुरा शैली की आकृतियां धब्बेदार लाल पत्थर से बनाई गई थीं। उनमें आध्यत्मिकता झलकती थी। यहां हमें बुद्ध मूर्तियों के साथ जैन देवों की भी मूर्तियां देखने को मिलती हैं।

आंध्र के सातवाहन शासकों के संरक्षण में अमरावती स्कूल विकसित हुआ। गोदावरी के निचले भाग में एक विशाल स्तूप का निर्माण किया गया था। इस स्तूप के गोलाकार खंडों तथा दीवारों पर बहुत ही खूबसूरत नक्काशी की गई है। नागार्जुनकोंडा भी बौद्धों के स्थापत्य के लिए प्रसिद्ध अन्य प्रमुख नगर है।

गुप्त-काल से ही बिना खंभों वाले हिन्दू मंदिरों का निर्माण शुरू गया था। इसका

एक उदाहरण देवगढ़ (झांसी जिला) का मंदिर है; जिसके बीच में गर्भ-गृह है जिसमें भगवान की मूर्ति स्थापित की गई है। एक और उदाहरण है–भर्तृगांव (कानपुर जिला)। यह दोनों मंदिर इस काल के बेहतरीन उदाहरण हैं।

गुफा स्थापत्य

भारतीय स्थापत्य के इतिहास में गुफा-स्थापत्य कला का विकास एक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट चरण है। ई.पू. दूसरी सदी से दसवीं सदी ईसवी के बीच की हजारों गुफाएं खुदाई के दौरान मिली हैं। इनमें सबसे मशहूर महाराष्ट्र की 'अजंता तथा एलोरा' और उड़ीसा की 'उदयगिरि' गुफा है। इन गुफाओं में बौद्धों के विहार, चैत्य, मंडप तथा हिन्दू देवी-देवताओं के खंभों वाले मंदिर भी पाए गए हैं।

महाबलिपुरम में स्मारकों का समूह

चट्टानी पत्थरों के मंदिर

बड़ी-बड़ी चट्टानों को काटकर व तराशकर मंदिरों को निर्माण किया गया। खुदाई के दौरान प्रारंभिक पत्थरों के मंदिर पश्चिमी दक्कन में मिले हैं। ये मंदिर ईसवी-सन के प्रारंभ के हैं। कार्ले में अवस्थित 'चैत्य' पत्थरों को तराशकर बनाये जाने वाले स्थापत्य कला का असाधारण उदाहरण है। इस चैत्य में एक बहुत बड़ा सभाकक्ष है। तथा इसकी दीवारें नक्काशीयुक्त व चमकदार हैं। ऐलोरा का 'कैलाश मंदिर' तथा महाबलीपुरम् का 'रथ मंदिर' पत्थरों को तराशकर बनाए जाने वाले मंदिरों के दूसरे उदाहरण हैं। 'कैलाश मंदिर' का निर्माण राष्ट्रकूटों ने तथा 'रथ मंदिर' का निर्माण पल्लवों ने करवाया।

अनुमानतः पत्थरों के स्थायित्व एवं मजबूती ने कला के संरक्षकों तथा निर्माताओं को आकर्षित किया होगा इसीलिए उन्होंने इन मंदिरों को सुन्दर मूर्तियों से सजाया।

निरावलम्बित-मंदिर

मंदिरों का निर्माण कार्य गुप्तवंश के शासन काल में शुरू हुआ था। गुप्त वंश के राजाओं के शासन काल के बाद भी मंदिरों का निर्माण कार्य जारी रहा। दक्षिण भारत में पल्लव, चोल, पांड्य, होयसाल तथा बाद के काल में विजयनगर के शासक मंदिरों के बहुत बड़े

निर्माता रहे हैं। महाबलिपुरम् में 'तटीय मंदिर' का निर्माण पल्लव शासकों ने करवाया। पल्लवों ने दूसरे संरचनात्मक मंदिरों का भी निर्माण किया, जैसे कांचीपुरम् के 'कैलाशनाथ मंदिर' तथा 'वैकुंठ पेरूमल-मंदिर' आदि। चोलों ने बहुत सारे मंदिरों का निर्माण कराया। इनमें तंजौर का 'बृहदेश्वर मंदिर' बहुत प्रसिद्ध है। चोलों ने दक्षिण भारत में मंदिर स्थापत्य की एक दूसरी ही शैली विकसित की। इसे द्रविड़-शैली कहा गया। इस शैली में मंदिर में विमान या शिखर होता है। इसमें ऊंची-ऊंची दीवारें होती हैं तथा मंदिर के प्रवेश द्वार के ऊपर गोपुरम् होता है। बेलूर में बहुत ही भव्य और आकर्षक मंदिरों का निर्माण किया गया है और इनमें रत्नों का उत्कृष्ट प्रयोग अद्वितीय है।

उत्तर और पूर्वी भारत में भी सुन्दर, आकर्षक मंदिरों का निर्माण किया गया। इन मंदिरों का निर्माण नागर-शैली में किया गया है। इनमें से अधिकांश मंदिरों के छत सर्पिल होते हैं जिन्हें 'शिखर' कहा जाता है; मंदिरों की वेदी को 'गर्भ-गृह' कहा जाता है और खंभों की सहायता से बनाया गया 'सभाकक्ष' या 'मंडप' कहलाता है।

लालकिला

उड़ीसा में कुछ सुन्दर और आकर्षक मंदिर हैं। इनमें से एक लिंगराज का मंदिर है, जिसका निर्माण 'गंगा' शासकों ने करवाया। इसी तरह 'मुक्तेश्वर' का मंदिर भुवनेश्वर में तथा 'जगन्नाथ' का मंदिर पुरी में है।

कोणार्क के सूर्य मंदिर का निर्माण पूर्वी गंगा शासक नरसिंह देव प्रथम ने 13वीं शताब्दी में करवाया। यह मंदिर भगवान 'सूर्य' को समर्पित है। इस मंदिर का निर्माण बारह पहियों के रथ के आकार में किया गया है।

कंदरिया महादेव मंदिर, खजुराहों मंदिर

मध्य प्रदेश के बुंदेलखण्ड क्षेत्र में 'खजुराहो मंदिरों' का निर्माण चंदेल शासकों द्वारा 10वीं तथा 11वीं सदी के बीच में करवाया गया। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण मंदिर 'कंदरिया महादेव' का मंदिर है।

राजस्थान का माऊंट आबू क्षेत्र 'दिलवाडा-मंदिरों' के लिए जाना जाता है। 'दिलवाडा-मंदिर' जैन तीर्थंकरों को समर्पित हैं। ये मन्दिर बिल्कुल सफेद संगमरमर से बने हैं और विशिष्ट मूत्तियों से सुसज्जित हैं। इन मंदिरों का निर्माण 'सोलंकी' शासकों के संरक्षण में हुआ।

गुजरात का 'सोमनाथ मंदिर', बनारस का 'विश्वनाथ मंदिर', मथुरा का गोविन्द मंदिर, गुवाहटी का 'कामाख्या' मंदिर, कश्मीर का 'शंकराचार्य' मंदिर तथा कलकत्ता के कालीघाट का कालीमंदिर आदि दूसरे महत्त्वपूर्ण मंदिर हैं। ये मंदिर भारतीयों के मंदिर निर्माण-कार्य में सक्रिय रहने के प्रमाण हैं।

पाठगत प्रश्न 13.2

1. चन्द्रगुप्त मौर्य के महल का 'मैगस्थीनीज' ने कैसा वर्णन किया?

 ....

2. मौर्य स्थापत्य कला के प्रतिमान दो स्तूपों के नाम लिखें।

 ....

3. अशोक के शासनकाल में 'धम्म' के उपदेश कहां पर लिखे गए?

 ....

4. प्राचीन ऐतिहासिक काल के कुछ स्थापत्य कला के केन्द्रों के नाम बताइए।

 ....

5. उदयगिरि गुफाएं कहां हैं?

 ....

6. एलोरा में कैलाश मंदिर किसने बनवाया?

 ....

7. महाबलीपुरम् में 'रथ मंदिर' किसने बनवाया?

 ....

8. स्थापत्य कला में द्रविडशैली क्या है?

 ....

9. तंजोर में चोल राजा द्वारा बनवाये गये मंदिर का नाम लिखें।

 ....

10. स्थापत्य कला की 'नागर शैली' की परिभाषा लिखें।

 ....

11. कोणार्क में किसने सूर्यमंदिर बनवाया?

....

12. राजस्थान के माऊंट आबू में प्रसिद्ध जैन मंदिर का नाम लिखिए।

....

13.4 मध्यकालीन स्थापत्य कला

दिल्ली सल्तनत

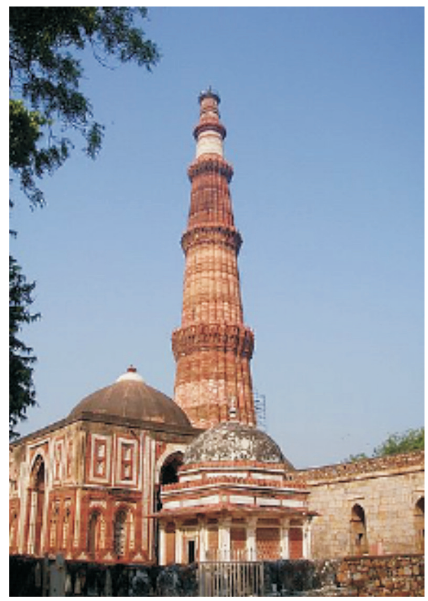

13वीं शताब्दी में तुर्कों के आगमन के साथ वास्तुकला में एक नई तकनीक का प्रवेश हुआ। फारस, अरब व मध्य एशिया की वास्तुशिल्प कला की शैलियों का भारत में पदार्पण हुआ। गुम्बज, मेहराब और मीनारें इन इमारतों के अभिन्न अंग थे। शासकों द्वारा बनाए गए महलों मस्जिदों और मकबरों में ये सभी लक्षण पाए जाते थे, लेकिन ये विशेषताएं देशी वास्तुकला के साथ घुलमिल गईं और वास्तुकला में एक नया संश्लेषण हुआ। यह इसलिए हुआ कि दिल्ली के तुर्की शासकों ने स्थानीय भारतीय शिल्पकारों की सेवाओं का प्रयोग किया जो बहुत कुशल थे और पहले ही बहुत सुन्दर भवन बना चुके थे। जो भवन बने उनमें इस्लामिक संरचना की सरलता और विस्तृत शिल्प या डिजाइन जो उन्होंने अपने देशी भवनों में बनाए थे, दोनों का संगम देखने को मिलता है। मुगल शासन के दौरान संश्लेषण की यह प्रक्रिया और अधिक परिष्कृत हुई और इसने महान ऊंचाइयों को प्राप्त किया।

दिल्ली की कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद और कुतुबमीनार इस युग की प्राचीनतम इमारतें हैं। कुतुबमीनार की ऊंचाई सत्तर मीटर है। इस मीनार में पांच मंजिल हैं। मस्जिद और मीनार दोनों में खूबसूरती से अक्षर अंकित हैं। बाद में सुल्तानों द्वारा बहुत सी इमारतें बनवाई गईं।

अलाऊद्दीन खिलजी ने कुव्वत-उल-इस्लाम मस्जिद को बड़ा करवाया तथा मस्जिद की चारदीवारी बनवा कर द्वार बनवाया। जिसे 'अल्हाई' दरवाजा कहते हैं। इसकी सुन्दर स्थापत्य कारीगरी आज भी देखने योग्य है। उन्होंने जलशक्ति से चालित हौज-खास दिल्ली में बनवाया। मौहम्मद तुगलक तथा फिरोज तुगलक के मकबरे और तुगलकाबाद के किले भी

कुछ उदाहरण हैं। यद्यपि इनके भवन बहुत सुंदर नहीं हैं परन्तु उनकी मजबूत और ऊँची-ऊँची दीवारें भी प्रभावित करती हैं। अफगान शासन के दौरान दिल्ली में इब्राहीम लोदी का मकबरा और सासाराम में शेरशाह सूरी का मकबरा बनाया गया। इस काल की स्थापत्य कला दर्शाती है कि किस तरह से निर्माताओं ने देशी शैलियों को अपनाया और इनका प्रयोग किया। इन वर्षों में तुर्की लोग भारत में बसने की प्रक्रिया में थे। इन शासकों को मंगोलों की ओर से खतरा था, जो उत्तरी दिशा से अचानक हमला कर देते थे। यही कारण है कि इस युग की इमारतें मजबूत, बुलंद और उपयोगी हैं।

क्षेत्रीय साम्राज्य

बंगाल, गुजरात और दक्कन में क्षेत्रीय राज्यों की स्थापना के साथ ही वहां की अपनी शैली में कई इमारतें बनाई गईं। अहमदाबाद की जामामस्जिद, सादी सैयद मस्जिद और झूलती मीनार इस वास्तुकला के कुछ उदाहरण हैं। मध्य भारत में मांडू में जामा मस्जिद, हिंडोला महल और जहाज महल बनाए गए। दक्कन में भी सुल्तान ने कई इमारतें बनवाईं। गुलबर्ग की जामा मस्जिद, बीदर का महमूद गवन का मदरसा, बीजापुर में इब्राहीम रोजा और गोल गुम्बज, गोलकुंड़ा का दुर्ग कुछ प्रसिद्ध इमारतों के उदाहरण हैं। गोल गुम्बज में विश्व का सबसे बड़ा गुंबद है। इन सभी इमारतों के डिजाइन और शैलियां उत्तर भारत की इमारतों की शैली से भिन्न हैं।

बंगाल में लंबे आकार के कुछ भवन और उनकी छतों का अदभुत शैली में निर्माण बंगाल प्रदेश के कुछ विशिष्ट लक्षण थे जैसे- अदीना मस्जिद और पाण्डुआ में जलालुद्दीन-का मकबरा, गौड़ में खील दरवाजा और तन्तीपारा मस्जिद, जौनपुर में, शारकु राजाओं ने अटाला मस्जिद के गुम्बद को भीमकाय, जालीदार दीवार से ढकवाया। जबकि, मालवा में होशांग शाह के मकबरे में पीले और काले रंग के संगमरमर पर कारीगरों से जड़ाऊ काम करवाया गया था। विजयनगर साम्राज्य, जो इस काल में स्थापित हुआ, के राजाओं ने भी अपने राज्यकाल में अनेक सुन्दर भवन और मन्दिर बनवाये और अन्य कई उपलब्धियों का श्रेय भी उनको जाता है। हम्पी में विट्ठलस्वामी मंदिर और हजर रमा मंदिर अच्छे मन्दिरों के उदाहरण है जिनके अब केवल अवशेष बचे हैं।

बहमनी

बहमनी सुलतानों ने फारसी, सीरिया, तुर्की तथा दक्षिण भारत के मंदिरों की शैलियों को अपनाया। गुलबर्ग में जामा मस्जिद बहुत प्रसिद्ध है। इस मस्जिद के प्रांगण को बहुत सारे गुम्बदों से ढका गया है जोकि भारत में ढके हुए प्रांगण वाली यह एकमात्र मस्जिद है।

मुगल

मुगलों के आगमन ने स्थापत्य कला में एक नए युग की शुरुआत की। विभिन्न शैलियों के संश्लेषण की जो शुरुआत पहले हो चुकी थी वह इस युग में अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच

गई। मुगल शैली की वास्तुकला का प्रारंभ अकबर के शासन में हुआ। इस शासन की पहली इमारत दिल्ली में हुमायूं का मकबरा थी। इस शानदार इमारत में लाल पत्थर का इस्तेमाल किया गया। इसमें एक प्रमुखद्वार है और यह मकबरा एक बगीचे के बीचों-बीच बना है। कई विशेषज्ञ इसे ताजमहल का पुरोगामी मानते हैं। अकबर ने आगरा और फतेहपुर सीकरी में किलों का निर्माण कराया। बुलंद दरवाजा शक्तिशाली मुगल साम्राज्य की शानो-शौकत को प्रतिबिंबित करता है। इसका निर्माण अकबर की गुजरात विजय के बाद हुआ। बुलंद दरवाजे की मेहराब प्राय: 41 मी. ऊँची है और यह विश्व का सबसे शानदार द्वार है। सलीम चिश्ती का मकबरा, जोधाबाई का महल, इबादत खाना, बीरबल का आवास और फतेहपुर सीकरी के अन्य भवन भारतीय और फारसी शैलियों का संश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। जहांगीर के शासनकाल में आगरा के निकट सिकंदरा में अकबर का मकबरा बनवाया गया। उसने इत्मादुद्दौला का सुन्दर मकबरा बनवाया जो पूरी तरह संगमरमर का बना है। मुगलों में शाहजहां सबसे महान भवन निर्माता सिद्ध हुआ। उसने अपने निर्माणों में संगमरमर का भरपूर उपयोग किया। पच्चीकारी (पीएट्राड्यूरो) में खूबसूरत डिजाइन, सुंदर मेहराब और मीनार, उसकी इमारतों की विशेषताएं थीं। दिल्ली की जामा मस्जिद तथा लाल किला एवं आगरे का ताजमहल शाहजहां द्वारा बनाई गई कुछ प्रसिद्ध इमारतें हैं। शाहजहां की पत्नी की याद में बनाये गये मकबरे में जिसे ताजमहल कहा जाता है, मुगल काल में विकसित वास्तुकला की सारी विशेषताएं मौजूद हैं। इसमें एक केंद्रीय गुम्बद, चार शानदार मीनारें, द्वार, पच्चीकारी का काम और मुख्य भवन के चारों ओर बाग है। बाद के युग के भवनों पर मुगल शैली की वास्तुशिल्प का गहरा प्रभाव पड़ा। भवनों पर प्राचीन भारतीय शैली का भी प्रभाव पड़ा और उनमें आंगन और स्तम्भ बनवाए गए। स्थापत्य कला की इस शैली में पहली बार जीवित प्राणी, हाथी, शेर, मयूर तथा अन्य पक्षियों की भी मूर्तियाँ झरोखों में बनाई गईं।

फतेहपुर सीकरी में अकबर द्वारा बनवाए गए स्मारक

अकबर के शासनकाल से मुगल स्थापत्य कला का आरंभ हुआ। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण भवनों का निर्माण करवाया। आगरा से 40 किलो मीटर दूर 'फतेहपुरसीकरी' को अपनी नई राजधानी बनाया, जो उनके शासन काल की महा उपलब्धि है। 'बुलंद दरवाजा' संसार में एकमात्र शानदार दरवाजा है। संत सलीम चिश्ती का मकबरा इसकी शान को बढ़ाता है। प्राचीन भारतीय स्थापत्य कला का सुंदर नमूना जोधाबाई का महल है। फारसी शैली से प्रभावित होकर जामा मस्जिद का निर्माण करवाया। अपनी अच्छी योजना व सुंदर सजावट

के कारण 'दीवाने-आम' एवं 'दीवाने खास' प्रसिद्ध हैं। 'इबादत खाना' एवं पंचमहल भी विलक्षण भवन हैं। 'पंचमहल' पांच मंजिल वाला पिरामिड ढांचा है। इसका निर्माण बौद्ध बिहार के तरीके पर किया गया।

1526 ई. से मुगल स्थापत्य में मकबरों की इमारतें पूरी तरह से भिन्न प्रकार से बनने लगीं। इनके लिए अच्छे प्लेटफार्म बनवाये गए और इनके चारों ओर सुंदर बागों और सजावटी फव्वारों से सजावट की गई। इसका एक अति प्रसिद्ध उदाहरण है—फतेहपुर सीकरी की मस्जिद है जिसमें 3 गुम्बद हैं जिनकी 290 फीट चौडाई तथा 470 फीट की ऊंचाई है और वहां दो शाही मकबरे भी हैं।

सन् 1593 ई.-1613 ई. के दौरान बना अकबर का मकबरा सिकंदरा में दूसरा प्रसिद्ध मकबरा है। सन् 1630 ई. में शाहजहां ने 'ताजमहल' बनवाया जो आज भी 'संसार की आश्चर्यजनक इमारत' मानी जाती है। इसमें 18 फीट ऊंचे तथा 313 वर्ग फुट चौडा आयताकार संगमरमर का शाही चबूतरा बनवाया गया। इसके किनारों पर 133 फुट ऊंची मीनारें हैं। इसके मध्य 80 फुट ऊंचा और 58 फुट के घेरे का गुम्बद है। संगमरमर पर कम कीमती रत्न जेस्पर और अगाटे से जड़ाऊ काम किया गया है। यह जमुना किनारे पर बना है। यह मकबरा संगमरमर के झज्जों, फव्वारों और देवदार वृक्ष से घिरा हुआ है। मुगल साम्राज्य की शक्ति समाप्त होने से मुख्य स्थापत्य भी धीरे-धीरे नष्ट होने लगा।

मुगलकाल में मकबरों के चारों ओर सुंदर बगीचे, इमारतें, गुम्बद आदि बनाने की अद्भुत स्थापत्य कला विकसित हुई। जहांगीर और शाहजहां ने कश्मीर और लाहौर में शालीमार गार्डन का विकास किया। मुगलों ने भारत की संस्कृति और स्थापत्य कला को प्रोत्साहन दिया।

उसके बाद ब्रिटिश आए। इन्होंने भारतवर्ष पर 200 वर्षों तक शासन किया तथा ये अपने पीछे स्थापत्य कला में एक अलग तरह की औपनिवेशिक शैली छोड़ गए।

पाठगत प्रश्न 13.3

1. तुर्की शासकों की स्थापत्य कला शैली क्या थी?

....

2. दिल्ली सल्तनत शासनकाल में जो गुम्बद एवं मस्जिदों का निर्माण हुआ उनके नाम बताएँ।

....

3. संसार में सबसे बड़ा गुम्बद कौन सा है?

....

4. पैट्रा ड्यूरा (पच्चीकारी) क्या है?

   ....

5. मुगल साम्राज्य की कौन सी इमारत उनकी शान का प्रतीक है?

   ....

13.5 औपनिवेशिक स्थापत्य और आधुनिक काल

औपनिवेशिक प्रभाव को कार्यालयों के भवनों पर देखा जा सकता है। यूरोपीय लोगों का आगमन 16वीं सदी से होता है। इन्होंने बहुत सारे चर्चों और अन्य भवनों का निर्माण किया। पुर्तगालियों ने गोवा में बहुत सारे चर्चों का निर्माण किया। इन चर्चों में सबसे प्रसिद्ध है बेसिलिका बोन जीसस तथा 'संत फ्रांसिस का चर्च'। इसके बाद जब ब्रिटिश शासन भारत में हुआ तो उन्होंने रिहायशी और प्रशासनिक भवनों का निर्माण कराया। इन भवनों में साम्राज्य का गौरव झलकता है। स्तम्भों वाले भवनों में मिस्र और रोम का भी कुछ प्रभाव देखने को मिलता है। दिल्ली में संसद भवन और कनाट प्लेस इसके दो अच्छे उदाहरण हैं। वास्तुकार लुट्यन्स ने राष्ट्रपति भवन का नक्शा बनाया जो भूतपूर्व वायसराय का निवास था। यह लाल पत्थर से बना है और इसमें राजस्थान के जाली व छतरी जैसे डिजाइन हैं। ब्रिटिश भारत की भूतपूर्व राजधानी कलकत्ता में बना विक्टोरिया स्मारक संगमरमर की बहुत बड़ी इमारत है। यहां अब ब्रिटिशकाल की कलात्मक वस्तुओं का संग्रहालय है। 'राइटर्स बिल्डिंग' जहां ब्रिटिशकाल में सरकारी कर्मचारियों की कई पीढ़ियों ने काम किया, स्वतंत्रता के बाद अब वह बंगाल का प्रशासनिक केन्द्र है। कलकत्ता के चर्च जैसे संटपाल कैथेडरल में कुछ 'गाथिक' तत्व देखने को मिलते हैं। अंग्रेजों ने मुंबई में विक्टोरिया टर्मिनल जैसे कुछ खूबसूरत रेलवे टर्मिनल भी बनवाए। साक्ष्य के तौर पर 1947 ई. में आजादी के बाद भी तत्कालीन शैली के भवन देखने को मिलते हैं। फ्रांसीसी वास्तुकलाकार कोरबिजीयर ने चंडीगढ़ के भवन डिजाइन किए। दिल्ली में आस्ट्रिया के वास्तुकार स्टैन ने इंडिया इंटरनेशनल सेंटर का वास्तु डिजाइन किया, जहां विश्वभर से आये विचारकों और प्रबुद्ध वर्गों के सम्मेलन होते हैं और तात्कालिक इण्डिया हैबीटेट सैन्टर बनवाया जो राजधानी में बौद्धिक गतिविधियों का केन्द्र है।

पिछले कुछ दशकों में बहुत से भारतीय वास्तुकार हुए जो वास्तु शिल्प के उत्कृष्ट संस्थानों जैसे दिल्ली के 'स्कूल ऑफ प्लानिंग एंड आर्केटेक्चर' से प्रशिक्षित हुए हैं। राज रैवल और चार्ल्स कोरेया जैसे वास्तुकार देश की नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हैं। राज रैवेल ने स्कोप कॉम्पलैक्स और दिल्ली के जवाहर व्यापार भवन का नक्शा डिजाइन किया है। वे देशी भवन सामग्रियों जैसे बलुआ पत्थर का उपयोग करते हैं और इसमें वे गर्व का अनुभव करते हैं। उन्होंने रोम की प्लाजाओं में बनाई गई खुली जगहों और सीढ़ियों का उपयोग अपने वास्तु डिजाइनों में किया। इसका उदाहरण दिल्ली में निर्मित सीआइईटी भवन है। मुंबई के चार्ल्स कोरिया, दिल्ली के कनाट प्लेस में जीवन बीमा योजना भवन के निर्माण के लिए जाने जाते हैं। ऊँचे-ऊँचे भवनों में उसने शीशे के रोशनदानों का प्रयोग किया जिससे प्रकाश आता रहे और ऊँचाई का आभास भी होता रहे।

घरेलू स्थापत्य में पिछले दशक में सभी महानगरों में गृह निर्माण सहकारिता संस्थाएं फैल गई हैं जिन्होंने बेहतरीन योजना के साथ उपयोगिता और सौन्दर्यबोध का मिश्रण किया है।

पाठगत प्रश्न 13.4

1. पुर्तगालियों ने गोवा में कौन से प्रसिद्ध गिरजाघरों का निर्माण किया?

   ....

2. राष्ट्रपति भवन का नक्शा बनाने वाले वास्तुशिल्पी का नाम लिखिए।

   ....

3. भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत कौन सी वास्तुशैली से बने भवनों का निर्माण किया गया?

   ....

4. उस समय के कलकत्ता के विक्टोरिया स्मारक भवन में अब क्या स्थित है?

   ....

5. चंडीगढ़ शहर का नक्शा किसने बनाया?

   ....

6. दिल्ली में इंडिया इंटरनेशनल सेंटर का वास्तु डिजाइन किस वास्तुशिल्पकार ने किया?

   ....

7. आधुनिक भारत के कुछ प्रसिद्ध वास्तुशिल्पियों के नाम लिखें।

   ....

13.6 भारत में कस्बे और शहर

आपने इस अध्याय में भारत में प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल की वास्तुकला के विषय में पढ़ा है। पिछले खण्ड में आपने दिल्ली में योजना और वास्तुकला के स्कूल के विषय में भी पढ़ा। आप देख सकते हैं कि योजना का संबंध स्थापत्य कला से है। क्या आप जानते हैं कि योजना वस्तुत: कस्बों की योजना है जो शहरी विकास से जुड़ी है। यह स्पष्ट है कि जब हम वास्तुकला के बारे में सोचते हैं या बात करते हैं तो हमें इससे जुड़े कस्बों की योजना या शहरी विकास के बारे में भी सोचना होगा। इस खण्ड में हम भारत में कस्बों की और शहरों की योजना के विषय में जानेंगे। यह भी एक बहुत रोचक कहानी है। हम कुछ समय वर्तमान भारत के चार प्रमुख शहरों चेन्नई, मुंबई, कोलकाता और दिल्ली के विस्तार के विषय में चर्चा करने में बिताएंगे। हम इन शहरों के मूल रूपों को रेखांकित करेंगे और इनके महत्त्वपूर्ण संरचनाओं और भवनों के विषय में जानेंगे।

आपको यह जानवर आश्चर्य होगा कि हड़प्पन सभ्यता जिसे कुछ इतिहासकारों द्वारा सिन्धु सरस्वती सभ्यता भी कहा जाता है, से प्रारंभ करके भारत में नगर योजना का एक बहुत लम्बा इतिहास रहा है जिसे ई.पू. 2350 ईसवी तक भी खोजा जा सकता है। जैसा कि आप पहले पढ़ चुके हैं कि हड़प्पा और मोहनजोदाड़ो इन दो नगरों में व्यापक प्रणाली व्यवस्था थी, सड़कें थीं जो एक दूसरे को समकोण पर काटती थीं, एक किला था जो ऊंची जमीन पर बना था और निचले हिस्सों में शेष जनसंख्या रहा करती थी। राजस्थान में कालीबंगा तथा कच्छ में सुर्खोदा में भी इसी प्रकार का नगरीय ढांचा था। ईसा पूर्व 600 शताब्दी से आगे हमें ऐसे कस्बे और शहर मिलते हैं जो दोनों आर्य और द्रविड़ सभ्यताओं से जुड़े हुए हैं। ये हैं राजगिरि, वाराणसी, अयोध्या, हस्तिनापुर, उज्जैन, श्रावस्ती, कपिलवस्तु और कौशाम्बी एवं कई अन्य। हम मौर्य युग में भी कई कस्बों को देखते हैं जिन्हें जनपद (छोटे कस्बे) और महाजनपद (बड़े कस्बे) कहा जाता था।

भारत में मुस्लिमों के आने पर दृश्य परिवर्तित हो गया। कस्बों पर इस्लामी प्रभाव दिखाई देने लगा। मस्जिदें, किले, महल अब शहरों में दिखाई देने लगे। अबुल फजल के अनुसार 1594 ई. पश्चात् प्राय: 2387 कस्बे थे। मुख्यतया इसलिए क्योंकि कई बड़े गांव छोटे शहरों में बदल गये जिन्हें कस्बा कहा जाने लगा। इन कस्बों में शीघ्र ही स्थानीय कलाकार और शिल्पकार रहने लगे जिन्होंने अपने चुने हुए शिल्प में विशेषता प्राप्त करनी प्रारंभ कर दी जैसे आगरे में चमड़े का काम और संगमरमर का काम। सिंध सूती कपड़ों और सिल्क के लिए माना जाने लगा, गुजरात जरी और रेशम के धागों और उनसे बने ब्रोकेट के निर्माण में प्रसिद्ध हो गया जो अन्य देशों को भी भेजा जाता था।

जैसा कि आप जानते हैं, बाद में 16वीं शताब्दी में भारत में अंग्रेज समुद्री रास्तों से आए और नई बंदरगाहों की स्थापना का प्रारम्भ हुआ जैसे गोआ में पणजी, (1510 ई.), महाराष्ट्र में मुंबई (1532 ई.), मछलीपट्टनम् (1605 ई.), नागपट्टनम्, (1658 ई.), दक्षिण में मद्रास (1639 ई.) और पूर्व में कोलकाता (1690 ई.)। ये नई बंदरगाहें अंग्रेजों द्वारा बनाई गईं क्योंकि इस समय इंग्लैंड विश्व का अग्रणी औद्योगिक अर्थव्यवस्था क्षेत्र के रूप में विकसित हो चुका था। भारत ब्रिटिश उद्योगों के लिए कच्चा माल निर्यात करता था और इनके बने सामान का समृद्ध प्रमुख खरीददार भी था। 1853 ई. के बाद अंग्रेजों द्वारा रेलवे लाइनें भी बिछाई गईं जिससे सामान को अंतरंग भागों से बंदरगाहों तक लाया जा सके या उन क्षेत्रों से संबंध जोड़ा जा सके जो कच्चा माल देते थे या बना हुआ माल लेते थे। 1905 ई. तक प्राय: 28000 मील लंबी रेलवे लाइनें अंग्रेजों के आर्थिक, राजनैतिक और सैनिक हितों की पूर्ति करती थीं। डाक और तार की लाइनें भी बिछाई गईं जो संप्रेषण कार्य के लिए आवश्यक थीं।

20 वीं शताब्दी के प्रारंभ तक बोम्बे (मुम्बई), कलकत्ता (कोलकाता) और मद्रास (चेन्नई) प्रशासन, व्यापार और उद्योगों के जाने माने महत्वपूर्ण नगरों के रूप में प्रसिद्ध हो गए। कुछ स्थान जैसे कोलकाता में डलहौजी स्कवेयर, फोर्ट स्ट्रीट जार्ज (मद्रास), कनॉट प्लेस (दिल्ली) और समुद्री तट जैसे मुम्बई में मेरीन ड्राइव, आदि अंग्रेजों को उनके निवास

इंग्लैण्ड की याद दिलाते थे। लेकिन वे यूरोप के समान अपने वातावरण में ठंडक भी चाहते थे। अतः इन शहरों के पास पहाड़ों पर भारत की तेज गर्मी से बचने के लिए नये हिल स्टेशन बनाए गए जैसे मसूरी, शिमला और नैनीताल उत्तर में, पूर्व में दार्जिलिंग और शिलांग, और दक्षिण में नीलगिरि और कोडईकनाल।

शहरों में नये आवासीय क्षेत्र भी विकसित होने लगे। जिस क्षेत्र में नागरिक प्रशासन के अधिकारी रहते थे वह क्षेत्र सिविल लाइन्स कहलाया, जबकि छावनी आदि क्षेत्रों में ब्रिटिश आर्मी के अफसर रहा करते थे। क्या आप जानते हैं कि यह दो क्षेत्र अभी भी प्रशासन और सेना के अधिकारियों के उच्च वर्ग के लिए ही पहले की भांति आरक्षित हैं।

अब हम भारत के चार प्रमुख महानगर चेन्नई, कोलकाता, मुम्बई और दिल्ली के बारे में पढ़ेंगे। निःसंदेह आप इनसे परिचित ही हैं।

पाठगत प्रश्न 13.5

1. भारत में प्राचीन काल में विकसित 5 शहरों के नाम लिखिए–

   (i) ...., (ii) ...., (iii) ...., (iv) ...., (v) ....

2. उन पांच स्थानों के नाम लिखिए जहाँ अंग्रेजों ने बंदरगाहें बनाईं–

   (i) ...., (ii) ...., (iii) ...., (iv) ...., (v) ....

3. अंग्रेजों द्वारा निर्मित 4 पर्वतीय स्थानों के नाम लिखिए–

   (i) ...., (ii) ...., (iii) ...., (iv) ...., (v) ....

4. सिविल लाइन्स में कौन रहते थे?

   ....

5. छावनी क्या हुआ करती थी?

   ....

13.6.1 चेन्नई

चेन्नई जिसे पहले मद्रास कहा जाता था, अब तमिलनाडु प्रदेश की राजधानी है और भारत के चार महानगरों में से एक है। यह शहर सेंटजॉर्ज किले के चारों ओर विकसित हुआ और धीरे-धीरे पास के कस्बों और गांवों को घेरता चला गया। 19वीं शताब्दी में यह शहर ब्रिटिश इम्पीरियल इण्डिया की दक्षिणी विभाग की मद्रास प्रेसीडेन्सी का केंद्र बना। 1947 में भारत

की स्वतंत्रता के पश्चात् यह शहर मद्रास स्टेट की राजधानी बना। मद्रास राज्य का नाम 1968 ई. में तमिलनाडु रख दिया गया। इस शहर ने अपनी पारंपरिक तमिल हिन्दु सभ्यता को बरकरार रखा और विदेशी समाज और भारतीय संस्कृति का विचित्र सम्मिश्रण प्रदर्शित करता है। चेन्नई पर ब्रिटिश प्रभाव इसके विभिन्न चर्चों, भवनों और दोनों ओर वृक्षों की पंक्ति से घिरे चौड़े-चौड़े मार्गों में स्पष्ट झलकता है।

उच्च न्यायालय भवन: 1892 ई. में बना यह भवन विश्व में लण्दन के न्यायालयों के बाद विशालतम न्यायालय भवन है। किले सेट जार्ज का प्रमुख हाल, इसके अलंकृत गुम्बद और गलियारे नई स्थापत्य शैली के प्रतीक हैं।

आइस हाउस (बर्फ खाना): इसमें अंग्रेजों के शासन में उत्तरी अमेरिका की विशाल झीलों से बड़े-बड़े बर्फ के टुकड़े जो पानी के जहाजों में शीतलीकरण के उद्देश्य से लाए जाते थे, बर्फखानों में सुरक्षित रखा जाता था।

दूसरी खूबसूरत इमारत जो इस समय में निर्मित हुई वह है सेंटजोन्स का चर्च जिसमें चौड़े-चौड़े गोथिक मेहराब बने हैं और खूबसूरत धब्बेदार शीशे की खिड़कियाँ हैं। इसमें एक भेव और मंच है, एक मीनार और एक शिखर है। दीवारें छोटे अनगढे पत्थरों की बनी हैं, अपरिष्कृत बादामी रंग के कुर्ला पत्थरों का रूप लिये हुए हैं, जबकि मंच, मेहराव और पलस्टर पोरबंदर पत्थर का है और छत सागवान की लकड़ी की है और फर्श इंग्लैण्ड से मंगाई गई टाइलों का बना है।

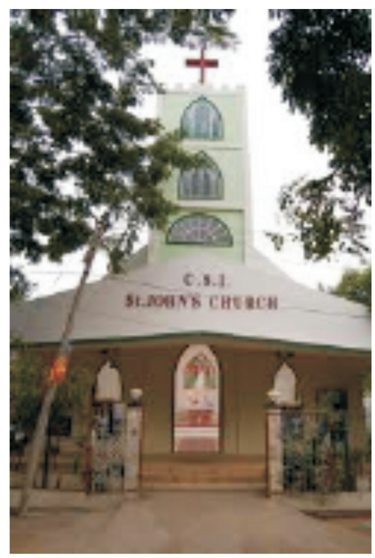

एक अन्य भवन जो इस काल में निर्मित हुआ है, वह है जनरल पोस्ट ऑफिस जो 1872 ई. में पूर्ण हुआ। चेन्नई के जनरल पोस्ट ऑफिस में एक बहुत बड़ा भवन है जिसपर एक ऊँचा गुम्बद बना है। यह स्थानीय असिताश्य पत्थर का बना है जिस पर कुर्ला के पीले पत्थर और ध्रंगाद्र के सफेद पत्थर मिला कर कारीगरी की गई है। यह पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र है। इसके अंदर संगमरमर की शीट वाली मेजें, ऊँची-ऊँची छतें, झूलती हुई सीढ़ियाँ अंग्रेजों की शक्ति और धन का भरपूर प्रदर्शन करती है।

13.6.2 कोलकाता

कोलकाता के मूल और इतिहास की खोज बहुत रोचक है। क्या आप जानते हैं कि अंग्रेजों के राज्य में 1911 ई. तक यह ब्रिटिश भारत की राजधानी था। यह 1686 ई. में कलकत्ता के नाम से जाना गया। ऐसा अंग्रेजों की विस्तार योजना के परिणाम स्वरूप हुआ।

यह शहर 1756 ई. तक निरंतर उन्नति करता रहा जब तक सिराजुद्दौला (बंगाल के नवाब) ने 1757 ई. में आक्रमण करके अंग्रेजों को शहर से भगा नहीं दिया। इससे अगले वर्ष 1757 ई. में प्लासी का युद्ध हुआ जिसमें रॉबर्ट क्लाइव ने नवाब को हराकर फिर से शहर पर कब्जा कर लिया।

1774 ई. में कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायालय के स्थापित होने के बाद यह न्याय का स्थान बन गया। ब्रिटिश भारत की राजधानी 1911 ई. में कलकत्ता से नई दिल्ली बना दी गई। आपको यह ज्ञात ही होगा कि कलकत्ता सरकारी तौर पर 2001 ई. में कोलकाता कहलाने लगा। आइए अब हम एक दृष्टि कलकत्ता के उन भवनों और प्रसद्धि इमारतों पर डालें जो आज भी विद्यमान है।

हावड़ा पुल हुगली नदी पर बना है। यह पुल हावड़ा शहर को कलकत्ते से जोड़ता है। यह पुल दो 270 फीट ऊँचे स्तम्भों पर खड़ा है इसमें पेच और कब्जे आदि नहीं लगे हैं और यह पुल कलकत्ता की महत्त्वपूर्ण निशानी है। यह विश्व का सबसे अधिक व्यस्त पुल है।

उत्तरी कलकत्ता में स्थित मार्बल पैलेस 1835 ई. में बना। यहाँ आज उत्कृष्ट कला संग्रहालय बना हुआ है। यहाँ कला के उत्कृष्ट नमूने, शिल्प, चित्र और तैलचित्र प्रदर्शित किए गए हैं। इसमें एक चिड़ियाघर भी है जहाँ आप विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी देख सकते हैं। वस्तुत: यहाँ पक्षियों का संग्रह बेजोड़ है।

फोर्ट विलियम हुगली नदी पर स्थित है। यह अंग्रेजों द्वारा विशेषत: राबर्ट क्लाइव

द्वारा 1696 ई. में प्रारंभ किया गया और 1780 ई. में जाकर पूरा हुआ। इस किले का मुख्य उद्देश्य आक्रमणकारियों से बचाव करना था। किले के चारों ओर का क्षेत्र साफ करके मैदान बना दिया गया। अब यहाँ कई प्रदर्शनियाँ और मेले लगते रहते हैं।

विक्टोरिया मेमोरियल हॉल कलकत्ता का अति समृद्ध संग्रहालय है जो 1921 ई. में स्थापित हुआ। यह एक शानदार स्थल है जो पर्यटक को विगत इतिहास की दुनिया में ले जाता है। आज विक्टोरिया मेमोरिलय कलकत्ता का सबसे खूबसूरत कला संग्रहालय है। यह 184 फुट ऊँचा महल है जो 64 एकड़ भूमि पर बनाया गया है।

क्या आप जानते हैं कि ईडन गार्डन क्रिकेट क्लब कलकत्ता में 1864 ई. वर्ष में स्थापित हुआ है। आज इसमें 1,20,000 लोगों के बैठने का स्थान है। 'ईडन गार्डन ऑफ कोलकाता' निश्चित ही अवश्य देखने योग्य स्थानों में से एक है।

लेखकों का भवन (Writers' Building) 1690 ई. में बनना प्रारंभ हुआ। इसका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि यह स्थान ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कनिष्ठ लेखकों के निवास के लिए उपयोग किया जाता था। यह गॉथिक भवन लेफ्टिनेंट गवर्नर एशले ईडन (1877 ई.) के कार्यकाल में बना।

13.6.3 मुम्बई

आप जानते ही हैं कि मुम्बई भारत के पश्चिमी तट पर अरब सागर के किनारे बसी हुई है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कभी यह सात द्वीपों का समूह थी। यद्यपि इस स्थल पर प्रागैतिहासिक समय से ही लोग बस रहे थे, परंतु मुम्बई शहर 17वीं शताब्दी में अंग्रेजों के आने से ही अपनी आज की स्थिति में आया। वस्तुत: यह 19वीं शताब्दी में अपने पूरे रूप में आ पाया। यह पहला शहर था जहाँ रेलवे बनी। कलकत्ता के साथ यह भी उन दो शहरों में से हैं जहाँ समाचार पत्र निकलने प्रारंभ हुए।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बहुत से नागरिक और सरकारी भवन मुम्बई में विक्टोरिया गोथिक शैली में बनने प्रारंभ हुए, उदाहरणतया सचिवालय (1874 ई.), काउन्सिल हाल

(1876 ई.), एल्फिन्स्टन कालेज (1890 ई.)। पर सबसे भव्य शैली में 1867 ई. में विशाल रेलवे स्टेशन विक्टोरिया टर्मिनल (वर्तमान छत्रपति शिवाजी टर्मिनल) बनाया गया। यह एक चर्च प्रतीत होता है न कि रेलवे स्टेशन। इसमें खुदाई किए गए पत्थरों की चित्रवल्लरी, धब्बेदार शीशे की खिड़कियाँ और हवाई दीवारें हैं।

प्रसिद्ध 'गेटवे ऑफ इण्डिया', किंगजार्ज पञ्चम और क्वीन मेरी के भारत आने के स्वागत में, पीले पत्थर से स्थापत्य की इण्डो सारासिनिक शैली में बनवाया गया। यह 1924 ई. में बनकर तैयार हुआ और इसमें 24 लाख रुपये व्यय हुआ जो उस समय में एक बड़ी रकम मानी जाती थी। इसमें 26 मीटर ऊँची मेहराब, चार बड़े कंगूरे और महीन जालीदार काम पीले असिताश्म पत्थर पर बनाया गया है।

स्वतंत्रता के बाद, मुम्बई भारत की अग्रणी व्यापारिक और औद्योगिक नगरी बन गई है। स्टॉक एक्सचेंज, व्यापार केंद्र, प्रसिद्ध फिल्म उद्योग जिसे बॉलीवुड कहा जाता है और वह जिसका आप पाश्चात्यकरण और आधुनिकीरण के रूप में नाम ले सकते हैं, वह सब यहाँ है। जैसा कि आप जानते हैं कि आज यह भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण वित्तीय नगर है जिसमें अनेक उद्योग चल रहे हैं जैसे कपड़ा उद्योग, वित्त और फिल्म निर्माण आदि। बॉलीवुड विश्व में सबसे बड़ा फिल्म उद्योग है जहाँ अनेकों हिंदी फिल्म बनाई जाती हैं। गेटवे ऑफ इण्डिया के कारण मुम्बई में अँग्रेजी राज्य के निशान आज भी यहाँ स्पष्ट दिखाई देते हैं।

पाठगत प्रश्न 13.6

1. चेन्नई के चार प्रसिद्ध स्थानों के नाम लिखिए।

   (i) ...., (ii) ...., (iii) ...., (iv) ....

2. कोलकात्ता के चार प्रसिद्ध स्थानों के नाम लिखिए।

   (i) ...., (ii) ...., (iii) ...., (iv) ....

3. मुम्बई के चार प्रसिद्ध स्थानों के नाम लिखिए।

   (i) ...., (ii) ...., (iii) ...., (iv) ....

13.6.4 दिल्ली

क्या आप जानते हैं कि सन् 1911 में दिल्ली ब्रिटिश इण्डिया की राजधानी बनी। इसिलिए

दिल्ली ने 2011 ई. में अपनी 100वीं जयन्ती मनाई। स्पष्ट ही है कि 1911 ई. में वह आधुनिक नगर बसा जिसे नई दिल्ली कहतें हैं। तथापि दिल्ली का इतिहास तो इससे भी पुराना है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सात महत्त्वपूर्ण नगरों को मिला कर दिल्ली नगरी बनी। पहली दिल्ली यमुना के दायें किनारे पर युधिष्ठिर द्वारा जो पाण्डवों में सबसे बड़े थे, इन्द्रप्रस्थ के नाम से बसाई गई। निश्चय ही आपको महाभारत की कहानी तो याद ही होगी जिसमें पाण्डव और कौरवों की कहानी है। लोककथाओं के आधार पर दिल्ली राजा ढिल्लु द्वारा ई. पश्चात् द्वितीय शताब्दी में बसाई गई। पालेमी, भूगोलज्ञ, ने नक्शे में दिल्ली को दाइदल के नाम से दिखाया।

लेकिन इससे भी बहुत समय पहले असंख्य हड़प्पा के स्थानों में दिल्ली नामक शहर ही दिखाया गया है। इसका प्रमाण आपको दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में मिल सकता है। उस समय से दिल्ली बढ़ती गई। आज यह इतनी बढ़ चुकी है कि यह न केवल अपने देश में बल्कि पूरे विश्व के बड़े-बड़े शहरों में से एक है।

दिल्ली के साथ भी एक दिलचस्प कहानी जुड़ी हुई है। कहानी इस प्रकार है- राजा अशोक के जमाने में कुतुब मीनार परिसर में लौह स्तम्भ के नीचे एक सांप वासुकि को जमीन के भीतर धकेल दिया गया था। कुछ वर्षों बाद जब दिल्ली में लाल कोट के भीतर राजा अनंग पाल ने अपना राज्य स्थापित किया, तब उसने इस स्तम्भ को ऊपर खींच लिया और वासुकि को मुक्ति दिलवाई। उसी समय भविष्यवाणी की गई कि कोई भी वंश अब दिल्ली पर अधिक देर तक शासन नहीं कर पायेगा। तोमर वंश के बाद चौहान आए जिन्होंने महरौली के पास लाल कोट क्षेत्र में किला राय पिथौरा के नाम से एक नगर बसाया। पृथ्वी राज चौहान महरौली से ही शासन करते थे।

दिल्ली फिर सुर्खियों में आई जब गुलाम वंश का शासन प्रारंभ हुआ। आपको याद होगा कि कुतुबुद्दीन ऐबक ने प्रसिद्ध कुतुब मीनार बनवानी शुरू की जिसे बाद में इल्तुत्मिश ने पूरा करवाया।

बाद में अलाउद्दीन खिलजी सुलतान बने, तब सीरी शक्ति का केन्द्र बनी। सीरी किला आज भी विद्यमान है और यह क्षेत्र दिल्ली में शाहपुर जाट नाम से प्रसिद्ध है। सीरी की भी एक दिलचस्प कहानी है।

अलाउद्यीन खिलजी का शासन निरन्तर मंगोल आक्रमणकारियों द्वारा त्रस्त रहता था। कुछ मंगोल जो शहर में रह गये, वे विद्रोही बन गए। अलाउद्यीन खिलजी ने उनके सिर कटवा दिए और शहर की दीवारों के नीचे दबवा दिए। इससे यह स्थान सिरी कहलाने लगा। सिर शब्द आप जानते ही हैं, आज भी शरीर के ऊपरी भाग को सिर ही कहा जाता है।

कुछ वर्षों बाद, जब तुगलक वंश गद्दी पर बैठा, सुलतान गियासुद्दीन तुगलक ने तुगलकाबाद नामक शहर बसाया। यह एक किले के समान बनाया गया शहर था। गियासुद्दीन की मृत्यु के बाद मोहम्मद बिन तुगलक (1320 ई. - 1388 ई.) ने दिल्ली के पुराने नगरों को एकत्रित करके एक नया शहर बनवाया जिसका नाम रखा गया– जहाँपनाह।

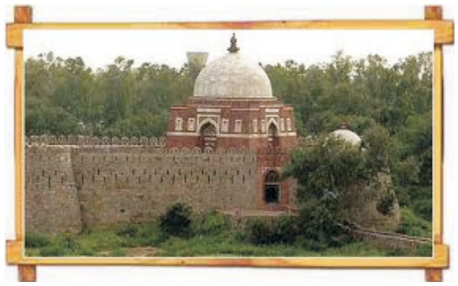

इब्न बतूता ने, जो मुहम्मद बिन तुगलक के दरबार में रहता था, इस नगर का बहुत रोचक वर्णन किया है। वह वर्णन करता है– "भारत का एक महानगर, एक विस्तृत और शानदार नगर है जिसमें सौन्दर्य और शक्ति दोनों एक हो गई हैं। यह एक चारदिवारी से घिरा है जिसकी दुनिया में दूसरी मिसाल नहीं है और यह भारत का सबसे बड़ा नगर है; शायद पूरे मुस्लिम साम्राज्य में"।

तुगलक वंश का एक और महत्त्वपूर्ण शासक था फीरोज शाह तुगलक। उसके राज्य में दिल्ली की जनसंख्या बहुत बढ़ गई थी और इसका विस्तार भी बढ़ चुका था। उसने फिरोजाबाद बनाया जो फिरोजशाह कोटला के समीप ही स्थित है। फिर भी 1398 ई. में समरकन्द के शहंशाह तैमूर के आक्रमण ने इसकी शानोशौकत को नष्ट कर दिया, साथ ही जहांपनाह शहर को भी। तैमूर अपने साथ भारतीय वास्तुकारों और मजदूरों को समरकन्द में मस्जिदें बनवानें के लिए अपने साथ ले गया। बाद के शासकों ने आगरा को राजधानी बनाया।

मुगल शासक हुमायुँ ने प्राचीन इन्द्रप्रस्थ के खण्डहरों पर 'दीनेपनाह' बनाया। लेकिन हुमायुँ के पोते शाहजहाँ ने दिल्ली की शान को फिर से जीवित कर दिया। उसने 1639 ई. में लाल किला बनवाना शुरू किया और 1648 ई. में पूरा किया। 1650 ई. में उसने प्रसिद्ध जामामस्जिद बनवानी प्रारंभ की। शाहजहाँ का नगर शाहजहानाबाद कहलाया। बड़े बड़े शायर जैसे दर्द, मीर तकी, मिर्जा गालिब ने गजलें लिखी और गजलों की भाषा उर्दु इस समय की प्रसिद्ध भाषा हो गई। ऐसा माना जाता है कि शाहजहांबाद ईराक के बगदाद से भी ज्यादा खूबसूरत था और तुर्की के कुस्तुन्तुनिया से भी अधिक शानदार। शताब्दियों के बाद नादिरशाह 1939 ई. की सेनाओं ने तथा अहमद शाह अब्दाली (1748 ई.) ने और अन्दर से लगातार आक्रमणों ने इस शहर को लूट कर बर्बाद कर दिया। इससे शहर

कमजोर पड़ गया। लेकिन इन सभी समस्याओं के बावजूद दिल्ली में अभी भी बहुत कुछ देने को था– संगीत, नृत्य, नाटक और लजीज खाने, साथ ही एक समृद्ध सांस्कृतिक भाषा और साहित्य।

कहते हैं कि दिल्ली कम से कम 24 सूफियों का घर थी जिनमें से अधिक प्रसिद्ध सूफी जहांपनाह क्षेत्र से ही थे। उनमें से कुछ थे–

1. कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी जिनकी खानकाह या डेरा मेहरौली में था।
2. निजामुद्दीन औलिया जिसका डेरा निजामुद्दीन में था।
3. शेख नसीरूद्दीन महमूद जो लोगों मे चिरागे दिल्ली के नाम से प्रसिद्ध थे।
4. अमीर खुसरो जो एक महान कवि, जादूगर और विद्वान था।

1707 ई. के बाद मुगल शासन कमजोर पड़ गया और दिल्ली भी अपनी धुंधली छाया मात्र रह गई। 1803 ई. में अंग्रेजो ने मराठों को हरा कर दिल्ली पर कब्जा कर लिया। कश्मीरी गेट और सिविल लाइन्स के पास के क्षेत्र महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गए जहाँ अंग्रजों ने कई ईमारतें बनवाई। 1911 ई. में अंग्रेजों ने अपनी राजधानी दिल्ली को बनाया और एक नया शहर 'नई दिल्ली' बसाया। यह बहुत शानदार ढंग से बनाया गया था। इण्डिया गेट, वायसराय हाउस जो अब राष्ट्रपति भवन है, संसद भवन, उत्तरी और दक्षिणी ब्लाक जैसी सभी विशाल संरचनाएँ ब्रिटिश राज्य में भारतीय प्रजा पर रौब जमाने के लिए बनवाए गए। इनसे ब्रिटिश साम्राज्य की सर्वोच्चता, शाही शानोशौकत और भव्यता का प्रदर्शन होता था। यह शहर 1932 ई. तक बन कर तैयार हुआ। कनाट प्लेस आज भी शहर का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है। दिल्ली आज भी भारत का महत्त्वपूर्ण व्यापारिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक केन्द्र है। बड़ी बड़ी भव्य इमारतें, सुन्दर उद्यान, पुल, मेट्रो, खूबसूरत हवाई अड्डा, शिक्षा केन्द्र, संग्रहालय, थोक की मण्डियाँ, राजदूतों के निवास, और विश्व में सभी देशों के उच्च आयुक्त, बड़े बड़े मॉल, प्रमुख उद्योग आदि सभी इसको एक शानदार शहर सिद्ध करतें हैं। कहा जाता है दिल्ली है दिलवालों की। (दिल्ली उनकी है जिनके दिल बड़े हैं)।

पाठगत प्रश्न 13.7

1. दिल्ली के अन्दर के शहरों का उनके बनाने वाले राजाओं के साथ मिलान कीजिए

	शहर	*राजा जिन्होंने बनाया*
1.	इन्द्रप्रस्थ	पृथ्वी राज चौहान
2.	लालकोट	मुहम्मद बिन तुगलक
3.	मेहरौली	युधिष्ठिर

4.	सीरी	फीरोज शाह तुगलक
5.	जहाँपनाह	हुमायुँ
6.	तुगलकाबाद	शाहजहाँ
7.	फिरोजाबाद	अलाउद्दीन खिलजी
8.	दीने पनाह	अनंगपाल तोमर
9.	शाहजहाँनाबाद	गियासुद्दीन तुगलक

2. जहाँपनाह क्षेत्र के चार सूफी सन्तों के नाम लिखिए।

   (i) ...., (ii) ...., (iii) ...., (iv) ....

आपने क्या सीखा

- भारतीय स्थापत्य कला और मूर्तिकला का इतिहास उतना ही पुराना है, जितनी पुरानी सिन्धु घाटी सभ्यता है।
- स्थापत्य कला भारतीय संस्कृति की विविधता को समझाने की कुंजी है क्योंकि यह विभिन्न कालों में विभिन्न संस्कृतियों तथा विभिन्न धर्मों से प्रभावित हुई है।
- प्रारंभिक भारतीय स्थापत्य-शैली के विकास में स्तूपों, विहारों तथा चैत्यों का निर्माण करके बौद्ध और जैन धर्मों ने योगदान दिया।
- गुप्त, पल्लव तथा चोल के काल में मंदिर-स्थापत्य कला विकसित हुई।
- दिल्ली के सुल्तान और मुगल अपने साथ फारसी स्थापत्य के प्रभाव को लेकर आए और इसलिए हम भारत-फारसी शैली की स्थापत्य कला को देख पाते हैं।
- ब्रिटिश और दूसरी औपनिवेशिक सत्ता ने भारतीय स्थापत्य को प्रभावित किया और देशी शैलियों के साथ उनके संश्लेषण पर बल दिया। उन्होंने एकदम अलग औपनिवेशिक स्थापत्य शैली का प्रयोग किया जिसमें शानदार भवन और कार्यालयों के निर्माण में स्थानीय पदार्थों का प्रयोग किया जाता था।
- हडप्पा सभ्यता से प्रारम्भ करके भारत में नगर योजना का इतिहास 2350 ई.पू. से चला आ रहा है।
- उसके बाद अनेक शहर विकसित हुए।
- 1594 ई. में 2837 शहर थे।
- 20वीं शती तक बोम्बे (मुम्बई), कलकत्ता (कोलकाता) मद्रास (चेन्नई) प्रशासन, वाणिज्य और उद्योग के प्रमुख केन्द्र बन गए।

- दिल्ली 1911 ई. में ब्रिटिश भारत की राजधानी बनी लेकन दिल्ली का इतिहास बहुत पुराना है। ऐसा माना जाता है कि सात महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों को मिलाकर दिल्ली क्षेत्र बना। ये सम्भवत: हैं इन्द्रप्रस्थ, लालकोट, महरौली, सीरी, तुगलकाबाद, फिरोज़ाबाद और शाहजहानाबाद।

पाठान्त प्रश्न

1. हड़प्पा सभ्यता की स्थापत्य कला का वर्णन करें।
2. गुप्त, पल्लव और चौल शासको का भारत की मंदिर स्थापत्य कला में क्या योगदान है?
3. भारत में स्थापत्य कला तथा मूर्तिकला की कौन सी विभिन्न शैलियाँ हैं?
4. भारत की स्थापत्य कला के विकास में बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म का क्या योगदान हैं? चर्चा करें!
5. दिल्ली सल्तनत शासन में निर्मित स्मारकों पर अपने विचार रखें!
6. मुगलकाल के दौरान स्थापत्य कला भारतीय, फारसी, मंगोलिया तथा मुगल शैली का सम्मिश्रण है, विस्तार से लिखें।
7. दिल्ली की कहानी अपने शब्दों में लिखें।
8. 'दिल्ली है दिलवालों की' कहावत की सच्चाई मालूम करके एक निबन्ध लिखें। आप इन्टरनैट से भी खोजकर लिख सकते हैं या पुस्तकालय से पुस्तक लेकर लिखें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

13.1 1. उप-महाद्वीप के महान साम्राज्यों तथा राजवंशों के उदय तथा पतन ने भारतीय संस्कृति की वृद्धि तथा आकृति को प्रभावित किया।

2. मोहनजोदाड़ों के सार्वजनिक स्नानागार उनके यांत्रिक कौशल के साक्ष्य हैं?

3. कुशीनगर

4. लुम्बिनी, सारनाथ, बोधि वृक्ष, कुशीनगर

5. गुप्तकाल के दौरान

6. भगवान बुद्ध से संबंधित धार्मिक स्थापत्य अवशेष।

7. गुजरात में लोथल स्थान पर

13.2 1. लकड़ी में नक्काशी करके बना विशाल महल

2. सांची स्तूप तथा सारनाथ स्तूप

3. मोनोलिथिक (Monolithic) खम्भों पर
4. गान्धार कला
   मथुरा स्कूल
   अमरावती स्कूल
5. उड़िसा में
6. राष्ट्रकूट
7. पल्लव लोगों ने
8. एक मंदिर का स्थापत्य जिसमें विमान या शिखर (कुण्डलाकार), ऊंची दीवारें तथा गोपुरम् से ढके द्वार
9. बृहदेश्वर मंदिर
10. शिखर (सीढ़ीनुमा) गर्भगृह (मन्दिर के अन्दर का भाग) मण्डप (खम्भो वाला हॉल) से युक्त मंदिर बनाए गए।
11. नरसिंह देव I
12. दिलवाड़ा जैन मंदिर

13.3 1. गुम्बद, मेहराब, मीनार

2. दिल्ली में कुव्वैतली इस्लाम मस्जिदें
   - कुतुब मीनार–दिल्ली में
   - मोहम्मद तुगलक का मकबरा
   - फिरोजशाह तुगलक का मकबरा
   - इब्राहिम लोदी का मकबरा–दिल्ली में
   - शेरशाह का मकबरा–सासाराम में
3. गोल गुम्बद
4. मुगल काल में जड़ाऊ काम से सजाये गए भवनों का निर्माण किया गया।
5. बुलंद दरवाजा

13.4 1. बेसिलिका बूम जीसस तथा सेन्ट फ्रांसिस का चर्च

2. लुटियन्ज
3. ग्रीक एवं रोम की स्थापत्य कला शैली
4. औपनिवेशिक कला कृतियों से भरा संग्रहालय
5. फ्रैंच वास्तुशिल्पी कॉरबूसियर

6. आस्ट्रिया का वास्तुशिल्पी स्टेन

7. 1. राज रेवल

   2. चार्ल्स कोरिया

13.5 1. हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, कालीबंगन, सरकोदा, राजगिरि, वाराणसी, अयोध्या, हस्तिनापुर, उज्जैन, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कौशाम्बी या अन्य जो इस पाठ में नहीं दिए गए।

2. कोई पाँच–पणजी, बम्बई, मछलीपट्टनम्, नागपट्टनम्, मद्रास, कलकत्ता या कोई अन्य जो इस पाठ में न दिए गए हों।

3. कोई पाँच–मसूरी, शिमला, नैनीताल, दारजिलिंग, शिलांग, नीलगिरि, कोडईकनाल या कोई और जो इस पाठ में नहीं दिया गया।

4. नागरिक सेवा के अफसर

5. सैनिक अफसर

13.6 1. उच्च न्यायालय भवन, बर्फखाना, सेंटजॉर्ज का चर्च, सामान्य पोस्ट आफिस या कोई अन्य जो इस पाठ में न दिया गया हो।

2. कोई चार- हावड़ा पुल, मार्बल पैलेस, राइटर्स बिल्डिंग, फोर्ट विलियम, ईडन गार्डन्स, विक्टोरिया मेमोरियल हाल या कोई अन्य जो इस पाठ में न दिया गया हो।

3. कोई चार- सचिवालय, काउन्सिल हौल, एल्फिन्स्टन कॉलेज, विक्टोरिया टर्मिनस (आधुनिक छत्रपति शिवाजी टर्मिनस), गेटवे आफ इण्डिया या अन्य जो इस पाठ में न दिये गये हों।

13.7

क्रमांक	*नगर*	*निर्माता*
1.	इन्द्रप्रस्थ	युधिष्ठिर
2.	लालकोट	अनंगपाल तोमर
3.	मेहरौली	पृथ्वीराज चौहान
4.	सीरी	अलाउद्यीन खिलजी
5.	जहांपनाह	मुहम्मद बिन तुगलक
6.	तुगलकाबाद	गियासुद्यीन तुगलक
7.	फीरोजाबाद	फीरोजशाह तुगलक
8.	दीनपनाह	हुमायुँ
9.	शाहजहानाबाद	शाहजहाँ

2. कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी, निजामुद्यीन औलिया, शेख नसीरूद्दीन मुहम्मद, अमीर खसरो या अन्य जो इस पाठ में नहीं दिए गए हों।

14

भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी

विश्व के अन्य देशों के निवासियों के समान भारतीयों के पास भी वैज्ञानिक विचारों की एक समृद्ध वसीयत है। अज्ञात को जानने की इच्छा ने परीक्षण और अवलोकन के साथ मिलकर वैज्ञानिक जिज्ञासा का रूप लिया और भारतीय इस मान्यता तक पहुंचे कि सत्य विविधताओं और जटिलताओं से परिपूर्ण वास्तविक जगत में ही विद्यमान है। वैज्ञानिकों का यह उत्तरदायित्व रहा है कि वे सत्य पर पड़े रहस्यों के आवरण को हटाएँ और उपलब्ध संसाधनों का उपयोग मानवता की उन्नति के लिए करें। निम्नलिखित पृष्ठों में आप ज्ञान और सत्य के लिए निरंतर खोज के विषय में पढ़ेंगे जिसने आविष्कारों और खोजों एवं भारतीय दैनिक जीवन में उनके उपयोगों को जन्म दिया।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आपः–

- भारत में विज्ञान के विकास को पहचान सकेंगे;
- जिन विभिन्न वैज्ञानिक क्षेत्रों में भारतीयों ने अपना योगदान किया, उनको जान सकेंगे;
- किसी भी काल में जिन विभिन्न घटकों और शक्तियों ने विज्ञान के विकास में सहायता दी, उनका परीक्षण कर सकेंगे;
- आधुनिक भारतीय विज्ञान और इसकी समृद्ध वैज्ञानिक विरासत के बीच संबंध स्थापित कर सकेंगे।

14.1 प्राचीन भारत में विज्ञान का विकास

गणित

मैथेमेटिक्स का सामान्य नाम गणित है जिसके अंतर्गत अंक गणित, ज्योमिति, बीज-गणित,

नक्षत्र विज्ञान और ज्योतिष आदि विषय सम्मिलित हैं। अर्थमेटिक को कई नामों से पुकारा जाता है जैसे पाटी गणित (तख्ती पर गणना), अंक गणित (अंकों द्वारा गणना)। ज्यामिति को रेखागणित (रेखा कार्य) और एल्जेब्रा को बीज गणित (बीज विश्लेषण) कहा जाता है। नक्षत्र विज्ञान और फलित ज्योतिष आदि विषय ज्योतिष के अंदर जाने जाते हैं।

भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की एक अत्यंत समृद्ध विरासत है। प्रकृति पर निर्भरता को विज्ञान में विकास द्वारा अभिभूत किया जा सकता है। प्राचीन भारत में धर्म और विज्ञान घनिष्ठ निकटता के साथ कार्य करते रहे हैं। आइए, अब हम प्राचीन काल में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के विकास के विषय में जानकारी प्राप्त करें।

नक्षत्र विज्ञान (एट्रोनॉमी)

भारत में नक्षत्र विज्ञान ने बहुत उन्नति की। नक्षत्रों की गतियों पर बल देकर उनका सूक्ष्म निरीक्षण किया गया। ज्योतिष वेदांग ने नक्षत्रविज्ञान की सुव्यवस्थित श्रेणियाँ स्थापित कीं परंतु बहुत सी आधारभूत समस्याओं पर आर्यभट्ट (499 ई.प.) ने बल दिया। उनके संक्षिप्त आर्यभट्टीय ग्रन्थ में 121 श्लोक हैं। इनमें खगोल विषयक परिभाषाओं, नक्षत्रों की सही स्थिति को पहचानने के विभिन्न तरीकों, सूर्य और चन्द्र की गतियों के वर्णन और ग्रहणों की गणना विषयक अनेक खण्ड हैं। ग्रहण का कारण उनके अनुसार यह था कि पृथ्वी गोलाकार है और अपनी धुरी पर घूमती है और जब पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है तब चन्द्र ग्रहण होता है और जब चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है तब सूर्यग्रहण होता है। इसके विपरीत पुरातनपंथी लोगों के अनुसार यह एक प्रक्रिया थी जिसमें राक्षस नक्षत्र को निगल लेता था। इन सभी अनुभूतियों का वर्णन वराहमिहिर ने अपने ग्रंथ पञ्चसिद्धान्तिका में किया है जिसमें नक्षत्र विज्ञान विषयक पांच सिद्धान्तों का सार दिया गया है। आर्यभट्ट ने वैदिक नक्षत्र विज्ञान से भिन्न दृष्टि प्रस्तुत की और इसको एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया जो आगे चलकर नक्षत्र विज्ञानियों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ। ज्योतिष और जन्मपत्रियों का प्राचीन भारत में अध्ययन किया जाता था। आर्यभट्ट के सिद्धान्त उस ज्योतिष से विभिन्न थे जो वैज्ञानिक अध्ययनों के स्थान पर विश्वासों पर अधिक बल देते थे।

गणित शास्त्र (मैथेमेटिक्स)

हड़प्पा की नगरीय योजना से पता चलता है कि उस समय के लोगों को मापन और रेखागणित का अच्छा ज्ञान था। ईसा पश्चात् तीसरी शताब्दी तक गणित शास्त्र एक पृथक् अध्ययन धारा के रूप में विकसित हो चुका था। भारतीय गणित शास्त्र का जन्म शुल्व सूत्रों से माना जाता है।

ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में आपस्तम्ब ने व्यावहारिक रेखागणित का परिचय दिया जिसके अंतर्गत न्यूनकोण, दीर्घकोण और समकोण आदि सम्मिलित थे। इस ज्ञान से वेदी के निर्माण में सहायता मिली जहाँ राजा यज्ञ की आहुतियाँ देते थे। गणित शास्त्र के क्षेत्र में तीन प्रमुख योगदान हैं- चिह्नाङ्कन पद्धति, दशमलव पद्धति और शून्य का प्रयोग। चिह्नाङ्कन पद्धति

और संख्या का ज्ञान जो अरबों के द्वारा पश्चिम ले जाया गया। इन अङ्कों ने रोमन अंङ्को का स्थान ले लिया। शून्य का आविष्कार भारत में दूसरी शताब्दी (ई. पूर्व) में हो चुका था। ब्रह्मगुप्त का ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त नामक पहला ग्रंथ है जिसमें शून्य को एक संख्या के रूप में परिगणित किया गया है। इसलिए ब्रह्मगुप्त ही पहला व्यक्ति है जिसने शून्य का आविष्कार किया। उसने ऐसे नियम बनाए जिनमें शून्य का प्रयोग अन्य संख्याओं के साथ किया जा सकता था। आर्यभट्ट ने बीज गणित की खोज की और त्रिकोण का क्षेत्रफल ज्ञात किया जिससे त्रिकोणमिति का जन्म हुआ।

सूर्य सिद्धान्त एक बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है। वराहमिहिर की बृहत्संहिता (6 शताब्दी ई. पू.) नक्षत्र विज्ञान के क्षेत्र में एक अन्य महत्त्वपूर्ण कृति है। उसका निरीक्षण कि चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर और पृथ्वी सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है, बाद में प्रसिद्ध हुआ और इसी के आधार पर अन्य खोजें भी आधारित थीं। गणित शास्त्र और नक्षत्र विज्ञान ने काल और सृष्टि विज्ञान में अध्ययनार्थ रुचि पैदा की। नक्षत्र विज्ञान और गणित शास्त्र भविष्य के शोध के आधार बने।

औषध विज्ञान (मेडीसिन)

अथर्ववेद में प्रथम बार बीमारियों, चिकित्सा और औषधियों का उल्लेख प्राप्त होता है। ज्वर, खांसी, खानपान, डायरिया, ड्रोप्सी (जलोदर), जख्म, कुष्ठ और दौरे जैसे रोग वर्णित हैं। रोगों का कारण शरीर में प्रविष्ट भूतप्रेतादि माना गया है। इनका निदान भी जादुई तरीकों द्वारा बताया गया है।

600 ईसा पूर्व से तर्कसंगत विज्ञान का जन्म हुआ। तक्षशिला और वाराणसी औषध विज्ञान और ज्ञान के प्रमुख केन्द्र के रूप में उभरे। इस समय के दो प्रमुख ग्रंथ हैं– चरक की चरकसंहिता और सुश्रुत की सुश्रुतसंहिता। ये ग्रंथ कितने महत्वपूर्ण हैं इसका पता इसी तथ्य से चलता है कि यह ग्रंथ अनेकों भाषाओं में अनूदित होकर चीन और मध्य एशिया तक पहुंच गया।

चरकसंहिता में औषधि के रूप में प्रयोग की जाने वाली जड़ी बूटियों का वर्णन है। चौथी शताब्दी (ई.पू.) में शल्यचिकित्सा एक पृथक अध्ययन धारा के रूप में उभरी। सुश्रुत इस शास्त्र में अग्रणी माने जाते है। उन्होंने शल्यचिकित्सा को उपचार कलाओं की सर्वोत्तम विधा माना है जो सबसे कम भ्रामक है। उन्होंने 121 शल्य उपकरणों का वर्णन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने हड्डियों को जोड़ना, आंखों का मोतियाबिन्द आदि के ऑपरेशन के तरीके भी बताए। प्राचीन भारत के शल्यचिकित्सक प्लास्टिक सर्जरी (नाक, होंठ और कानों का लगाना) आदि से परिचित थे। सुश्रुत ने 760 पौधों का उल्लेख किया है। पौधों की जड़ें, छाल, फूल और पत्ते सभी का उपयोग किया जाता था। भोजन पर अधिक बल दिया जाता था जैसे गुर्दे के रोग में नमक रहित भोजन। आने वाली शताब्दियों में भारतीय चिकित्सा के क्षेत्र में चरकसंहिता तथा सुश्रुतसंहिता आधार ग्रंथ सिद्ध हुए। प्रारंभिक मध्यकाल के आरम्भ में शल्यचिकित्सा में गिरावट आई क्योंकि उस समय उस्तरे से चीड़फाड़ का काम नाई करने लगे थे।

धातु विज्ञान (मेटलर्जी)

सिन्धु घाटी की खुदाई में प्राप्त कांस्य और तांबे की कलाकृतियों और मिट्टी के चमकीले बर्तनों से उस समय के उन्नत धातु-विज्ञान के बारे में पता चलता है। वैदिक युग के लोग अन्न और फलों का खमीरीकरण करना और चमड़ा निकालना तथा रंगना भी भलीप्रकार जानते थे।

ईसा पश्चात् पहली शताब्दी तक लोहा, तांबा, चांदी, सोना जैसी धातुओं तथा पीतल और कांस्य जैसी मिश्रित धातुओं का व्यापक उत्पादन होने लगा था। कुतुब मीनार परिसर में स्थापित लौह स्तम्भ उच्च कोटि की मिश्रित धातुओं का जीवंत उदाहरण है। क्षार और अम्ल का उत्पादन किया जाता था और इनका प्रयोग औषधियाँ बनाने के लिए किया जाता था। इसी तकनीक का उपयोग अन्य शिल्पकलाओं जैसे रंगों और डाई आदि के बनाने में किया जाता था। वस्त्रों को रंगना लोकप्रिय था। अजन्ता के चित्र रंगों की उत्तमता को प्रदर्शित करते हैं। ये चित्र आज तक सुरक्षित हैं।

भागलपुर के पास सुलतान गंज में दो मीटर ऊंची बुद्ध की कांस्य प्रतिमा भी प्राप्त हुई है।

भूगोल (जीयोग्राफी)

मनुष्य और प्रकृति के निरंतर अध्ययन के अन्तर्व्यवहार ने मनुष्य को भूगोल पढ़ने के लिए बाध्य किया। यद्यपि लोग चीन से और पश्चिमी देशों के भूगोल से परिचित थे, लेकिन पृथ्वी पर उन्हें अपनी स्थिति और दूसरे देशों से दूरी का ज्ञान नहीं था। भारतीयों ने समुद्री जहाज बनाने में भी योगदान किया। प्राचीन काल में यात्राएँ और नौकाचालन भारतीयों का शौक नहीं था तथापि गुजरात में लोथल में जहाज बन्दागाह के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनसे सिद्ध होता है कि उन दिनों भी समुद्र से व्यापार होता था। प्रारंभिक मध्य युग में तीर्थ और तीर्थयात्रा की अवधारणा के विकास से बहुत सारी भूगोलीय जानकारी एकत्रित हो गई। यही जानकारी अंत में पुराणों में संकलित की गई। कुछ अवस्थाओं में पृथक स्थलपुराण भी संकलित किए गए।

पाठगत प्रश्न 14.1

1. विज्ञान के विकास का क्या महत्त्व है?

   ....

2. नक्षत्रविज्ञान में आर्यभट्ट का क्या योगदान था?

   ....

3. आपस्तम्ब कौन था? उसका गणित शास्त्र में क्या योगदान था?

   ....

4. प्राचीन भारत में गणित शास्त्र के क्षेत्र में प्रमुख तीन योगदान क्या थे?

....

5. किस पुस्तक में प्राचीन भारत में औषधियों के लिए पौधों और जड़ी बूटियों का वर्णन मिलता है?

....

6. सुश्रुत संहिता में कितने शल्य क्रिया के उपकरणों का वर्णन है?

....

7. उन दो पुस्तकों के नाम लिखिए जो भारतीय औषध विज्ञान के विकास के लिए पूर्वगामी बनीं?

....

8. प्राचीन भारत के शल्यचिकित्सक कितने औषधीय पौधों से परिचित थे?

....

14.2 मध्ययुगीन भारत में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का विकास

मध्यकालीन युग (11 से 18वीं शताब्दी) में विज्ञान और प्रौद्योगिकी दो धाराओं में विकसित हुई। प्राचीन परम्पराओं पर आधारित प्रचलित ज्ञान इस्लामिक और यूरोपियन प्रभाव से उत्पन्न नये विचारों पर आधारित मकतब और मदरसे एक सुनिश्चित पाठ्यक्रम हेतु अस्तित्व में आए। इन संस्थाओं को शाही संरक्षण प्राप्त था। शेख अब्दुल्ला और शेख अजी जुल्लाह दो भाई थे जिन्होंने तार्किक विज्ञान (मगुलत) में विशेषता प्राप्त की थी, संभल और आगरा के मदरसों के प्रमुख थे। अरब, पर्शिया और केन्द्रीय एशिया से विद्वानों को मदरसों में पढ़ाने के लिए आमन्त्रित किया जाता था।

शाही घरों और सरकारी विभागों में भंडारण और अन्य सामान की आपूर्त्ति के लिए राजाओं द्वारा बहुत सारे कारखाने चलाए गए। ये कारखाने न केवल सामान ही बनाते थे अपितु तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण भी युवकों को प्रदान करते थे। इन कारखानों ने विभिन्न शाखाओं में ऐसे कलाकार और शिल्पी पैदा किए जिन्होंने बाद में जाकर अपने स्वतन्त्र कारखाने प्रारंभ कर दिए।

मुस्लिम शासकों ने प्राथमिक विद्यालयों की पाठ्यचर्या को सुधारने का प्रयत्न किया। प्राथमिक शिक्षा में गणित, क्षेत्रमिति, ज्यामिति, ज्योतिष, लेखाशास्त्र, लोक प्रशासन और कृषि विज्ञान जैसे विषय सम्मिलित किए गए। यद्यपि शासकों ने शिक्षा में सुधार करने के लिए विशेष प्रयत्न किए, परंतु इस काल में विज्ञान के क्षेत्र में विशेष प्रगति नहीं हुई। भारतीय पारम्परिक वैज्ञानिक संस्कृति और दूसरे देशों में प्रचलित वैज्ञानिक दृष्टिकोण के मध्य समन्वय बनाने के प्रयास किए जाते रहे।

जीव विज्ञान (बायोलॉजी)

तेरहवीं शताब्दी में हंसदेव द्वारा संपादित मृगपक्षीशास्त्र में शिकार के लिये प्रयुक्त कुछ पशु-पक्षियों के विषय में सामान्य जानकारी दी गई है। मध्ययुगीन शासक और शिकारी अपने साथ घोड़े, कुत्ते, चीते और बाज आदि रखते थे। उनकी पशुशालाओं में पालतू और जंगली दोनों ही प्रकार के पशु रखे जाते थे। अकबर हाथी और घोड़े जैसे पालतू पशुओं की उत्तम नस्ल पैदा करने में विशेष रुचि रखता था। जहांगीर ने अपने तुजक-ए-जहांगीरी में जनन प्रक्रिया और संकरण के अपने अवलोकन और प्रयोगों का लेखा जोखा प्रस्तुत किया है। उन्होंने पशुओं की प्रायः 36 जातियों का वर्णन किया है।

उसके दरबार के कलाकारों ने विशेषतः मंसूर ने पशुओं के भव्य और शुद्ध चित्र बनाए जिनमें से कुछ आज भी अनेक संग्रहालयों और निजी संग्रहों में संरक्षित हैं।

प्रकृतिवादी के रूप में जहाँगीर पौधों के अध्ययन में विशेष रुचि रखते थे और उसके दरबारी कलाकारों ने अपने पुष्प संबंधी चित्रों में लगभग 57 पौधों को प्रदर्शित किया है।

गणित शास्त्र (मैथमेटिक्स)

सातवीं शताब्दी के प्रसिद्ध गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त ने कर्जे के रूप में ऋणात्मक संख्या को और घनात्मक संख्या को भाग्य के रूप में दर्शाया जिससे ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय प्रायोगिक व्यवसाय में गणित का उपयोग जानते थे।

प्रारंभिक मध्य युग में गणित के क्षेत्र में दो सुप्रसिद्ध ग्रंथ थे। श्रीधर का गणितसार और भास्कराचार्य की लीलावती। गणितसार में गुणा, भाग, संख्या, घन, वर्गमूल, क्षेत्रमिति आदि के विषय में बताया गया है। गणेश दैवज्ञ ने लीलावती पर बुद्धिविलासिनी नामक टीका लिखी जिसमें अनेक उदाहरण दिए गए हैं। 1587 ई. में लीलावती का अनुवाद फैदी ने फारसी में किया। शाहजहाँ के राज्य में अताउल्लाह रशीदी ने बीजगणित का अनुवाद किया। अकबर के दरबारी नीलकण्ठ ज्योतिर्विद ने 'ताजिक' ग्रंथ का संकलन किया जिसमें विभिन्न फारसी तकनीकी शब्दों से परिचय कराया गया। शैक्षिक व्यवस्था में अन्य विषयों के साथ अकबर ने गणित शास्त्र को भी सम्मिलित करने का आदेश दिया। बहाउद्दीन अमूली, नसीरुद्दीन, तुसी, अराक और अलकाशी ने इस क्षेत्र में अमूल्य योगदान किया। नसीरुद्दीन तुसी जो मार्घ की वेधशाला के संस्थापक निदेशक थे, इस क्षेत्र में प्रमाण माने जाते थे।

रसायन शास्त्र (केमेस्ट्री)

कागज़ के आविष्कार से पूर्व प्राचीन साहित्य दक्षिण प्रदेश में प्रायः ताड़ के पत्तों पर और कश्मीर तथा देश के अन्य उत्तरी प्रदेशों में भोज पत्रों पर अंकित किया जाता था। कश्मीर, सियालकोट, जाफराबाद, पटना, मुर्शिदाबाद, अहमदाबाद, औरंगाबाद, मैसूर आदि प्रदेश कागज़ के उत्पादन के प्रसिद्ध केन्द्र थे। टीपू सुल्तान के समय मैसूर में कागज बनाने का कारखाना था जिसमें ऐसा कागज बनाया जाता था जिसकी सतह सुनहरी होती थी। कागज़

बनाने की तकनीक पूरे देश में ही समान थी सिर्फ विभिन्न कच्चे माल से लुगदी बनाने का तरीका अलग था।

मुगलों के पास बारूद के निर्माण और उसके बंदूक में प्रयोग की जानकारी थी। भारतीय शिल्पकारों ने भी इस तकनीक को सीखा और विभिन्न विस्फोटक पदार्थों का आविष्कार किया। वे शोरा, गंधक, और लकड़ी के कोयले को अलग-अलग मात्राओं में मिलाकर बारूद बनाने और उसका विभिन्न प्रकार की बंदूकों में प्रयोग करना भी जानते थे। आतिशबाजियों में प्रमुख किस्म उन रोकेटों की थी जो हवा को चीरते हुए जाते थे, अग्नि स्फुलिंगों को पैदा करते थे, विभिन्न रंगों में चमकते थे और अंत में धमाके के साथ फट जाते थे। तुजुक-ए-बाबरी में तोप के गोले बनाने का भी वर्णन है। पिघले हुए द्रव्य को सांचा भर जाने तक उसमें डाला जाता था फिर उसे ठंडा किया जाता था। विस्फोटक पदार्थों के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ भी बनाई जाती थीं। आइने अकबरी में अकबर के इत्र कार्यालय के नियमों का वर्णन है। गुलाब का इत्र एक सुप्रसिद्ध सुगंध थी जिसके आविष्कार का श्रेय नूरजहाँ की माँ को दिया जाता है। इस काल की चमकती टाइलें और चीनी के बर्तन भी उल्लेखनीय हैं।

नक्षत्र विज्ञान (एस्ट्रोनॉमी)

नक्षत्र विज्ञान में पूर्वस्थापित खगोलीय मतों का वर्णन करती हुई टीकाएँ प्रकाशित हुईं। उज्जैन, बनारस, मथुरा और दिल्ली में प्रमुख वेधशालाएं थीं। फीरोजशाह तुगलक ने दिल्ली में वेधशाला बनवाई। हमीम हुसैन जिलानी और सैयद मुहम्मद काजिमी के निर्देश पर फीरोज शाह वहमानी ने दौलताबाद में एक वेधशाला बनवाई। सौर पंचांग और चन्द्र पंचांग दोनों ही प्रयोग किए जाते थे।

फीरोज शाह के दरबार के नक्षत्रविज्ञानी महेन्द्र सूरी ने एक यंत्र 'यंत्रज' का विकास किया। परमेश्वर (केरल) और महाभास्करीय परिवार नक्षत्रविज्ञानियों के परिवार में ख्याति प्राप्त थे और पंचांग बनाने का काम करते थे। नीलकण्ड सोमसुतवन ने आर्यभट्ट पर टीका लिखी। कमलाकर ने नक्षत्रविज्ञान पर इस्लामिक विचारों का अध्ययन किया। वह इस्लामिक विचारों के विषय में विशेषज्ञ भी था। जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह II ने दिल्ली, उज्जैन, वाराणसी, मथुरा और जयपुर में नक्षत्रविषयक वेधशालाएँ बनवाईं।

औषधविज्ञान (मेडीसिन)

विभिन्न बीमारियाँ पर विशेष शोधप्रबंध तैयार करने के प्रयत्न किये गए। बीमारियों का निदान करने के लिए नाड़ी और मूत्र का परीक्षण किया जाता था। शार्ङ्गधरसंहिता में औषधि के रूप में अफीम का सेवन भी बताया गया है। रसचिकित्सा शास्त्र में बहुत सी धातुओं से निर्मित औषधियों का वर्णन है जिनमें धातु से निर्माण विधि भी वर्णित है। तुहफत-उल मुमीनिन एक फारसी ग्रंथ है जिसे मुहम्मद मुनीन ने 17वीं शताब्दी में लिखा जिसमें विभिन्न चिकित्सकों के मतों का वर्णन है।

यूनानी तिब्ब औषधि विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है जो भारत में मध्ययुग में प्रचलित हुई। अली बिन रब्बन ने ग्रीक औषधि व्यवस्था और भारतीय औषध विज्ञान का अपने ग्रंथ फिरदौसी-हिकमत में वर्णन किया है। यूनानी औषध व्यवस्था 11 वीं शती के आसपास मुस्लिमों के साथ हिन्दुस्तान में आई और यहाँ विकास हेतु स्वस्थ वातावरण पाया। हकीम दिया मुहम्मद ने एक 'ए दियाई' नामक ग्रंथ लिखा जिसमें अरबी, फारसी और आयुर्वेदिक औषध विज्ञान का वर्णन है। फीरोज़ शाह तुगलक ने एक अन्य ग्रंथ तिब्बे फीरोज़ शाही लिखा। तिब्बी ओरंगजेबी जो ओरंगजेब को समर्पित थी, आयुर्वेदिक स्रोतों पर आधारित है। नूरुद्दीन मुहम्मद की मुसलजाति-दाराशिकोही जो दाराशिकोह को समर्पित है, ग्रीक औषध विज्ञान का वर्णन करती है।

कृषि विज्ञान (एग्रीकल्चर)

मध्ययुग में भी खेतीबाड़ी का काम प्राय: ऐसे ही होता था जैसा प्रारंभिक प्राचीन भारत में था तथापि विदेशियों के आगमन से कुछ आवश्यक परिवर्तन हुए जैसे नई फसलों का उगाना, पेड़ों और उद्यान विषयक पौधों की जानकारी। प्रमुख फसलें थी गेंहूँ, चावल, जौ, बाजरा, दालें, तेल के बीज, कपास, गन्ना और नील। पश्चिमी घाटों में किसान लगातार उत्तम किस्म की कालीमिर्च उत्पन्न कर रहे थे। कश्मीर अपनी केसर और फलों के लिए प्रसिद्ध था। तमिलनाडु से अदरक और दालचीनी, केरल से इलायची, चंदन और नारियल बहुत ही लोकप्रिय थे। तंबाकू, मिर्च, आलू, अमरूद, शरीफा, काजू और अन्नानास ऐसे नये पौधे थे जो 16वीं-17वीं शताब्दी में भारत में उगने लगे। मालवा और बिहार के क्षेत्र अफीम के पौधों से अफीम पैदा करने के लिए प्रसिद्ध थे। बागबानी के नए तरीके पूरी सफलता के साथ प्रयुक्त होने लगे। 16वीं शताब्दी के मध्य में गोआ के पादरियों के द्वारा आम की कलम बनाने की व्यवस्थापूर्ण शैली का परिचय दिया गया।

सिंचाई के क्षेत्र में कुए, तालाब, ऊँट, रहट, मशक (चमड़े की बाल्टी) और ढेंकली का प्रयोग किया जाता था। ढेंकली के जुए में जुते बैलों से पानी निकाला जाता था। यह सिंचाई के प्रमुख साधन थे। पर्शियन चक्र का प्रयोग आगरे के क्षेत्र में किया जाता था। मध्य युग में उस राज्य द्वारा खेती की ठोस नींव रखी गई जिसने भूमि को नापने और बांटने की नई व्यवस्था लागू की जो शासक और कृषक दोनों के लिए ही हित में थी।

पाठगत प्रश्न 14.2

1. मध्यकालीन भारत में कारखानों के क्या कार्य थे?

   ....

2. 13वीं शताब्दी में मृगपक्षी शास्त्र किसने संकलित किया?

   ....

3. मारघ वेधशाला के संस्थापक निदेशक कौन थे?

4. किसने 'लीलावती' का फारसी में अनुवाद करवाया?

5. किस मुस्लिम शहंशाह ने गणित एक अध्ययन के विषय के रूप में जारी करवाया?

6. कागज के आविष्कार से पहले साहित्य को कैसे सुरक्षित रखा जाता था?

7. मध्यकालीन अवधि में बन्दूक के गोले दागने का वर्णन किस पुस्तक में मिलता है?

8. नूरजहाँ की माँ ने किसका आविष्कार किया?

9. आइने-अकबरी की विषयवस्तु क्या है?

10. जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह II ने कितनी वेधशालाओं की स्थापना की? यह वेधशालाएँ कहाँ-कहाँ स्थित थीं?

11. यन्त्रज का विकास किसने किया?

12. यन्त्रज क्या था?

13. मध्यकालीन भारत में मुगलों के साथ कौनसी यूनानी औषध व्यवस्था भारत में आई?

14. रसचिकित्सा का क्या प्रयोग होता है?

15. 16वीं और 17वीं शताब्दियों में कौन-से नए पौधे भारत में आए?

14.3 आधुनिक भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी

भारत में स्वतंत्रता के बाद विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर विचार करने से पूर्व यह समझना आवश्यक है कि हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी से क्या समझते हैं। विज्ञान वह व्यस्थित गतिविधि है जो भौतिक विश्व के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहती है। प्रौद्योगिकी वह गतिविधि है जो इस ज्ञान को उत्पादक कार्यों में प्रयुक्त करती है। जैसा कि इन परिभाषाओं से स्पष्ट ही है, विज्ञान और प्रौद्योगिकी आज की दुनियाँ में परस्पर जुड़े हुए हैं।

भारत में राष्ट्रीय विकास में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के महत्त्व को सरकार ने भली प्रकार स्वीकार किया है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में बल दिया गया है कि देश के आर्थिक विकास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एक घटक है समुदाय द्वारा आधुनिक विज्ञान और तकनीक को अपनाने की तत्परता। 1971 ई. में विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग (DST) की स्थापना हुई जिससे विज्ञान और तकनीक के नये क्षेत्र विकसित किए जा सके। इसी प्रकार राज्य स्तर पर राजकीय विज्ञान एवं तकनीकी परिषद स्थापित की गई। राष्ट्रीय नीति के परिणामस्वरूप सरकार वैज्ञानिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के लिए अनेकों शोध और विकास की योजनाओं को बढ़ावा दे रही है। इस खण्ड में हम कुछ ऐसे प्रमुख क्षेत्रों का अध्ययन करेंगे जिनमें वैज्ञानिक जानकारी और आधुनिक प्रौद्योगिकी ने अपना प्रभाव दिखाया है।

कृषि

कृषि के क्षेत्र में यह आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रयोग का ही परिणाम है कि आज भारत 135 मिलियन टन खाद्यसामग्री पैदा कर रहा है जब कि आज से 30 वर्ष पूर्व केवल 50 मिलियन टन ही उत्पादन होता था। इन प्रयोगों में अधिक उपज देने वाले बीजों से लेकर कृषि में ऊर्जा का उपयोग और फसलों के पकने के बाद की प्रौद्योगिकी के प्रयोग भी सम्मिलित हैं। इन प्रयत्नों में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) की प्रमुख भूमिका रही है। 73 कृषि कालेजों, 32 पशु चिकित्सालय, 8 कृषि इंजीनियरिंग और एक डेरी कालेज के माध्यम से यह संस्था किसानों और कृषि के विभिन्न अन्य कार्यों में संलग्न लोगों को वैज्ञानिक शिक्षा प्रदान कर रही है। कृषि के क्षेत्र में आज जो सर्वप्रमुख चुनौतियाँ हैं वे हैं चावल, दालों, तेल के बीजों और कुछ अन्य नकद फसलों की उपज में वृद्धि तथा रासायनिक खाद के स्थान पर जैव खाद का प्रयोग।

उद्योग

उद्योग के क्षेत्र में ही भारतीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने सबसे पहले और सबसे अधिक क्रांतिकारी प्रभाव दिखाई दिया। भारत में सरकार ने निरंतर औद्योगिक विकास में आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने का प्रयत्न किया है। दो राजकीय संस्थाएं वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR) और प्रतिरक्षा अनुसंधान और विकास संगठन (DRDO) निरंतर नागरिकों और रक्षा विभाग के लिए विस्तृत पैमाने पर विज्ञान और तकनीकी

अनुसंधान में संलग्न हैं। औद्योगिकी उत्पादन के लिए सी एस आई आर की अनुसंधान प्रयोगशालाओं द्वारा मशीनें, रसायन, औषधियाँ, कीटनाशक, खाद्य तकनीक के क्षेत्र में उत्पाद, तैयार चमड़े का सामान, कांच और मिट्टी के बर्तन, रंगीन दूरदर्शनयंत्र, संदेश सुनने वाले यंत्र आदि अनेक संयन्त्र निर्मित किए गए। कोयले की किस्म को सुधारने और कोयले से बिजली पैदा करने के लिए किए गए अनुसंधानों का प्रभावी उपयोग किया गया है। रक्षा के क्षेत्र में, भारत की अपनी तकनीकी योग्यता में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इस योग्यता का आधुनिकतम उदाहरण है वह उच्च कोटि का अनुसंधान जिससे भारत में अब मिसाइल बनाई जाने लगी है। कुछ मिसाइलों का आगामी विकास हेतु परीक्षण भी किया जा चुका है।

नाभिकीय ऊर्जा

भारत का उद्देश्य है कि परमाणु ऊर्जा का उपयोग शान्ति के लिए किया जाय। पिछले 63 वर्षों में, 1948 में परमाणु शक्ति आयोग की स्थापना के बाद, भारत ने परमाणु प्रौद्योगिकी में महत्त्वपूर्ण प्रगति की है। 1957 में ट्राम्बे में भाबा एटोमिक अनुसंधान केन्द्र (BARC) की स्थापना हुई। देश में यह सबसे बड़ा एकमात्र वैज्ञानिक संस्थान है। तारापुर (महाराष्ट्र), कोटा (राजस्थान), कल्पक्कम (तमिलनाडु), नरोरा (उ.प्र.), ककरापाड़ा (गुजरात)में परमाणु ऊर्जा के केन्द्र स्थापित किए जा चुके हैं। आधुनिक प्रौद्योगिकी के अपनाने से भारत में बने आणविक शक्ति केन्द्रों में स्वदेशी तत्त्वों की निरंतर वृद्धि हुई है। फलत: आज भारत विश्व के गिने चुने देशों में से एक है जो विदेशी सहायता के बिना अपने परमाणु भट्टीयाँ बना कर चलाने की क्षमता रखते हैं। नाभिकीय विज्ञान के अतिरिक्त कुछ नाभिकीय शक्ति केन्द्रों में इलेक्ट्रोनिक्स, औषधि, जीवन-विज्ञान, कृषि, धातु-विज्ञान आदि में भी अनुसंधान और विकास का कार्य हो रहा है।

अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी

भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम का उद्देश्य राष्ट्रीय विकास के लिए अंतरिक्ष तकनीक में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना है। गत वर्षों में अंतरिक्ष कार्यक्रम ने सफल उपलब्धियों सहित नाम कमाया है। इसके अंतर्गत प्रथम उपग्रह यान आर्यभट्ट 1975 ई. में आकाश में छोड़ा गया। इसके बाद भास्कर I तथा भास्कर II रूस द्वारा छोड़े गये, अपने निजी एस एल वी 3 राकेट से रोहिणी उपग्रह, और यूरोपियन एरिएना राकेट के द्वारा एपल सैटेलाइट छोड़ा गया। 1975 ई. में ही सैटेलाइट साइट (SITE) के माध्यम से उज्ज्वल भविष्य पूर्ण शिक्षा की परियोजना चलाई गई। इसके बाद 1983 ई. में इन्सेट आईबी छोड़ा गया जिससे रेडियो, टेलीविजन, तार-संचार और मौसम संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध होने लगीं। अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी ज्ञान के प्रयोग के लिए सन् 1985-95 के दशक में एक विशाल कार्यक्रम बनाया गया जिससे संचार सर्वेक्षण, प्राकृतिक साधनों की व्यवस्था और मौसम ज्ञान के लिए इस तकनीक का पूरे देश में प्रयोग किया जा सके।

इलैक्ट्रोनिक्स

स्वतंत्रतोत्तर भारत ने रेडियो, दूरदर्शन, संचार व्यवस्थाएं, प्रसारण यंत्र, रडार, आणविक रिएक्टर, ऊर्जा नियंत्रण, जल के भीतर संचार व्यवस्था (अंडर वाटर सिस्टम) जैसे इलैक्ट्रोनिक्स के विभिन्न प्रकार के यंत्र बनाने की क्षमता प्राप्त कर ली है। इन यंत्रों के आवश्यक कलपुर्जों का अधिकांश भाग अब स्वदेश में ही बनाया जाता है। पिछले दशक से इलैक्ट्रोनिक सामान के उत्पादन में 18 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई है। आज तो हम विश्व के अन्य भागों में भी इलैक्ट्रोनिक्स के विभिन्न सामान का निर्यात कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त कार्य कुशलता और उत्पादन की वृद्धि के लिए संगणक का भी प्रयोग आरंभ किया जा चुका है। अभी-अभी स्थापित की गई कुछ प्रमुख संस्थाएँ हैं- सेमी कण्डक्टर लिमिटेड (चण्डीगढ़), नेशनल कम्प्यूटर सेंटर (बम्बई), नेशनल इन्फारमेशन सेंटर (नई दिल्ली) एवं अन्य प्रादेशिक संगठन केन्द्र।

चिकित्सा और स्वास्थ्य विज्ञान

चिकित्सा के क्षेत्र में भी कई उपलब्धियाँ हुई हैं। बहुत सारी बीमारियों की रोकथाम और इलाज में बहुत अधिक उन्नति की जा चुकी है। चेचक की बीमारी पूरी तरह समाप्त हो चुकी है। तपेदिक, मलेरिया, फिलेरिया, गोयटर और कैंसर जैसी बीमारियों के इलाज में पर्याप्त सुधार हुआ है। संक्रमणीय रोगों को नियंत्रित करने के लिए अनुसंधान किए जा रहे हैं। अनुसंधानपरक तरीकों से जीवन की दीर्घता में वृद्धि हुई है और मृत्यु दर में कमी आई है, तथा संक्रमीकरण से सुरक्षा की योजनाओं ने बालमृत्यु को काफी हद तक घटा दिया है। राजकीय चिकित्सालय, औषधालय, अनुसंधान परिषद ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौद्योगिक स्वास्थ्य केंद्र आदि जैसे बेहतर सुविधाएँ सरकार द्वारा प्रदान की जा रही हैं।

महासागरीय विकास

सागरीय, विकास के क्षेत्र में भारत की रुचि अनेकों स्तर पर है जैसे तटीय स्थान पर तेल निकालना, खाद्य पूर्ति में वृद्धि करने के लिए मछली उद्योग को बढ़ावा देना आदि। 1981 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में महासागरीय अनुसंधान के क्षेत्र में भारत की गतिविधियों को गति देने और सुनियोजित करने के लिए एक महासागरीय विकास विभाग स्थापित किया गया। इस विभाग के पास दो जहाज हैं- ओ आरवी सागर कन्या और एफ ओ आर वी सागर संपदा जिनमें भौतिक, रासायनिक, जैविक, भूगर्भीय, भू-भौतिक सागर विज्ञान तथा मौसम विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने की आधुनिकतम उन्नत सुविधाएँ उपलब्ध हैं। पिछले कुछ वर्षों में भारत की उपलब्धियों में सम्मिलित हैं- गवेषणा अनुसंधान-जलयान का प्रयोग करते हुए समुद्र तल में उत्खनन करना और अंटार्कटिका में दक्कन गंगोत्री नामक अनुसंधान केन्द्र स्थापित करना।

अन्य क्षेत्र

ऊपर वर्णित प्रमुख क्षेत्रों के अतिरिक्त भारत ने अन्य कई क्षेत्रों में बहुत तरक्की की हैं। इनमें से कुछ हैं- तेल और प्राकृतिक गैस कमीशन द्वारा तेल की खुदाई और शोधन और राष्ट्रीय पर्यावरण योजना आयोग द्वारा पर्यावरण का संरक्षण और सौर ऊर्जा का उत्पादन। एक केन्द्रीय गंगा आथोरिटी भी जलमल संयत्र द्वारा गंगा नदी के पानी को साफ करने के लिए बनाई गई है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी में प्रगति का मूल्यांकन

यह स्पष्ट ही है कि भारत ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। भारत में बहुत सी नई विधियों, उत्पादों और उत्तम कोटि के सामान का निर्माण हुआ है। भारत ने अन्तरिक्ष अनुसंधान, और आणविक ऊर्जा जैसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में बहुत तेजी से प्रगति की है। आजकल देश ने आधुनिक तकनीक में मजबूत नींव स्थापित कर ली है और विश्व में सबसे अधिक वैज्ञानिक और तकनीकी मानव संसाधन भारत में उपलब्ध हैं।

साथ ही इस प्रगति में कुछ कमियाँ भी रह गई हैं। जैसे कपड़ा और इस्पात जैसे मूल उत्पादन क्षेत्र में भारत विदेशी तकनीक का आयात कर रहा है। विदेशी तकनीक के निरंतर आयात से यह प्रतीत होता है कि हमारे यहाँ नई तकनीक को पैदा करने की क्षमता नहीं है और इससे हमारे देश की अन्य देशों पर निर्भरता बढ़ती जाती है। विदेशी तकनीक पर अत्यधिक निर्भरता अन्य आवश्यक क्षेत्रों जैसे रक्षा आदि में भी द्रष्टव्य है जहाँ आधुनिकतम शस्त्रों का भी बाहर से आयात करना पड़ता है। नई तकनीक के उत्पादन में पिछड़े रहने के साथ-साथ हम निर्धन वर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति भी करने में असमर्थ रहे हैं जैसे गृह निर्माण के क्षेत्र में भी घरों से वञ्चित निर्धनों के लिए कम लागत वाले घरों का निर्माण। यद्यपि आणविक और अन्तरिक्ष अनुसंधान में प्रशंसनीय प्रगति हुई है, पर इनसे गरीबों का भला नहीं हो पाया है। यह कहा जा सकता है कि आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उन्नति ने सभी भारतवासियों को समान रूप से प्रभावित नहीं किया है।

पाठगत प्रश्न 14.3

1. विज्ञान क्या है?

   ....

2. प्रौद्योगिकी की परिभाषा लिखिए।

   ....

3. भारत सरकार ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग की स्थापना कब की?

   ....

4. विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नागरिकों और सुरक्षा सेवा के हितों के लिए कौन सी दो सरकारी संस्थाएँ शोध कार्य में संलग्न हैं?

5. भारत के पांच नाभिकीय ऊर्जा स्थानों के नाम लिखिए।

6. भाभा आणविक शोध केन्द्र की स्थापना कब और कहाँ हुई?

7. प्रथम भारतीय अन्तरिक्ष उपग्रह कौन सा था?

8. इनसैट-IB सेटेलाइट के कार्य क्या थे?

9. प्रतिरक्षण कार्यक्रम कैसे लाभदायक है?

10. दक्षिण गंगोत्री कहाँ पर स्थित है?

11. महासागरीय विज्ञान विभाग की गतिविधियों का क्षेत्र क्या है?

12. कौन-सा प्राधिकरण गंगा के प्रदूषण को नियन्त्रित करने के लिए कार्य कर रहा है?

13. तेल निष्कासन और प्राकृतिक गैस शोधन के कार्य की देखभाल करने वाले राष्ट्रीय प्राधिकरण का नाम लिखिए।

14. विदेशी प्रौद्योगिकी के आयात से प्रमुख हानियाँ क्या हैं?

आपने क्या सीखा

- प्राचीन भारतीयों ने विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की है।
- नक्षत्र विज्ञान, गणित, चिकित्सा, रसायन आदि क्षेत्रों में उनके योगदान ने आधुनिक वैज्ञानिकों को प्रभावित किया है।

- मध्य युग में भारतीय अरबी वैज्ञानिक ज्ञान के संपर्क में आए।
- तुर्की और मुगलों ने बारूद का परिचय दिया।
- उज्जैन, वाराणसी, मथुरा, जयपुर और दिल्ली में नक्षत्र संबंधी वेधशालाएं स्थापित की गईं।
- आधुनिक भारत में सरकार द्वारा वैज्ञानिक प्रगति को महत्त्व दिया गया और पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से इनको क्रियान्वित किया गया। आणविक ऊर्जा का प्रयोग शांतिपूर्वक ढंग से ही किया जा रहा था।
- भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का उद्देश्य आत्मनिर्भरता और राष्ट्रीय विकास करना है।

पाठांत प्रश्न

1. प्राचीन भारत के लोगों की धातु विषयक योग्यताओं की विवेचना कीजिए।
2. मध्यकालीन युग में रसायन के क्षेत्र में दो आविष्कारों का वर्णन कीजिए।
3. औषध विज्ञान और स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में भारत द्वारा की गई उन्नति का वर्णन कीजिए।
4. कृषि और इससे सम्बद्ध उत्पादों के क्षेत्र में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रयोगों को बताइए।
5. आधुनिक भारतीय वैज्ञानिक उन्नति में हमारी समृद्ध वैज्ञानिक धरोहर कैसे एक विशिष्ट सम्पत्ति सिद्ध हुई?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

14.1 1. विज्ञान का विकास हमारी प्रकृति पर कम निर्भर करता है?

2. उसने वैदिक नक्षत्रविज्ञान से हट कर इसे एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया।

3. आपस्तम्ब द्वितीय शताब्दी का गणितज्ञ था। उसने रेखागणित का न्यून कोण, अधिक कोण, समकोण आदि का प्रयोग करते हुए व्यावहारिक रेखागणित का परिचय दिया।

4. (अ) स्वरलिपि व्यवस्था

   (ब) दशमलव पद्धति

   (स) शून्य का प्रयोग

5. चरकसंहिता
6. 121 शल्य चिकित्सा के यन्त्र
7. चरकसंहिता और सुश्रुत संहिता
8. 760 पौधे

14.2
1. वस्तुओं का उत्पादन करने के अतिरिक्त, उन्होंने तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण भी युवकों को प्रदान किया।
2. हंसदेव
3. नसीरुद्दीन
4. फैज़ी
5. अकबर
6. दक्षिण भारत में यह ताड़ के पत्तों पर आरक्षित किया जाता था। कश्मीर में साहित्य भोजपत्रों पर लिखा जाता था।
7. तुजुक-ए-बाबरी
8. गुलाब का इत्र
9. अकबर के इस कार्यालय के नियमों के विषय में
10. दिल्ली, उज्जैन, वाराणसी, मथुरा, जयपुर
11. महेन्द्रसूरी, फिरोजशाह का एक दरबारी नक्षत्रविज्ञानी
12. नक्षत्रविज्ञानीय यन्त्र
13. यूनानी तिब्ब
14. इसमें धातुज निर्माण प्रक्रिया सहित अनेक प्रकार की धातुज औषधियों के समूह का प्रमुखतया वर्णन है।
15. तम्बाकू, मिर्च, आलू, अमरूद, शरीफा, काजू और अनानास

14.3
1. इसको एक व्यवस्थित गतिविधि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो भौतिक विश्व के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहता है।
2. वह गतिविधि जो विज्ञान के ज्ञान को उत्पादक प्रयोग में लाती है।
3. 1971 ई.
4. CSIR (काउन्सिल फार साइन्टिफिक एवं इण्डस्ट्रियल रिसर्च), DRDO (डिफेन्स रिसर्च एंड डिवलेपमेंट आर्गेनाइजेशन)
5. तारापुर (महाराष्ट्र), कोटा (राजस्थान), कल्पक्कम (तमिलनाडु) नरोरा

(यू.पी.) ककरापाड़ा (गुज़रात)

6. 1971 में, ट्राम्बे में
7. आर्यभट्ट
8. यह आकाशवाणी, दूरदर्शन, दूरसंचार और मौसम विज्ञान विषयक सेवाएं प्रदान करता था।
9. यह बालमृत्युदर को घटाता है।
10. अन्टार्कटिका
11. भौतिक, रासायनिक, जैविक और भौगोलिक महासागरीय विज्ञान और धातुविज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत हैं।
12. केन्द्रीय गंगा प्राधिकरण
13. तेल और प्राकृतिक गैस आयोग
14. यह नई प्रौद्योगिकी के निर्माण में हमारी अयोग्यता को प्रदर्शित करता है।

15

प्राचीन भारत के वैज्ञानिक

पिछले पाठ में आप विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विषय में पढ़ चुके हैं। इस पाठ में आप शारीरिक चिकित्सा, आयुर्वेद, योग, नक्षत्रविज्ञान, ज्योतिष आदि विषयों सहित गणित और विज्ञान में प्राचीन भारतीयों द्वारा किए गये योगदानों के विषय में पढ़ेंगे। आपको यह जानकार आश्चर्य होगा कि इतने वर्ष पूर्व प्राचीन भारत में कितना अधिक विज्ञान विषयक ज्ञान खोजा जा चुका था।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आपः–

- गणित और विज्ञान के क्षेत्र में विश्व के प्रति भारत के योगदानों की सूची बना सकेंगे;
- प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों जैसे बौधायन, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, कणाद, वराहमिहिर, नागार्जुन, सुश्रुत, चरक, पतञ्जलि आदि द्वारा ज्ञान के क्षेत्र में किए गये योगदानों की विवेचना कर सकेंगे।

15.1 गणित और नक्षत्र विज्ञान

भारत में प्राचीन काल में उच्च कोटि का विज्ञान और गणित विकसित हो चुका था। प्राचीन भारतीयों ने गणित और विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अंतर्गत अभूतपूर्व योगदान किया। इस खण्ड में हम गणित में हुए विकास और उन विद्वानों के विषय में पढ़ेंगे, जिन्होंने इस कार्य में योगदान किया। आप यह जानकर हैरान हो जाएंगे कि आधुनिक गणित के कई सिद्धांत वस्तुतः उस समय के प्राचीन भारतीयों को ज्ञात थे। फिर भी क्योंकि प्राचीन भारतीय गणितज्ञ आधुनिक पश्चिमी जगत के उन जैसे वैज्ञानिकों के समान आलेखन और प्रसारण में इतने चतुर नहीं थे, उनके योगदानों को वह स्थान नहीं मिल पाया जिसके वे योग्य थे।

वास्तव में पश्चिमी दुनिया ने अधिकांश विश्व पर बहुत समय तक शासन किया जिससे उन्हें हर प्रकार से, यहां तक कि ज्ञान के क्षेत्र में भी, अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने का अवसर मिल गया। आइए अब हम प्राचीन भारतीय गणितज्ञों के कुछ योगदानों पर दृष्टिपात करें।

15.1.1 बौधायन

बौधायन पहले विद्वान थे जिन्होंने गणित में कई अवधारणाओं को स्पष्ट किया जो बाद में पश्चिमी दुनिया द्वारा पुनः खोजी गयी। 'पाई' के मूल्य की गणना भी उन्हीं के द्वारा की गई। जैसा कि आप जानते हैं पाई वृत्त के क्षेत्रफल और परिधि को निकालने में प्रयुक्त होती है। जो आज पाइथोगोरस प्रमेय के नाम से जानी जाती है वह बौधायन के शुल्व सूत्रों में पहले से ही विद्यमान है, जो पाइथोगोरस के जमाने से कई वर्ष पूर्व लिखे गये थे।

15.1.2 आर्यभट्ट

आर्यभट्ट पांचवीं शताब्दी के गणितज्ञ, नक्षत्रविद्, ज्योतिर्विद और भौतिकी के ज्ञाता थे। वह गणित के क्षेत्र में पथप्रदर्शक थे। 23 वर्ष की उम्र में उन्होंने आर्यभट्टीयम् लिखा जो उस समय के गणित का सारांश है। इस विद्वत्तापूर्ण कार्य में 4 विभाग हैं। पहले विभाग में उन्होंने बड़ी दशमलव संख्याओं को वर्णों में प्रकट करने की विधि वर्णित की। दूसरे विभाग में आधुनिक काल के गणित के विषयों के कठिन प्रश्न दिए गए हैं जैसे संख्या सिद्धान्त रेखागणित, त्रिकोणमिति और बीजगणित (एल्जेब्रा)। शेष दो विभाग नक्षत्र विज्ञान से सम्बद्ध हैं।

आर्यभट्ट ने बताया कि शून्य एक संख्या मात्र नहीं हैं बल्कि एक चिह्न है, एक अवधारणा है। शून्य के आविष्कार से ही आर्यभट्ट पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच की दूरी का सही सही मापन कर पाए। शून्य की खोज से ही ऋणात्मक संख्याओं की एक नई दिशा का भी द्वार खुल गया।

जैसा कि हमने देखा, आर्यभट्टीय के अंतिम दो विभाग नक्षत्र विज्ञान से सम्बद्ध हैं। स्पष्टतया आर्यभट्ट ने विज्ञान के क्षेत्र में, विशेष रूप से नक्षत्र विज्ञान में बहुत बड़ा योगदान किया।

प्राचीन भारत में नक्षत्र विज्ञान बहुत उन्नत था। इसे खगोलशास्त्र कहते हैं। खगोल नालन्दा में प्रसिद्ध नक्षत्र विषयक वेधशाला थी जहां आर्यभट्ट पढ़ते थे। वस्तुतः नक्षत्र विज्ञान बहुत ही उन्नत था और हमारे पूर्वज इस पर गर्व करते थे। नक्षत्र विज्ञान की इतनी उन्नति के पीछे शुद्ध पञ्चांग के निर्माण की आवश्यकता थी।

जिससे वर्षा चक्र के अनुसार फसलों को चुना जा सके, फसलों की बुआई का सही समय निर्धारित किया जा सके, त्योहारों और ऋतुओं की सही तिथियां निर्धारित की जा सकें; समुद्री यात्राओं के लिए, समय के ज्ञान के लिए और ज्योतिष में जन्म कुण्डलियां बनाने के लिए पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो सके। नक्षत्र विज्ञान का ज्ञान विशेष रूप से नक्षत्रों और

ज्वार-भाटा का ज्ञान व्यापार के लिए बहुत आवश्यक था क्योंकि उन को रात के समय समुद्र और रेगिस्तानों को पार करना पड़ता था।

हमारी पृथ्वी नामक ग्रह अचल है इस लोक प्रसिद्ध विचार को तिरस्कृत करते हुए आर्यभट्ट ने अपना सिद्धांत बताया कि पृथ्वी गोल है और अपनी धुरी पर घूमती है। उसने उदाहरण देते हुए स्पष्ट किया कि सूर्य का पूर्व से पश्चिम की ओर जाना मिथ्या है, उनमें से एक उदाहरण था–जब एक मनुष्य नाव में यात्रा करता है, तब किनारे के पेड़ उल्टी दिशा में दौड़ते हुए मजर आते हैं। उसने यह भी सही बताया कि चांद और अन्य ग्रह सूर्य की रोशनी के प्रतिबिम्ब के कारण ही चमकते हैं। उसने चन्द्र ग्रहण और सूर्यग्रहण का भी वैज्ञानिक स्पष्टीकरण दिया और कहा कि ग्रहण केवल राहु या केतु या किसी अन्य राक्षस के कारण नहीं होते। अब आप स्पष्ट अनुभव कर सकते हैं कि क्यों भारत के प्रथम उपग्रह का नाम जो आकाश में छोड़ा गया, आर्यभट्ट रखा गया।

15.1.3 ब्रह्मगुप्त

सातवीं शताब्दी से ब्रह्मगुप्त ने गणित को अन्य वैज्ञानिकों की अपेक्षा कहीं अधिक ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया। उन्होंने अपने गुणन की विधियों में स्थान का मूल्य उसी प्रकार निर्धारित किया जैसा कि आजकल किया जाता है। उन्होंने ऋणात्मक संख्याओं का भी परिचय दिया और गणित में शून्य पर अनेक प्रक्रियाएं सिद्ध कीं। उन्होंने ब्रह्मस्फुट-सिद्धांत लिखा जिसके माध्यम से अरब हमारी गणितीय व्यवस्थाओं से परिचित हो सके।

15.1.4 भास्कराचार्य

भास्कराचार्य 12वीं शताब्दी के विख्यात व्यक्ति थे। वह कर्णाटक में बीजापुर में पैदा हुए। वह अपनी पुस्तक सिद्धांतशिरोमणि के कारण प्रसिद्ध हैं। इसके भी चार खण्ड हैं–लीलावती (गणित), बीजगणित (एल्जेब्रा), गोलाध्याय और ग्रहगणित (ग्रहों का गणित)

भास्कराचार्य ने बीजगणितीय समीकरणों को हल करने के लिए चक्रवात विधि का परिचय दिया। यही विधि छः शताब्दियों बाद यूरोपीय गणितज्ञों द्वारा पुनः खोजी गई जिसे वे चक्रीय विधि कहते हैं। 19वीं शताब्दी में एक अंग्रेज-जेम्स टेलर ने 'लीलावती' का अनुवाद किया और विश्व को इस महान कृति से परिचित करवाया।

15.1.5 महावीराचार्य

जैन साहित्य में (ई.पू. 500 से 100 शताब्दी तक) गणित का व्यापक वर्णन है। जैन गुरुओं को द्विघाती समीकरणों को हल करना आता था। उन्होंने, भिन्न, बीजगणितीय समीकरण, श्रृंखलाएं, सेट सिद्धांत, लघुगणित (legarithms) घाताङ्क (exponents) आदि को बड़ी रोचक विधि से समझाया। जैन गुरु महावीराचार्य ने 850 (ई.पू.) में गणित सार संग्रह लिखा, जो आधुनिक विधि में लिखी गई पहली गणित की पुस्तक है। दी गई संख्याओं का लघुतम

निकालने का आधुनिक तरीका भी उनके द्वारा वर्णित किया गया है। अत: जॉन नेपियर के विश्व के सामने इसे प्रस्तुत करने से बहुत पहले यह विधि भारतीयों को ज्ञात थी।

पाठगत प्रश्न 15.1

1. गणित के क्षेत्र में बौधायन के दो प्रमुख योगदानों का वर्णन कीजिए।

   ....

2. शून्य का आविष्कार किसने किया?

   ....

3. ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तिका का क्या महत्त्व है?

   ....

4. निम्नलिखित कृतियों का उनके लेखकों के नाम से मिलान कीजिए

कृतियों के नाम	*लेखकों के नाम*
1. शुल्व सूत्र	1. आर्यभट्ट
2. आर्यभटीय	2. महावीराचार्य
3. ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तिका	3. बौधायन
4. सिद्धान्त शिरोमणि	4. ब्रह्मगुप्त
5. गणितसार संग्रह	5. भास्कराचार्य

15.2 विज्ञान

गणित की ही तरह, प्राचीन भारतीयों ने विज्ञान के विषय में भी अपना योगदान किया। आइए अब हम प्राचीन भारत के कुछ वैज्ञानिकों के योगदानों के विषय में जानें।

15.2.1. कणाद

कणाद, छ: भारतीय दर्शनों में से एक वैशेषिक दर्शन के छठी शताब्दी के वैज्ञानिक थे। उनका वास्तविक नाम औलूक्य था। बचपन से ही वे बहुत सूक्ष्म कणों में रुचि रखने लगे थे। अत: उनका नाम कणाद पड़ गया। उनके आणविक सिद्धांत किसी भी आधुनिक आणविक सिद्धांतों से मेल खाते हैं। कणाद के अनुसार, यह भौतिक विश्व कणों (अणु/एटम) से बना है जिसको मानवीय चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता। इनका पुन: विखण्डन नहीं किया जा सकता। अत: न इनको विभाजित किया जा सकता है न ही इनका विनाश हो सकता है। निस्संदेह यह वही तथ्य है जो आधुनिक आणविक सिद्धांत भी बताता है।

15.2.2 वराहमिहिर

भारत में प्राचीन काल के एक अन्य सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक थे वराहमिहिर। वह गुप्त काल में हुए। वराहमिहिर ने जलविज्ञान, भूगर्भीय विज्ञान और पर्यावरण विज्ञान के क्षेत्र में महान योगदान किया। वह पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने यह दावा किया कि दीमक और पौधे भी भूगर्भीय जल की पहचान के निशान हो सकते हैं। उसने छः पशुओं और तीस पौधों की सूची दी जो पानी के सूचक हो सकते हैं। उन्होंने दीमक (जो लकड़ी को बर्बाद कर देती है) के विषय में बहुत महत्त्वपूर्ण सूचना प्रदान की कि वे बहुत नीचे पानी के तल तक जाकर पानी लेकर आती हैं और अपनी बांबी (घर) को गीला करती है। एक अन्य सिद्धान्त, जिसने विज्ञान की दुनिया को आकृष्ट किया वह है भूचाल मेघ सिद्धांत जो वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में लिखा। इस संहिता का 32वां अध्याय भूचालों के चिह्नों को दर्शाता है। उन्होंने भूचालों का संबंध नक्षत्रों के प्रभाव, समुद्रतल की गतिविधियों, भूतल के जल, असामान्य मेघों के बनने से और पशुओं के असामान्य व्यवहार से जोड़ा है।

एक अन्य विषय जहां वराहमिहिर का योगदान उल्लेखनीय है वह है ज्योतिष/नक्षत्र विज्ञान/प्राचीन भारत में फलित ज्योतिष को बहुत उच्च स्थान दिया जाता था और वह प्रथा आज तक भी जारी है। ज्योतिष का, जिसका अर्थ है प्रकाश की विद्या, मूल वेदों में है। आर्यभट्ट और वराहमिहिर के द्वारा एक व्यवस्थित रूप में वैज्ञानिक ढंग से इस विद्या का प्रस्तुतीकरण किया गया। आर्यभट्ट की आयभटीयम् के दो विभाग नक्षत्र विज्ञान पर आधारित हैं जो वस्तुतः फलितज्योतिष का आधार हैं। फलित ज्योतिष भविष्यवाणी करने की विद्या है। विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में वराहमिहिर का स्थान था। वराहमिहिर की भविष्यवाणियां इतनी शुद्ध होती थीं कि विक्रमादित्य ने उन्हें 'वराह' की उपाधि दी।

15.2.3 नागार्जुन

नागार्जुन दसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक थे। उनके परीक्षणों का प्रमख उद्देश्य था मूल धातुओं को सोने में बदलना जैसाकि पश्चिमी दुनिया में कीमियागर करते थे। यद्यपि वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हुआ। फिर भी वह एक ऐसा तत्त्व बनाने में सफल हुआ जिसमें सोने जैसी चमक थी। आज तक यही तकनीक नकली जेवर बनाने के काम आती है। अपने ग्रंथ रसरत्नाकर में उन्होंने सोना, चांदी, टीन और तांबा निकालने का विस्तार से वर्णन किया है।

पाठगत प्रश्न 15.2

1. कणाद कौन था? उसे यह नाम कैसे मिला?

....

2. बृहत्संहिता के लेखक कौन थे?

....

3. नागार्जुन अपने जीवन में क्या प्राप्त करना चाहते थे?

....

4. नागार्जुन के ग्रंथ रसरत्नाकर की विषय वस्तु क्या है?

....

15.3 प्राचीन भारत में चिकित्सा विज्ञान/आयुर्वेद और योग

जैसाकि आप ने पढ़ा; प्राचीन भारत में वैज्ञानिक उपलब्धियां बहुत उन्नत स्तर की थीं। अपने युग के अनुसार, चिकित्सा विज्ञान भी बहुत उन्नत था। प्राचीन भारत में विकसित चिकित्सा विज्ञान की देसी व्यवस्था आयुर्वेद है। आयुर्वेद शब्द का शाब्दिक अर्थ है अच्छा स्वास्थ्य लंबी आयु। औषधि को प्राचीन भारतीय व्यवस्था न केवल बीमारियों की चिकित्सा करने में सहायता करती है बल्कि यह बीमारियों का कारण और लक्षण भी मालूम करने का प्रयत्न करती है। यह स्वस्थ और बीमार दोनों की ही मार्गदर्शिका है। यह स्वास्थ्य को तीनों दोषों की समवस्था और इन्हीं तीनों दोषों की विषमता का बीमारी के रूप में परिभाषित करती है। जड़ीबूटियों की औषधियों से किसी बीमारी की चिकित्सा करते हुए यह बीमारी की जड़ पर प्रहार करके उसके कारणों को दूर करने का उद्देश्य रखती है। आयुर्वेद का प्रमुख उद्देश्य स्वास्थ्य और दीर्घायु है। यह हमारी पृथ्वी का प्राचीनतम चिकित्सा शास्त्र है। आयुर्वेद का एक अन्य ग्रन्थ 'आत्रेय संहिता' विश्व की प्राचीनतम पुस्तकों में से है। चरक को आयुर्वैदिक औषधि का जनक कहा जाता है और सुश्रुत को शल्यचिकित्सा का। सुश्रुत, चरक, माधव; वाङ्भट्ट और जीवक प्रसिद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सक थे। क्या आप जानते हो कि आयुर्वेद अब पिछले कुछ समय से पश्चिमी जगत में भी लोकप्रिय होता जा रहा है। इसका प्रधान कारण यह है कि पश्चिमी मूल की आधुनिक एलोपेथी के मुकाबले इसके कई लाभ हैं।

15.3.1 सुश्रुत

सुश्रुत शल्यचिकित्सा के क्षेत्र में अग्रणी हुए। वह शल्य चिकित्सा को चिकित्साकला की सर्वोत्तम शाखा समझते थे जिसका बहुत कम निष्फल होने का भय है। उसने एक मृत शरीर की सहायता से शरीर की रचना का अध्ययन किया। सुश्रुत संहिता में प्राय: 1100 से भी अधिक बीमारियों का वर्णन है जिनमें 26 प्रकार के मूत्र-रोग दिए गए हैं। 760 से भी अधिक जड़ीबूटियों का वर्णन किया गया है। पौधों की जड़ें, छाल, रस, फूल आदि सभी का प्रयोग किया जाता था। दालचीनी, तिल, काली मिर्च, इलायची, अदरक आदि आज भी घरेलू औषधियों के रूप में प्रयोग की जाती हैं।

सुश्रुत संहिता में विस्तृत अध्ययन के लिए किसी शव को चुनने और सुरक्षित रखने की भी विधि बताई गई है। किसी वृद्ध मनुष्य का शरीर या जो किसी भयंकर बीमारी से मृत्यु को प्राप्त हुआ हो, उसका शरीर मुख्यत: अध्ययन के लिए नहीं चुना जाता था। शव को पहले पूरी तरह साफ करके फिर पेड़ की छाल में सुरक्षित रखा जाता था। फिर इसे एक पिंजरे में बंद करके नदी में किसी स्थान पर सावधानीपूर्वक छुपा दिया जाता था। नदी के जल के प्रवाह से शरीर नरम पड़ जाता था। सात दिन के बाद फिर इसे नदी से निकालते थे। तदुपरान्त घास की जड़ों, बालों और बांस की तीलियों से बने ब्रश से इसे साफ करते थे। ऐसा करने के पश्चात् शरीर के अंदर और बाहर के अंग साफ साफ नजर आने लगते थे।

सुश्रुत का सबसे बड़ा योगदान सुनम्य चिकित्सा (प्लास्टिक सर्जरी) और आंखों के आपरेशन (मोतिया बिंद निकालना) के क्षेत्र में हुआ। उस समय में नाक या कान काटना एक सामान्य दण्ड था। इन अंगों का लगाना या युद्ध में कटे अंगों का जोड़ना किसी वरदान से कम न था। सुश्रुत संहिता में इन शल्यक्रियाओं का क्रमश: बहुत शुद्ध विवरण दिया गया है। आश्चर्य की बात है कि जो क्रम सुश्रुत द्वारा इस शल्य चिकित्सा के विषय में अनुपालन किया जाता था वही क्रम आज के आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी के चिकित्सकों द्वारा भी अपनाया जा रहा है। सुश्रुत संहिता में शल्यचिकित्सा में प्रयोग होने वाले यन्त्रों का भी वर्णन है। कुछ गंभीर प्रकार की शल्यक्रिया के उदाहरण हैं–गर्भ में से शिशु को निकालना, जख्मी मलाशय को ठीक करना, मूत्राशय से पत्थरी निकालना आदि। क्या यह रोचक और साथ ही आश्चर्यजनक नहीं प्रतीत होता?

15.3.2. चरक

चरक प्राचीन भारतीय औषध विज्ञान का जनक माना जाता है। वह कनिष्क के दरबार में राजवैद्य था। उसकी औषधविज्ञान पर लिखी पुस्तक चरकसंहिता अतिप्रशंसनीय ग्रंथ है। इसमें बहुत बड़ी संख्या में रोगों का वर्णन किया गया है और साथ ही उनके कारणों का पता लगाने की विधियों और उनके इलाज के तरीके भी बताए गए हैं। उसी ने सर्वप्रथम पाचन क्रिया, चयापचय (metabolism) रोगों की निवारक क्षमता को स्वास्थ्य के लिए महत्त्वपूर्ण माना है और इसीलिए चरकसंहिता में चिकित्सा विज्ञान में रोग की चिकित्सा करने की अपेक्षा रोग के कारण को दूर करने पर अधिक बल दिया गया है। चरक वंशप्रक्रिया के भी मूल सिद्धांतों को जानता था। क्या यह तथ्य आपको मंत्रमुग्ध नहीं कर देता कि हजारों वर्ष पूर्व चिकित्सा विज्ञान भारत में इतनी उन्नत अवस्था में था?

15.3.3 योग और पातंजलि

आयुर्वेद से सम्बद्ध एक अन्य विज्ञान प्राचीन भारत में विकसित हुआ जिसे योग कहते हैं और जिसके द्वारा औषधि के बिना ही शारीरिक और मानसिक धरातल पर चिकित्सा की जाती है। योग शब्द संस्कृत के योक्त शब्द से बना है; इसका शाब्दिक अर्थ है मन को आत्मा के साथ जोड़ना और बाहरी इन्द्रियों के विषयों से विरक्त करना। अन्य विज्ञानों के

समान इसकी जड़े भी वेदों में ही हैं। यह चित्त को परिभाषित करता है अर्थात् विचारों, भावों और मनुष्य की चेतना को पवित्र करके एक संतुलन की स्थिति को पैदा करना। योग वह शक्ति है जो चेतना को पवित्र करके दिव्य अनुभूति के स्तर तक पहुंचाती है। योग शारीरिक भी है और मानसिक भी। शारीरिक योग हठयोग कहलाता है। सामान्यतया इसका उद्देश्य होता है बीमारियों को दूर करना और शरीर को स्वास्थ्य प्रदान करना। राजयोग मानसिक योग है। इसका उद्देश्य है आत्म प्राप्ति और शारीरिक, मानसिक भावनात्मक और आध्यात्मिक संतुलन के द्वारा बंन्धनों से मुक्ति।

योग एक ऋषि से दूसरे ऋषि तक मौखिक रूप से पहुंचा। इस विज्ञान को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय पतंजलि को जाता है। पतंजलि के योग सूत्रों में ॐ ईश्वर का प्रतीक बताया गया है। वह ॐ को एक अंतरिक्षीय ध्वनि बताता है जो हर समय आकाश में निरंतर व्याप्त रहती है और केवल प्रबुद्ध को ही पूरी तरह ज्ञात होती है। योग सूत्रों के अतिरिक्त पतंजलि ने एक ग्रंथ औषधविज्ञान पर भी लिखा और पाणिनि के व्याकरण पर भाष्य लिखा जो महाभाष्य के नाम से प्रसिद्ध है।

पाठगत प्रश्न 15.3

1. आयुर्वेद क्या है?

   ....

2. औषध विज्ञान पर सबसे प्राचीन पुस्तक .... है।

   ....

3. सुश्रुत संहिता .... विषयक ग्रंथ है।

   ....

4. प्राचीन भारतीय औषध विज्ञान के जनक .... हैं। उन्होंने .... नामक ग्रन्थ की रचना की।

   ....

5. योग का क्या अर्थ होता है?

   ....

आपने क्या सीखा

- प्राचीन भारत में विज्ञान और गणित उच्च स्तर तक विकसित हो चुका था।

- कुछ प्रसिद्ध प्राचीन गणितज्ञ थे बौधायन, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य, महावीराचार्य।
- कुछ प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे कणाद, वराहमिहिर, नागार्जुन।
- प्राचीन भारत में चिकित्सा विज्ञान भी अत्यन्त उन्नत रूप में विकसित था।
- प्राचीन भारत में विकसित औषध की स्वदेशी व्यवस्था आयुर्वेद है। आयुर्वेद का शाब्दिक अर्थ है– अच्छा स्वास्थ्य एवं दीर्घजीवन।
- चरक आयुर्वैदिक चिकित्सा विज्ञान का जनक कहलाता है और सुश्रुत प्राचीन भारतीय शल्य चिकित्सा का।
- सुश्रुत का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान सुनम्य चिकित्सा (प्लास्टिक सर्जरी) और आंखों का आपरेशन (मोतियाबिंद को निकलना) के क्षेत्र में था।
- चरक द्वारा लिखी चरक संहिता चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र अत्यद्भुत ग्रंथ है।
- आयुर्वेद जैसी ही एक अन्य विद्या योग जो औषध के बिना ही शारीरिक और मानसिक स्तर पर स्वास्थ्य प्रदान करने वाली है, प्राचीन भारत में विकसित की गई।
- पतंजलि पहले विद्वान थे जिन्होंने योग सूत्रों के माध्यम से इस महान विद्या को सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया।

पाठान्त प्रश्न

1. नक्षत्र विज्ञान के क्षेत्र में आर्यभट्ट के द्वारा दिए गए सिद्धांत कौन कौन से हैं?
2. भास्कराचार्य के सिद्धान्त शिरोमणि ग्रंथ में किस किस विषय का वर्णन किया गया है?
3. गणित के क्षेत्र में पहले ग्रंथ का नाम लिखिए। इसका लेखक कौन है? इसमें बताए गए कुछ विषयों के नाम लिखिए।
4. वैज्ञानिक क्षेत्र में वराहमिहिर के योगदान की विवेचना कीजिए।
5. नागार्जुन का योगदान क्या था?
6. प्राचीन भारतीय चिकित्सा विज्ञान के विषय में एक निबंध लिखिए।
7. निम्नलिखित को स्पष्ट कीजिए–

   अ. सुश्रुत संहिता में वर्णित शव को चुनने और सुरक्षित रखने की विधि

   ब. हठयोग और राजयोग

   स. चरक का त्रिदोष सिद्धांत

   द. योग में चित्त की अवधारणा।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

15.1 1. (i) पाई का मूल्य ज्ञात करने वाला पहला गणितज्ञ

(ii) जो आज पाइथोगोरस प्रमेय के नाम से जानी जाती है उस प्रमेय का आविष्कर्त्ता

2. आर्यभट्ट

3. इस पुस्तक के माध्यम से अरब हमारे गणित की पद्धति से परिचित हुए।

4.

कृति का नाम	*लेखक का नाम*
शुल्व सूत्र	बौधायन
आर्यभटीयम्	आर्यभट्ट
ब्रह्मस्फुटसिद्धान्तिका	ब्रह्मगुप्त
सिद्धान्त शिरोमणि	भास्कराचार्य
गणित सार संग्रह	महावीराचार्य

15.2 1. छठी शताब्दी में वैशेषिक दर्शन का एक वैज्ञानिक, जो बचपन से ही कण जैसे अत्यंत सूक्ष्म पदार्थ में रुचि रखता था अतः उसका नाम कणाद रखा गया।

2. वराहमिहिर

3. मूल तत्वों को सोने में बदलना

4. उसने सोने जैसी नमक वाला तत्त्व बनाया, सोने, चांदी, टिन और तांबे को निकालने की विधियों का आविष्कार किया।

15.3 1. प्राचीन भारत में विकसित औषध विज्ञान की स्वदेशी पद्धति, उत्तम स्वास्थ्य और आयु की दीर्घता की विद्या।

2. आत्रेय संहिता

3. शल्य चिकित्सा

4. चरक, चरक संहिता

5. इंद्रियों को बाह्य विषयों से हटाकर मन को अंत:स्थित आत्मा के साथ जोड़ना।

गतिविधियां

1. क्या आपने वैदिक गणित के विषय में सुना है? आजकल विद्यालय स्तर पर भी यह लोकप्रिय होता जा रहा है। इसके बारे में पता कीजिए और इस पर एक निबंध लिखिए।

2. आयुर्वेद और अलोपेथी के बीच क्या अंतर है? मालूम कीजिए। आजकल पश्चिमी देशों में भी आयुर्वेद की बढ़ती लोकप्रियता के विषय में युक्तिसहित एक रिपोर्ट लिखिए।

3. योग एक अन्य चिकित्सा पद्धति है जो बहुत लोकप्रिय हो चुकी है। इसके बारे में और अधिक पढ़िए। योग के आठ अंगों के बारे में (अष्टांग मार्ग) जानकारी एकत्रित कीजिए और एक रिपोर्ट लिखिए।

16

मध्ययुगीन भारत में विज्ञान और वैज्ञानिक

पिछले पाठों में आप प्राचीन भारत में विज्ञान और वैज्ञानिकों के विषय में पढ़ चुके हैं। मध्य भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की द्विमुखी प्रक्रिया विकसित हुई–प्रथम पहले से चली आ रही परम्पराएं और द्वितीय इस्लामिक और यूरोपियन प्रभावों के परिणामस्वरूप आये नवीन प्रभाव। इस पाठ में हम इन्हीं की प्रगति के विवरणों के विषय में पढ़ेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आपः–

- मध्यकाल में उभरी शिक्षात्मक गतिविधियों की विवेचना कर सकेंगे;
- मध्ययुग में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए विकास की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- इस काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कुछ सुप्रसिद्ध विद्वानों ओर उनकी कृतियों की सूची बना सकेंगे।

16.1 मध्यकाल में विज्ञान

जैसा कि आप जानते हैं, मध्यकाल में मुस्लिम भारत में आए। इस समय तक परम्परागत स्वदेशी शास्त्रीय शिक्षा पहले ही पिछड़ चुकी थी। इस काल में शिक्षा की वह व्यवस्था जो अरब देशों में प्रचलित थी, धीरे-धीरे अपनाई जाने लगी। परिणामस्वरूप मदरसों और मकतबों की स्थापना हुई। इन संस्थाओं को शाही संरक्षण प्राप्त था। कई स्थानों पर खोले गए इन मदरसों की श्रृंखला में समान पाठ्यचर्या सामग्री पढ़ाई जाती थी। दो-भाई शेख

अब्दुल्ला और शेख अजीजुल्लाह जो तार्किक विज्ञान में विशेषज्ञ थे, सम्बल और आगरा के मदरसों के प्रधान बने। देश में स्थानीय रूप से प्राप्त विद्वत्ता के अलावा अरब, पर्शिया और मध्य एशिया से भी विद्वानों को मदरसों में शिक्षा का कार्यभार सम्भालने के लिए बुलाया गया।

क्या आप जानते हैं कि मुस्लिम शासकों ने प्राथमिक विद्यालयों की पाठ्यचर्चा को सुधारने का प्रयत्न किया। कुछ आवश्यक विषय जैसे गणित, मापन विज्ञान, रेखागणित, नक्षत्रविज्ञान, लेखा जोखा, लोकप्रशासन और कृषि आदि विषय प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में समाहित किए गए। यद्यपि शासकों द्वारा शिक्षाओं में सुधार लाने के लिए विशेष प्रयत्न किए गए थे, लेकिन विज्ञान में कुछ विशेष प्रगति नहीं हुई। भारतीय पारिभाषिक वैज्ञानिक संस्कृति और अन्य देशों में प्रचलित मध्ययुगीन विज्ञान के प्रति उपागम में एक प्रकार की संगति बिठाने के प्रयत्न किए गए। आइए अब हम देखें कि इस अवधि में विभिन्न क्षेत्रों में क्या क्या प्रगति हुई।

शाही घरानों और सरकारी विभागों में खाद्यसामग्री, भण्डारण और अन्य साधन प्रदान करने के लिए बड़ी-बड़ी कार्यशालाएं जिन्हें कारखाना कहा जाता था, बनाई गईं। ये कारखाने केवल उत्पादन की संस्थाओं के रूप में ही नहीं कार्य करते थे बल्कि युवा वर्ग को तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण भी प्रदान करते थे। इन कारखानों ने विभिन्न शाखाओं में कलाकार और हस्तशिल्प में प्रशिक्षित युवा तैयार किए जिन्होंने बाद में अपने स्वतंत्र कारखाने भी स्थापित कर लिए।

16.1.1 गणित

इस अवधि में गणित के क्षेत्र में अनेक ग्रंथ लिखे गए। नरसिंह दैवज्ञ के पुत्र नारायण पंडित गणित में अपने ग्रंथ के लिए सुप्रसिद्ध हुए–गणितकौमुदी और बीजगणितावतंस। गुजरात में गंगाधर ने लीलावती करमदीपिका, सिद्धान्तदीपिका और लीलावती व्याख्या लिखी। ये प्रसिद्ध ग्रंथ थे जिन्होंने त्रिकोणमितिक पद जैसे साइन, कोसाइन, टेन्जेन्ट और कोटेन्जेन्ट निकालने के नियम बनाए। नीलकण्ठ सोमसुतवन ने तंत्रसंग्रह लिखा जिसमें भी त्रिकोणमितिक प्रक्रियाओं के लिए नियम दिये गए हैं।

गणेश दैवज्ञ ने लीलावती पर व्याख्या बुद्धिविलासिनी लिखी थी और जिसमें अनेक उदाहरण दिए गए थे। वल्लाल परिवार के कृष्ण ने 'नवांकुर' की रचना की जो भास्कर द्वितीय के बीजगणित पर व्याख्या थी और जिसमें प्रथम और द्वितीय क्रम के अंतर्मध्य सरणियों (Intermediate equations) पर नियमों की व्याख्याएं दी गई थीं। नीलकण्ठ ज्योतिर्विद ने 'तांत्रिक' ग्रंथ लिखा जिसमें अनेक पर्शियन तकनीकी पदों का परिचय दिया गया था। अकबर के कहने पर फैजी ने भास्कराचार्य के बीजगणित का अनुवाद किया। शिक्षा व्यवस्था में अन्य विषयों के साथ अकबर ने गणित के भी पढ़ाये जाने पर बल दिया। नसीरुद्दीन तुसी गणित का एक अन्य विद्वान था।

16.1.2 जीवविज्ञान

इसी प्रकार जीवविज्ञान के क्षेत्र में भी उन्नति हुई। 13वीं शताब्दी में हंसदेव ने 'मृगपक्षिशास्त्र' नामक ग्रंथ का निर्माण किया। यह ग्रंथ शिकार के कुछ पशुपक्षियों के विषय में जानकारी देता है यद्यपि वे सभी तथ्य विज्ञान-परक नहीं हैं। मुस्लिम शहंशाह जो योद्धा और शिकारी हुआ करते थे, अपने पास शिकार के लिए बहुत से पशु रखते थे जैसे घोड़े, कुत्ते, चीते और बाज। इसमें जंगली और पालतू दोनों ही प्रकार के पशुओं का वर्णन किया गया है। बाबर और अकबर यद्यपि दोनों ही राजनैतिक गतिविधियों में उलझे रहते थे फिर भी उन्होंने इस ग्रंथ को पढ़ने के लिए समय निकाला। अकबर को हाथी और घोड़े जैसे पालतू पशुओं की अच्छी नसल पैदा करवाने का बेहद शौक था। जहांगीर ने अपनी कृति तुजुके जहांगीरी में नसल को सुधारने और संकर नस्ल पैदा करने के अपने परीक्षण और अनुभव अंकित किए हैं। उन्होंने पशुओं की 36 नस्लों का वर्णन किया है। उनके दरबारी कलाकार विशेषत: मंसूर ने पशुओं के भव्य और सही चित्र बनाए। इनमें से कुछ तो अभी भी कई संग्रहालयों और निजी संग्रहों में सुरक्षित हैं। प्रकृति प्रेमी होने के कारण जहांगीर पौधों के अध्ययन में भी रुचि रखता था। उसके दरबारी कलाकारों ने फूलों के चित्रों में प्राय: 57 पौधों को चित्रित किया है।

16.1.3 रसायन विज्ञान

क्या आप जानते है कि मध्यकाल में कागज का प्रयोग भी प्रारंभ हो गया था। कागज के उत्पादन में रसायन शास्त्र का महत्त्वपूर्ण प्रयोग होता था। कश्मीर, सियालकोट, जाफराबाद, पटना, मुर्शिदाबाद, अहमदाबाद, औरंगाबाद और मैसूर कागज़ बनाने के सुप्रसिद्ध केन्द्र थे। कागज बनाने की तकनीक प्राय: पूरे देश में समान थी केवल विभिन्न कच्चे माल से लुगदी बनाने का तरीका अलग अलग था।

मुगलों को बारूद और तोपों में उसके प्रयोग की तकनीक का ज्ञान था। भारतीय हस्तशिल्पियों ने इस तकनीक को सीखा और समुचित विस्फोटक पदार्थों की रचना की। शुक्राचार्य द्वारा रचित शुक्रनीति में कैसे शोरा, गंधक और कोयले को विभिन्न अनुपातों में मिलाकर विभिन्न प्रकार की बंदूकों में प्रयोग करने के लिए बारूद बनाया जा सकता है, इसका वर्णन दिया गया है। मुख्य प्रकार की आतिशबाजी में वे बम्ब सम्मिलित है जो तेजी से आकाश में जाते हैं, अग्नि के स्फुलिंग पैदा करते हैं, जो विभिन्न रंगों में चमकते हैं और धमाके के साथ फट जाते हैं। आइने अकबरी में अकबर के इत्र कार्यालय के नियमों का वर्णन है। गुलाब का इत्र एक बहुप्रसिद्ध इत्र था जो सम्भवत नूरजहां द्वारा खोजा गया था।

पाठगत प्रश्न 16.1

1. मध्यकाल में प्राथमिक विद्यालयों में कौन से विषय पढ़ाये जाते थे?

....

2. प्राथमिक स्तर पर अनिवार्य विषय के रूप में ये विषय पढ़ायें जाने का आदेश किसके द्वारा दिया गया था।

....

3. कारखानों के दो प्रमुख कार्य क्या थे?

....

4. निम्नलिखित विद्वानों का उनके ग्रंथों के साथ मिलान कीजिए :

विद्वानों के नाम	*कृतियों के नाम*
1. नारायण पण्डित	1. बुद्धि विलासिनी
2. गंगाधर	2. मृगपक्षीशास्त्र
3. गणेश दैवज्ञ	3. गणित कौमुदी
4. हंसदेव	4. लीलावती व्याख्या
5. जहांगीर	5. ताजिक
6. शुक्राचार्य	6. तुजुके जहांगीरी
7. नीलकण्ठ ज्योतिर्विद	7. शुक्रनीति

	विद्वान का नाम	कृति का नाम
1.		
2.		
3.		
4.		
5.		
6.		
7.		

16.1.4 नक्षत्रविज्ञान

नक्षत्र एक अन्य क्षेत्र था जो इस काल में खूब विकसित हुआ। नक्षत्रविज्ञान में पहले से सुस्थापित नक्षत्र विषयक अवधारणाओं पर अनेक टीकाएं लिखी गईं।

महेन्द्र सूरी ने जो बादशाह फीरोज शाह का दरबारी नक्षत्र-वैज्ञानिक था, एक नक्षत्र विषयक यंत्र 'यन्त्रज' बनाया। परमेश्वर और महाभास्करीय, दोनों ही केरल में प्रसिद्ध नक्षत्रविज्ञानियों

के कुल से थे और पंचाङ्ग बनाते थे। नीलकण्ठ सोमसुतवन ने आर्यभटीय पर टीका लिखी। कमलाकर ने इस्लामिक नक्षत्रविज्ञान विषयक विचारों का अध्ययन किया। वह इस्लामिक ज्ञान के विषय में प्रमाण माना जाता था। जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह नक्षत्रविद्या के संरक्षक थे। उन्होंने दिल्ली उज्जैन, वाराणसी, मथुरा और जयपुर में पांच नक्षत्रविषयक वेधशालाएं बनवाईं।

16.1.5 औषधविज्ञान

शाही संरक्षण के अभाव में आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति प्राचीन काल के समान इतनी उन्नति नहीं कर पाई, फिर भी आयुर्वेद पर कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना हुई जैसे शाङ्र्गधर संहिता और चिकित्सा संग्रह की रचना वंगसेन ने, यगर्तवज्र और भावप्रकाश की रचना भावमिश्र ने की। 13वीं शताब्दी में शाङ्र्गधर संहिता लिखी गई जिसमें औषध बनाने की सामग्री में अफीम का भी उपयोग सम्मिलित है और निदानात्मक उद्देश्यों से मूत्र परीक्षण का भी जिक्र है। रसचिकित्सा व्यवस्था के धातु-मिश्रण सहित मादक द्रव्यों तथा आयातित द्रव्यों का भी वर्णन है।

रसचिकित्सा व्यवस्था में अनेक प्रकार की धातुज औषधियों का वर्णन है जिनमें कुछ पारे से बनाई जाती थीं और कुछ बिना पारे के। सिद्ध व्यवस्था जो तमिलनाडु में सर्वाधिक प्रचलित थी, उसका श्रेय उन सिद्धों को जाता है जिन्होंने धातुज औषधियों से युक्त अनेक प्रकार के आयुवर्धक नुस्खों को तैयार किया।

मध्यकाल में यूनानी तिब्ब औषध व्यवस्था भी खूब पनपी। अली बिन रब्बन ने संपूर्ण यवन औषध ज्ञान और साथ ही भारतीय औषध विज्ञान का सारांश अपनी रचना 'फिरदौसे हिकमत' में दिया है। प्रायः 11वीं शताब्दी में मुसलमानों के साथ यूनानी चिकित्सा पद्धति भी भारत में आई और अपने विकास के लिए संरक्षण भी प्राप्त किया। हकीम दिया मुहम्मद ने एक पुस्तक 'मजिन्ये दिये' लिखी जिसमें अरबी, पर्शियन और आयुर्वैदिक औषधीय विज्ञान को समाहित किया। फीरोज शाह तुगलक ने भी एक पुस्तक तिब्बे-फीरोजशाही लिखी। तिब्बे औरंगजेबी जिसका श्रेय औरंगजेब को दिया जाता है, आयुर्वैदिक स्रोतों पर आधारित है। नूरुद्दीन मुहम्मद की मुसलजाति दाराशिकोही जो दाराशिकोह को समर्पित है, ग्रीक औषध विज्ञान का वर्णन करती है और अंत में प्रायः पूरी की पूरी आयुर्वैदिक औषधियों का निर्देश करती है।

16.1.6 कृषि

मध्यकाल में कृषि कार्यों के तरीके प्रायः वैसे ही थे जैसे प्रारंभिक भारत में थे। विदेशी व्यापारियों के कारण कुछ नई फसलों के उत्पादन में, वृक्षों और उद्यान संबंधी पौधों के रोपने में कुछ आवश्यक परिवर्तन किए गए। प्रमुख फसलें थीं-गेहूं, चावल, जौ, बाजरा, दालें, तिलहन, कपास, गन्ना और नील। पश्चिमी घाटों पर उत्तम कोटि की काली मिर्च उगाई जाती थी और कश्मीर केसर और फलों के लिए पूर्ववत् प्रसिद्ध था। तमिलनाडु से अदरक और

दालचीनी, केरल से इलायची, चन्दन और नारियल अधिक प्रसिद्ध होते जा रहे थे। तम्बाकू, मिर्चे, आलू, अमरूद, शरीफा, काजू और अनानास आदि वे महत्त्वपूर्ण पौधे थे जो भारत में 16वीं और 12वीं शताब्दी में भारत में आए। इसी काल में ही मालवा और बिहार क्षेत्रों में पोस्त के पौधों से अफीम की पैदावार भी प्रारंभ हो गई। संशोधित उद्यान संबंधी तरीकों का बहुत सफलतापूर्वक प्रयोग होने लगा। 16वीं शताब्दी के मध्य में गोआ के येशु-सम्राजियों द्वारा विधिपूर्वक आम की कलम भी लगानी प्रारंभ की गई। शाही मुगल उद्यान समुचित क्षेत्र थे जहां व्यापक तौर पर फलों के बाग लगाए जाने लगे। सिंचाई के लिए कुँए, तालाब, नहर, रहट, चरस और देकली (चमड़े की बनी एक प्रकार की बाल्टी जिसका जुते हुए बैलों की सहायता से पानी ले जाने के लिए किया जाता था) आदि का प्रयोग होता था। आगरा क्षेत्र में रहट का प्रयोग किया जाता था। मध्यकाल में भूमि मापन और भूमि श्रेणीकरण की व्यवस्था द्वारा राज्य में कृषि को एक मजबूत आधार प्रदान किया गया जो शासकों और किसानों दोनों के ही लिए लाभदायक था।

पाठगत प्रश्न 16.2

1. उन नगरों के नाम लिखिए जहां जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय द्वारा नक्षत्र विषयक वेधशालाएँ स्थापित की गई?
2. मध्यकाल में लिखे गए आयुर्वेद संबंधी दो ग्रंथों के नाम लिखिए।
3. फिरदौस ए हिकमत क्या है?
4. किस ग्रंथ में अरबी, फारसी और आयुर्वेदिक चिकित्सा विषयक ज्ञान दिया गया है?

आपने क्या सीखा?

- शिक्षा व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए। अरबी व्यवस्था जोर शोर से लागू की गई। सभी जगह मदरसों और मकतबों की स्थापना हुई। शासकों ने सुधारकार्य करवाने का प्रयत्न किया।
- गणित, रसायन शास्त्र, जीवविज्ञान, नक्षत्रविज्ञान और औषध विज्ञान के अनेक ग्रंथ लिखे गए।
- इस काल के बहुत से विज्ञान विषयक ग्रंथ प्राचीन ग्रंथों पर लिखी हुई टीकाएं या व्याख्याएं ही थीं।
- नक्षत्रविज्ञान, औषध विज्ञान और अन्य विज्ञान विषयक आवश्यक वैज्ञानिक ग्रंथों का संस्कृत से पर्शियन/अरबी में और पर्शियन/अरबी से संस्कृत में अनुवाद किया गया।

पाठान्त प्रश्न

1. मध्यकाल में जिस शिक्षा पद्धति का विकास हुआ, उसका वर्णन कीजिए।
2. मध्यकाल में औषधविज्ञान के क्षेत्र में विकास की विवेचना कीजिए।
3. इस काल में सिंचाई कैसे की जाती थी?
4. मध्यकाल में विज्ञान और वैज्ञानिक 'विषय पर एक निबंध लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

16.1 1. गणित, मापन विज्ञान, रेखागणित, नक्षत्रविज्ञान, लेखा जोखा, लोक प्रशासन और कृषि

2. गणित

3. (i) निर्माण करने वाली एजेंसियाँ

   (ii) युवाओं को तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने के केन्द्र

4.

विद्वान का नाम	कृति का नाम
नारायण पंडित	गणित कौमुदी
गंगाधर	लीलावती व्यवस्था
गणेश दैवज्ञ	बुद्धिविलासिनी
हंसदेव	मृगपक्षिशास्त्र
जहांगीर	तुजकु-जहांगीरी
शुक्राचार्य	शुक्रनीति
नीलकण्ठ ज्योतिर्विद	तांत्रिक

5. कश्मीर, स्यालकोट, जाफराबाद, पटना, मुर्शिदाबाद, अहमदाबाद, औरंगाबाद और मैसूर (कोई चार)

16.2 1. दिल्ली, उज्जैन, वाराणसी, मथुरा और जयुपर

2. शाङ्गर्धरसंहिता, चिकित्सा संग्रह, यागरतवज्र, भावप्रकाश आदि में से कोई दो

3. अलीबिन रब्बन द्वारा लिखित एक पुस्तक जिसमें संपूर्ण ग्रीक औषधविज्ञान और भारतीय औषध विज्ञान का सारांश दिया गया है।

4. मजिन्य-ए-दियाए।

5. तम्बाकू, मिर्चे, आलू, अमरूद, शरीफा, काजू और अनानास में से कोई चार।

गतिविधियां

1. जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय द्वारा स्थापित किसी वेधशाला को देखने का प्रयत्न कीजिए। वेधशाला की उपयोगिता और वहां उपलब्ध यंत्रों का वर्णन करते हुए एक रिपोर्ट लिखिए।

2. किसी एक कागज बनाने वाले या बारूद बनाने वाले कारखाने में जाइए। उत्पादन प्रक्रिया पर एक रिपोर्ट लिखिए।

3. आपने औषध विज्ञान की दो पद्धतियों को सीखा–

   आयुर्वेदिक जो प्राचीन भारत में विकसित हुई और यूनानी तिब्ब व्यवस्था जो मध्यकाल में मुसलमानों द्वारा भारत में लाई गई। क्या आप जानते हैं कि आप बीमार पड़ने पर जिस डाक्टर के पास जाते हैं वह एलोपेथिक सिस्टम का अनुसरण करता है जो आधुनिक काल में अंग्रेजों द्वारा भारत में लाई गई। इन तीनों पद्धतियों के मूल सिद्धांतों का पता लगाइए और उनमें अंतर को जानिए। इसके लिए आप सूचना एकत्रित करने के लिए निम्नलिखित में से एक या अधिक गतिविधि कर सकते हैं–

   - अपने शिक्षक से चर्चा करें।
   - इस पर पुस्तकालय से पुस्तकें लेकर पढ़ें।
   - अंतर्जाल (इंटरनेट) पर खोजें।
   - किसी डाक्टर के पास जाकर विवेचना कीजिए।

   इन तीनों पद्धतियों में जो अंतर हैं उनका और इनके मूल सिद्धांतों का उल्लेख करते हुए एक रिपोर्ट लिखिए।

4. मध्यकाल में जो भारत में फसलें उगाई गईं उनमें से किन्हीं दो को चुनिए और उनके मूल का पता लगाइए और कैसे वे भारत में आईं–इससे संबद्ध कथाएं लिखिए।

17

आधुनिक भारत के वैज्ञानिक

आधुनिक भारत में वैज्ञानिक विचारों के विकास का श्रेय इस काल के वैज्ञानिकों को जाता है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सर सी वी रमन भारतीय वैज्ञानिक चिंतन धारा में अभूतपूर्व परिवर्तन लाए। डा. होमी जे भाभा ने, जिन्हें हमारी आणविक भौतिकी का जनक कहा जाता है, भारतीय विज्ञान का भविष्य पहले ही लिख डाला था। वनस्पति शास्त्र के क्षेत्र में जे सी बोस, परमाणु ऊर्जा और औद्योगीकरण के क्षेत्र में डा. विक्रम साराभाई, रक्षा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में डा. ए.पी.जे. अब्दुलकलाम आदि वैज्ञानिकों के क्रान्तिकारी परिवर्तनों ने आधुनिक भारत का गौरव बढ़ाया।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप–

- आधुनिक काल के कुछ महान भारतीय वैज्ञानिकों की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का उल्लेख कर सकेंगे, और
- मानवीय समाज की सेवा में उनके योगदानों की सूची बना सकेंगे।

17.1 श्रीनिवास रामानुजन (1887-1920 ई.)

श्रीनिवास रामानुजन जो श्रीनिवास आयंगर रामानुजन के नाम से विख्यात हैं, भारत के प्रतिभाशाली इस गणितज्ञ का जन्म 22 दिसंबर, 1887 को तमिलनाडु में इरोड नामक स्थान पर हुआ। बाद में इनके माता-पिता चेन्नई से 160 किलोमीटर दूर कुम्बकोणम चले गए। रामानुजन ने कुम्बकोणम में टाउन हॉल स्कूल में अध्ययन किया जहाँ उन्होंने अपने आप को प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी सिद्ध किया। उनकी गणित में अद्वितीय रुचि थी। गणितीय अङ्कों से उनका स्वाभाविक लगाव था। स्कूल में 13 वर्ष की आयु में उन्हें एक पुस्तक मिली

जिसका नाम था- 'सिनोप्सिस ऑफ एलीमेन्टेरी रिजल्टस इन प्योर मेथेमेटिक्स', जिसके लेखक थे जी.एस. कर। पुरानी होने पर भी इस पुस्तक ने उनको गणित की दुनिया से परिचित करवाया। उन्होंने गणित के क्षेत्र में अपने विचार विकसित करना और आगे कार्य करना प्रारंभ कर दिया। वह अपने विचारों और परिणामों को नोट करने लगे और अपने परिणामों पर अपने नोट्स बनाने लगे।

ऐसी तीन शोधपरक डायरियाँ जिनमें उनका अन्वेषण कार्य भरा हुआ है, आज हमें उपलब्ध हैं। उन्हें रामानुज की फ्रेंड नोटबुक्स कहा जाता है। वह अपनी कालेज की पढ़ाई भी पूरी नहीं कर पाये क्योंकि उनका सारा समय गणित में ही बीत जाता था। वे अपने विचारों को विकसित करते रहे और नई-नई समस्याओं को प्रस्तुत करके उनके समाधान 'जर्नल ऑफ इण्डियन मैथेमेटिक्स' पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित करते रहे। 1911 में उन्होंने इसी पत्र में 'बरनौली संख्याएँ' विषय पर एक बहुमुल्य अनुसंधान-पत्र प्रकाशित किया। इस पत्र से उन्हें पहचान मिली और वह मद्रास के शिष्टजनों में एक गणित विषयक विशिष्ट प्रतिभा के रूप में प्रसिद्ध हो गए।

औपचारिक शिक्षा के अभाव में उन्हें गुज़ारा चलाना कठिन हो गया। बड़ी मुश्किल से उन्हें मद्रास पोर्ट ट्रस्ट (Madras Port Trust) में एक क्लर्क की नौकरी मिली जो अंत में उनके लिए भाग्यशाली सिद्ध हुई। यहाँ वे अनेक ऐसे लोगों के संपर्क में आए जिन्होंने गणित में प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उन्हें जी एच् हार्डी (G.H. Hardy) द्वारा लिखित एक पुस्तक 'आर्डरज ऑफ इनफिनिटि' प्राप्त हुई। उन्होंने हार्डी को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने 120 प्रमेय और सूत्र लिखे। हार्डी ने तुरंत उनकी प्रतिभा को पहचान लिया और इसके जवाब में उन्होंने लंदन तक की यात्रा की व्यवस्था कर दी। अपेक्षित योग्यता न होने पर भी उन्हें ट्रिनिटी कालेज में प्रवेश की अनुमति मिल गई जहाँ उन्होंने दो साल से भी कम अवधि में ही बैचलर ऑफ साइंस की उपाधि प्राप्त कर ली। उन्होंने हार्डी और जे ई लिटलवुड के साथ एक उत्तम टीम बनाई और गणित के क्षेत्र में आश्चर्यजनक योगदान किए। उन्होंने लंदन में अनेक शोधपत्र प्रकाशित किए। वह लंदन की रायल सोसाइटी के फेलो चुने जाने वाले दूसरे भारतीय थे और ट्रिनिट कालेज के फैलो चुने जाने वाले प्रथम भारतीय थे।

रामानुजन का संख्याओं से अत्यधिक लगाव था। 1917 में वह बहुत अधिक बीमार पड़ गये लेकिन संख्याएँ अभी भी उनकी मित्र बनी रहीं यद्यपि उनका शरीर धोखा देता जा रहा था। दुर्भाग्यवश उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही चला गया और वह 1919 में भारत लौट आए। एक वैज्ञानिक पहचान और प्रतिष्ठा के साथ वे 1920 में मृत्यु को प्राप्त हो गए। उनकी गणितीय प्रतिभा इस बात का प्रमाण है कि भारत वास्तव में महान गणितीय विचारों का जन्म स्थान और स्रोत रहा है।

17.2 चन्द्रशेखर वी रमन (1888-1970 ई.)

चन्द्रशेखर वी रमन जो सी वी रमन के नाम से प्रसिद्ध हैं, न केवल एक महान वैज्ञानिक थे बल्कि मानव कल्याण और मानवीय सम्मान की वृद्धि में विश्वास करते थे। उन्होंने 1930

में भौतिकी में नोबल पुरस्कार प्राप्त किया और यह पुरस्कार प्राप्त करने वाले वह पहले एशियाई थे।

श्री सी वी रमन का जन्म 7 नवंबर, 1888 ई. में तमिलनाडु में तिरूचिरापल्ली नगर में हुआ था। उनके पिता भौतिकी और गणित के प्रोफेसर थे। वह संस्कृत साहित्य, संगीत और विज्ञान के वातावरण में पले बड़े हुए। प्रकृति ने उन्हें तीव्र एकाग्रता, बुद्धि और अन्वेषण की प्रवृत्ति प्रदान की थी। बचपन में भी वह बाल प्रतिभा के रूप में प्रसिद्ध थे। वह भारतीय ऑडिट और अकाउन्ट्स परीक्षा में प्रथम आए और 19 वर्ष की आयु में ही कलकत्ता में वित्त विभाग में सहायक अकाउन्टेंट जनरल के पद पर नियुक्त कर दिए गए। उन्होंने विज्ञान के प्रति अपनी रूचि के कारण इस उच्च पद का भी बलिदान कर दिया और कलकत्ता विश्वविद्यालय के सांइस कालेज में भौतिकी के प्रोफेसर के रूप में कार्य करने लगे। संगीत में गहरी रुचि होने के कारण उन्होंने संगीत के वाद्ययंत्रों, वीणा, वायलिन, तबला और मृदंग पर काम करना शुरू कर दिया। उन्होंने लंदन की रायल सोसाइटी में तार वाद्य यंत्रों के सिद्धांत पर एक शोध पत्र प्रस्तुत किया। 1924 में वह रायल सोसायटी के फेलो बना दिए गए।

लंदन की ओर अपनी यात्रा के समय वह समुद्र के नीले रंग से बहुत अधिक प्रभावित हुए। वह यह जानने को उत्सुक हो उठे कि इतनी विशाल तरंगों के उछाल के उपरांत भी पानी का रंग नीला ही क्यों रहता है। तब उन्हें अंतर्ज्ञान की झलक प्राप्त हुई कि यह पानी के अणुओं द्वारा सूर्य के प्रकाश के बिखरने के कारण होता है। उन्होंने अनेक अनुसंधान किए और प्रकाश के आणविक बिखराव पर लंबा शोध प्रबंध तैयार करके लंदन की रायल सोसायटी को भेज दिया। विज्ञान जगत उनके मस्तिष्क की प्रतिभा की चमक से आश्चर्यचकित रह गया।

रमन प्रभाव

जब एक रंग का प्रकाश पुंज एक पारदर्शी पदार्थ से गुजरता है, तो वह बिखर जाता है। रमन ने इस बिखरे हुए प्रकाश का अध्ययन किया। उन्होंने देखा कि पानी में डाली गई एक प्रमुख प्रकाश की रेखा के समानान्तर दो बहुत कम चमक वाली रेखाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इससे यह ज्ञात होता है यद्यपि पानी में डुबोया गया प्रकाश एकवर्णी था परंतु बिखरा हुआ प्रकाश एकवर्णी नहीं था। इस प्रकार प्रकृति का एक बहुत बड़ा रहस्य उनके समक्ष उद्घाटित हो गया। यह परिवर्तन रमन प्रभाव के नाम से ही प्रसिद्ध हो गया और बिखरे हुए प्रकाश की विशेष रेखाएँ भी 'रमन रेखाएँ' के नाम से प्रसिद्ध हो गईं। यद्यपि वैज्ञानिक इस प्रश्न पर विवाद करते रहे हैं कि क्या प्रकाश लहरों के समान हैं अथवा कणों के? लेकिन रमन प्रभाव ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रकाश छोटे-छोटे कणों से मिल कर बनता है जिन्हें फोटोन कहा जाता है।

डा. रमन एक महान शिक्षक और एक महान पथप्रदर्शक भी थे। वह अपने छात्रों में अत्यधिक आत्मविश्वास भर देते थे। उनका एक विद्यार्थी बहुत ही निराश था क्योंकि उसके

पास केवल एक किलो वाट की शक्ति वाला एक्सरे यंत्र था जबकि उस समय इंग्लैण्ड में वैज्ञानिक 5 किलोवाट की शक्ति वाले एक्सरे यंत्र से कार्य कर रहे थे। डा. रमन ने उसे प्रोत्साहित करते हुए, बदले में 10 किलोवाट की शक्ति वाला मस्तिष्क प्रयोग करने का सुझाव दिया।

डा. रमन का जीवन हम सबके लिए अनुकरणीय है। जब भारत अंग्रेजों के अधीन था और शोध कार्य के लिए भौतिक संसाधन बहुत सीमित थे, उन्होंने अपनी प्रतिभाशाली मस्तिष्क रूपी प्रयोगशाला का ही प्रयोग किया। उन्होंने अपने जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए सिद्ध कर दिखाया कि किस तरह हमारे पूर्वजों ने मस्तिष्क के बल पर बड़े-बड़े सिद्धांतों की खोज कर डाली।

17.3 जगदीशचन्द्र बोस (1858-1937)

भारत में एक अन्य सुविख्यात वैज्ञानिक जे सी बोस हुए जिन्होंने देश को गौरव और सम्मान प्राप्त करवाया। इनका जन्म 30 नवम्बर, सन् 1858 ई. में मेमनसिंह नामक जगह पर हुआ जो कि अब बंगलादेश में है। यहीं पर इन्होंने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। कलकत्ता के सेंट जेवियर कॉलेज से उच्च शिक्षा प्राप्त की। 1885 ई. में इनको प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ता में भौतिकी के सहायक प्राध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया, पर इन्होंने वेतन लेने से मना कर दिया क्योंकि यह वेतन अंग्रेज प्राध्यापक के वेतन का आधा था। बाद में इन्होंने वैज्ञानिक बनने का फैसला किया जिससे वे भारत के उस सम्मान को वापस ला सकें जो उसे प्राचीन काल में प्राप्त था। उन्होंने विद्युतीय किरणों की खूबियों का अध्ययन करने के लिए एक यंत्र बनाया। उन्हें 1917 ई. में सरदार 'नाइट' और 1920 ई. में लंदन की रायल सोसाइटी का फेलो भी बनाया गया। यह सम्मान प्राप्त करने वाले वे प्रथम भारतीय भौतिक शास्त्रवेत्ता थे।

डा. बोस पूरे विश्व में अपने यंत्र क्रेस्कोग्राफ के आविष्कारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। यह यंत्र पौधे की वृद्धि और गति के एक मिलीमीटर उन्नति के दसलाखवें हिस्से को भी दर्ज कर सकता है। उन्होंने अपने क्रेस्कोग्राफ के द्वारा लिए गए रेखाचित्रों से यह प्रमाणित किया कि पौधों में भी संचार व्यवस्था होती है। क्रेस्कोग्राफ ने यह भी सिद्ध किया कि पौधों में वृद्धि उनमें स्थित जीवित कोशिकाओं के कारण होती है। डॉ. बोस ने अनेक यन्त्र भी बनाए जो विश्व में बोस यन्त्रों के नाम से विख्यात हैं। वे यन्त्र यह सिद्ध करते हैं कि धातुएँ भी बाहरी प्रेरक के प्रति प्रतिक्रिया करती हैं और कैंची और मशीन के पुर्जे भी थकान अनुभव करते हैं और कुछ समय विश्राम करने के बाद पुनः कुशलतापूर्वक कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं। रस की ऊपर की ओर गति उनकी जीवित कोशिकाओं के फलस्वरूप है।

क्रेस्कोग्राफ तथा बोस यंत्रों के अलावा, उनके बेतार आविष्कारों ने मारकोनी के आविष्कारों को भी पीछे छोड़ दिया। उन्होंने ही सर्वप्रथम एक बेतार कोहरर (रेडियो सिग्नल डिटेक्टर) तथा एक अन्य यंत्र बनाया जिससे विद्युतीय तरंगों का परिवर्तन ज्ञात होता है। जब किसी व्यक्ति ने उनका इस ओर ध्यान आकर्षित किया तो उन्होंने सरलता से उत्तर दिया कि यह ऐसा आविष्कार है जो मानवता के लिए आविष्कारक से भी अधिक उपयोगी है।

पाठगत प्रश्न 17.1

1. भारत में न्यूक्लियर फिज़िक्स का जनक कौन कहलाता है?

2. श्रीनिवास रामानुजन ने किस क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की?

3. श्रीनिवास रामानुजन का कौनसा लेख भारतीय गणित समाज के शोधपत्र में प्रकाशित हुआ था?

4. 'दा आर्डरज ऑफ इनफिनिटि' पुस्तक किसने लिखी?

5. सी.बी. रमन ने भौतिकी में नोबल पुरस्कार कब प्राप्त किया?

6. इंग्लैण्ड की ओर यात्रा करते समय किस चीज ने सी.वी. रमन को सबसे अधिक आकृष्ट किया?

7. सी.बी. रमन ने कौनसा पत्र लिखा और लंदन की रायल सोसाइटी को भेजा?

8. रमन प्रभाव किसे कहते हैं?

9. 'फोटोन' किसे कहते हैं?

10. जगदीशचन्द्र बोस के किस काम ने उन्हें लंदन में नाइट (Knight) की उपाधि दिलवायी?

11. किसने क्रेस्कोग्राफ का आविष्कार किया?

12. क्रेस्कोग्राफ क्या रिकॉर्ड करता है?

13. किसने पहला बेतार का कोहरर (Coherer) बनाया?

....

होमी जहांगीर भाभा (1909-1966 ई.)

डा. होमी जहांगीर भाभा एक महान वैज्ञानिक थे। वे भारत को आणविक युग में ले गये। वे भारतीय नाभिकीय विज्ञान के जनक कहलाते हैं। उनका जन्म 30 अक्टूबर, 1909 ई. को एक प्रसिद्ध पारसी परिवार में हुआ था। अपने बाल्यकाल में ही उन्होंने अपनी प्रखर बुद्धि का परिचय देना प्रारंभ कर दिया था और अनेक पुरस्कारों को प्राप्त किया। उनका प्रारंभिक अध्ययन मुंबई में हुआ। उन्होंने कैम्ब्रिज से प्रथम श्रेणी में मेकेनिकल इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की, वहीं शोध कार्य पूरा किया और 1935 तक कॉस्मिक रेडिएशन से संबंधित महत्त्वपूर्ण मौलिक शोध कार्य किया। जब द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया तब वे भारत वापस आ गए।

डा. भाभा ने डा. सी वी रमन के अनुरोध पर इण्डियन इंस्टीटयूट ऑफ साइसेंज संस्था में, जो बंगलूरू में स्थित थी, एक प्रवाचक के पद पर कार्य करना प्रारंभ कर दिया। शीघ्र ही वे भौतिकी के प्रोफेसर बन गए। इसी समय उन्हें भौतिकी में कुछ नवीन क्षेत्रों में शोध कार्य हेतु एक शोध संस्थान बनाने का विचार आया। उन्होंने एक महान निर्णय लिया और एक पत्र सर डोराब जी टाटा को लिखा जिसमें भारत की विश्व आणविक शक्ति की नींव बनाने के लिए एक नवीन शोध संस्थान खोलने का सुझाव दिया गया था। यह संस्थान अपने विशेषज्ञ पैदा करेगा जिससे भारत को बाहरी स्रोतों पर निर्भर न रहना पड़े। परिणामस्वरूप 'टाटा इंस्टीट्यूट आफ फण्डामेंटल रिसर्च' नामक संस्थान 1965 में डा. भाभा के पैतृक निवास पर खोल दिया गया।

भारत का प्रथम आणविक शोध केन्द्र जो अब भाभा एटमिक रिसर्च सेंटर (BARC) कहलाता है, ट्राम्बे में स्थापित है। उन्हीं के विशेष मार्गदर्शन में भारत का प्रथम आणविक रिएक्टर 'अप्सरा' स्थापित हुआ। भाभा 1948 में स्थापित भाभा एटोमिक एनर्जी कमिशन के प्रथम अध्यक्ष बने। आणविक शक्ति के क्षेत्र में उनके अध्ययन अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुमूल्य समझे जाते हैं। उन्होंने आणविक शक्ति के शांतिपूर्ण उपयोगों के लिए यू एन द्वारा प्रायोजित अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की भी अध्यक्षता की। भारत सरकार ने उन्हें 1966 में पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया। डा. भाभा की मृत्यु एक विमान दुर्घटना में हुई।

17.5 डा. विक्रम अम्बालाल साराभाई (1919-1970 ई.)

डॉ. विक्रम अम्बालाल साराभाई आधुनिक भारत की एक अन्य विशिष्ट प्रतिभा है। भारत के प्रथम उपग्रह 'आर्यभट' के प्रक्षेपण में उनका प्रमुख योगदान था। उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा अपने माता-पिता द्वारा चलाए गए एक विद्यालय में प्राप्त की। उन्होंने डा. सी वी रमन के मार्गदर्शन में कॉस्मिक किरणों का अध्ययन किया और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पीएचडी

की उपाधि प्राप्त की। उनके कॉस्मिक किरणों के अध्ययन ने यह स्पष्ट कर दिया कि कास्मिक किरणें बाहरी अंतरिक्ष से आने वाली शक्ति कणों की एक धारा है। पृथ्वी तक आते-आते वे रास्ते में सूर्य से, पृथ्वी के वातावरण से और चुंबकीय शक्ति से प्रभावित होती जाती हैं।

डा. साराभाई एक बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थे। वह एक महान उद्योगपति थे। आज बहुत से उद्योग उन्हीं के द्वारा स्थापित किए गए हैं जैसे साराभाई कैमिकल्ज, साराभाई ग्लास, साराभाई गेजी लिमिटेड, साराभाई मर्क लि. तथा अन्य। उन्होंने सैनिक संयंत्र और एंटीबायोटिकल तथा पेंसिलीन का भारत में निर्माण का आयोग स्थापित करके भारत के करोड़ों रुपये बचाये। इन वस्तुओं का अभी तक विदेशों से ही आयात किया जाता था। वे अहमदाबाद टैक्सटाइल इण्डस्ट्रियल एसोसिएशन तथा अहमदाबाद मनी एसोसिएशन के भी संस्थापक रहे। इस प्रकार उन्होंने एक बड़ी संख्या में सफल उद्योगों की स्थापना की।

डा. विक्रम अम्बालाल साराभाई ने कई अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त संस्थान स्थापित किये जिनमें से कुछ इण्डियन इन्स्टीटयूट् आफ मेनेजमेंट के नाम से विश्वस्तर पर प्रबंध शास्त्र के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध हैं।

वह इण्डियन नेशनल कमीशन फॉर स्पेसरिसर्च (INGOSPAR) तथा एटमिक रिसर्च कमीशन के अध्यक्ष थे। उन्हीं के मार्गदर्शन में धुम्बाइ क्विटेरियल रॉकेट लांचिंग स्टेशन (TERLS) की स्थापना हुई। उन्होंने सेटेलाइट संचार माध्यम से गांवों तक शिक्षा को पहुंचाने की योजनाएं बनाई। उन्हें 1966 में पद्मभूषण और उनकी मृत्यु के बाद पद्म विभूषण की उपाधि प्रदान की गई। उनकी मृत्यु भारत के लिए एक महान क्षति थी।

17.6 डा. ए.पी.जे अब्दुल कलाम

भारत के ग्यारहवें राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम का जन्म 15 अक्टूबर 1931 ई. में तमिलनाडु के द्वीपीय नगर रामेश्वरम में हुआ। विज्ञान और अभियान्त्रिकी के क्षेत्र में उनके अभूतपूर्व योगदान हेतु उन्हें भारत की सर्वोच्च उपाधि 'भारत रत्न' से 1997 में सम्मानित किया गया।

डा. कलाम की प्रारंभिक शिक्षा रामेश्वरम में ही हुई। उन्होंने रामनाथपुरम् के श्वार्ज हाई स्कूल से दसवीं कक्षा उत्तीर्ण की और मद्रास इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलोजी से एयरोनोटिकल इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की। डॉ. कलाम ने 1963-1982 तक इण्डियन स्पेस रिसर्च ऑरगेनाइजेशन (ISRO) में कार्य किया। विक्रम साराभाई स्पेस सेंटर में उन्होंने उपग्रह छोड़ने के लिए सेटेलाइट लांच विहीकल (SLV3) को विकसित किया जिसके द्वारा 1982 में 'रोहिणी' उपग्रह आकाश में छोड़ा गया। डिफेंस रिसर्च डिवेलपमेंट ऑरगेनाइजेशन (DRDO) के निदेशक के पद पर उन्हें इन्टीग्रेटेड गाइडेड मिसाइल डिवलपमेंट प्रोग्राम (IGMDP) का उत्तरदायित्व सौंपा गया। उन्होंने सुरक्षा सेवाओं के लिए पांच परियोजनाएँ विकसित की- पृथ्वी, त्रिशूल, आकाश, नाग और अग्नि।

उन्होंने भारत को आत्मनिर्भरता के युग में पहुंचा दिया। सतह से सतह पर मार करने वाली मिसाईल अग्नि एक अतुलनीय उपलब्धि है। इसके सफलतापूर्वक निर्माण ने भारत को अत्यधिक विकसित देशों के क्लब का सदस्य बना दिया।

'अग्नि' के लिए जो हल्के भार वाला कार्बन तैयार किया गया था, उसका प्रयोग पोलियो के पीड़ितों के कृत्रिम अंग बनाने के लिए किया जा रहा है। इसके कारण उस उपकरण का वजन 4 किलोग्राम से घट कर 400 ग्राम रह गया है। मनुष्यों के लिये यह एक बड़ी नियामत है। इस सामग्री का उपयोग हृदयरोग के बीमारों के लिए बैलून एन्जियोप्लास्टी के अंतर्गत प्रयुक्त किये जाने वाले स्प्रिंग जैसे छल्लों के जिन्हें स्टेन्ट (Stent) कहा जाता है, निर्माण में भी किया जाता है।

डा. कलाम का जीवन भारत की आत्मा का जीवंत प्रतीक है। वह भारतीय परम्पराओं और धर्म को सच्चे अर्थों में मानने वालों में हैं। उन्होंने विज्ञान को धर्म और दर्शन के साथ जोड़ दिया। वे अंत: प्रेरणा से मार्गदर्शन प्राप्त करने में विश्वास रखते हैं अर्थात बाहरी निर्देशों के स्थान पर अन्तरात्मा की पुकार को सुनना और निष्काम भावना से अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करना। डॉ. कलाम कहते हैं- मेरे पास वास्तविक अर्थों में कोई सामग्री नहीं है। मैंने कुछ भी नहीं कमाया है, कुछ भी नहीं बनाया है और मेरे पास कोई पुत्र-पुत्रियों आदि का परिवार भी नहीं है।

पाठगत प्रश्न 17.2

1. डा. होमी जे भाभा का शोध कार्य क्या था?

   ....

2. डा. भाभा के पूर्वजों के घर पर 1945 में कौनसा संस्थान खोला गया?

   ....

3. प्रथम आणविक रिएक्टर का नाम क्या था?

   ....

4. कॉस्मिक किरणें क्या हैं?

   ....

5. डा. विक्रम साराभाई ने कैसे भारत के करोड़ों रुपये बचाए?

....

6. TERLS क्या है?

....

7. डा. अब्दुलकलाम द्वारा विकसित सुरक्षा सेवाओं के लिए बनाई गई परियोजनाओं के नाम लिखिए।

....

8. डॉ. अब्दुल कलाम ने पोलियो-पीडितों की कैसे सहायता की?

....

आपने क्या सीखा

- श्रीनिवास रामानुजन एक महान गणित विषयक प्रतिभा थे जिन्होंने अपने क्षेत्र में बहुत सी विशिष्ट उपलब्धियाँ अर्जित कीं।
- सी.वी. रमन एक प्रतिभाशाली भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्होंने 1930 ई. में भौतिकी विषय में नोबल पुरस्कार प्राप्त किया। उनकी खोज कि प्रकाश फोटोन नामक कणों से बनता है, रमन प्रभाव कहलाता है।
- डा. जे सी बोस ने क्रेस्कोग्राफ का आविष्कार किया जिससे पौधों की वृद्धि और गति को नापा जा सकता है, कुछ अन्य उपलब्धियाँ हैं बोस यंत्र कहलाने वाले अनेक यंत्र।
- डॉ. होमी भाभा एक अन्य महान भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्होंने भारत को आणविक युग में प्रविष्ट करवाया।
- डा. विक्रम साराभाई आधुनिक भारत की एक अन्य विशिष्ट विभूति थे जिनके मार्गदर्शन में भारत का प्रथम उपग्रह 'आर्यभट' छोड़ा गया। वे एक बहुत बड़े उद्योगपति भी थे जिन्होंने अनेक उद्योगों की स्थापना की। वे INCOSPAR तथा आणविक शक्ति आयोग के अध्यक्ष भी थे।
- भारत के राष्ट्रपति डा. ए पी जे अब्दुल कलाम ने एस एल वी 3 का विकास किया जिसके माध्यम से 'रोहिणी' उपग्रह आकाश में छोड़ा गया। डी. आर. डी. ओ. के

निदेशक के रूप में उन्होंने पांच परियोजनाएं पृथ्वी, त्रिशूल, आकाश, नाग और अग्नि विकसित कीं। वे आज भी भारतीय युवाओं के प्रेरणा स्रोत हैं।

पाठांत प्रश्न

1. विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जगदीश चन्द्र बोस के योगदानों का वर्णन कीजिए।
2. भारत को एक उन्नत नाभिकीय शक्ति बनाने के लिए डा. होमी जे भाभा द्वारा किए गए प्रयत्नों का वर्णन कीजिए।
3. सी.वी. रमण ने कैसे सिद्ध किया कि हमारे पूर्वजों ने अपने मस्तिष्क की शक्ति का प्रयोग करते हुए बड़े-बड़े सिद्धान्तों की स्थापना की?
4. डा. कलाम का जीवन भारत की पवित्र आत्मा का प्रतीक है। विवेचना कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

17.1

1. होमी जे भाभा
2. गणित
3. बरनौली अङ्कों पर एक शोध पत्र
4. जी. एच. हार्डी
5. 1930 में
6. समुद्र का नीला रंग
7. प्रकाश के विकरण का एक कण
8. बिखरे हुए प्रकाश में एक प्रमुख प्रकाश की रेखा के समानान्तर दो बहुत कम चमक वाली रेखाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि यद्यपि पानी में डुबाया गया प्रकाश एकवर्णी था परन्तु बिखरा हुआ प्रकाश एकवर्णी नहीं था।
9. वे कण जो प्रकाश बनाते हैं।
10. उनका इलेक्ट्रोमेगनेटिक रेडिएशन एंड पोलेराइज़ेशन पर शोधपत्र
11. जगदीश चन्द्र बोस

12. एक पोधे के विकास और गति के एक सैन्टीमीटर के दस लाख वें हिस्से को भी नापना।

13. जगदीश चन्द्र बोस

17.2

1. कास्मिक रेडिएशन

2. टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ फण्डेमेंटल रिसर्च (TIFR)

3. अप्सरा

4. बाहरी अन्तरिक्ष से आने वाले शक्ति कणों की एक धारा कास्मिक किरणें कहलाती हैं।

5. उन्होंने सैनिक संयन्त्रों का निर्माण प्रारम्भ किया और भारत में एन्टीबायोटिक्स और पेन्सिलिन का निर्माण प्रारम्भ किया।

6. थुम्बा इक्वेटोरियल रोकेट लांचिंग स्टेशन।

7. पृथ्वी, त्रिशूल, आकाश, नाग और अग्नि

8. उन्होंने कैलिपर्ज का वज़न घटाकर 4 किलोग्राम से 400 ग्राम मात्र कर दिया।

18

भारत में शिक्षा

अब तक आप कला, स्थापत्य, धर्म और विज्ञान जैसे संस्कृति के विभिन्न घटकों के बारे में पढ़ रहे थे। हमारी संस्कृति का एक और महत्त्वपूर्ण पहलु शिक्षा है। लेकिन शिक्षा का वास्तविक अर्थ क्या है? शायद आप कहें कि इसका मतलब किताबें पढ़कर या विद्यालय जाकर कुछ सीखना है। यह कुछ हद तक सही है। सीखने के अनुभव का नाम शिक्षा है। पर हम जीवन में हर पल सीखते रहते हैं। बहरहाल, जहाँ तक सीखने के दूसरे अनुभवों की बात है वे अपनी प्रकृति में अचानक या परिस्थितिवश भी हो सकते हैं, लेकिन पढ़ाई-लिखाई का अनुभव सप्रयास और पूर्व-नियोजित कार्यक्रम के तहत होता है जिसका उद्देश्य किसी व्यक्ति के व्यवहार की पूर्व निर्धारित अवधारणाओं में बदलाव लाना है। आप इस पाठ्यक्रम के पाठों को पढ़ने के दौरान ऐसे ही एक अनुभव से गुजर रहे हैं। लेकिन क्या आपने कभी सोचा कि शिक्षा का संस्कृति से क्या संबंध है? पिछली पीढ़ियों से विरासत में मिलने वाले अनुभवों और उपलब्धियों का सार संस्कृति है। सामूहिक रूप से जुटाये गये इन अनुभवों और उपलब्धियों को आगे बढ़ाने की व्यवस्थित प्रक्रिया को हम शिक्षा कह सकते हैं। इसलिये शिक्षा न सिर्फ सांस्कृतिक धारणाओं और विचारों का प्रसार करती है बल्कि खुद इसका भी निर्माण सांस्कृतिक धारणाओं के अनुरूप ही होता है क्योंकि संस्कृति से ही इसका जन्म होता है। इसलिये संस्कृति में बदलाव आने के साथ ही शिक्षा पद्धति में भी बदलाव आ जाता है। इस पाठ में हम प्राचीन काल से चली आ रही शिक्षा पद्धति के क्रमिक विकास के बारे में पढ़ेंगे क्योंकि भारतीय समाज अपने सदस्यों की शिक्षा को एक प्राथमिक दायित्व के रूप में लेता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आपः–

- भारतीय इतिहास के विभिन्न युगों के दौरान शिक्षा की प्राचीन, माध्यमिक और आधुनिक प्रकृति का वर्णन कर सकेंगे;

- जैन और बौद्ध शिक्षा व्यवस्था के योगदान का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- समाज में महिलाओं को उपलब्ध शिक्षा के अवसर तथा उनके स्वरूप के संदर्भ में उनकी शैक्षिक स्थिति का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ शिक्षा से संबंधित उठाये गये कदमों का उल्लेख कर सकेंगे;
- शिक्षा को ज्यादा तर्कसंगत बनाने में मुगलों की भूमिका की सराहना कर सकेंगे;
- औपनिवेशिक काल के दौरान पश्चिमी शिक्षा के विस्तार के प्रभाव की जाँच कर सकेंगे; तथा
- स्वतंत्र भारत में शिक्षा के विभिन्न पहलुओं जैसे कि प्रारम्भिक शिक्षा, उच्च शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।

18.1 प्राचीन युग में शिक्षा

18.1.1 वैदिक युग

प्राचीन काल में गुरु उन्हीं शिष्यों को शिक्षा प्रदान किया करते थे जो उनके चारों तरफ रहते थे और उन्हीं के आश्रय में उनके परिवार के सदस्य के रूप में रहने आते थे। इस स्थान को गुरुकुल कहा जाता था। गुरुकुल (एक घरेलू विद्यालय) आश्रम की तरह कार्य करता था जहाँ बच्चों की शिक्षा गुरु के द्वारा प्रदान की जाती थी साथ ही गुरु ही उनकी देखभाल भी करते थे।

मुख्य रूप से शिक्षा उच्च जाति का विशेषाधिकार थी। गुरु और शिष्य के बीच अध्ययन एक आत्मीय रिश्ता था जिसे गुरु शिष्य परम्परा कहा जाता था। अध्ययन की शुरुआत एक धार्मिक अनुष्ठान, उपनयन संस्कार (पवित्र सूत्र अनुष्ठान) से होती थी। आमतौर पर शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी। इसमें वेद और धर्म शास्त्रों को पूरा या एक-एक अंश को कंठस्थ (याद) करना होता था। बाद में विभिन्न विषयों जैसे कि व्याकरण, तर्कशास्त्र, आधि-भौतिकी आदि पढ़ाया जाने लगा।

18.1.2 मौर्य काल

मैत्रायणी उपनिषद् में वर्णित है कि ज्ञान, विद्या, चिन्तन और तपस् की परिणति है। आत्म विश्लेषण से मनुष्य सत्त्व, मन की पवित्रता और आत्मसन्तुष्टि को क्रमशः प्राप्त कर सकता है। इस समय में स्वाध्याय ही सर्वोच्च ज्ञान को प्राप्त करने का उचित मार्ग समझा जाता था। इसका सर्वोत्तम उदाहरण तैत्तिरीय उपनिषद में मिलता है जहाँ वरुण का पुत्र भृगु अपने पिता के पास जाता है और उन्हें 'ब्रह्म क्या है?' पढ़ाने को कहता है। पिता उसको बताता है कि इसे 'ध्यान' से जानो। मौर्य और उत्तर मौर्य काल में भारतीय समाज में गहन परिवर्तन की

प्रक्रिया चल रही थी। शहरीकरण और व्यापार के कारण व्यापारियों ने महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। इसके परिणामस्वरूप व्यापारियों के संघ शिक्षा प्रदान कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे। ये संघ तकनीकी शिक्षा के केन्द्र बन गए और खनन, धातु विज्ञान बढ़ईगिरी, कपड़ा बुनने, रंगाई करने की विद्या प्रदान करते थे। निर्माण और वास्तुकला में नया परिवर्तन हो रहा था। नगरीय जीवन के उद्भव के साथ वास्तुकला की नई शैलियों का विकास हुआ। संघों ने समुद्र यात्रा के नाविकों की सहायता के लिए या नौवाहिनी के लिये नक्षत्रों की स्थिति का अध्ययन, अर्थात् खगोल विज्ञान को भी बढ़ावा दिया। खगोल वैज्ञानिक और सृष्टि वैज्ञानिकों के बीच समय (टाईम) को लेकर बहस आरंभ हो गयी। इस बहस के परिणामस्वरूप समय की नयी अवधारणा विकसित हुई, जो पुरानी अवधारणाओं से अलग थी। चिकित्सकीय ज्ञान आयुर्वेद के रूप में व्यवस्थित हुआ। वात, पित्त और कफ भारतीय आयुर्विज्ञान का आधार बने। तीनों का सही अनुपात में होना स्वस्थ शरीर के लिये आवश्यक था। जड़ी-बूटियों की चिकित्सकीय विशेषताओं की जानकारी और उनका इस्तेमाल बड़े पैमाने पर होने लगा। दवाइयों के लिय चरक और शल्य क्रिया के लिये सुश्रुत प्रसिद्ध थे। चरक द्वारा लिखित चरकसंहिता चिकित्सा विज्ञान विषयक प्रामाणिक और विस्तृत ग्रन्थ था। आपने चाणक्य के विषय में तो सुना ही होगा जो एक अतिप्रसिद्ध दार्शनिक, विद्वान और शिक्षक थे। उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ है अर्थशास्त्र। अर्थशास्त्र में उल्लिखित पाठ्यक्रम अधिकतर राजकुमारों की शिक्षा के विषय में है। उपनयन संस्कार के बाद राजकुमार चारों वेद सीखते थे और वैदिक अध्ययन में विज्ञान की शिक्षा भी सम्मिलित होती थी। वे तर्कशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति का भी अध्ययन करते थे। उस समय की शिक्षा प्रमुखतया जीवन कौशल विषयक होती थी जो आज की शिक्षा से बिल्कुल भिन्न थी। रामायण काल में राजकुमारों के पाठ्यक्रम में धनुर्वेद, नीतिशास्त्र, हाथियों और रथों की शिक्षा, आलेख्य और लेखन (चित्रकला और लेखन) लंघन (कूदना) अर्थशास्त्र (Economics) आदि विषय सम्मिलित थे।

18.1.3 गुप्त काल

गुप्त काल में जैन और बौद्ध व्यव्यस्था ने एक भिन्न आयाम ग्रहण कर लिया। बौद्ध मठ छात्रों को दस वर्षों के लिये दाखिला देते थे। पढ़ाई की शुरुआत मौखिक रूप से होती थी। उसके बाद साहित्यिक पाठ्यपुस्तकों को पढ़ना होता था। मठों में पुस्तकालय भी होते थे। महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपियों की नकल करके उन्हें रखा जाता था। अन्य देशों जैसे चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया से विद्यार्थी बौद्ध मठों में शिक्षा प्राप्त करने आते थे। आमतौर पर इन मठों की देखभाल राजा और गाँव के धनी व्यापारियों द्वारा की जाती थी। वे बहुत दूर दराज से विद्वानों को आकर्षित करते थे। फाह्यान ने पाटलिपुत्र के मठ में कई साल बिताए और बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। पाटलिपुत्र के अतिरिक्त शिक्षा के अन्य केन्द्र भी थे जैसे वाराणसी, मथुरा, उज्जैन और नासिक। नालन्दा विश्वविद्यालय सम्पूर्ण एशिया में विद्वत्ता के उच्च स्तर के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ पर वेदान्त, दर्शन, पुराणों का अध्ययन, रामायण, महाभारत, व्याकरण, तर्कशास्त्र, नक्षत्रविज्ञान, चिकित्सा शास्त्र आदि पढ़ाए जाते थे। दरबार की भाषा संस्कृत ही शिक्षा का माध्यम थी। जैन धर्मावलम्बियों में संस्कृत साहित्य जैसे

आदिपुराण और यशस्तिवलक आदि ग्रन्थों का शिक्षा के लिये शुरुआती दौर में प्रयोग किया। लेकिन शिक्षा को लोकप्रिय बनाने के लिए प्राकृत तथा प्रांतीय भाषाओं जैसे कन्नड़, तमिल आदि का इस्तेमाल कर इसे बहुमुखी बनाया गया। जैन और बौद्ध पुस्तकालयों में किताबें ताड़ के पत्तों पर लिखी जाती थीं जिनको एक साथ बाँधा जाता था और इसीलिये इन्हें ग्रंथ कहा जाता था। जैनियों और बौद्धों को धीरे-धीरे राजाओं का संरक्षण मिलना बंद होता गया और जल्दी ही बौद्ध मठ शिक्षा और अध्ययन के केन्द्र के रूप में अप्रसिद्ध होने लगे। ब्राह्मणों की सहायता से चलने वाले मठ जैन और बौद्ध मठों की तरह समानांतर संस्थायें थीं। मठों की कार्यविधि आश्रमों की तरह ही होती थी।

18.1.4 परवर्ती गुप्तकाल

कला और शिक्षा के क्षेत्र में हर्ष के समय बहुत उन्नति हुई। उन्होंने सभी स्तरों पर शिक्षा को बढ़ावा दिया। शिक्षा मन्दिरों और मठों में दी जाती थी और उच्च शिक्षा तक्षशिला, उज्जैन, गया और नालन्दा के विश्वविद्यालयों में। नालन्दा में ह्वेनसांग ने कई वर्षों तक बौद्ध धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया। एक सुप्रसिद्ध विद्वान शिलाभद्र इसका प्रधानाचार्य होता था।

7वीं और 8वीं शताब्दी में, मंदिरों से जुड़े घटिका या कालेजों का शिक्षा के नये केन्द्र के रूप में उदय हुआ। घटिका ब्राह्मणवादी शिक्षा मुहैया करवाते थे। इन संस्थाओं की शिक्षा का माध्यम संस्कृत होता था। इन मंदिर कॉलेजों में प्रवेश की अनुमति केवल उच्च जाति और 'द्विज' (दो बार जन्म लेने वाले) को थी। संस्कृत को लिखने-पढ़ने के माध्यम के रूप में इस्तेमाल करने के कारण आम जनता शिक्षा से दूर हो गयी थी। केवल समाज के सबसे ऊंचे तबके को ही शिक्षा का विशेषाधिकार था।

18.2 शिक्षा का उद्देश्य

प्राचीन भारत में शिक्षा एक व्यक्तिगत रुचि का मामला थी। शिक्षा का उद्देश्य शिष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करना था। छात्र की आत्मोन्नति और आत्मतुष्टि एवं स्वयं पूर्ति के रूप में शिक्षा के इस दृष्टिकोण से इसके अपनी तकनीक, नियम और प्रणाली बनाए गए। यह माना जाता था कि एक व्यक्ति के विकास का अर्थ उसके मन को प्रशिक्षित करना होता था जो कि ज्ञान को प्राप्त करने का यंत्र है। यह ज्ञान उसकी रचनात्मक क्षमता को समृद्ध करता है। चिंतन के सिद्धांत 'मनन शक्ति' को चिंतन के विषय से ऊंचा मानते थे। इस प्रकार शिक्षा का मूल विषय मन ही था।

18.3 विषय

(एप्लायड) प्रायोगिक विज्ञान जैसे कि धातु विज्ञान, ईंट पकाना, पॉलिश करना या चमकाना, क्षेत्र या आयतन को नापने का कार्य आदि प्राचीन भारत के लोगों को पता था। वैज्ञानिक औषधीय प्रणाली उत्तर वैदिक काल में विकसित हुई। तक्षशिला और वाराणसी जैसे

अध्ययन केन्द्रों में चिकित्सा और औषधि एक विषय के रूप में शुरू हुई। इस क्षेत्र में औषधियों पर 'चरक संहिता' और शल्य क्रिया पर 'सुश्रुत संहिता' दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। शल्य क्रिया को सुश्रुत ने 'चिकित्सा शास्त्र का उच्चतम और सबसे कम दोषपूर्ण विभाग कहा है।' गणित में अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित, खगोल विज्ञान और ज्योतिष शामिल था। व्यापार और वाणिज्य में इस्तेमाल होने के कारण गणित में लोगों की अधिक रुचि थी।

आर्यभट्ट द्वारा लिखित 'आर्यभटीय', गणित के क्षेत्र में एक प्रमुख योगदान है। खगोल विज्ञान पर एक और काम 'सूर्य सिद्धांत' है, जिसमें निरीक्षण के तरीकों और उपकरणों का विवरण है जो न तो सटीक है न ही प्रभावी।

हड़प्पा सभ्यता के समय के ताँबा और कांस्य के अवशेषों से उस समय में रसायन-विज्ञान और धातु विज्ञान के विकसित होने का पता चलता है। चमड़े को साफ करना, रंगना, नरम करना उस समय ज्ञात था।

18.4 भाषा

प्राचीन भारत में संस्कृत भाषा का उपभोग संपन्न लोगों ने किया था। यह ब्राह्मणों की शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होती थी। संस्कृत पढ़े-लिखे उच्च जाति के लोगों के साथ-साथ हिन्दु शासकों तथा दरबारियों की भाषा थी। बौद्ध धर्म के उदय के साथ-साथ प्राकृत एक भाषा के रूप में विकसित हुई। यह जनता की भाषा बन गयी थी। मौर्य सम्राट अशोक ने अपने शिलालेखों में 'प्राकृत' भाषा का इस्तेमाल किया। यह भी बड़ी रोचक बात है कि संस्कृत नाटकों में महिला पात्रों और सेवक पात्रों को औपचारिक प्राकृत भाषा में ही बुलवाया जाता था। पालि प्राकृत भाषा की ही एक और प्रकार थी। ज्यादातर बौद्ध रचनायें पालि और प्राकृत में हैं यद्यपि थोड़ी बहुत संस्कृत में भी हैं। एक और भारतीय आर्य भाषा अपभ्रंश थी, जो गुजरात और राजस्थान में कविताओं की रचना में जैन लेखकों द्वारा इस्तेमाल की जाती थी। तमिल, तेलगु, कन्नड़ और मलयालम आदि द्रविड़ भाषाओं का भी दक्षिणी भारत में इस्तेमाल होता था। उस समय के साहित्य में इस भाषा की अभिव्यक्ति है।

समाज में महिलाओं का स्थान संतोषजनक नहीं था। शादी से पहले तक पिता की और बाद में पति की सम्पत्ति के अलावा और कोई कानूनी हैसियत नहीं थी। पढ़ने के लिये घर के बाहर लड़कियों को भेजने के खिलाफ एक आम पूर्वाग्रह था। ऐसी मान्यता थी कि उन्हें घरेलू कामकाज, पति और बच्चों की सेवा और देखभाल करना सीखना चाहिये हालांकि हम संस्कृत में शिक्षित महिलाओं के कुछ अपवाद भी देखते हैं।

प्राचीन भारत की उन्नति का सबसे अच्छा उदाहरण नालंदा का विश्वविद्यालय था। ह्वेन सांग (Huien Tsang) एक प्रसिद्ध चीनी यात्री ने नालंदा विश्वविद्यालय को उच्च शिक्षा और शोध के लिये उच्च विश्वविद्यालय के रूप में वर्णित किया। नालन्दा विचारों के विभिन्न संघों के रूप में भी जाना जाता था जैसा कि उन विद्यार्थियों ने वर्णन किया है जिनके अपने छात्रावास होते थे। राजा बालपुत्रदेव ने उन विद्यार्थियों के लिए एक मन्दिर बनवाया जो जावा से नालन्दा पढ़ने आते थे।

पाठगत प्रश्न 18.1

1. शिक्षा का संस्कृति से क्या सम्बन्ध है?

   ....

2. 'उपनयन' संस्कार किसे कहते हैं?

   ....

3. प्राचीन भारत में शिक्षा कहाँ दी जाती थी?

   ....

4. प्राचीन औषध व्यवस्था का मूलाधार क्या था?

   ....

5. प्राचीन भारत में जैनियों द्वारा किन दो साहित्यिक ग्रन्थों का उपयोग शिक्षा में किया जाता था?

   ....

6. क्या कारण थे जिनके चलते सामान्य लोगों ने प्राचीन काल में शिक्षा से अपने को अलग कर लिया था?

   ....

18.5 मध्यकालीन भारत में शिक्षा

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद शिक्षा की मुस्लिम प्रणाली प्रचलित हुई। मध्यकालीन भारत में शिक्षा का विकास बगदाद के अब्बसिदों के मार्गदर्शन में पारंपरिक शिक्षा की तरह ही विकसित हुआ। इसके परिणामस्वरूप समरकन्द, बुखारा, ईराक जैसे देशों के विद्यार्थी मार्गदर्शन के लिये भारतीय विद्वानों से सपंर्क करने लगे थे। अमीर खुसरों का व्यक्तित्व एक उदाहरण स्वरूप मौजूद है। उन्होंने न केवल गद्य और कवितायें लिखने की कुशलता को विकसित किया बल्कि एक ऐसी नई भाषा को विकसित किया था जो उस समय की स्थानीय परिस्थिति के उपयुक्त थी। कुछ समकालीन इतिहासकार जैसे मिनहाजउस- सिराज, जियाऊद्दीन बरनी और अफीफ ने भारतीय विद्वानों के विषय में लिखा। भारतीय विद्वता के प्रमाण थे।

प्राथमिक शिक्षा देने वाले संस्थानों को मकतब के नाम से जाना जाता था। जबकि उच्च शिक्षा संस्थानों को मदरसा कहा जाता था। आमतौर पर मकतब जनता के चंदे से चलता था। मदरसों की देख-रेख शासकों और जागीरदारों द्वारा की जाती थी। छः विभिन्न प्रकार के संस्थान हुआ करते थे, (i) शासक और जागीरदारों द्वारा स्थापित और चलाये जाने वाले,

(ii) वे जो राज्य के अनुदान और सहयोग से विद्वानों द्वारा शुरू किये जाते थे, (iii) वे जो मस्जिदों के साथ जुड़े होते थे, (iv) वे जो मकबरों के साथ जुड़े होते थे, (v) वे जो व्यक्तिगत विद्वानों द्वारा शुरू किये और चलाये जाते थे, (vi) और वे जो सूफी विचारों के साथ जुड़े होते थे। कुछ प्रसिद्ध मदरसे जैसे दिल्ली के मुइज्जी, नासिरी और फिरोजी के मदरसे, बीदार का महमूद गवनी का मदरसा और फतेहपुर सीकरी में अबुल फज़्ल का मदरसा था। सीराते-फिगुज़ शाही ने चौदह विषयों की एक सूची दी जो मदरसों में पढ़ाये जाते थे जैसे न्यायशास्त्र, या दीरात जो कि विराम-चिह्न और कुरान को पढ़ने की विधि थी।

मुस्लिम शिक्षा पद्धति का यह लक्षण था कि– मुस्लिम शिक्षा प्रणाली मूलरूप में पारंपरिक तथा विषयवस्तु में आस्तिक थी। पाठ्यक्रम मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभाजित था, एक पारंपरिक (मनकलात) दूसरा तार्किक और वैज्ञानिक (माकुलात)। पारंपरिक विज्ञान में कानून, इतिहास और साहित्य आता था। तर्क, दर्शन, आयुर्वेद (दवाई, इलाज) गणित और खगोल विज्ञान तर्क संगत विज्ञान में आता था। बाद में पारंपरिक विज्ञान से ज्यादा तर्क संगत विज्ञान पर जोर दिया जाने लगा। पारंपरिक विषय इल्तुतमिश (सन् 1211-36) के समय से सिकंदर लोदी (सन् 1489-1517) के समय तक शिक्षा पर प्रभावी थे। यह परिदृश्य उस समय से बदलने लगा जब सिकंदर लोदी ने अपने भाई शेख अब्दुल्ला और शेख अजीजुल्ला को मुलतान से दिल्ली में बुलवाया था। उन्होंने पाठ्यक्रम में दर्शन और तर्क के अध्ययन को शामिल कर गया था।

मुगलों के समय में शिक्षा व्यवस्था

मुगलकाल में शिक्षा और अधिगम के क्षेत्रों में बहुत अधिक तरक्की हुई। मुगल शहंशाहों को सीखने से बहुत प्यार था और उन्होंने शिक्षा का पाठशालाओं, विद्यापीठों, मकतबों और मदरसों के माध्यम से प्रसार करने में बहुत योगदान किया। अकबर शैक्षिक संस्थाओं को अनुदान दिया करता था। उन्होंने जामामस्जिद के पास एक महाविद्यालय भी खोला। उस समय शिक्षा एक राज्य-विषय नहीं था। सामान्यतया मन्दिर और मस्जिद ही प्राथमिक शिक्षा के केन्द्र थे। वे शासकों, धनिकों और दानियों द्वारा दिए गए दान पर निर्भर थे। संस्कृत और फारसी मन्दिरों और मस्जिदों में पढ़ाई जाती थी। नारियों की शिक्षा का कोई प्रावधान नहीं था। शादी और समृद्ध परिवारों की महिलाएँ घर पर ही पढ़ती थीं।

मुगल शासक शिक्षा और साहित्य के बहुत बड़े संरक्षक थे। इस काल में उर्दू का भाषा के रूप में उदय हुआ जो फारसी और हिन्दी में लम्बे सम्पर्क के कारण बन पाई अर्थात् तुर्क और भारतीय। बाबर ने अपनी जीवनी ताज़ुके बाबरी लिखी।

भारत में शिक्षा

दिल्ली के मदरसों में गणित, खगोल, विज्ञान और भूगोल के अध्ययन को शामिल कर मुगल सम्राट हुमायूं ने शिक्षा को और ज्यादा तर्क संगत बनाया था। परिणामस्वरूप तत्कालीन प्रणाली में विद्यमान 'पूर्वाग्रह' कम हो गया था। काफी हिन्दू फारसी पढ़ने लग गये थे और

संस्कृत से फारसी में अनुवाद का काम भी हुआ था। अकबर ने लोक लेखा (अकांउट) प्रशासन, रेखागणित और ऐसे कई विषयों को जोड़ा था। उन्होंने अपने महल के बिल्कुल पास एक कार्यशाला बनवाई थी और उसकी देखभाल स्वयं करते थे। अकबर ने एक धर्मनिरपेक्ष वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली लागू करने की कोशिश की थी, पर रूढ़िवादियों द्वारा इसे पसंद नहीं किया गया। अकबर ने एक परिवर्तन की शुरुआत की थी, जो सदियों तक चलती रही। 18वीं सदी में कुछ संपन्न लोग शिक्षा में पश्चिमी तरीकों को शामिल करने के खिलाफ थे जिसमें खोज, पर्यवेक्षण, तहकीकात और प्रयोग आदि शामिल थे। पाठ को याद करना, चर्चा करना और लिखना मुस्लिम मदरसों में पढ़ाने का आधार था।

अकबर ने बहुत से विद्वानों को संरक्षण दिया जैसे अबुल फजल, फैज़ी, राजा टोडरमल, बीरबल और रहीम। वे उनके दरबार के नवरत्न थे जिन्होंने संस्कृति और शिक्षा के प्रसार में सहयोग दिया।

पाठगत प्रश्न 18.2

खाली स्थान भरें

1. मध्य काल में किन संस्थाओं ने विद्यालयी शिक्षा का प्रावधान किया?

   ....

2. मध्य काल में कौन मदरसों की देखभाल करते थे?

   ....

3. मध्य काल के कुछ प्रसिद्ध मदरसों के नाम लिखिए।

   ....

4. मुस्लिम शिक्षा प्रणाली की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं?

   ....

5. मध्य काल में पश्चिमी देशों ने किन विधियों को अपनाया?

   ....

6. अकबर ने शिक्षा में क्या-क्या परिवर्तन किए?

   ....

18.6 आधुनिक काल में शिक्षा

18.6.1 18वीं शताब्दी–आधुनिक काल का प्रारम्भ

भारत में सामाजिक जीवन के अन्य पक्षों की भांति शिक्षा के क्षेत्र में भी विगतशताब्दियों के कुछ पारम्परिक लक्षण चलते रहे। उच्च शिक्षा के प्राचीन प्रसिद्ध केंद्र जैसे तक्षशिला, नालन्दा, भागलपुर के पास विक्रमशिला, उत्तरी बंगाल में जगद्दल, काठियावाड़ में वल्लभी और दक्षिण में कांची बहुत पहले ही समाप्त हो चुके थे। इसके विपरीत इस्लामी शिक्षा शासकों और सम्भ्रान्त पुरुषों के संरक्षण में धीरे-धीरे पनपने लगी। फिर भी अधिकांश हिन्दु अपने समय के प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्रों में ही शिक्षा प्राप्त करते रहे और भाषाई साहित्य की उन्नति के साथ उन्होंने अपने शास्त्रों का भी अध्ययन किया। थामस ने 1891 में लिखा–कोई भी देश ऐसा नहीं होगा जहाँ ज्ञान का प्रेम इतने पहले उदय हुआ हो या जिसका प्रभाव इतना चिरस्थायी और शक्तिशाली रहा हो। उसके अनुसार 'अंग्रेजों ने भारत में प्रारम्भिक शिक्षा और उच्च शिक्षा की व्यवस्था देखी जिनमें से पहली मुख्यतया प्रायोगिक थी और दूसरी मूलतः साहित्यिक, दार्शनिक और धार्मिक।

लगभग डेढ़ सौ सालों तक अंग्रेज व्यापार और विजय हासिल करने में व्यस्त रहे और इस तरह उन्होंने शिक्षा के विकास सहित सभी तरह की सांस्कृतिक गतिविधियों से दूरी बनाये रखी। सन् 1781 में वारेन हेस्टिंग्स ने कलकत्ता मदरसा शुरू करने के साथ ओरियेंटल कॉलेज की शुरूआत भी की थी। उसके ये कदम मुख्य रूप से प्रशासनिक कारणों से थे। ग्यारह साल बाद सन् 1792 में वाराणसी निवासी जोनाथन डंकन ने स्थानीय हिंदुओं को शिक्षित करने के लिये वाराणसी में एक संस्कृत कालेज आरंभ किया जिससे वे यूरोपीय लोगों के सहायक बन सके।

उन्हीं दिनों ईसाई मिशनरियों ने प्राथमिक स्कूल खोलकर निम्न वर्गों के साथ-साथ अछूत लोगों को शिक्षा मुहैया करवाकर पश्चिमी शिक्षा को लागू करने का प्रयास किया।

18.6.2 उन्नीसवीं शताब्दी

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध को शैक्षणिक प्रयोगों का समय कहा जा सकता है। ईस्ट इंडिया कंपनी के सन् 1813 के चार्टर ऐक्ट द्वारा कंपनी ने एक लाख रुपया अलग से रख दिया ताकि साहित्य का पुनरुद्धार और प्रगति हो सके तथा पढ़े-लिखे भारतवासियों का उत्साहवर्धन और भारत में अंग्रेजों द्वारा शासित प्रांतों के लोगों में वैज्ञानिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार किया जा सके। प्राचीन शिक्षाविदों और आंग्लवादियों के बीच एक विवाद चला जिसे अन्ततः सन् 1935 के मैकाले के मिनट और बेन्टिक के प्रस्ताव ने हल कर दिया। यह तय हुआ कि यूरोपीय साहित्य और विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिये इस धन का इस्तेमाल किया जायेगा। विलियम बेंटिक ने अंग्रेजी को सरकारी काम काज की भाषा के रूप में अपनाया। सन् 1844 में लार्ड हेस्टिंग्स ने तय किया कि जो भारतीय अंग्रेजी में शिक्षित होंगे, उन्हें ही रोजगार दिया जायेगा।

सन् 1854 में वुड के घोषणापत्र ने शिक्षा नीति के उद्देश्य को स्पष्ट किया जो कि अंग्रेजी या अन्य कोई भी आधुनिक भारतीय भाषा के माध्यम से 'यूरोप' की विकसित कलाओं, विज्ञान, दर्शन और साहित्य की शिक्षा का प्रचार था। दस्तावेज में सुझाव दिया गया था कि बंबई (मुम्बई), मद्रास (चेन्नई) और कलकत्ता (कोलकाता) में विश्वविद्यालय स्थापित करने चाहियें। इसने निजी संस्थानों, अनुदान अनुमोदन प्रणाली, स्कूलों में शिक्षकों के प्रशिक्षण, महिला शिक्षा और ऐसे ही अन्य विकास कार्यों पर जोर दिया था। सन् 1857 में बंबई, मद्रास और कलकत्ता में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। सन् 1882 और 1887 में क्रमानुसार पंजाब और इलाहाबाद में विश्वविद्यालय स्थापित हुए।

18.6.3 बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भ

सन् 1901 में लार्ड कर्जन ने सार्वजनिक संस्थानों के निदेशकों के एक सम्मेलन को आयोजित किया जिससे उनके निर्णयों पर आधारित शैक्षणिक सुधारों के एक युग का सूत्रपात हुआ। सन् 1904 में इंडियन यूनिवर्सिटी एक्ट पास हुआ था, जिससे विश्वविद्यालय शिक्षण कर सकें, कॉलेजों का निरीक्षण कर सकें तथा उच्च शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के प्रयास कर सकें।

औपनिवेशिक शासन में जन शिक्षा को नजरअंदाज किया गया था। एक शहरी शिक्षित तबके के निर्माण का प्रयास किया गया जिससे यह तबका शासक और शासित के बीच बिचौलिये की भूमिका निभा सके। हाई स्कूल और विश्वविद्यालय दोनों स्तरों पर परीक्षा प्रणाली पर जोर दिया गया था। अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव एक समान नहीं था तथा शिक्षा का प्रसार गांवों से अधिक शहरों में हुआ। इसका सकारात्मक पहलू यह था कि इसने पढ़े लिखे राजनीतिक नेताओं व समाज सुधारकों का एक तबका पैदा किया जिन्होंने आजादी के संघर्ष में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। समाचार पत्र और प्रचार पत्रों ने जनता के बीच जागरूकता पैदा की।

18.6.4 अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव

अंग्रेजों ने स्कूलों और कॉलेजों में अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहित किया क्योंकि उन्हें प्रशासनिक कार्यालयों में क्लर्कों और बाबुओं की आवश्यकता थी। इससे भारत में लोगों की एक नई श्रेणी का जन्म हुआ जिन्होंने बाद में प्रशासन के कई पक्षों में और शासन में सहायता की। परिणामस्वरूप भारत में आई ईसाई मिशनरियों ने विद्यालय खोलने प्रारम्भ किए जहाँ अंग्रेजी पढ़ाई जाती थी। भारत में आप ऐसे कई स्कूल आज भी देख सकते हैं। बहुत से भारतीयों ने अपने बच्चों को इन विद्यालयों में भेजा क्योंकि वे सोचते थे कि इससे उन्हें सरकारी कार्यालयों में नौकरी मिल सकेगी। जैसा कि आप जानते हैं, हमें 1947 में अंग्रेजी राज्य से स्वतन्त्रता मिली और स्वतन्त्र भारत की भारत सरकार को अपनी जनता के लिए शिक्षा की योजनाएँ बनाने का उत्तरदायित्व संभाला।

क्या आप जानते हैं कि अंग्रेजी की शिक्षा अंग्रेज शासकों ने अपने हित में प्रारम्भ की थी परन्तु यह भारतीयों के लिए एक अन्य रूप में लाभदायक सिद्ध हुई। भारत के विभिन्न प्रदेशों में रहने वाले लोग अलग-अलग भाषाएँ बोलते थे और कोई भाषा ऐसी नहीं थी जिसे सभी समझते हों। भारतीयों द्वारा अंग्रेजी के प्रयोग ने एक ऐसी भाषा का प्रावधान किया जा पूरे देश में प्रचलित हो गई और समान कही सिद्ध हुई। अंग्रेजी पुस्तकें और समाचार पत्र समुद्र पार से अन्य देशों से नये विचार लाने लगे। स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र, समानता, भ्रातृत्व आदि के नये पश्चिमी विचार अंग्रेजी पढ़े भारतीयों के विचारों को प्रभावित करने लगे जिसने राष्ट्रीय चेतना को जन्म दिया। शिक्षित भारतीय अब अंग्रेजी राज्य से छुटकारा पाने के लिए सोचने लगे।

18.7 स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में शिक्षा

व्यक्तिगत, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये उन लोगों के लिये शिक्षा के एकीकृत कार्यक्रमों के लिए उपाय करने आवश्यक हैं, जिनके आर्थिक विकास के स्तर भिन्न-भिन्न हैं और जो भाषाई, सामाजिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण विकसित वर्गों से अलग हैं। इन कार्यक्रमों के आधार रूप में एक समान पाठ्यक्रम होना भी अनिवार्य है ताकि विविधता में एकता को सुदृढ़ करने के साथ-साथ देश के एक भाग से दूसरे भाग में आवागमन सुगम हो सके।

यदि शिक्षा के प्रसार के लिये यथोचित कदम नहीं उठाये गये तो आर्थिक विभेदों की खाई, क्षेत्रीय असंतुलन तथा सामाजिक अन्याय बढ़ता जायेगा जो समाज में कई प्रकार के तनावों को जन्म देगा। इसी कारण कोठारी शिक्षा आयोग (सन् 1964-66) के प्रतिवेदन में सन् 1966 में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि शांतिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन का एकमात्र साधन शिक्षा है। इसी उद्देश्य से सन् 1976 में संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल किया गया जिसका अर्थ था कि शिक्षा केन्द्र और राज्य सरकार दोनों की जिम्मेदारी होगी।

18.7.1 प्रारंभिक शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम आठ वर्षों की प्रारंभिक स्कूली शिक्षा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवस्था है। यही वह स्तर है जहाँ विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, अभिवृत्तियों, सामाजिक, आत्मविश्वास, आदतों जीवन कौशलों तथा सम्प्रेषण कौशलों की क्षमताओं का विकास होता है। इसी को ध्यान में रखते हुये भारतीय संविधान के (Article -45) के तहत राज्यों को चौदह वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए अनिवार्य तथा नि:शुल्क शिक्षा प्रदान किये जाने का निर्देश दिया गया है। संवैधानिक संशोधन के अन्तर्गत शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में प्रस्तुत करते हुए प्रारम्भिक शिक्षा की अवधि को अब नि:शुल्क अनिवार्य शिक्षा की अवधि के रूप में स्वीकृत किया गया है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति सन् 1986 में प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत महत्त्व दिए जाने वाले क्षेत्र हैं–

(क) सार्वभौमिक पहुँच और पंजीकरण

(ख) स्कूल में 14 वर्ष की उम्र तक सभी बच्चों के लिये सार्वभौमिक ठहराव।

(ग) शिक्षा की गुणवत्ता में महत्त्वपूर्ण सुधार ताकि सभी बच्चे अध्ययन के आवश्यक स्तर को प्राप्त कर सकें।

सर्वशिक्षा अभियान- केन्द्रीय सरकार का यह महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम 2001 में प्रारम्भ हुआ इस अभियान के अन्तर्गत सरकार का लक्ष्य था कि 2010 तक 6-14 साल के सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान की जाये।

18.7.2 माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा एक अत्यधिक शारीरिक परिवर्तन और पहचान के निर्माण का समय है। यह विशिष्ट अभिव्यक्ति और शक्ति का भी समय है।

माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में असाधारण विस्तार हुआ है। इसमें 14 से 18 (कक्षा 9-12) आयुवर्ग के बच्चे आते हैं। 2001 की जनगणना के हिसाब से 88.5 मिलियन बच्चे माध्यमिक शिक्षा में भर्ती हुए। हालांकि नामांकन सूत्र दिखाते हैं कि इनमें से केवल 31 मिलियन बच्चे 2001-2002 में स्कूल गये। जबकि स्कूलों और दाखिले में बच्चों की संख्या में बढ़ोतरी हुई वहीं शिक्षकों की संख्या में कम बढ़ोतरी हुई। यह स्पष्ट है कि कुल रूप से इसने गुरु-शिष्य के अनुपात को प्रभावित किया। जैसे-जैसे देश शिक्षा के सार्वभौमीकरण की ओर आगे बढ़ेगा वैसे-वैसे स्कूलों की संख्या बढ़ाने के लिए भी दबाव बढ़ता जायेगा। यद्यपि भारत में जो भी विद्यार्थी माध्यमिक शिक्षा (दसवीं कक्षा तक) ग्रहण करना चाहे वह कर सकता है किन्तु उच्च प्रारंभिक कक्षा पास करने वाले विद्यार्थियों में से आधे से अधिक माध्यमिक कक्षाओं में प्रवेश नहीं लेते। प्रारम्भिक स्तर पर सर्व शिक्षा अभियान की सफलता के पश्चात् केन्द्रीय सरकार अब माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पूरी तरह तैयार है जिसका प्रावधान राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के अन्तर्गत किया गया है और जिसके बारे में हम सेक्शन 18.9 के अन्तर्गत पढेंगे।

व्यावसायिक शिक्षा- व्यावसायिक शिक्षा वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर एक अलग तरह की शिक्षा है। इसका उद्देश्य, विद्यार्थियों को एक विशिष्ट रोजगार के लिये तैयार करना है जिसमें विभिन्न प्रकार की गतिविधियाँ शामिल हैं। सन् 1968 में लागू की गई पहली शिक्षा नीति में अपनाये गये सुधारों का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माध्यमिक शिक्षा में व्यावसायिक शिक्षा पर जोर देना था। किन्तु इस दिशा में किये गये प्रयत्न फलीभूत नहीं हो सके। यद्यपि आशा की गयी थी कि +2 स्तर पर पचास प्रतिशत तक विद्यार्थियों के नाम स्कूल में दर्ज होंगे किन्तु वास्तव में यह संख्या अधिक नहीं रही और केवल कुछ राज्यों तक ही सीमित रही है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के लिये प्लानिंग कमीशन के अनुसार लगभग 5114। औद्योगिक शिक्षा संस्थान (ITI) होंगे। जो 57 इन्जीनियरिंग और अन्य व्यापारों में प्रशिक्षण देंगे। वर्तमान में इस दिशा में एक सकारात्मक प्रयत्न है एक राष्ट्रीय कौशल विकास और प्रशिक्षण मिशन की स्थापना।

18.7.3 उच्च शिक्षा- भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं जवाहरलाल नेहरू, जिन्होंने भारत के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की आधारशिला रखी थी, कहा था यदि विश्वविद्यालय सुचारु रूप से चलते रहे तो देश का भविष्य सुरक्षित रहेगा। उच्च शिक्षा का प्रारंभ तब होता है जब एक विद्यार्थी उच्चतर माध्यमिक (कक्षा बारह) शिक्षा पूर्ण कर लेता है। तब वह कालेज या महाविद्यालय में प्रवेश लेता हैं जो विश्वविद्यालय का ही एक हिस्सा होता है। यद्यपि उच्च शिक्षा को महत्त्वपूर्ण भूमिका सौंपी गयी थी तथापि इस दिशा में की गयी प्रगति अत्यंत रूप से असमान रही है। जहाँ कुछ कालेजों और विश्वविद्यालयों ने शैक्षिक श्रेष्ठता हासिल कर अपनी भूमिका सही ढंग से निभाई है वहीं देश के अधिकांश कालेजों और विश्वविद्यालयों की सामान्य दशा देश के लिये एक चिंता का विषय है।

उच्च शिक्षा में नामांकित 18 से 20 वर्ष आयु वर्ग के विद्यार्थियों की संख्या अत्यंत कम है। यह अनुपात कई प्रदेशों में तो बहुत ही कम है विशेष रूप से स्त्रियों, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के संबंध में। ग्रामीण क्षेत्रों में तो अच्छे स्तर की उच्च शिक्षा नाममात्र को है। विभिन्न कालेजों में सुविधाओं के स्तर में भी अंतर है। यह आवश्यक है कि विभिन्न कालेजों में दी जाने वाली शिक्षा के पाठ्यक्रमों में समानता हो तथा ऐसे विषय पाठ्यक्रम में सम्मिलित किये जायें जो व्यक्ति के जीवन और व्यक्तित्व विकास के लिये आवश्यक हों तथा विद्यार्थियों में विवेक, बुद्धि, जिज्ञासा तथा सीखने समझने की क्षमता का विकास करें। राज्य ने उच्च शिक्षा के लिये आर्थिक सहायता प्रदान कर उसे काफी सस्ता बनाया है। शुल्क के रूप में कालेज के विद्यार्थी को काफी कम कीमत देनी पड़ती है। उसकी शिक्षा में होने वाले अन्य व्यय राज्य या केन्द्र सरकारों द्वारा वहन किये जाते हैं। यह सार्वजनिक धन है जिसे सोच विचार कर उन्हीं विद्यार्थियों पर खर्च करना चाहिये जो इसके योग्य हैं।

प्रौढ़ शिक्षा- प्रौढ़ों में व्याप्त अशिक्षा को दूर करना भी एक अनिवार्य लक्ष्य के रूप में निर्धारित किया गया है। छठी योजना में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अंतर्गत पंद्रह से पैंतीस वर्ष की आयु के वयस्कों में शिक्षा के प्रसार को स्थान दिया गया है। इसके तहत राष्ट्रीय साक्षरता अभियान (NLM) का लक्ष्य 80 मिलियन अशिक्षित व्यक्तियों को। कार्यकारी साक्षरता प्रदान करना और व्यावसायिक शिक्षा प्रशिक्षण (IVET) देना है। स्वतन्त्रता के बाद 1951 में 7+ की जनसंख्या में साक्षरता दर 18.3% थी जो 2011 में 74% तक बढ़ गई। पुरुष साक्षरता दर 82.14% है और महिला साक्षरता दर 74% है। तकनीकी शिक्षा के महत्त्व से इंकार करना असंभव है। भारत में प्रशिक्षित जन शक्ति का बड़ा भंडार है। तकनीकी शिक्षा और प्रबंधन शिक्षा के पाठ्यक्रमों को उद्योगों की वर्तमान और अनुमानित जरूरतों के मुताबिक बनाया गया। देश के वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास में ये तकनीकी रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति शक्ति का स्रोत रहे हैं। अक्सर यह कहा जाता है कि हमारे अधिक प्रतिभाशाली इंजीनियरों को उस प्रकार की नौकरियों और काम का माहौल नहीं मिल पाता कि वह आर्थिक और मानसिक रूप से संतुष्ट हो सकें। इसके चलते यहाँ बड़े पैमानें पर ब्रेन ड्रेन हो रहा है। इसका तात्पर्य है या तो वह विकसित देशों में चले जाते हैं अन्यथा प्रबंध क्षेत्रों में। ब्रेन ड्रेन (प्रतिभाओं का पलायन) का अर्थ है- 'जब प्रतिभावान

स्त्री या पुरुष जो उच्च शिक्षा प्राप्त और होशियार हों, वे बेहतर आय और सुविधाओं की तलाश में स्वदेश छोड़कर विदेश चले जाते हैं इस स्थिति को ब्रेन ड्रेन कहा जाता है। भारत में तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के कई प्रतिष्ठित केन्द्र हैं जैसे भारतीय तकनीकी संस्थान (IIT) और भारतीय प्रबंधन संस्थान (IIM)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति– स्वतंत्रता के पश्चात देश के संसाधनों का एक बड़ा भाग शिक्षा में लगाया गया है। अतः शैक्षणिक संस्थानों से कुशलतापूर्वक कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। स्वतंत्रता पश्चात् भारत में शिक्षा की दिशा में सन् 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक महत्त्वपूर्ण कदम थी। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय विकास, एकरूप नागरिकता तथा संस्कृति की भावना को बढ़ाना तथा राष्ट्र की अखंडता को सशक्त बनाना था। इसने शिक्षा व्यवस्था में आमूल परिवर्तन पर जोर दिया ताकि प्रत्येक स्तर पर उसमें गुणात्मक परिवर्तन आ सके उसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर अधिक बल दिया गया ताकि नैतिक गुणों का विकास हो तथा जन जीवन और शिक्षा में अधिक सार्थक संबंधों की स्थापना हो सके।

यह भी ध्यान दिये जाने योग्य है कि पिछले कुछ वर्षों की उपलब्धियों के बल पर ही नयी नीति (सन् 1986) का निर्माण किया गया था। भारत में स्कूलों का पहले से ही एक विस्तृत जाल बिछा हुआ है। लगभग 95 प्रतिशत जनता के एक किलोमीटर के दायरे में एक प्राथमिक स्कूल है और 80% जनता माध्यमिक विद्यालय से तीन किलोमीटर दूर है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (सन् 1986) के अनुसार 15-35 आयु-वर्गों के लोगों को साक्षर बनाने के लिये एक व्यापक कार्यक्रम राष्ट्रीय साक्षरता का मिशन शुरू हुआ।

भारत में दूरदर्शन और रेडियो स्टेशनों का भी राष्ट्रीय नेटवर्क है। एक उपग्रह की उपलब्धता और अधिकांश जनता तक पहुँचने वाले दूरदर्शन का विस्तार वह महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जो शिक्षण-अधिगम व्यवस्था में क्रांति लाने की ताकत रखते हैं। इनके माध्यम से औपचारिक शिक्षा की संवृद्धि कर शिक्षण व्यवस्था तथा अनौपचारिक शिक्षा तथा दूरस्थ शिक्षा को समर्थन देकर इनमें क्रांतिकारी परिवर्तन लाये जा सकते हैं।

प्रत्येक जिले में नवोदय विद्यालयों (आदर्श स्कूलों) की स्थापना न केवल केन्द्र की शिक्षा के संबंध में प्रतिबद्धता को प्रतिबिम्बित करती है बल्कि शिक्षा के क्षेत्र में सबकी समानता स्थापित करने की उसकी चिंता को भी प्रकट करती है। इन विद्यालयों के माध्यम से विशेषकर ग्रामीण इलाकों के प्रतिभाशाली विद्यार्थी उत्तम शिक्षा ग्रहण करने में समर्थ हो सकेंगे चाहे उनके माता-पिता का आर्थिक स्तर कैसा भी हो।

पत्राचार शिक्षाः दूरस्था शिक्षा– भारत में अनेक विद्यार्थी ऐसे हैं जिन्हें औपचारिक शिक्षा पद्धति बीच में ही छोड़नी पड़ती है। इसके भिन्न कारण हो सकते हैं। जैसे आर्थिक, भौगोलिक, शैक्षिक या चिकित्सा संबंधी। मुक्त और दूरस्थ शिक्षा ऐसे शिक्षार्थियों के लिए ही है। पत्राचार संस्थाओं द्वारा भेजे गये अभ्यासों द्वारा कक्षा में उपस्थित हुये बिना ही विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर सकता है। साथ ही वह विद्यार्थी अपनी पढ़ाई के साथ-साथ अपनी नौकरियों या व्यवसाय में भी कार्यरत रह सकते हैं।

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी प्रत्यक्ष रूप से शिक्षक के सपंर्क में नहीं होता है। वह उससे दूर होता है। खुले विद्यालय माध्यमिक (Class X) और उच्चतर माध्यमिक (Class XII) दोनों स्तर की शिक्षा देते हैं। आपने भी मुक्त विद्यालय में दाखिला लिया है। आप जानते हैं कि अपनी नियमित नौकरी को बनाए रखते हुए भी आप भेजे गए पाठों के द्वारा पढ़ाई कर सकते हैं। ये पाठ बहुत श्रम से तैयार किये जाते हैं। यह खुली व्यवस्था कहलाती है क्योंकि इनमें विषयों, शिक्षण के माध्यम (भाषा) तथा परीक्षा में लचीलापन है। आप अपनी सुविधानुसार कोई भी विषय चुन कर पाँच सालों में उनकी परीक्षा दे सकते हैं। ओपन स्कूल और इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्व विद्यालय के माध्यम से इसी प्रकार की दूरस्थ शिक्षा की सुविधा दी जा रही है।

इन संस्थाओं के माध्यम से शिक्षा भारत के प्रत्येक उस नागरिक तक पहुँच सकती है जो इतना भाग्यशाली नहीं है कि औपचारिक नियमित शिक्षा ग्रहण कर सके। इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा का तीव्र गति से विस्तार हुआ है। देश के विकास, अखंडता और शिक्षा के क्षेत्र में समानता के हमारे लक्ष्य तभी उपलब्ध हो सकते हैं जब इस देश का प्रत्येक बच्चा एक न्यूनतम शिक्षा के द्वार तक पहुँच जाये। एक ऐसे कार्यक्रम की आवश्यकता है जो विकास, कठिन परिश्रम तथा श्रेष्ठता के वातावरण को बढ़ावा दे और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति नवीन दृष्टिकोणों और विचारों को प्राप्त भी कर सके और साथ ही उन्हें बढ़ावा भी दे सकें।

आपने क्या सीखा

- वैदिक काल में आश्रमों द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती थी, जो कि मुख्य रूप से उच्च जाति के लिये सहूलियत थी।
- ईसा पूर्व 200 साल से सन् 300 के दौरान गिल्ड द्वारा भी शिक्षा प्रदान की जाती थी जो कि तकनीकी शिक्षा के केन्द्र बन गये थे।
- बौद्ध मठों और शिक्षा की जैन प्रणाली ने विश्व में भारत को एक नेतृत्वकारी अध्ययन केन्द्र बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।
- दिल्ली सल्तनत स्थापित होने के बाद मुस्लिम शिक्षा प्रणाली ने प्राथमिक और उच्च शिक्षा दोनों क्षेत्रों में एक विस्तृत प्रणाली लागू की थी।
- पश्चिमी शिक्षा के लागू होने पर कुछ बुनियादी परिवर्तन हुआ जैसे कि 'अछूतों' सहित समाज के सभी तबके को शिक्षा मुहैया कराना।
- सन् 1986 की शिक्षा की नई राष्ट्रीय नीति स्वातन्त्र्योत्तर भारत में शिक्षा के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कदम था।

पाठांत प्रश्न

1. प्राचीन काल में शिक्षा के विकास को संक्षेप में दर्शाइए।
2. मध्य भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद शिक्षा के क्षेत्र में उठाए गए कदमों के विषय में विवेचना कीजिए।
3. मुगल काल में शिक्षा व्यवस्था में क्या परिवर्तन किए गए?
4. 1854 से 1904 तक शिक्षा के विकास की व्याख्या कीजिए।
5. स्वतन्त्र भारत में निरक्षरता को दूर करने के लिए क्या कदम उठाए गए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

18.1 1. संस्कृति में परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षा व्यवस्था भी बदलती है।

2. शिक्षा की प्रक्रिया उपनयन संस्कार के बाद प्रारम्भ होती है।

3. आश्रमों में

4. वायु, कफ और पित्त

5. आदिपुराण और यशस्तिलक

6. अ. शिक्षा केवल उच्चवर्गीय समाज का ही विशेषाधिकार था।

   ब. शिक्षा में संस्कृत भाषा का प्रयोग

18.2 1. मकतब

2. राजा (शासन) और सामन्तगण

3. मुइज्जी, नासिरी, फिरुजी (दिल्ली में)

   मुहम्मद गवानी का मदरसा (बिहार)

   अब्दुल फजल का मदरसा (फतेहपुर सीकरी)

4. यह भाव में पारम्परिक तथा विषयवस्तु में आध्यात्मिक था

5. इसके अन्तर्गत शिक्षा में खोज, अवलोकन, जांचपड़ताल और परीक्षण आते थे।

6. उसने शिक्षा में धर्मनिरपेक्ष और वैज्ञानिक व्यवस्था प्रारम्भ की।

18.3 1. यूरोपियन साहित्य और विज्ञान को बढ़ावा देना।

2. विलियम बैंटिंक

3. 1904
4. बम्बई, मद्रास और कलकत्ता
5. एक शिक्षित शहरी सुशिक्षित वर्ग तैयार करना जो शासन और शासित के मध्य व्याख्याता का कार्य करे।
6. सामाजिक सुधारकों और सुशिक्षित राजनैतिक नेताओं का एक नया वर्ग उत्पन्न हुआ जिसने देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में सहायता प्रदान की।
7. 1976 के संवैधानिक संशोधन के द्वारा
8. 1986 में
9. (अ) सार्वभौमिक पहुंच और नामांकन

   (ब) 14 वर्ष की आयु तक बच्चों की सार्वभौमिक धारण क्षमता

   (स) शिक्षा की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार जिससे सभी बच्चे अधिगम के आवश्यक स्तर को प्राप्त कर सके।
10. यह शिक्षा की प्रमुख धाराओं से बच्चों को परिचित कराती है।
11. (अ) 18-20 वर्ष के आयु वर्ग में छात्रों की उच्च शिक्षा में नामांकन संख्या बहुत कम है।

    (ब) उच्च शिक्षा में महिलाओं, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का अनुपात चिन्तनीय है।
12. 15-35 वर्ष

19

भारतीय समाज की संरचना

हमने भारतीय संस्कृति की विविधता के विषय में, इस देश में रहने वाले तरह तरह के लोगों के बारे में और उनके विविध रीति-रिवाजों और परम्पराओं के बारे में विचार विमर्श किया है। सम्भवत: विश्व के अन्य देशों में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ के लोगों की क्षेत्र (उत्तरी भारत, उत्तरी पूर्वी भारत, दक्कन और दक्षिणी भारत आदि), भाषा (हिन्दी, तमिल और तेलुगू आदि) और धर्म (हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध, जैन और सिख) आदि कई तथ्यों के आधार पर विविध प्रकार की पहचान है। इन पहचानों में से प्रत्येक और इसी प्रकार की अन्य समानताएँ एक विशिष्ठ सामाजिक सम्बन्धों अर्थात एक विशिष्ट सामाजिक संरचना का निर्माण करती हैं। फिर भी यहाँ ऐसे बहुत से तन्तु हैं जो सभी निवासियों को एक सूत्र में पिरोते हैं। अत: भारतीय सामाजिक संरचना को समझना इसलिए आवश्यक है कि इससे समाज में एक दूसरे के साथ समबन्ध स्पष्ट होते हैं। इस संरचना से यह भी पता चलता है कि हमारे समाज में किस प्रकार की सामाजिक संस्थाएं कार्यरत हैं और समय के साथ उनके स्वरूप में कैसे परिवर्तन हुआ। इस पाठ में आप पढेंगे कि विगत युगों में भारतीय समाज में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं और आज क्या स्थिति है?

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :

- भारतीय समाज की संरचना का परीक्षण कर सकेंगे;
- भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्रचलित अस्पृश्यता की प्रथा का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत में दास प्रथा किस रूप में विद्यमान थी, इसका विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे;
- पुरूषार्थ, आश्रम और संस्कार की अवधारणा को समझ सकेंगे;
- जजमानी व्यवस्था का वर्णन कर सकेंगे;
- भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवार और विवाह की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- भारतीय सामाजिक संरचना में नारी के स्थान का आंकलन कर सकेंगे;
- भारत में आदिम जनजाति समूह की दशा का परीक्षण कर सकेंगे।

19.1 भारतीय समाज का ढांचा

जनजाति समूह प्राचीन नृजातीय-सामाजिक संगठनों में से एक है जिसकी अलग पहचान है। भारत के विभिन्न भागों में पर्याप्त संख्या में मुण्डा, हो, उराँव, भील, गद्दी, संथाल, कोल, कांध, खासी, गारो, मिजो, नागा आदि आदिम जनजातियाँ पायी जाती हैं। इन सबको भारतीय संविधान की एक अनुसूची में दर्ज किया गया है और इसीलिए इन्हें अनुसूचित जनजाति के नाम से जाना जाता है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि अनुसूचित जनजाति कौन हैं तथा एक जनजाति समूह वर्ण और जाति के आधार पर बने अन्य जनसमूहों से किस प्रकार भिन्न है? इसका उत्तर इन जनजाति समूहों के क्रियाकलापों में निहित है। हम इन जनजाति समूहों को निम्नलिखित विशेषताओं से पहचान सकते हैं (i) सभी सदस्यों के बीच खून का रिश्ता होता है। (ii) समूह में सभी सदस्यों का बराबरी का स्थान है। (iii) सभी सदस्य विश्वास करते हैं कि वे एक ही पूर्वज की सन्तान हैं। (iv) सभी सदस्यों का समूह के संसाधनों पर समान अधिकार होता है। (v) निजी सम्पति का ज्ञान प्रायः नहीं के बराबर है। (vi) केवल आयु और लिंग के आधार पर ही सामाजिक भेदभाव होता हैं। ये जनजाति समूह प्रायः एक से ज्यादा कुलों से बनते हैं। कुल एक 'बहिर्विगही' संस्था है। जबकि जनजाति एक अन्तर्विगही संस्था है। ऐसे जनजाति समूह वैदिक युग में भी होते थे। भरत, यदु, तुर्वस, द्रुह्यु, पुरू, अनु आदि कुछ प्रमुख आदिम जनजाति समूह थे। इन जनजाति समूहों का मुखिया राजा कहलाता था, जो सभी समकक्षों में प्रथम होता था। इन लोगों में वर्ण अर्थात रंग के आधार पर भेदभाव होता था। जो लोग जनजाति समूहों के सदस्य नहीं होते थे वे दास वर्ण कहलाते थे। उनकी भाषा भी अलग होती थी, रंग काला होता था और वे भिन्न देवताओं की पूजा करते थे।

यह प्रारम्भिक भेदभाव बाद में जटिल वर्णव्यवस्था में बदल गया जिससे इन जनजाति समूहों के स्थान पर समाज चार श्रेणियों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामक वर्गों में बंट गया। इन जनजाति समूहों के समय-समय पर होने वाले अंदरूनी तथा आपसी लड़ाई-झगड़ों के परिणामस्वरूप, पराजितों पर आधिपत्य तथा लूटी गई संपदा का विजेताओं द्वारा हड़पन और धन का असमान वितरण इन श्रेणियों के उभरने के प्रमुख कारण थे।

ब्राह्मण वर्ण के सदस्य प्रायः पुरोहितों का काम करते थे। क्षत्रिय राजनैतिक कार्यों में संलग्न रहते थे। वैश्य प्रायः किसान होते थे और शूद्र सेवा का काम करते थे। पहले दो वर्ण मिलकर संख्या में अधिक तथा उत्पादन में अग्रणी तृतीय वर्ण वैश्यों का शोषण करते थे और तीनों वर्ण मिल कर शूद्रों का शोषण करते थे। ऊपर के तीनों वर्णों का 'उपनयन' संस्कार होता था और इन्हें 'द्विज' कहा जाता था।

उत्तर वैदिक काल में आर्थिक व्यवस्था में बहुत अधिक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों को नई विचारधाराओं की सहायता की आवश्यकता थी, जो अनेक प्रगतिशील धार्मिक आन्दोलनों के रूप में उन्हें प्राप्त भी हुई जैसे बौद्धधर्म जिसने हिन्दु धर्म की सामाजिक व्यवस्था को नकार दिया। लेकिन बौद्धधर्म जाति व्यवस्था को पूरी तरह नकार नहीं सका। बौद्ध मत में समाज की पदवियों में क्षत्रिय सबसे उच्च जाति कही जाती थी। ब्राह्मणों द्वारा उत्पीड़ित वैश्यों ने

बड़ी संख्या में इन धर्मों को अपनाया जिससे उन्हें समाज में आदर मिल सके। चूंकि बौद्ध और जैन धर्म मठो में किसी प्रकार के जातिवाद के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाता था।

वर्ण/जाति प्रथा में फिर परिवर्तन आया जब नए वर्ग जैसे शक, कुषाण, पार्थिसन और इंडो-ग्रीक (भारतीय-यूनानी) आदि भारत में आ गए। फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में भी परिवर्तित हुई। शहरीकरण का विस्तार, हस्तशिल्प का उत्पादन, और व्यापार के विकास-विस्तार के साथ ही व्यावसायिक संगठन अथवा (श्रेणी-धर्म) 'श्रेणी' का उदय हुआ, जो बाद में एक जाति बन गई। 'श्रेणी' के सदस्यों के व्यवहार का अनुशासन एक श्रेणी-अदालत द्वारा किया जाता था। रीतिरिवाजों के अनुसार इन व्यवसायिक संगठनों के पास कानून की ताकत होती थी। ये व्यवसायिक संगठन बैंकों का काम, पैसे के लेन-देन, और न्यासी का भी काम करते थे। प्राय: ये सभी काम एक भिन्न प्रकार के व्यापारीयों द्वारा किया जाता था। जिन्हें श्रेष्ठिन् (वर्तमान में उत्तर भारत में सेठ और दक्षिण भारत में चेट्टी और चेट्टीयार कहा जाता है) इस प्रकार 500 ई पू. से 500 ई. पश्चात् की अवधि में जाति व्यवस्था एक सुनिश्चित प्रथा बन गई। जातियों की संख्या में आशातीत वृद्धि हो गई क्योंकि नए हस्तशिल्पों का उदय, नए लोगों का आगमन, अन्तर्जातीय विवाह (अनुलोम और प्रतिलोम) और जातिश्रेणियों में अनेक जनजातिय समूहों का आगमन हो रहा था। धर्मशास्त्रों और स्मृतियों ने प्रत्येक जाति के कर्तव्यों को निर्धारित करने का प्रयत्न किया। जातियो के मध्य संबंध प्राय: सजातीय विवाह, सहभोज और शिल्पकर्म की विशिष्टता के आधार पर निर्धारित थे।

पांचवी और सातवीं शताब्दियों के बीच में वर्ण/जाति व्यवस्था में और भी अधिक परिवर्तन आए। भूमि-अनुदान के कारण भूमिपतियों की उत्पत्ति के फलस्वरूप वैश्य सेवा करने वाले किसान बन गए। बहुत से जनजातिय किसान शूद्रों के रूप में परिवर्तित हो गए। धीरे-धीरे शूद्र भी अब वैश्यों के समान किसान बन गए। अब वैश्य और शूद्र एक श्रेणी में बंध गए। लेकिन गंगा की तराई से भिन्न क्षेत्रों में जातिप्रथा एक भिन्न रूप में सामने आई। बंगाल में, दक्षिणी भारत और अन्य सीमावर्ती प्रान्तों में मुख्यतया दो जातियां उभर कर सामने आई-ब्राह्मण और शूद्र। सातवीं शताब्दी के बाद से उत्तरीभारतीय समाज में राजपूत एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में उभरे। इस काल में जाति व्यवस्था लोगों के मन में इतनी जटिल हो गई कि पौधों को भी जाति/वर्ग व्यवस्था के आधार पर विभाजित किया जाने लगा। इस युग की एक पुस्तक में विभिन्न आकार के घरों को भी वर्णव्यवस्था के आधार पर वर्गीकृत किया गया है।

मध्यकाल में, विशेष रूप से दक्षिणी भारत में एक अन्य महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ जिसमें शूद्रों को सत् (पवित्र) और असत् (अपवित्र) वर्गों में विभाजित कर दिया गया। दक्षिणी भारत में विशिष्ट विभाजन हुआ जिसे इदंगई (बाँयाहाथ) और वेलंगई (दाँया हाथ) कहा जाता था। मनु ने 61 जातियों को माना है जबकि एक अन्य ग्रन्थ में सैंकड़ों मिश्रित जातियों (वर्णसंकर) का परिगणन किया है। राजपूतों के अतिरिक्त इस युग में कायस्थ नामक जाति भी सामने आई। परम्परानुसार कायस्थ लोग बही खाते का काम करते थे, बाद में यह वर्ग एक अन्य जाति के रूप में बदल गया क्योंकि सभी कायस्थों ने मिल कर एक अलग जाति बना ली जिसमें अन्तर्विवाह होने लगे। प्राय: इस जाति के अधिकांश लोग अपनी उत्पत्ति किसी महान व्यक्ति से

बताते हैं और अपनी निम्न स्थिति की वजह आर्थिक या अन्य कोई स्थिति बताते हैं। उत्तरी भारत में एक अन्य महत्त्वपूर्ण जाति खत्री यह दावा करते है कि वे मूलतः क्षत्रिय थे परन्तु वाणिज्य करने लगे जिसने उनको अपनी साथियों की दृष्टि में गिरा दिया और उन्हें वैश्यों का दर्जा स्वीकार करना पड़ा। गुर्जर, जाट और अहीर सभी क्षत्रिय मूल का दावा करते हैं, जिस पद को उन्होंने विभिन्न कारणों से छोड़ दिया। उच्च जाति को मूल बताने की प्रक्रिया 1950 ई. तक चलती रही जब तक कि भारतीय संविधान ने अनेक सरकारी नौकारियों में निम्न जातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान नहीं कर दिया।

जाति व्यवस्था की अनेक क्षेत्रीय विभिन्नताएँ भी हैं। 8वीं शताब्दी के बाद विभिन्न क्षेत्रों और क्षेत्रीय चेतना के पनपने के कारण ये विभिन्नताएँ पैदा हुईं। उत्तर भारतीय ब्राह्मण न केवल गोत्र के आधार पर बल्कि अपने निवास के आधार पर भी बंटे हुए हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि कान्यकुब्ज सरयूपारीयर और मैथिल ब्राह्मण क्रमशः कन्नौज, सरयू नदी के पार तथा मैथिला प्रदेशों से संबंधित है। राजपूत जाति की अनेक उपजातियो के साथ उनके आरम्भिक जनजातिय नाम लगे होते हैं जैसे तोमर, कच्छवाह, हांडा, चौहान आदि। इन सब उपजातियों ने अपने लिए गोत्र भी चुन लिए। इस तरह मध्यकाल में जाति, उप जाति तथा गोत्रों की संख्या बढ़ती चली गई। मराठा भी एक जाति बन गई।

आधुनिक समय में जाति व्यवस्था ने नई विशेषताएँ धारण कर ली। इस प्रकार उपनाम जोड़ने की प्रथा चल पड़ी। एक विशेष जाति या उप जाति कभी-कभी एक से अधिक उपनाम धारण करने लगी। तथापि इस विषय में अनेक विविधताएँ पाई जाती हैं। जाति और जातिविरोधी आन्दोलनो के परिणामस्वरूप आधुनिक समय में कुछ और जातियाँ बनी हैं। इस प्रकार ब्रह्म-समाज ने एक नया दर्जा अपनाया जो प्रायः जाति के ही समान हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि जाति व्यवस्था की कार्य पद्धति अत्यन्त जटिल है। महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय विभिन्ताएँ भी मिली हैं। और इस कारण इसे सटीक तौर पर परिभाषित करना कठिन है। क्षेत्र आर्थिक स्थिति, राजसत्ता से सामीप्य, दस्तकारी, पेशा, किसी एक देवता की पूजा करना आदि सभी ने जाति के निर्माण में और परवर्ती परिवर्तनों के अन्तर्गत अपनी अपनी भूमिका का निर्वाह किया है।

जाति व्यवस्था का प्रभाव इतना गहरा रहा है कि मध्यकाल के महत्त्वपूर्ण धर्मसुधारकों जैसे **बासव, रामानन्द,** और **कबीर** आदि ने अपने अनुयायियों के बीच जाति व्यवस्था को समाप्त करने का प्रयत्न किया लेकिन उनके नाम और उपदेश के आधार पर उनके सम्प्रदायों ने एक अन्य जाति का रूप धारण कर लिया। सिक्ख भी जातिगत भावनाओं से ऊपर नहीं उठे। यहाँ तक कि मुसलमानों में भी जातिगत समूह बन गए। केरल में सीरियन ईसाई जो पहले वर्गों में बंटे हुए थे, बाद में जातिगत समूहों में बदल गए। ईसाई धर्म में परिवर्तित लोग अपने जातिगत कुरीतियों को अपने साथ ले आए और ऊंची जाति के धर्मान्तरित ईसाई अपने को नीची जाति के धर्मान्तरित ईसाइयों से पृथक समझने लगे।

पाठगत प्रश्न 19.1

1. अलग से पहचाना जाने वाला प्राचीनतम सामाजिक संगठन कौन सा था?

   ....

2. वैदिक काल के किन्हीं दो जनजातिय समूहों के नाम बताइए।

   ....

3. द्विज का क्या अर्थ है?

   ....

4. वे लोग कौन थे जिनके भारत में आने पर जाति प्रथा में अनेकों परिवर्तन हुए?

   ....

5. शूद्रों को कब शुद्ध और अशुद्ध वर्गों में विभाजित किया गया?

   ....

19.2 अस्पृश्यता

भारतीय समाज में शुद्धता और अशुद्धता की अत्याधिक स्पष्ट झलक एक ऐसे सामाजिक वर्ग के निर्माण में दिखाई देती है जिसे (अछूत) या अन्त्यज कहा जाता है। इन लोगों को ब्राह्मणवर्गीय समाज के बाहर का हिस्सा माना जाता था। अस्पृश्यता की यह भावना वैदिक युग की अन्तिम अवस्था में पनपी और बुद्ध के समय तक एक अलग सामाजिक श्रेणी बन गई। कभी कभी इन्हें पंचम वर्ण (पांचवी जाति) भी कहा जाता था। बहुत से अछूतों को चाण्डाल भी कहा जाता था। उन्हें उच्च जाति वालों के गांवों में भी रहने की अनुमति नहीं थी और मुख्य बस्तियों के बाहर विशेष बस्तियों में रहना पड़ता था। उनका प्रमुख कार्य मृत पशुओं को ले जाना तथा मृतकों का दाह संस्कार करना होता था। कानून की पुस्तकों ने नियम निर्धारित किए कि उन्हें मृत शवों के वस्त्र पहनने चाहिए जिनका उन्होंने दाहसंस्कार किया। टूटेफूटे बर्तनों में भोजन खाना चाहिए, और केवल लोहे के आभूषण ही धारण करने चाहिए। गुप्तकाल तक उनका स्तर इतना नीचे गिर गया कि उन्हें शहर में प्रविष्ट होने पर एक लकड़ी के फट्टो को बजाना पड़ता था। शिकारी (निषाद), मछली पकड़ने वाले मछुआरे (कैबर्त), चमड़े के काम करने वाले (चर्मकार), झाड़ु बुहारी करने वाले (कुक्कुस) और टोकरी बनाने वाले (वेण) ये सभी अछूतों की श्रेणी में सम्मिलित कर दिए गए। डोम एक आदिम जनजाति समूह था जो जाति आधारित वर्ग के सम्पर्क में आने पर अछूत कहलाने लगा। बहुत से शूद्र राजाओं की तरह हम डोम राजाओं के बारे में भी सुनते हैं। म्लेच्छ भी अछूत माने जाते थे। यह छुआछुत की भावना अब एक अपराध मानी जाती है परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में यह अब भी विद्यमान है। महात्मा गांधी ने इस प्रथा को दूर करने के लिए एक आन्दोलन प्रारंभ किया। उन्होंने इसे 'हरिजन' का नाम दिया। भारत सरकार ने ऐसे लोगों के विरूद्ध जो छुआछुत को बढाते हैं अथवा मानते हैं, अनेक कानूनों का निर्माण किया है।

शिक्षा और अन्य सामाजिक आन्दोलनों ने भी इन दो वर्गों में गहरे अन्तराल को कम करने के लिए अपने अपने ढंग से योगदान दिया है। यह आशा की जाती है कि यह अमानवीय प्रथा शीघ्र ही दूर हो जाएगी।

19.3 दास प्रथा

भारत में विद्यमान दास प्रथा प्राचीन यूनान और रोम से स्वरूप और सार रूप में भिन्न थी। इसीलिए मेगस्थनीज को भारत में दासता के कोई चिन्ह नजर नहीं आए लेकिन वह अपने निर्णय में निश्चित रूप से गलत था। दास प्रथा एक सुस्थिर परम्परा थी और स्वामी और दास के बीच कानूनी सम्बन्ध स्पष्ट रूप में परिभाषित थे। उदाहरणतया यदि एक दासी अपने स्वामी से पुत्र पैदा करेगी तो न केवल वह कानून की दृष्टि में मुक्त मानी जाएगी बल्कि वह बच्चा भी कानूनन स्वामी का पुत्र माना जाएगा। अर्थशास्त्र में कहा गया है कि एक मनुष्य जन्म से भी गुलाम हो सकता है। स्वेच्छा से अपने को बेच कर या युद्ध में बन्दी बन कर, या नैयायिक दण्ड के अनुसार दण्डित होकर। संस्कृत में गुलाम के लिए 'दास' शब्द है जिसका प्रारम्भ में अर्थ होता था उस वर्ग का सदस्य जो घुमक्कड़ आर्य दलों के द्वारा पकड़ लिए जाते थे। ऐसे अनेक दास भारत में बन्दी बना लिए गए थे।

भारत में दासों को अपने स्वामी के घरों में नौकरी करनी पड़ती थी और वे निजी सेवक बन जाते थे। दास वस्तुत: अपने मालिक के परिवार में निम्नतम हैसियत का सदस्य होता था। स्वामी का अपने गुलामों के जीवन पर कोई अधिकार नहीं होता था। प्रारम्भिक युग में कोई दासों की मण्डी नहीं होती थी। फिर भी ईसवी सन् की आरम्भिक शताब्दियों में भारत और रोमन साम्राज्य के मध्य दासियों के व्यापार का आदान प्रदान होता था और 16वीं शताब्दी में विजयनगर साम्राज्य में दासों की मंडियाँ भी होती थीं। दिल्ली में सुल्तान के पास बहुत बड़ी संख्या में दास थे। जिन्हें 'बन्दीगण' (बन्दीगण) कहा जाता था लेकिन इनकी स्थिति परम्परागत गुलामों (दासों) से भिन्न थी। परन्तु उनकी स्थिति बिल्कुल अलग थी। गुलामों में से एक मलिक काफूर नामक गुलाम अलाउद्दीन खिलजी का सिपहसालार था। 16वीं शताब्दी में पुर्तगाली लोग बड़ी संख्या में दासों के व्यापार में संलग्न रहते थे। लिंकोसेन ने गोवा में प्रचलित दास व्यापार का बड़ा भयानक वर्णन करते हुए लिखा है– ''वे गुलामों के साथ ऐसे व्यवहार करते थे जैसे हम घोड़ों के साथ करते हैं।'' गुलामों की एक बड़ी संख्या को शाही भूमि पर और कारखानों में कार्य करना पड़ता था। इस प्रकार की गुलामी ब्रिटिश आधिपत्य तक प्रचलित रही और फिर लार्ड कार्नवालिस की एक घोषणा द्वारा इसे समाप्त किया गया। दास व्यापार अब बिल्कुल निषिद्ध है।

19.4 पुरुषार्थ, आश्रम और संस्कार

पुरुषार्थ, आश्रम और संस्कार, तीनों ही अवधाराणाएँ परस्पर सम्बद्ध है। पुरूषार्थ का अर्थ है जीवन का उद्देश्य जो चार आश्रमों अर्थात अवस्थाओं में बंटा हुआ है। प्रत्येक आश्रम के लिए कुछ संस्कार निर्धारित हैं जिन्हें करना आवश्यक है। हम प्राय: वर्णाश्रम धर्म के विषय में सुनते हैं। अर्थात् वर्ण और जीवन के उस भाग के लिए धर्म। धर्म के समान जीवन के चार उद्देश्य

हैं– धर्म उचित आचरणों, अर्थ जीविकोपार्जन के योग्य कार्य, काम संसारिक इच्छाएँ और मोक्ष (मुक्ति)

इन चार पुरूषार्थो की सिद्धि के लिए एक मनुष्य के जीवन को चार लक्ष्यों में अथवा अवस्थाओं में विभाजित किया गया है। प्रत्येक आश्रय में पालन करने योग्य विशिष्ट नियमों का प्रावधान किया गया है। ये चार आश्रय सीढ़ियों के चार चरणों के समान हैं।

पहला आश्रम ब्रह्मचर्य कहलाता हैं जिसमें मनुष्य उपनयन संस्कार अर्थात् जनेऊ संस्कार के बाद प्रविष्ट होता है। इस आश्रम की अवधि में वह शिक्षा प्राप्त करता है और अपनी इच्छाओं और भावनाओं को वश में करना सीखता है। उसको अपने गुरु के पास जंगल में उसके आश्रम में रहना होता था और वह उसकी आज्ञा का पालन और सेवा करना सीखता था। वह अपने लिए और अपने गुरु के लिए भिक्षा मांग कर लाता था। उसे पानी लाना और आश्रम को साफ करना आदि कार्य करने पड़ते थे। वह सादा जीवन और उच्च विचार के आदर्शों का पालन करता था। एक शाही राजकुमार को भी यह सब कार्य करने पड़ते थे। इस प्रकार ब्रह्मचार्य की अवस्था व्यक्ति को गृहस्थ की भूमिका का निर्वाह करने के लिए तैयार करती थी।

गृहस्थाश्रम मनुष्य के जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में वह धर्म के अनुसार अर्थ और काम का अभ्यास करता हैं। वह विवाह करता है, बच्चे पैदा करता है और अपने परिवार का पालन-पोषण करने के लिए जीविकोपार्जन करता है और समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है।

एक गृहस्थ के समस्त उत्तरदायित्व पूर्ण करके वह वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। इस अवस्था में वह परिवार को छोड़ कर वन में चला जाता है। वन में जाकर वह सभी सांसारिक वासनाओं से और इच्छाओं से छुटकारा पाने की साधना करता है। उसे केवल फल और कंदमूल पर गुजारा करना पड़ता है। वह ध्यान और तपस्या का भी अभ्यास करता है और यदि वह इस अवस्था में मर जाता है तो मोक्ष को प्राप्त करता है। अन्यथा वह संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है जहाँ उसे पूर्ण वैराग्य का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। समाज से सभी सम्बन्ध त्याग कर वह केवल मोक्ष की प्राप्ति के लिए निरन्तर एक साधु की भांति प्रयत्नशील रहता हैं।

यह योजना केवल आदर्श का प्रस्तुतीकरण करती है न कि वास्तविक स्थिति का। बहुत से मनुष्य कभी जीवन की पहली अवस्था से भी नहीं गुजरे उस रूप में जिस रूप में यह वर्णित है, जबकि बहुत थोड़े ही दूसरी अवस्था के परे गए। यह व्यवस्था जीवन के विभिन्न कार्यों-अध्ययन करना, पारिवारिक जीवन बिताना, और वैराग्य आदि एक ही समय में किये जाने के विरोध को सुलझाने के लिए बनाई गई होगी। यह भी सम्भव है कि आश्रम व्यवस्था समन्यवादी समुदायों जैस बौद्ध धर्म और जैन धर्म को एक प्रकार से प्रभावहीन करने के लिए बनाई गई हो, क्योंकि ये धर्म युवाओं को धार्मिक और गृहस्थ दोनों जीवन एक साथ जीने के लिए प्रोत्साहित करते थे जोकि एक ऐसी रीति थी जिसे परम्परावादी लोगों द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता था यद्यपि बाद में इसके लिए भी नियम बना दिए गए।

इस योजना के अनुसार जीवन की चार अवस्थाएँ मानव के वास्तविक जन्म से न होकर उपनयन संस्कार के बाद ही प्रारम्भ होती थी। अत: बालक जनेऊ का संस्कार होने के बाद ही समाज का पूर्ण सदस्य बन पाता था। जीवन से मृत्यु पर्यन्त जीवन की सभी अवस्थाओं में उपनयन संस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार माना जाता था। संस्कारों की संख्या 40 के करीब है। कुछ महत्त्वपूर्ण संस्कार हैं- गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोभयन, जातकर्म, निष्क्रमण, अभप्राशन, चूडाकर्म, उपनयन, समावर्तन, विवाह तथा अंत्येष्टि। ये सभी संस्कार ऊपर के तीन वर्णो के लिए ही निर्धारित हैं न कि शूद्रो और अछूतों के लिए। वस्तुत: उच्च वर्णों की स्त्रियाँ भी इनमें से प्रमुख संस्कारों से वंचित रह जाती थीं।

19.5 जजमानी प्रथा

एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रथा जिसका विकास प्रारम्भिक मध्य युग में हुआ फिर जो आज तक ग्रामीण समाज में जीवित है वह है जजमानी प्रथा। एक ओर प्रभुत्वशाली किसानों का वर्ग और दूसरी ओर सेवक और कलाकार आदि वर्ग था जिनके मध्य जजमान प्रथा एक पूरक रिश्ते का निर्वाह करती थी। इस प्रथा के अन्तर्गत सेवक वर्ग जमींदार और उच्च प्रभुत्वशाली जाति वाले लोगों को अपनी सेवाएँ प्रदान करता था और बदले में फसल का परम्परा से चली आ रही दर पर कुछ हिस्सा और जमीन का टुकड़ा प्राप्त करता था। इस प्रकार कपड़े का काम करने वाले, नाई, पुजारी, माली, हलगहे और विभिन्न प्रकार के शिल्पकार उच्च जाति वालों अथवा प्रभुत्वशाली जमीदारों के लिए काम करते थे और कुछ अवसरों पर वस्तु के रूप में या भूमि के रूप में उन्हें मेहनताना दे दिया जाता था। फिर भी सेवा करने वाली जातियों को यह स्वतन्त्रता थी कि वे अपने सामान के या सेवाओं को अन्यत्र बेच सकें। यह सेवा का रिश्ता अब समाप्त हो रहा है क्योंकि अब मुद्रीकरण, शहरीकरण तथा औद्योगीकरण का प्रभाव बढ़ रहा है। मध्य युग में यह संबंध विपत्ति और दुख के समय एक सुरक्षाकवच का कार्य करता था। उल्लेख मिलते हैं कि दुर्भिक्षों के समय जजमानी व्यवस्था से जो कलाकार नहीं जुड़े थे वे गरीब किसानों से भी बदतर स्थिति में पहुंच जाते थे।

पाठगत प्रश्न 19.2

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

1. ....पंचम वर्ण कहलाते हैं।
2. महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता के विरूद्ध एक आन्दोलन चलाया और उन्हें...............नाम दिया।
3. ....भारत में गुलामों को नहीं देख सका क्योंकि गुलामी यहाँ एक अलग रूप में प्रचलित थी।
4. मनुष्य जन्म से अथवा स्वेच्छा से अपने को बेचकर या युद्ध में बन्दी बनकर अथवा न्यायालय द्वारा दण्डित हो कर गुलाम बन जाता था यह कथन..............का वर्णन करता है।

5. पुरूषार्थ (जीवन के लक्ष्य) को चार............में बांटा गया है।

6. जजमानी प्रथा के टूटने के क्या कारण थे?

19.6 परिवार

पारम्परिक भारतीय परिवार प्राय: एक बड़ा परिवार होता था जिसे संयुक्त परिवार कहा जाता है। एक संयुक्त परिवार वह होता है जिसमें दो या दो से अधिक पीढ़ियाँ एक ही छत के नीचे अथवा अलग अलग छत के नीचे रहती है परन्तु उनकी रसोई एक ही होती है। परिवार के सभी सदस्य वरीयता के अनुसार जायदाद के हकदार होते हैं। यह परिवार प्राय: पितृसत्तात्मक और पितृवंशज होता है जहाँ पिता अथवा घर का सबसे वृद्ध व्यक्ति घर का प्रमुख होता है और जायदाद की देखभाल करता है, और यह नेतृत्व पुरूष वर्ग में स्थानान्तरित होती रहती है। आधुनिक शहरों में अनेक छोटे परिवार ही देखे जाते हैं जिनमें पति, पत्नी और उनके बच्चे सम्मिलित होते हैं। यह परिवार भी पितृसत्तात्मक और पितृवंशज ही हैं लेकिन अभी भी बहुत से क्षेत्र हैं जहाँ परिवार मातृसत्तात्मक हैं और जहाँ नेतृत्व महिला वर्ग में ही चलता जाता है। यह व्यवस्था केरल और उत्तरपूर्वी क्षेत्र में नागालैण्ड के और मेघालय में प्राय: देखी जाती है।

चाहे परिवार की प्रकृति कुछ भी हो फिर भी परिवार समाज की प्राथमिक ईकाई है। परिवार के सदस्य अपने पूर्वजों की याद में मनाए गए श्राद्धों के आधार पर बंधे होते हैं। श्राद्ध से ही परिवार परिभाषित होता है। जो इस श्राद्ध कर्म में भाग लेते हैं वे सपिण्डी होते हैं अर्थात एक ही परिवार के सदस्य। परिवार के सदस्यों के बीच यह सम्बन्ध उन्हें एक प्रकार की सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता था। विपत्ति के समय एक सदस्य विस्तृत परिवार के अन्य सदस्यों से सहायता के लिए आश्वस्त हो जाता था।

उत्सवों और शादियों के अवसर पर जिम्मेदारियों को मिलजुल कर निभाने से बंधन दृढ़ होता है। परम्परा से भारत में परिवार दो प्रकार के पवित्र कानून और रीति रिवाजों से अनुशासित होता है जिन्हें मिताक्षरा और दायभाग कहते हैं। बंगाल और आसाम के अधिकांश परिवार 'दायभाग' के नियमों का पालन करते हैं। और शेष भारत में 'मिताक्षरा' के नियम अनुपालित होते हैं। इस पवित्र कानून ने बहुत बड़े और प्रबन्धन के अयोग्य संयुक्त परिवारों के अलग होने के नियम बनाए। यह परिवार का टूटना प्राय परिवार के मुखिया की मृत्यु के बाद होता था। मध्ययुग के पश्चात संयुक्त परिवार की जायदाद में सदस्यों की व्यक्तिगत जायदाद नहीं गिनी जाती थी और ऐसी सम्पत्ति का बंटवारा भी नहीं होता था। स्वतन्त्रता के बाद भारत में संविधान के अन्तर्गत प्रावधान किया गया है कि विवाद, तलाक, उत्तराधिकार, दायाधिकार, गोद लेना, संरक्षक, बच्चों पर हक या निर्वाह के लिए खर्चा आदि सभी मामले प्रत्येक धार्मिक समुदाय अपने व्यक्तिगत धार्मिक नियमों के अधीन अनुशासित होंगे। अत: हिन्दु, बौद्ध, सिख, जैन समुदाय निर्धारित हिन्दु अधिनियम 1955-56 से अनुशासित है और मुस्लिम, ईसाई और पारसी परिवार अपने धर्म के 'व्यक्तिगत कानून' के अन्तर्गत आते हैं।

19.7 विवाह

परिवार का निर्वाह एक प्रमुख संस्कार के अन्तर्गत होता है जिसे विवाह कहा जाता है। इसकी प्रकृति के अनुसार विवाह भी कई प्रकार के होते हैं जैसे अनुलोम विवाह (उच्च जाति का पुरूष और निम्न जाति की स्त्री) या प्रतिलोम (नीच जाति का पुरुष और उच्च जाति की स्त्री) या विभिन्न जातियों वर्णों में सम्बन्ध एक पुरुष और एक स्त्री का विवाह, एक पुरुष का कई स्त्रियों से विवाह, एक महिला का कई पुरुषों से विवाह। भारतीय समाज में सभी प्रकार के विवाहों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। पारम्परिक रूप से शादियाँ लड़के लड़की के मातापिता द्वारा तय की जाती हैं जो प्राय: एक ही जाति के होते हैं लेकिन जिनका गोत्र भिन्न होता है। (गोत्र अर्थात एक ही पूर्वज से उत्पन्न) और प्रवर (निबंध स्तर) भिन्न होता है परन्तु यह गोत्र और प्रवर की बाध्यताएँ केवल द्विजों के लिए ही हैं, निम्न जाति के लिए गोत्र और प्रबर की बाध्यता नहीं है। तथापि समुदायों ने अपने लिए गोत्र बना लिए है। प्रबर से अभिप्राय है निषिद्ध वर्ग के लिए कानून जो बहुत कठोर होते हैं जहाँ एक समान पूर्वज की सन्तानों के बीच विवाह सम्बन्ध सात पीढ़ी तक नहीं हो सकते या मातृ सत्तात्मक पूर्वज की सन्तान हो तो पांच पीढ़ियों में वर्जित है। भारत के दक्षिण प्रदेश में तब भी यह रिवाज कभी भी नहीं माना गया और वहां ममेरे फुफेरे रिश्तों में भी शादियाँ हो जाती है और इन्हें वैधानिक और सामाजिक स्वीकृति भी प्राप्त है। इन वर्गों के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम सन 1955 में अपवाद स्थितियाँ का निर्धारण किया गया है।

सामान्यतया एकल विवाह की प्रथा का ही पालन किया जाता है जिसमें एक व्यक्ति का विवाह एक समय में एक ही स्त्री से होता है लेकिन परम्परा में बहुविवाह भी निषिद्ध नहीं था। अमीर और शक्तिशाली लोग एक से अधिक पत्नियाँ भी रखते थे। बहुविवाह सामान्यतया कई कारणों से होते थे। प्राचीन काल में राजाओं को शक्तिशाली अन्य राजाओं से सम्बन्ध बनाने होते थे और विवाह एक सर्व सुलभ उपाय था। चन्द्रगुप्त और अकबर के विवाह इसी प्रकृति के थे। एक पुत्र होने की धार्मिक भावना के कारण भी कई बार कई पत्नियों के होने का कारण बन जाता था। लेकिन आधुनिक कानून के अन्तर्गत बहुविवाह गैर कानूनी माना गया है। केवल मुस्लिम ही चार शादियाँ कर सकते हैं लेकिन वह भी किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ही स्वीकृत है।

ब्राह्मणवादी पवित्र ग्रंथों के अनुसार एक बार सप्त पदी (सात फेरे) हो जाने के बाद सम्बन्ध विच्छेद नहीं हो सकता। इसका अर्थ है कि वहाँ तलाक के लिए कोई स्थान नहीं है। अर्थशास्त्र बताता है कि कुछ अवस्थाओं में तलाक हो सकता है। बाद में ऐसे प्रावधानों को भुला दिया गया। अनेको निम्न वर्गों में आज भी तलाक की अनुमति है। आधुनिक काल में परस्पर रजामन्दी से, असामंजस्य, अत्याचार आदि दोनों पक्षों को ही तलाक के लिए अनुमति मिलने के सशक्त कारण हो सकते हैं।

हम पाँच पाण्डवों के साथ द्रौपदी के विवाह की कहानी से परिचित हैं। इसे बहुपति विवाह कहा जाता है। आज भी बहुत से समुदाय हैं जहां इस प्रकार के विवाह प्रचलित हैं और वैध माने जाते हैं। साधारणतया एक औरत भाइयों से ही शादी करती है, बहुत कम ही ऐसा होता

है कि पति भिन्न भिन्न समुदायों से हो। ऐसे विवाह मैदानी क्षेत्रों के ऊँची जाति वालों के द्वारा समाजविरोधी माने जाते हैं परन्तु उन समाजों में जहाँ ऐसी शादियाँ प्रचलित हैं वहाँ इसे अत्यन्त गर्व का विषय माना जाता है, शर्म का नहीं।

19.8 नारी जाति

भारत में नारी का इतिहास क्रमश निम्न दशा की कहानी है। वैदिक काल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था में भी युद्ध की छोड़ कर कबीले के सभी कार्यों में नारियों की प्रतिभागिता होती थी। वे सूत्रों की भी रचना करती थीं और वयस्क होने पर अपने पसन्द के पुरुष से विवाह भी कर सकती थीं। उत्तर वैदिक काल में कबीलाई संस्थाओं के समाप्त होने के साथ साथ उनकी स्थिति भी बिगड़ती चली गई। प्रारम्भिक कानूनी पुस्तकों ने नारी को शूद्र के समान मान लिया। कुछ व्यक्तिगत 'स्त्रीधन' के अतिरिक्त उनको सम्पत्ति का कोई अधिकार नहीं होता था। यहाँ तक कि उनको वेद पढ़ने का भी अधिकार नहीं दिया गया। ऐसी स्थिति में वेदेतर सम्प्रदायों ने स्त्रियों को कुछ सम्मान देना प्रारम्भ किया। पूर्वमध्यकाल के तान्त्रिक सम्प्रदाय ने महिलाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया और महिला साध्वियों का संगठन भी स्थापित किया।

सामान्य रूप से प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल में और पूर्व मध्यकाल में स्त्रियों को बौद्धिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए कभी प्रोत्साहित नहीं किया गया। उनका असली काम विवाह करके परिवार की देखभाल करना होता था। उच्च वर्ण की स्त्रियाँ कुछ शिक्षा प्राप्त करती थी और उनमें से कुछ कविता नाटक आदि भी लिखती थीं। संस्कृत नाटकों में कुछ प्रमुख नारियां मात्र प्रायः पढ़ते, लिखते और गीतों की रचना करते हुए दिखाई गई हैं। मध्ययुग में और अब से कुछ समय पूर्व तक संगीत और नृत्य उच्च जाति की महिलाओं के लिए उपयुक्त नहीं समझा जाता था और केवल निम्न जाति और वेश्याएं ही इन कलाओं का अभ्यास करती थीं। लेकिन ऐसा प्रारम्भिक काल में नहीं था। ऋगवैदिक काल को छोड़कर महिलाओं का स्थान समाज में निम्न ही था।

बालविवाह की प्रथा चल पड़ी। सती प्रथा भी प्रचलित हो गई। फिर भी इब्न बतूता जो कि एक विदेशी यात्री था, ने वर्णन किया है कि मध्ययुग में सती होने के लिए सुलतान से आज्ञा लेनी पड़ती थी। विधवा विवाह की अनुमति नहीं थी लेकिन सम्पत्ति में विधवाओ को अधिकार प्राप्त था।

मध्य युग में, उच्च जाति की स्त्रियों में पर्दा प्रथा भी प्रचलित हुई। अरब और तुर्कों ने यह रिवाज इरानियों से सीखा और वे इसे भारत ले आए। उन्हीं के कारण उत्तरी भारत में यह प्रथा फैल गई। नारियों के साथ किए गए व्यवहार पर दृष्टिपात करते हुए कहा जा सकता है यह प्रथा वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो चुकी थी। मध्य युग में पर्दा उच्च वर्ग की महिलाओं का प्रतीक बन गया था और जो अपने को उच्च वर्ग का दिखाना चाहती थीं, इस प्रथा का अनुकरण करती थीं। निम्न जाति में यह प्रथा कम प्रचलित थी।

भारत में मुगल प्रभुत्व की अवनति और अंग्रेजी शासन के विस्तार के साथ विभिन्न दिशाओं में आधुनिक विचारों ने परिवर्तन की लहर पैदा की। आधुनिक शिक्षा के अन्तर्गत

अनेकोधर्म सुधारकों ने महिलाओं की स्थिति में सुधार और उसे ऊपर उठाने के लिए आन्दोलन चलाए। राम मोहन राय, राधाकान्त देव, भवानी चरण बैनर्जी आदि के प्रयत्नों से 1829 ई. में सतीप्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। 1895 में बालिका शिशु की हत्या को कत्ल के समान माना जाने लगा। स्वतन्त्र भारत में 1955 के हिन्दु विवाह कानून के माध्यम से वर की न्यूनतम आयु 18 वर्ष और वधू की आयु 15 वर्ष निर्धारित कर दी गई। 1856 में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के प्रयत्नों से पहला विधवा विवाह सम्पन्न कराया गया। पं. विष्णु शास्त्री ने 1860 में विधवा विवाह संघ की स्थापना की। उन सब के प्रयत्नों के फलस्वरूप नारियों की स्थिति में सुधार हुआ। अभी वर्तमान में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने पिता की सम्पत्ति में पुत्री का भी अधिकार स्वीकृत किया गया। समाज में बढ़ती हुई जागरूकता और कानूनी व्यवस्था के कारण महिलाओं की स्थिति में नि:संदेह और अधिक सुधार होगा।

पाठगत प्रश्न-19.3

1. अनुलोम और प्रतिलोग विवाहों का आधार क्या हैं?

   ....

2. एकल विवाह क्या है?

   ....

3. भारत में परम्परागत परिवारों को अनुशासित करने वाले कानून और रीति रिवाजों के नाम लिखिए।

   ....

4. प्राचीन भारत में स्त्रियों की निजी सम्पत्ति को क्या कहा जाता था जिसके सिवाय उन्हें कोई अन्य सम्पति का अधिकार नहीं था।

   ....

19.9 भारत के जनजाति समुदाय

जनजाति उन समुदायों का आधुनिक नाम है जो बहुत प्राचीन हैं, और इस देश के सबसे प्राचीन निवासी है। सामान्यतया जनजातिय जनसंख्या की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं-

1. जनजाति समूहों की जड़े इस धरती में बहुत प्रारम्भिक समय से जमी हुई हैं।
2. वे प्राय: पहाड़ियों और जंगलों में एकान्त में जीवन बिताते हैं।
3. उनके सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास को प्राथमिकता देना आवश्यक है।
4. उनके सांस्कृतिक परिवेश (भाषा, संस्थाएँ, विश्वास और रीति रिवाज), उनका जीने का तरीका समाज के दूसरे वर्गों से बहुत भिन्न होता है।

जनजातीय लोग मूलनिवासी होते हैं जिन्हें चौथी दुनिया कहा जाता है। ये लोग किसी देश की प्राचीनतम जनसंख्या वे वंशज होते हैं और आज उन्हें उनके अपने देश के अधिकारों से पूर्ण रूप से अथवा अंशत: वंचित कर दिया गया है। मूलनिवासी अपनी संस्कृति, धर्म, सामाजिक और आर्थिक संगठनों में एकदम भिन्न और विविध होते हैं। उनका आज भी बाहरी दुनिया द्वारा शोषण किया जा रहा है। कुछ लोग उन्हें आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिमूर्ति के रूप में आदर्श मानते हैं। कुछ अन्य उन्हें आर्थिक प्रगति में रूकावट के रूप में देखते हैं। वे अपनी विशिष्ट संस्कृतियों की अनुपालना करते हैं। वे विगत उपनिवेशवाद के शिकार हैं। कुछ अपनी परम्पराओं के अनुसार रहते हैं, कुछ को अनुदान मिलता है, कुछ कारखानों में काम करते हैं, कुछ अन्य पेशों में है जिस धरती पर वे रहते हैं, उसके साथ बहुत निकट का सम्बन्ध बनाया हुआ होता है और उनमें परस्पर आदान प्रदान की सहयोगत्मक भावना निहित होती है और अपनी धरती और अपने जीवन का बहुत आदर करते हैं।

भारत में जनजातियों को सामान्यतया आदिवासी कहा जाता है जिसका अर्थ है मूल निवासी। प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय साहित्य में भारत में रहने वाले अनेकों मूलनिवासी जनजातियों का उल्लेख प्राप्त होता है। ब्राह्मणिक युग में जातिप्रथा के प्रारम्भ होने से पहले ये लोग विभिन्न जनजाति समूहों में विभाजित थे।

भारत सरकार ने 427 समुदायों का उल्लेख किया है और उन्हें अनुसूचित जनजातियों में सम्मिलित किया है। ये समूदाय अनुसूचित जनजाति कहलाते हैं। उन्हें भारत के संविधान के अन्तर्गत विशेष आरक्षण और अधिकार प्रदान किए गए हैं।

आकड़ों के अनुसार, तीन बहुत महत्त्वपूर्ण जनजाति समुदाय हैं गोंड, भील और संथाल। इनमें से प्रत्येक की जनसंख्या प्राय: 30 लाख से भी अधिक है। इनके अतिरिक्त मीणा, मुण्डा, आर्गोन आदि है जिनमें से प्रत्येक की जनसंख्या 5 लाख से अधिक है। 11 से डेढ लाख तक की जनसंख्या वाले 42 जनजातीय समूह हैं।

भारतीय संविधान के अनुसार जो अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में गिने जाते हैं, उन जनजातीय लोगों की संख्या 8.43 करोड़ है और 2001 की जनसंख्या के अनुसार कुल जनसंख्या का 8. 2 प्रतिशत के बराबर हैं।

जनजातीय जनसंख्या के वितरण और विविधता के दृष्टिकोण से, भारत को सात क्षेत्रों में बांटा जा सकता है.

1. **उत्तरी क्षेत्र** – इस क्षेत्र के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हिमाचल के नीचे उत्तर प्रदेश का इलाका और बिहार में खास थारू, भोक्सा, भूटिया, गुज्जर और जैनसारी प्रमुख जनजाति समुदाय हैं, खासी बहुतपति विवाह वाला जनजाति समूह है, भूटिया गलीचे बनाते हैं और भारत-चीन सीमा पर व्यापार करते हैं। गुज्जर खेतीहर समुदाय है। इस क्षेत्र के जनजाति समूहों की प्रमुख समस्याएँ हैं पहुँच का अभाव, संप्रेषण का अभाव निर्धनता, निरक्षरता और भूमि का अहस्तान्तरण

2. **उत्तर पूर्वी क्षेत्र** – इस क्षेत्र में सात उत्तर पूर्वी राज्य आते हैं और यहां के समूह यहाँ

है नागा, खासी, गारो, मिशिंग, मीरी, कर्बी और अपताउज प्रमुख जनजातीय समुदाय हैं। इन जनजाति समूहों की दो प्रमुख समस्याएँ हैं- खेती के बदलते स्वरूप के कारण पारिस्थितिक क्षरण तथा संचार सुविधा की कमी के कारण पहुंच से दूर रहना। नितान्त अकेलेपन के कारण, इस क्षेत्र के जनजाति समूहों ने प्रमुखधारा के भारतीयों के साथ अपने ऐतिहासिक अनुभव नहीं जोड़े बल्कि अपनी पड़ोसी जातियों के साथ इतिहास का हिस्सा बनते रहे। इसी से स्पष्ट होता है कि क्यों इन जनजातीय लोगों की प्रमुखधारा से दूरी है।

3. **केन्द्रीय क्षेत्र** – इस क्षेत्र में जनजातीय समूहों के लोगों का सबसे अधिक घनत्व है। यह दक्षिणी मध्य प्रदेश, उत्तरी ओड़िसा को पार करते हुए दक्षिणी बिहार तक विस्तृत हैं। इस क्षेत्र में रहने वाले प्रमुख कबीले है संथाल, हो, बैगा, अभुजनरिया, मुरिया, मुण्डा और बिरहार। इन जनजातियों द्वारा झेली जा रही प्रमुख समस्याएँ हैं- अपनी जमीन से दूर किया जाना और ऋण। इस क्षेत्र के जनजातियों के मध्य, संथालों ने अपनी निजी लिपि विकसित की है, जिसे ओले चिकी कहा जाता है। बैगा एक प्रमुख जनजातीय समूह है जो झूम कृषि करने वाली प्रमुख जनजाति है। बिरहोर एक बहुत ही पिछड़ा जनजातीय समूह है। इस क्षेत्र में इसके अत्यधिक पिछड़ेपन के कारण और कोई जीविकोपार्जन का साधन न होने के कारण यह जनजातीय समूह समाप्ति की ओर जा रहा है।

4. **दक्षिणी क्षेत्र** – इस क्षेत्र के अन्तर्गत कर्नाटक के आंध्रप्रदेश के समीपवर्ती पहाड़ियों सह नीलगिरी पर्वत क्षेत्र आता है। यह बहुत छोटा क्षेत्र है जहां भारत की मुख्य धरती पर सबसे अधिक पिछड़े, अलग थलग पड़े हुए जनजाति समुदाय हैं। इस क्षेत्र के प्रमुख जनजातिय समूह हैं- टोडा, कोया, चेंचू और अल्लर। टोडा एक चरवाहा समुदाय है जो भैंसों को चराते हैं। अल्लर मुख्यतया गुफाओं में और सामान्यतया पेड़ों के ऊपर भी रहते हैं। चेंचू एक बहुत पिछड़ी जाति है जो शिकार करके या फल फूल इकट्ठा करके गुजारा करती है। इन जनजातीय समूह की प्रमुख समस्याएं हैं बदलती फसलें, आर्थिक पिछड़ापन, अकेलापन, संप्रेषण का अभाव और भाषाओं के समाप्त होने का खतरा।

5. **पूर्वी क्षेत्र** – इस क्षेत्र में पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा सम्मिलित हैं और परज, कोंध, बोंडा, भूमिया, गडाबा, भून्या और स्कोरा आदि प्रमुख जनजातीय समुदाय है। इस क्षेत्र के जनजातिय समूहों की प्रमुख समस्याएँ है- आर्थिक पिछड़ापन, वनों के अधिकारियो और ठेकेदारों द्वारा शोषण, स्व-भूमि से दूर कर दिया जाना, रोगों का बाहुल्य और औद्योगिक परियोजनाओं के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलाव आदि।

6. **पश्चिमी क्षेत्र** – इस क्षेत्र में राजस्थान और गुजरात सम्मिलित है। यहाँ जो जनजातीय समूह पाये जाते हैं वे हैं- भील, गरासिया और मीना। मीना एक बहुत उन्नतिशील और सुशिक्षित जनजातिय समुदाय है।

7. **द्वीप क्षेत्र** – अण्डमान और निकोबार द्वीपसमूह, लक्ष्यद्वीप, दमन और दियु इसी क्षेत्र में आते हैं। ग्रेट अंडमानी, संथीनलीज, जारवा, ओंग, निकोबारी, और शैम्पन आदि इस

क्षेत्र के जनजातीय समूह हैं। इनमें से कुछ कबीले बहुत ही पिछड़े हुए हैं और पाषण युगी जीविकोपार्जन के तरीको से बाहर निकलने का प्रयत्न कर रहे हैं। इन जनजातीय समूह में से अधिकांश बहुत छोटे जनजातीय समूह के रूप में वर्गीकृत किये गये हैं, जो समाप्ति के कगार पर हैं। अस्तित्व के शेष रहने की समस्या के अलावा, रोगों का बाहुल्य और कुपोषण इस क्षेत्र के जनजातीय समुदायों की प्रमुख समस्याएँ हैं।

इन जनजातीय क्षेत्रों के लिए सरकार की प्रमुख योजना का उद्देश्य है, जनजातिय समुदायों की रक्षा करना और इनका आर्थिक विकास करना। जनजातीय योजना के अंगीभूत रणनीति कार्यक्रम की शुरूआत पांचवी पंचवर्षीय योजना से हुई। यह एक बहुत व्यापक, संगठित और एकीकृत कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य है जनजातीय समूहों का शोषण से बचाव, समाजिक-आर्थिक विकास, अन्य क्षेत्रों के साथ इनके अन्तराल को दूर करना, और जीवन के स्तर में वृद्धि करना है।

पाठगत प्रश्न 19.4

1. जनजातीय जनसंख्या की दो विशेषताएं लिखिए

2. मूल निवासी कौन लोग होते हैं?

3. भारत में जनजातीय समूहों के लिए क्या शब्द प्रयोग किया जाता है?

4. कितने समुदायों को भारत में अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया है?

5. भारत में जनजातीय जनसंख्या का कुल जनसंख्या में कितना प्रतिशत है?

6. भारत में जनजातीय जनसंख्या के निर्धारक तत्व कौन से है?

7. अनुसूचित जनजाति को पहचानने के दो लक्षण कौन से हैं?

8. उत्तरी भारत में प्रमुख जनजातीय समूह कौन-कौन से हैं?

9. पूर्वी क्षेत्र के जनजातीय समूहों की प्रमुख समस्याएँ कौन सी है?

10. बहुत कम जनसंख्या वाले कुछ जनजातीय समूहों के नाम लिखिए।

11. जनजातिय समूह अंगीभूत रणनीति योजना कब प्रारम्भ की गई?

....

12. जनजातीय अंगीभूत रणनीति योजना क्या है तथा इसके उद्देश्य क्या हैं?

....

आपने क्या सीखा

- भारत बहुमुखी पहचानों वाला देश है जो क्षेत्र, भाषा और धर्म पर आधारित हैं और इनमें से प्रत्येक के कुछ कम या ज्यादा विशिष्ट सामाजिक संरचनाएँ हैं जो युगों के अन्तराल में बन पाई हैं।
- जनजातीय समुदाय जो प्राचीनत्तम महत्त्वपूर्ण सामाजिक संगठनों में से एक है, उसका प्रारम्भ वैदिक युग से माना जा सकता है।
- प्रारम्भिक अन्तर रंग पर आधारित था जो बाद में 'वर्ण व्यवस्था' की जटिल प्रक्रिया बन गई। जनजातिय समूह ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र श्रेणियों में बंट गए।
- वैदिकोत्तर समाज में बौद्ध और जैन धर्म के उदय के साथ तथा शक, कुषाण, पार्थियन और इण्डो ग्रीक लोगों के आने पर वर्ण/जाति व्यवस्था में और अधिक परिवर्तन हुए।
- 8वीं शताब्दी के बाद क्षेत्रीय चेतना और क्षेत्रों के निर्धारित होने पर जाति व्यवस्था में क्षेत्रतीय विभिन्नताएँ पैदा हो गई और यह व्यवस्था अधिक से अधिक जटिल होती गई और कई कारणों से जातियों और उपजातियों में वृद्धि होती चली गई।
- सर्वाधिक घृणित कुरीति अस्पृश्यता की जड़े वैदिक काल के अंतिम दौर में शुरू हुई और महात्मा बुद्ध के समय तक इसने अलग से एक पृथक रूप धारण कर लिया।
- भारत में गुलामी प्रथा थी लेकिन प्राचीन यूनान अथवा रोम में जारी दास प्रथा से इसका रूप अलग था।
- पुरुषार्थ, आश्रम और संस्कार अन्तः सम्बद्ध अवधारणाएँ हैं।
- जजमानी व्यवस्था एक महत्त्वपूर्ण संस्था है जो एक ओर प्रभुत्वशाली कृषक जातियों और दूसरी ओर कलाकार शिल्पी तथा सेवा करने वाली जातियों के बीच पूरक सम्बन्ध बनाता है। यह प्रथा भारतीय ग्रामीण समाज में आज भी प्रचलित है परन्तु अब मौद्रीकरण, शहरीकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव से समाप्त होती जा रही है।
- परिवार एक बहुत महत्त्वपूर्ण संस्कार विवाह के परिणाम स्वरूप अस्तित्व में आता है। विवाह भी अनेक प्रकार के होते हैं जैसे अनुलोम (ऊंची जाति का पुरुष निम्न वर्ग की स्त्री) प्रतिलोम (ऊंची जाति की स्त्री और नीची जाति का पुरुष) एकल विवाह (एक मुखी) बहु विवाह (अनेक पत्नी) बहुयतित्व (अनेक पति), भारतीय समाज में सभी प्रकार के उदाहरण मिलते हैं।

- पारम्परिक भारतीय परिवार एक संयुक्त परिवार है जो दो प्रकार के पवित्र कानून और रीतिरिवाजों का पालन करते हैं- मिताक्षर ओर दायाभाग।
- आधुनिक काल के पहले तक भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थिति में निरन्तर गिरवाट आती रहीं। फिर पिश्चमी शिक्षा के प्रसार से, विभिन्न सामाजिक और धार्मिक प्रयत्न उनकी दशा को सुधारने के लिए किए गए।

पाठान्त प्रश्न

- भारत में विविध पहचानों की मूल के विषय में विवेचना कीजिए।
- वर्ण और जाति व्यवस्था में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
- भारत में जाति प्रथा की विशेषताएँ प्रतिपाडित कीजिए।
- स्पष्ट कीजिए पुरूषार्थ, आश्रम और संस्कार कैसे परस्पर सम्बन्धित है।
- भारतीय समाज के इतिहास में नारियों के स्थान का परिचय दीजिए।
- जजमानी प्रथा क्या है? आजकल यह क्यों समाप्त होती जा रही है।

पाठगत प्रश्न में उत्तर

19.1

1. जनजाति समूह
2. भारत, यदु, पुरू (कोई दो)
3. दो बार उत्पन्न
4. शक, कुषाण, पार्शियन, इण्डो-ग्रीक
5. मध्ययुग

19.2

1. अस्पृश्यता
2. हरिजन
3. मेगस्थिनीज
4. अर्थशास्त्र
5. आश्रम
6. शहरीकरण और उद्योगीकरण

19.3

1. वे विभिन्न वर्णों और जातियों में सहयोग पर आधारित होते हैं।
2. एक ऐसा विवाह जिसमें एक व्यक्ति एक समय में केवल एक ही व्यक्ति से विवाह कर सकता है।
3. मिताक्षरा, दायभाग
4. स्त्रीधन

19.4

1. अ. जनजातिय समूहों की जड़ें बहुत प्राचीनकाल से इस धरती से जुड़ी है।

   ब. वे तुलनात्मक रूप से पहाड़ियों और वनों में रहते हैं।
2. जनजातिय समूह
3. आदिवासी
4. 427 समुदाय
5. 8.2%
6. वे निर्धारित होते है प्रथम रूप में उद्धार के इसारे से राजनैतिक और प्रशासनीय विचार के द्वारा भारतीय समाज का ऐसा वर्ग जो तुलनात्मक रूप में दूरदराज की पहाड़ियों और वनों में, और विकास के आकड़ों के अनुसार जो पिछड़े हुए होते हैं।
7. तुलनात्मक रूप से एकात्मक और पिछड़ेपन
8. खास, तारू, भोकसा, भूटिया, गुज्जर और जौनसारी।
9. आर्थिक पिछड़ापन, वनों के अधिकारियों और ठेकेदारों द्वारा शोषण, भूमि से दूरी, रोगों का आक्रमण, प्रौद्योगिक परियोजनाओं के द्वारा विस्थापन।
10. ग्रेट अन्डेमानी, जारवा, निकोबार, शैम्पैन
11. पांचवी पंचवर्षीय योजना के दौरान
12. यह बहुत व्यापक, अन्तबद्ध और सुसंगठित कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य है जनजातीय समूह के शोषण का समापन, सामाजिक-आर्थिक विकास, विकास में और अन्य क्षेत्रों में अन्तरों को दूर करना, जीवन स्तर में सुधार।

20

वर्तमान भारत में सामाजिक सांस्कृतिक समस्याएँ

पिछले पाठ में आपने भारत के सामाजिक ढांचे के विषय में पढ़ा। आपने जनजाति, ग्रामीण और नागरिक समाज, वर्ण और जाति की अवधारणाओं, परिवार विवाह और भारतीय समाज में नारी की स्थिति के विषय में भी पढ़ा है। भारतीय समाज अनेकों शताब्दियों में विकसित हुआ और विविध क्षेत्रों में चहुंमुखी प्रगति हुई है। आपने पिछले पाठों में भारतीय समाज में सामाजिक सुधारों के विषय में भी पढ़ा है। फिर भी प्रत्येक समाज में अनेकों सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ होती हैं जिनका समाधान खोजकर उनसे निपटना भी है। लोगों की विशेष रूप से समाज के कमजोर तबके जैसे महिलाएँ, बच्चे और वृद्धों की सुरक्षा आधुनिक भारतीय समाज की प्रमुख समस्या है। इस पाठ में हम उन प्रमुख सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं के बारे में पढ़ेंगे जिन पर हमें तुरंत ध्यान देना होगा यदि हमें अपनी सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करनी है। कुछ आवश्यक सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ जिनसे आज निपटना है, वे हैं जातिवाद, दहेज, साम्प्रदायिकता, शराब, मादक द्रव्यों का सेवन आदि। जिन समस्याओं पर यहाँ चर्चा की जा रही हैं वे पर्याप्त नहीं हैं। और भी ऐसी अनेक समस्याएँ हैं जिनका सामना सामान्य रूप से हमारे देश को और विशेष रूप से प्रदेशों और समुदायों को करना पड़ रहा है जिनके बारे में हमें सोचना चाहिए। क्या आप ऐसी समस्याओं की सूची बना सकते हैं?

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप :-

- वर्तमान भारतीय समाज की कुछ प्रमुख समस्याओं और विचारणीय विषयों की सूची बना सकेंगे;

- जाति प्रथा, दहेज, दुर्व्यवहार पर चर्चा कर सकेंगे;
- अति संवदेनशील समूह जैसे बच्चों, महिलाओं और वृद्धों से जुड़ी समस्याओं का विश्लेषण कर सकेंगे;
- गरीबी और बेरोजगारी जैसी आर्थिक समस्याओं पर विवेचना कर सकेंगे।

20.1 जाति व्यवस्था

जैसा कि आपने पिछले पाठ में पढ़ा है, चार वर्ण है? क्या आप उनको यहाँ लिख सकते हैं?

1. ...., 2. ...., 3. ...., 4. ....

जाति व्यवस्था की जड़ें प्राचीन भारत में हैं। जिस प्रकार आश्रम धर्म विश्व में प्रत्येक मनुष्य के जीवन के विषय में नियम और कर्तव्यों को निर्धारित करता है उसी प्रकार वर्ण व्यवस्था में भी उस जाति विशेष के लिए जो किसी व्यक्ति की है, नियम निर्धारित किए गए हैं। पहले वे सभी सामाजिक स्थिति में बराबर समझे जाते थे और किसी भी व्यवसाय को अपनी इच्छानुसार अपना सकते थे। अन्य व्यवसायों के लोगों के साथ भोजन और विवाह विषयक कोई बंधन नहीं थे पर वंशानुगत व्यवसाय में निपुण होने के कारण और देसी लोगों के साथ संपर्क में आने के कारण परिस्थितियाँ बदल गईं और जाति का निर्णय जन्म से होने लगा। अत: उस समय में जो वर्णव्यवस्था विकसित हुई वह सामाजिक और आर्थिक विकास का परिणाम थी परंतु जैसे-जैसे समय गुजरता गया, समाज उच्च वर्ग और निम्न वर्ग में बंट गया जो एक-दूसरे के साथ संबंध नहीं रखते थे। अंतर्जातीय भोजन या विवाह निषिद्ध हो गए। तथाकथित निम्न जाति के लोगों का शोषण होने लगा और धीरे-धीरे समय के साथ उनकी दशा शोचनीय हो गई। वे निर्धन थे और समाज में समान नहीं समझे जाते थे। वे गांव में समान कुओं से पानी भी नहीं ले सकते थे, मंदिरों में नहीं जा सकते थे अथवा तथाकथित उच्च वर्ग के समीप भी नहीं जा सकते थे। इस प्रकार जाति व्यवस्था ने विभिन्न व्यवसायों के स्वस्थ विकास में बाधा डाली क्योंकि एक विशेष व्यवसाय अब जन्म पर आधारित था न कि योग्यता पर।

जाति-आधारित भेदभाव ने बहुत बार हिंसा को भी भड़काया। जातिव्यवस्था हमारे देश में प्रजातंत्र की कार्यप्रणाली में भी बाधा डालती है। समाज कृत्रिम वर्गों में बंट जाता है जो अपनी जाति के व्यक्ति की ही सहायता करना चाहते हैं। वे इस बात की ओर ध्यान नहीं देते कि वह योग्य प्रत्याशी भी है या नहीं। यह भारतीय प्रजातंत्र के स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त नहीं है। हमारा देश तब तक वास्तविक उन्नति नहीं कर सकता जब तक इस व्यवस्था का समूल विनाश न कर दिया जाय।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में अर्थात् 1947 ई. के बाद सरकार ने इन समस्याओं पर ध्यान दिया और कानून बनाकर साथ ही सामाजिक रूप से (समाज में नागरिकों के माध्यम से एनजीओ-गैर

सरकारी संस्थाएँ) और सामाजिक वर्गों द्वारा इस समस्या से निपटने का प्रयत्न किया गया। इन कार्यों से स्थिति में सुधार तो हुआ है परंतु अभी भी बहुत कुछ करना शेष है।

आप किसी ऐसे व्यक्ति के घर जाएँ जो आपकी जाति से भिन्न जाति का हो। क्या आपको उनके जीवन-यापन के और भोजन आदि करने के ढंग में कोई अंतर दिखाई देता है? समानताओं और विषमताओं से संबंधित एक लघु निबंध लिखिए।

20.2 महिलाओं से सम्बद्ध समस्याएँ

हमारा संविधान महिलाओं और पुरुषों को प्रत्येक क्षेत्र में समान अधिकार प्रदान करता है। आज महिलाओं को भी वोट देने का अधिकार है, पैतृक संपत्ति में, और जायदाद में भी अधिकार प्राप्त है। वस्तुत: संविधान आदेश देता है कि सरकार को जनता के कमजोर वर्गों के हितों का विशेष ध्यान रखना होगा। स्वतंत्रता के बाद महिलाओं के हितों के संरक्षण के लिए अनेक कानून बनाए गए हैं। ये कानून विवाह, पैतृक संपत्ति में अधिकार, तलाक, दहेज आदि के संबंध में हैं। 1976 ई. में समान कार्य के लिए पुरुषों और महिलाओं को समान वेतन देने के लिए समान वेतन अधिनियम स्वीकृत किया गया।

अभी वर्तमान में बालिका शिशु की रक्षा के लिए एक योजना प्रारंभ की गई है। यह योजना 'लाडली' कहलाती है। इसके अंतर्गत एक बालिका के जन्म के समय ही एक राशि अलग जमा कर दी जाती है जो उसे अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने पर प्रदान की जाती है। यह राशि तब उसकी शिक्षा या विवाह आदि पर खर्च की जा सकती है। इसी प्रकार एक अन्य योजना है 'जच्चा-बच्चा योजना'। इस योजना के अंतर्गत राज्य सरकार बच्चे के जन्म संबंधी और उसके पालन पोषण विषयक तथा अन्य चिकित्सा आदि के व्यय का वहन करती है। लेकिन इन प्रावधानों के होते हुए भी महिलाओं के साथ भेदभाव का व्यवहार किया जाता है।

20.2.1 लिंग भेद

भारत में महिलाओं के साथ अनेक क्षेत्रों में जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, नियुक्ति आदि में भेदभाव किया जाता है। लड़कियों के सिर पर दहेज का भारी बोझ होता है और उन्हें विवाह के बाद अपने माता-पिता के घर को छोड़कर जाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त माता-पिता भी अपनी वृद्धावस्था की देखभाल के लिए पुत्र को ही पसंद करते हैं। बहुत से गर्भस्थ बालिका शिशु का गर्भपात करवा दिया जाता है, त्याग दिया जाता है, जान-बूझकर उनकी परवाह नहीं की जाती और उन्हें पूरा भोजन भी नहीं दिया जाता क्योंकि वे बालिकाएँ हैं। राजस्थान में तो अवस्था और भी शोचनीय है परंतु धीरे-धीरे अब इस दिशा में परिवर्तन हो रहा है। हरियाणा जैसे कुछ राज्यों में जहाँ बालिका अनुपात बहुत कम है लडकियों की शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु अनेक योजनाएं लायी गयी है। सरकार द्वारा नौकरियों में लड़कियों के लिए अन्य कई सुविधाओं के अतिरिक्त पदों का आरक्षण और प्रसव के समय छ: माह का मातृत्व अवकाश भी प्रदान किया जा रहा है।

विश्व बैंक का आलेख 'महिलाओं के स्वास्थ्य और पोषण के लिए एक नया कार्यक्रम (वाशिंगटन 1995)' दर्शाता है कि विकासशील देशों में लगभग 450 मिलियन बालिग युवतियाँ अपने बचपन से ही प्रोटीन की कमी के कारण विकास की समस्या से जूझती रही हैं। अनेक समुदायों में स्त्रियों और लड़कियों को पुरुषों एवं लड़कों के मुकाबले कम तथा निकृष्ट भोजन दिया जाता है। जब वे बीमार होती हैं तब भी उन पर कम ध्यान देते हैं या जब उनकी बीमारी बहुत ज्यादा गंभीर हो जाती हैं तभी थोड़ा-सा ध्यान दिया जाता है। पुरुष एवं स्त्रियों के बीच स्वास्थ्य में तथा चिकित्सा तक उनकी पहुँच में विश्वस्तरीय भिन्नता पाई गई है।

अधिकतर देशों में पुरुष के मुकाबले स्त्री की साक्षरता दर बहुत कम है। 66 देशों में, पुरुष एवं स्त्री की साक्षरता दर का अंतर 10 प्रतिशत बिंदु से भी अधिक है। 40 देशों में 6-11 वर्ष के आयु वर्ग में यह अंतर 20 प्रतिशत से भी अधिक है? जिस आयु वर्ग में प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान किया जाता है। 2011 की जनगणना के अनुसार पुरुष एवं स्त्री की साक्षरता दर में 16.7 प्रतिशत का अंतर है। उदाहरणत: पुरुष साक्षरता दर 82.14 प्रतिशत के मुकाबले स्त्रियों की साक्षरता दर 65.46 प्रतिशत है। सारे विश्व में 60 मिलियन लड़कों में 16.4 प्रतिशत के मुकाबले लगभग 85 मिलियन में से 24.5 प्रतिशत लड़कियाँ आज भी विद्यालय नहीं जा पातीं।

ज्यादातर भारतीय परिवारों में 'कन्या' के आने पर खुशी नहीं मनाई जाती। यद्यपि लड़कियाँ छोटी-सी उम्र से ही पूजनीय मानती जाती हैं, यद्यपि आज लड़कियाँ शिक्षा के क्षेत्र में बेहतर प्रदर्शन कर रही हैं फिर भी, परंपरा, रिवाज तथा समाज के कार्यों में लड़कों को ज्यादा महत्त्व दिया जाता है, लड़कियों को नहीं, जिनको प्राय: आर्थिक बोझ माना जाता है। समाज की इस मनोवृत्ति के कारण बालिकाएँ अपनी शक्ति के अनुरूप उपलब्धियाँ नहीं कर पातीं। बालिकाओं के विषय में एक नया आलेख कहता है कि लड़की विश्व का सर्वाधिक अपव्ययी उपहार माना जाता है। वे अत्यधिक शक्ति संपन्न बहुमूल्य मानव हैं परंतु इस संसार में आमतौर पर उनकी मूलभुत आवश्यकाओं को भी पूरा नहीं किया जाता है और उनके मौलिक अधिकारों को भी नकार दिया जाता है।

लड़की को खाना, कपड़ा, आश्रय, शिक्षा, चिकित्सा सुविधा, पालन-पोषण तथा खेलने का समय तक अक्सर नहीं दिया जाता। उनको सुरक्षा का अधिकार (अवसर), उत्पीड़न तथा शोषण से मुक्ति, उनके पनपने और विकसित होने तथा प्रसन्न होने का अधिकार भी नहीं दिया जाता है।

0-6 वर्ष की आयु वाले लिंग अनुपात के आंकड़ों से लड़कियाँ के विरुद्ध भेदभाव बहुत स्पष्ट और तीक्ष्ण दृष्टिगोचर हो जाता है। 2011 की जनगणना में लिंग अनुपात 2001 की जनगणना के अनुसार 927 से घटकर 914 ही रह गया है। शिशु लिंग अनुपात 1961 में 967 से लगातार घटता हुआ 2011 में 914 रह गया है।

20.2.2 दहेज व्यवस्था

हमारे समाज की सबसे बड़ी कुप्रथा दहेज प्रथा है जिसने हमारी संस्कृति को प्रभावित किया है। 'स्वतंत्र भारत' में दहेज प्रथा के विरुद्ध भारत सरकार ने 'दहेज प्रतिबंध अधिनियम 1961' कानूनी धारा बनाई। दहेज का लेना और देना दोनों ही कानून द्वारा निषिद्ध हैं और यह दण्डनीय अपराध माने जाते हैं। यह प्रथा हमारी संस्कृति में इस प्रकार घर कर गई है कि यह खुलेआम चल रही है। ग्रामीण या शहरी लोग खुलेआम इसका उल्लंघन करते हैं। इससे न केवल दहेज हत्याएँ की जाती हैं बल्कि ज्यादातर इसी के कारण मारपीट आदि भी की जाती है तथा महिलाओं को मानसिक एवं शारीरिक यंत्रणा दी जाती है। स्त्रियों के मूलभूत अधिकार का भी लगभग प्रतिदिन उल्लंघन किया जाता है। यह उत्साहवर्धक है कि कुछ लड़कियाँ साहस से इस बुराई के विरुद्ध अपने अधिकारों के लिए खड़ी हो रही हैं। ऐसी लड़कियों को शीघ्र ही सकारात्मक समर्थन प्रदाना करनी आवश्यक है। साथ ही एक व्यापक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा प्रशासनिक कार्यवाही करके इस बुराई से समाज को मुक्त करना भी आज की अत्यंत आवश्यकता है।

आप अपने क्षेत्र में ऐसी बालिका का पता लगाएँ जो विद्यालय नहीं जाती है। उसके माता-पिता को बतायें कि सरकार ने 'लाड़ली' योजना शुरु की है और अब वह उन पर बोझ नहीं रहेगी बल्कि वह बहुमूल्य बन जाएगी। अत: उन्हें लड़की को विद्यालय भेजना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 20.1

1. लोकतंत्र को जातिवाद किस प्रकार प्रभावित करता है?

   ....

2. भारत सरकार की 'लाड़ली' योजना क्या है?

   ....

3. किस अधिनियम के अंतर्गत दहेज निषिद्ध है?

   ....

20.3 मादक द्रव्यों का दुष्प्रयोग/व्यसन/लत

नियमित रूप से हानिकारक द्रव्य जैसे शराब, नशीले पेय, तंबाकू, बीड़ी या सिगरेट, ड्रग्स आदि का सेवन (निर्धारित चिकित्सा के उद्देश्यों के अतिरिक्त) व्यसन कहलाता है। जैसे-जैसे मादक पदार्थों की संख्या बढ़ती जाती है, अधिक से अधिक लोग विशेषकर युवा वर्ग व्यसनी होते चले जाते हैं। युवा तथा प्रौढ़ों को इस नशीले द्रव्य के सेवन के जाल में

फंसाने वाले और भी तथ्य हैं जो इसके लिए उत्तरदायी हैं। इन तथ्यों में समान वर्ग के साथियों का दवाब, अनुत्साहवर्धक पारिवारिक वातावरण और तनाव आदि प्रमुख कारण हैं।

नशे का व्यसन एक ऐसी अवस्था है जिसमें चिकित्सीय तथा मनोवैज्ञानिक सहायता की आवश्यकता पड़ती है। माता-पिता को अपने बच्चों का विशेष ध्यान रखना चाहिए विशेषकर तब जब वह बचपन की अवस्था से किशोर तथा वयस्क हो रहे हों। ऐसी स्थिति में उनके शरीर में बहुत बदलाव आते हैं। किशोर प्राकृतिक रूप से बहुत जिज्ञासु होते हैं। वे नई दुनिया में, विचारों में तथा रिश्तों में नई उड़ान भरने लगते हैं। कुछ मादक द्रव्यों की ओर भी झुक जाते हैं तथा उनके वातावरण में यदि परिवार, विद्यालय एवं दोस्त उनकी मादक द्रव्यों से हानियों की ओर सावधान न करे, बहुत संभव है कि वे इस जाल में फंस जाएँ। शराब और सिगरेट, मादक द्रव्यों में से सबसे ज्यादा प्रचलित और हानिकारक पदार्थ हैं।

शराबखोरी समाज की गंभीर समस्या है। यह सरलतम उपाय माना जाता है कि शराब पीयो और अपनी परेशानियों तथा अवसाद की स्थिति को भूल जाओ, चाहे यह थोड़े ही समय के लिए ही हो। इस लत के परिणाम बहुत गंभीर होते हैं। थोड़ी आमदनी होने पर भी शराबी लोग परिवार की आवश्यकाओं को ताक पर रखकर शराब खरीदते हैं। यदि वे महंगी और अच्छी स्तर की शराब नहीं खरीद सकते तो वे सस्ती शराब पी लेते हैं। वे एक प्रकार का जहर भी पी जाते हैं। इसको पीने के बाद वे अपने होश खो देते हैं। कभी-कभी इसके दुष्परिणाम से इनकी मृत्यु भी हो जाती है या स्थायी विकलांगता हो जाती है। शराब पीने के बाद ज्यादातर समय वे अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ दुर्व्यवहार भी करते हैं।

धूम्रपान बुरी आदत है जो स्वास्थ्य के लिए शराब से भी ज्यादा हानिकारक है। इससे धूम्रपान करने वालों को ही केवल नुकसान नहीं होता बल्कि उनके आस-पास के लोगों को भी वातावरण में धुएँ से हानि होती है। यदि हम दूसरों के अधिकारों का मान करते हैं तो हमें बस, रेलगाड़ी, बाजार, ऑफिस आदि सार्वजनिक स्थलों पर धूम्रपान नहीं करना चाहिए। धूम्रपान, प्रदूषण का बड़ा कारण है और इससे गंभीर बीमारियाँ जैसे कैंसर, हृदय रोग, श्वास समस्या आदि हो जाती हैं। 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' (WHO) के अनुसार तंबाकू का प्रयोग विशेषकर धूम्रपान मृत्यु का सबसे बडा कारक (एक नम्बर मारक) है। संचिय मंत्री परिषद ने सार्वजनिक स्थानों पर धूमपान पर रोक लगा दी है। इसे विद्यालय तथा कॉलेज के पास बेचना भी मना है। इस उत्पाद को बनाने वाले को निर्देश है कि वे उपभोक्ता को चेतावनी देते हुए उस उत्पाद के ही ऊपर उपभोक्ता के लिए चेतावनी अंकित करें।

20.4 साम्प्रदायिकता

भारत विभिन्न धार्मिक आस्थाओं वाला देश है। भारत में हिंदु, मुस्लिम, ईसाई, सिख, पारसी आदि विभिन्न समुदाय के लोग रहते हैं। एक समुदाय का दूसरे समुदाय के प्रति आक्रमक व्यवहार तनाव पैदा करता है और दो धार्मिक समुदायों में टकराव उत्पन्न हो जाता है। सैंकड़ों

लोग इन साम्प्रदायिक झगड़ों में मारे जाते हैं। यह घृणा और परस्पर संदेह को जन्म देता है। देश की एक मुख्य सामाजिक समस्या साम्प्रदायिकता है, जिसको सुलझाना और दूर करना आवश्यक है। यह हमारी उन्नति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है जिसके माध्यम से हम समाज में शांति और एकता स्थापित कर सकते हैं। हमें यह याद रखना चाहिए कि हम पहले मानव हैं, बाद में किसी धार्मिक समुदाय के अंश बनते हैं।

हमें सभी धर्मों का आदर करना चाहिए। हमारा देश धर्म-निरपेक्ष है, जिसका अभिप्राय है कि सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार किया जाता है और हर व्यक्ति को अपना धर्म पालन करने में पूरी स्वतंत्रता है।

किसी भी धूम्रपान करने वाले मादक द्रव्य लेने वाले, शराबी या जुआरी से मिलकर उसे इन सबके बुरे प्रभाव तथा इससे मुक्त होने के उपाय बताइए।

20.5 वृद्धजनों की समस्याएँ

संसार की आबादी बूढ़ी हो रही है। विश्वस्तर पर 1950 में 8% बूढ़े थे, 2000 में 10% तथा 2050 में बढ़कर यह संख्या 21% होने का अनुमान है। भारत में सन् 1961 में 5.8% (25. 5 मिलियन) वृद्धजन थे; 1991 में 6.7% (56.6 मिलियन) तथा 2011 में बढ़कर 8.1% (96 मिलियन) होने का अनुमान है। अब 2021 में इसके 137 मिलियन हो जाने की आशा है। भारतीय वृद्धजनों (60 वर्ष एवं इससे ज्यादा वाले) की संख्या आगामी कुछ दशकों में तिगुना होने की उम्मीद है। इन वृद्धजनों को सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक सहारा देना सामाजिक विकास की मूलभूत समस्या बनकर उभर रही है।

शहरों में संयुक्त परिवारों के टूटने से और ज्यादातर एकाकी परिवारों की अधिकता के कारण वृद्धजन अपने ही परिवार में व्यर्थ सदस्य बनकर रह गए हैं। वृद्धों के लिए सामुदायिक सहायता की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। हमारी वृद्धजनों के सम्मान की संस्कृति को युवा वर्ग में पुनः जागृत करना होगा जिससे वृद्धजन आत्मसम्मान से जी सकें। याद रखिए, वृद्धों का अवश्य सम्मान करना चाहिए। वे जब युवा थे तो उन्होंने आपकी देखभाल की और अब उस ऋण को चुकाने की आपकी बारी है।

आपको अपने वृद्ध दादा-दादी की देखभाल और सेवा करनी चाहिए। किसी वृद्धाश्रम में जाओ और वहाँ रहने वाले वृद्धजनों से चर्चा करो। सोचो कि तुम किस प्रकार उनके जीवन में सुविधा और खुशी दे सकते हो।

पाठगत प्रश्न 20.2

1. मादक द्रव्य क्या है?

   ....

2. 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' के अनुसार किसको नम्बर एक मारक कहा गया है?

   ....

3. 2021 में अनुमानतः भारत में वृद्धजनों की संख्या कितनी होगी?

   ....

4. वृद्धजनों की देखभाल में कमी आने का मुख्य कारण क्या है?

   ....

20.6 गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या

क्षेत्रफल में भारत एक बड़ा देश है। यह विश्व के संपूर्ण क्षेत्रफल का प्रायः 2.4% है पर क्या आप जानते हैं कि विश्व की कितने प्रतिशत जनसंख्या यहाँ निवास करती है? जी हाँ। यह प्रायः 16.7% है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 121 करोड़ है। इतनी बड़ी जनसंख्या के साथ निश्चित ही कुछ आर्थिक समस्याएं भी विकसित हो जाएंगी। ये समस्याएं हैं बेरोजगारी, महंगाई, गरीबी और कीमतों में वृद्धि। हमारी जनता का एक बहुत बड़ा वर्ग गरीबी रेखा से नीचे रह रहा है। भयानक बेरोजगारी है। महंगाई और कीमतों में वृद्धि ने इस समस्या को ओर भी गंभीर बना दिया है।

जबकि जनता का एक महत्त्वपूर्ण भाग गरीबी रेखा से नीचे जीवन बिता रहा है, इसका प्रभाव सामाजिक-आर्थिक रूप से त्रस्त परिवारों पर निचले स्तर का जीवन, बीमारियां, निरक्षरता, कुपोषण और बाल श्रम के रूप में एक गंभीर चिंता का विषय बन गया है। प्रायः अनुसूचित जाति की जनसंख्या के एक चौथाई लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन बिता रहे हैं। गरीबी एक मूलभूत समस्या है जो विकास के सभी उद्देश्यों की प्राप्ति में रुकावट डाल रही है।

बेरोजगारी वह स्थिति है जब एक सुयोग्य स्वस्थ मनुष्य जो काम करना चाहता है परन्तु जीविकोपार्जन के लिए काम नहीं ढूंढ पाता। क्रमिक बेरोजगारी और घोर गरीबी मानवीय मूल्यों के ह्रास के लिए उत्तरदायी है। गरीबी की मजबूरी के कारण माता पिता अपने बच्चों को मजदूरी करने के लिए भेजने में भी नहीं सकुचाते। इस परिदृश्य के कारण लाखों बच्चे अपने बचपन से वंचित रह जाते हैं। वे अशिक्षित और अज्ञानी रह जाते हैं, जिसका परिणाम बेरोजगारी या छोटी नौकरी और फलतः गरीबी में परिणत हो जाता है।

20.6.1 भीख मांगना

जहां भी हम जाएं, भिखारियों का दृश्य बहुत करुणाजनक होता है। बाजार में, रेलवे स्टेशन, हास्पिटल, मंदिर यहां तक कि चौराहों पर भी आप कुछ लोगों को अपनी खुली हथेली फैलाए आपके पास आते हुए दिखाई देंगे। वे खाना या पैसा मांगते हैं। हम गलियों में कई बच्चों को भी भीख मांगते देखते हैं। भारत में भीख मांगना एक प्रमुख सामाजिक समस्या है। भीख का प्रधान कारण गरीबी और बेरोजगारी है।

आजकल हमारे समाज में कुछ लोग गिरोह बनाकर सुनियोजित ढंग से भीख मंगवाने का धंधा कर रहे हैं। फिर भी भीख मांगना एक सामाजिक अभिशाप है जिसे देश से समाप्त करना आवश्यक है। यदि आपको सड़क पर या कहीं भी भिखारी दिखें तो उनको बताएं कि यह कानूनन दण्डनीय अपराध है और यह नियम भीख लेने वाले तथा भीख देने वाले दोनों पर ही लागू होता है।

20.7 बच्चों की समस्याएं

बच्चों के विकास में पर्याप्त सावधानी के बिना कोई भी देश, विकास नहीं कर सकता। हर बच्चा देश का भावी नागरिक है। केवल वे ही बच्चे जो स्वस्थ वातावरण में पलते हैं, राष्ट्र के निर्माण और विकास में योगदान दे सकते हैं। हमारे देश में बच्चों की बड़ी जनसंख्या है। इसलिए यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम उनको उत्तम स्वस्थ्य व उच्च शिक्षा के लिए आवश्यक सुअवसर प्रदान करें।

गरीबी के कारण बहुत से बच्चे विद्यालय नहीं जा पाते, या प्रारंभिक शिक्षा समाप्त होने से पहले ही उनको विद्यालय से निकाल लिया जाता है; और जबरदस्ती छोटी और कोमल उम्र में उन्हें होटलों, ढाबों, भट्टों, कारखानों या दुकानों पर नौकरी पर लगा दिया जाता है। इससे उनकी शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक संवृद्धि रुक जाती है। वे घृणा तथा पीड़ा में बड़े होते हैं और राष्ट्र के योग्य नागरिक बन पाने में असमर्थ होते हैं।

6-14 वर्ष की आयु के बच्चे को विद्यालय में होना चाहिए लेकिन दुर्भाग्य से 200 मिलियन भारतीय बच्चों में से 11.3 मिलियन बच्चे बाल श्रमिक हैं। एक एन.जी.ओ के आकड़ों में 60 मिलियन में से 2,00,000 बच्चे घरेलू नौकर की तरह काम करते हैं और इतनी ही संख्या में बंधुआ मजदूर हैं। ये बच्चे शारीरिक व मानसिक शोषण के शिकार हो जाते हैं। ये भुखमरी, पिटाई तथा यौन शोषण के शिकार होते हुए भी देखे गए है। यह एक अत्यंत गंभीर समस्या हैं जिसे ''बाल-उत्पीड़न'' के नाम से जाना जाता हैं।

'शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के अनुसार 6-14 वर्ष की आयु वाले सभी बच्चों को शिक्षा पाने का अधिकार है। एक बार यह अतिवाञ्छित 'सबके लिए शिक्षा' का उद्देश्य पूरा हो जाता है तो हमारे बच्चों की दशा कहीं अधिक अच्छी हो सकेगी।

पाठगत प्रश्न 20.3

1. सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या कितनी है?

   ....

2. किस कारण से लोग दूसरे लोगों से रुपये, खाना और कपड़ा आदि मांगने पर मजबूर हो जाते हैं?

   ....

3. यदि तुम्हें कोई भिखारी मिले तो उसे किस प्रकार भीख मांगने की वृत्ति छोड़ने के लिए कहोगे?

   ....

4. बाल उत्पीड़न क्या है?

   ....

आपने क्या सीखा

1. दहेज, बालश्रम, बाल-उत्पीड़न, नशा, शराबखोरी जुआ आदि बुराइयों ने इस समय चिंताजनक स्वरूप धारण कर लिया है।
2. समाज में स्त्रियों और बालिकाओं के प्रति भारतीय समाज में प्रचलित लैंगिक भेदभाव तथा सम्बद्ध कठिनाइयों के कारण उनका पूर्ण विकास नहीं होने पाता।
3. संयुक्त परिवार व्यवस्था के टूटने से तथा एकाकी परिवारों के बनने से वृद्धजनों की समस्याएं बढ़ गई हैं जिनका उन्हें सामना करना पड़ रहा है।
4. समाज में जीवन के स्तर पर गरीबी और बेरोजगारी हानिकारक प्रभाव डालती है?

पाठान्त प्रश्न

1. जातिवाद किसी भी व्यक्ति को अपने पसंद का व्यवसाय चुनने में किस प्रकार अड़चन बन गया?
2. दहेज सामाजिक समस्या है। व्याख्या करें।
3. बालिकाओं तथा महिलाओं का विकास राष्ट्र के लिए लाभप्रद है। स्पष्ट करें।
4. बच्चे हमारे देश की सम्पत्ति हैं। क्या आप इस तथ्य से सहमत है?

5. क्या आप सोचते हैं कि ''दहेज निषेध अधिनियम 1961'' दहेज समस्या को दूर करने में समर्थ है?'' तर्कपूर्ण उत्तर दें।
6. लड़कियां संसार का सबसे बड़ा अपव्ययी उपहार हैं। चर्चा करें।
7. ''गरीबी और बेरोजगारी अनेक सामाजिक समस्याओं के मूल कारण हैं।'' विवेचना कीजिए।

20.1 पाठगत प्रश्नों के उत्तर

20.1 1. समाज कृत्रिम समूहों में बंटा हुआ है और ये समूह आमतौर पर उसी व्यक्ति का समर्थन करते हैं जो उनकी जाति का होता है। वे प्रत्याशी के अच्छे या बुरे होने के बारे में नहीं सोचते हैं।

2. बालिका शिशु के जन्म के समय एक निश्चित राशि को जमा कर दिया जाता है जिसे वह अठारह वर्ष की आयु होने पर प्राप्त कर सकती है। यह राशि उस बालिका की शिक्षा या शादी पर खर्च की जा सकती है।

3. ''दहेज प्रतिबंध अधिनियम 1961''।

20.2 1. शराब/अल्कोहोल पेय, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, मादक द्रव्यों आदि का निर्धारित चिकित्सा के अतिरिक्त सेवन व्यसन कहलाता है।

2. तम्बाकू

3. 137 मिलियन

4. खासतौर पर शहरी क्षेत्रों में संयुक्त परिवार टूट रहे हैं और एकाकी परिवार का चलन है। वहां पर बढ़ती हुई आयु वाले सदस्य अपने ही परिवारों में अवांछित बनते जाते हैं।

20.3 1. 1210 मिलियन

2. गरीबी तथा बेरोजगारी

3. जो भिक्षा मांगता है और जो भिक्षा देता है दोनों के लिए कानूनी तौर पर यह दण्डनीय अपराध है।

4. 6-14 वर्ष की आयु के बच्चे को विद्यालय जाना चाहिए। दुर्भाग्य से 200 मिलियन भारतीय बच्चों में से 11.3 मिलियन बच्चे बाल श्रमिक हैं। एक एन.जी.ओ के आंकड़ों में 60 मिलियन में से 2,00,000 बच्चे घरेलू नौकर की तरह काम करते हैं और इतने ही संख्या में बंधुआ मजदूर हैं। ये बच्चे शारीरिक और मानसिक शोषण के शिकार भी हो सकते हैं। वे भुखमरी, पिटाई तथा यौन शोषण के शिकार हो जाते हैं। यह एक अत्यंत गंभीर समस्या है जिसे 'बाल-उत्पीड़न' के नाम से जाना जाता है।

21

भारतीय संस्कृति का विदेश में प्रसार

आजकल लोग बहुत अधिक यात्राएँ करते हैं। ये सड़क, वायु, समुद्र, रेल अथवा किसी भी अन्य मार्ग से जाते हैं। पर क्या आप जानते हैं कि लोग उस समय भी दूर-दूर यात्राएँ करते थे जब भारत में कोई ट्रेन नहीं होती थी, न कोई वायुयान। प्रायः तीन सहस्राब्दी ईसा पूर्व के मध्य से भारत बाह्य विश्व से व्यापारिक स्तर पर संपर्क में रहा है जबकि भारत तीन ओर से समुद्र से घिरा है और इसके उत्तर में हिमालय पर्वतश्रेणी है। लेकिन ये विश्व के अन्य देशों से भारत के नजदीकी संबंध बनाने में कभी बाधक नहीं बने। भारतीय लोगों ने सुदूर देशों की यात्राएं की और वे जहां भी गए, वहां उन्होंने भारतीय संस्कृति की अमिट छाप छोड़ी। इसके साथ, ये सुदूर देशों के विचार, प्रभाव, रीति-रिवाज और परंपराओं को भी साथ ले आये। तथापि इस संदर्भ में सबसे बड़ी विलक्षणता यह थी कि इससे भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रसार विश्व के विभिन्न भागों में हुआ, विशेषरूप से मध्य एशिया, दक्षिणपूर्व एशिया, चीन, जापान, कोरिया आदि में। इस प्रसार की सर्वाधिक विलक्षणता यह है कि इस प्रचार का उद्देश्य किसी समाज या व्यक्ति को जीतना था डराना नहीं बल्कि भारत की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को स्वेच्छा से स्वीकार करवाना था। हम इस पाठ में देखेंगे कि भारतीय संस्कृति का दूसरे देशों में कैसे प्रसार हुआ और उन पर क्या प्रभाव हुआ।

यह पाठ आपको एक अन्य सुन्दर विचार भी देगा कि अन्य देशों से, अन्य समाजों से, अन्य धर्मों से तथा अन्य संस्कृतियों से शान्तिपूर्ण मित्रता हमारे जीवन को जीवन्त और अधिक सार्थक बनाते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:–

- जिन माध्यमों से भारतीय संस्कृति दूसरे देशों में फैली; उनको स्पष्ट कर सकेंगे;
- जिन व्यापारिक मार्गों से भारतीय व्यापारी दूसरे देशों में गए और भारतीय संस्कृति के प्रसार के पहले सांस्कृतिक दूत बने, उनको चिह्नित कर सकेंगे;
- दूसरे देशों में भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार में प्राचीन विश्वविद्यालय, अध्यापकों और धर्मप्रचारकों ने जो भूमिका निभाई, उसकी व्याख्या कर सकेंगे;
- भारतीय संस्कृति कैसे पूर्व एशिया और दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में फैली, इसकी व्याख्या कर सकेंगे;
- रोम-साम्राज्य से भारत के व्यापारिक संबंधों का वर्णन कर सकेंगे;
- बौद्ध धर्म का शांति-संस्थापक धर्म के रूप में दूसरे देशों में प्रसार-प्रचार किस प्रकार हुआ, इस पर विचार कर सकेंगे;
- विभिन्न देशों की भाषाओं और साहित्य पर संस्कृत भाषा के प्रभाव की समीक्षा कर सकेंगे;
- भारतीय दर्शन, भारतीय प्रशासन एवं कानून तथा भारतीय महाकाव्यों की इन देशों में प्रसिद्धि का वर्णन कर सकेंगे;
- इन देशों के विभिन्न विशाल मंदिरों, मूर्तियों और चित्रों के रूप में कई शताब्दियों के दौरान निर्मित और संरक्षित विरासत का उल्लेख कर सकेंगे; तथा
- अरब सभ्यता के साथ भारत की सांस्कृतिक अन्त:क्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

21.1 व्यापारियों, शिक्षकों, राजदूतों और धर्म प्रचारकों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का प्रसार

प्राचीन काल में भारतीय व्यापारी व्यापार के नए अवसरों की खोज में अनेक देशों में गए थे। वे पश्चिम में रोम तक और समुद्री मार्गों से होते हुए पूर्व में चीन तक पहुंचे थे। हमारे देश के व्यापारी सोने की खोज में प्रथम शताब्दी में इण्डोनेशिया और कम्बोडिया आदि देशों में गए। उनकी जावा, सुमात्रा तथा मलाया द्वीपों की यात्राओं के विशेष वर्णन मिलते हैं। यही कारण है कि इन क्षेत्रों को प्राचीन काल में 'सुवर्ण द्वीप' कहा गया था। सुवर्ण का अर्थ 'सोना' और द्वीप मिलकर बना 'सोने का द्वीप'। वास्तव में व्यापारियों ने संस्कृति-दूत की भूमिका निभायी। तथा बाहरी दुनिया के देशों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित किये। ईसा-पूर्व पहली शताब्दी में व्यापारी उज्जैन, मथुरा, काशी, प्रयाग, पाटलीपुत्र आदि नगरों से और पूर्वी तट के मामल्लपुरम्, ताम्रलिप्ति, कटक, पुरी, रामेश्वरम् तथा कावेरीपत्तनम् से

विदेश के लिए चलते थे। सम्राट अशोक के काल में कलिंग राज्य का श्रीलंका के साथ व्यापारिक संबंध था। जहां कहीं भी व्यापारी गए वहीं उनके सांस्कृतिक संबंध स्थापित हो गए थे। इस प्रकार व्यापारियों ने सांस्कृतिक राजदूतों की भूमिका का निर्वाह किया और बाहरी दुनिया से व्यापारिक सम्बन्ध बनाए।

पूर्वी तट के समान ही पश्चिमी तट पर भी अनेक सांस्कृतिक स्थल बने। इनमें अजन्ता, एलोरा, कार्ले, भाजा, कन्हेरी आदि का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। इनमें से ज्यादातर केन्द्रों पर बौद्ध धार्मिक मठ हैं।

सांस्कृतिक आदान-प्रदान में यहां के प्राचीन विश्वविद्यालयों की भूमिका सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण रही है। इन्होंने बड़ी संख्या में विद्वानों और छात्रों को आकर्षित किया। विदेश से आने वाले विद्वान अक्सर नालंदा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में जाते थे। कहा जाता है कि यह विश्वविद्यालय सात मंजिला था। इन विश्वविद्यालयों के शिक्षक और छात्र धर्म और विद्या के साथ-साथ भारतीय संस्कृति को भी विदेश में ले गये। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन-सांग ने भारत के उन सभी विश्वविद्यालयों का विस्तार से वर्णन किया है जिनमें वह गए अथवा जहां रह कर इन्होंने अध्ययन किया। उदाहरण के लिए, इनमें से दो विश्वविद्यालयों का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है—पूर्व में नालंदा ओर पश्चिम में वल्लभी।

गंगा के पूर्वी तट पर एक अन्य विश्वविद्यालय था—विक्रमशिला। तिब्बती विद्वान् तारानाथ ने इसका विस्तृत वर्णन किया है। यहां के शिक्षक और विद्वान तिब्बत में इतने प्रसिद्ध थे कि कहा जाता है एक बार तिब्बत के राजा ने इस विश्वविद्यालय के प्रधान को तिब्बत में आमंत्रित करने के लिए दूत भेजे थे ताकि स्वदेशी ज्ञान ओर जन-सामान्य की संस्कृति में रुचि जगाई जा सके।

बिहार में एक अन्य प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था—ओदन्तपुरी। पालवंश के राजाओं के संरक्षण में इसकी प्रतिष्ठा बढ़ी। इस विश्वविद्यालय से बहुत सारे बौद्ध भिक्षु तिब्बत में जाकर बस गए थे।

सन् 67 ईसवी में चीनी सम्राट के निमंत्रण पर सबसे पहले जो दो भारतीय आचार्य चीन गए उनके नाम है—काश्यप मांतग और धर्मरक्षित। इसके बाद लगातार नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला और ओदन्तपुरी आदि विश्वविद्यालयों के शिक्षकों ने उनका अनुसरण किया। जब आचार्य कुमारजीव चीन पहुंचे तो चीनी सम्राट ने उनसे संस्कृत ग्रंथों को चीनी में अनूदित करने के लिए अनुरोध किया। एक अन्य आचार्य बोधिधर्म थे। जो योगदर्शन के विशेषज्ञ माने जाते थे। इनको चीन और जापान में अभी भी सम्मान प्राप्त है।

नालंदा विश्वविद्यालय के आचार्य कमलशील को तिब्बत के राजा ने निर्मंत्रित किया था। उनकी मृत्यु के बाद उनके शरीर पर विशेष लेप लगा कर उसे ल्हासा के विहार में सुरक्षित रखा गया था।

ज्ञानभद्र, एक अन्य प्रकांड विद्वान थे। वे अपने दोनों बेटों के साथ धर्म प्रचार के लिए तिब्बत

गये। बिहार के ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय के समान तिब्बत में एक नये बौद्ध विहार की स्थापना की गई थी।

आचार्य अतीश विक्रमशिला विश्वविद्यालय के प्रधान थे। उन्हें दीपंकर श्रीज्ञान के नाम से भी जाना जाता था। वे ग्यारहवीं शताब्दी में तिब्बत गये और वहां बौद्ध धर्म की सशक्त नींव डाली। थोनमी संभोता एक तिब्बती मंत्री था जो चीनी यात्री ह्वेनसांग के नालंदा आगमन के समय, नालंदा विश्वविद्यालय का छात्र था। यहां से अध्ययन के बाद वह तिब्बत लौटा और वहां उसने बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार किया। तिब्बतियों की बड़ी संख्या ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया यहां तक कि तिब्बत का राजा भी बौद्ध बन गया था। उसने बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित किया था। प्रसिद्ध शिक्षकों में से एक कुमारजीव 5वीं शताब्दी में सक्रिय थे।

21.2 अन्य माध्यमों से भारतीय संस्कृति का प्रसार

रोम या जिप्सी

बहुत से भारतीय घूमते-घूमते संसार के अनेक देशों में पहुंचे। वे स्वयं को रोम कहते थे और उनकी भाषा रोमानी थी, परन्तु यूरोप में उन्हें जिप्सी कहा जाता था। वे वर्तमान समय के पाकिस्तान और अफगानिस्तान आदि को पार कर पश्चिम की ओर निकल गये थे। वहां से, ईरान और ईराक होते हुए वे तुर्की पहुंचे। फारस, तौरस की पहाड़ी और कुस्तुन्तुनिया होते हुए वे यूरोप के अनेक देशों में फैल गये। आज वे ग्रीस, बुल्गारिया, रूमानिया, पूर्व यूगोस्लाविया के राज्यों, पोलैंड, स्विट्जरलैंड, फ्रांस, स्वीडन, चेकोस्लोवाकिया, रूस, हंगरी और इंग्लैंड में बसे हुए हैं। इस पूरी यात्रा में उन्हें लगभग चार सौ वर्ष का समय लगा। इस अवधि में वे लोग यह तो भूल गये कि वे कहां के निवासी हैं परन्तु उन्होंने अपनी भाषा, रहन-सहन के ढंग, रीति-रिवाज और व्यवसाय आदि को नहीं छोड़ा।

रोम लोगों को उनके नृत्य और संगीत के लिए जाना जाता है। कहा जाता है कि हर एक रोम गायक और अद्भुत कलाकार होता है।

पाठगत प्रश्न 21.1

1. हमारी संस्कृति का विदेश में किसने प्रसार किया?

   ....

2. चीनी तीर्थयात्री ह्यूनसांग ने कौन से दो विश्वविद्यालयों में यात्रा की?

   ....

3. विक्रमशिला विश्वविद्यालय का किस तिब्बती आचार्य ने वर्णन किया है?

   ....

4. सन् 67 ई. के दौरान किन दो आचार्यों ने चीन की यात्रा की?

....

5. आचार्य कुमारजीव चीन क्यों गए थे?

....

6. प्राचीन काल में जिप्सी कौन थे?

....

21.3 मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति

ई. पूर्व में दूसरी शताब्दी से भारत ने चीन, सैन्ट्रल एशिया, वेस्ट एशिया और रोमन साम्राज्य के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बनाए थे। मध्य एशिया तिब्बत, भारत, अफगानिस्तान, चीन, रूस और मंगोलिया से घिरा हुआ क्षेत्र है। चीन से आने-जाने वाले व्यापारियों को बहुत कठिनाइयों के बावजूद इस क्षेत्र से होकर जाना पड़ता था। जो मार्ग उन्होंने बनाया वह आगे चलकर (सिल्क रूट) 'रेशम-मार्ग' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसे इस नाम से इसलिए बुलाया जाने लगा क्योंकि चीन से रेशम का व्यापार किया जाता था। आगे चलकर चीन आने जाने वाले विद्वानों, भिक्षुओं, आचार्यों और धर्माचार्यों आदि ने इसी मार्ग का प्रयोग किया। इस मार्ग ने उस समय के परिचित विश्व में संस्कृतियों के प्रचार-प्रसार में एक महान श्रृंखला का कार्य किया। भारतीय संस्कृति का प्रभाव मध्य एशिया में भी दृढ़ता से अनुभव किया गया।

मध्य एशिया के साम्राज्यों में कुची एक ऐसा राज्य था जहां भारतीय संस्कृति अपने पूर्व वैभव पर थी। इस साम्राज्य से रेशम मार्ग दो भागों में बंट जाता है और चीन में डुन हुवांग की गुफाओं पर जाकर ये मार्ग पुन: मिल जाते हैं। इस तरह एक उत्तरी 'रेशम-मार्ग' था तथा दूसरा, दक्षिणी रेशम-मार्ग। उत्तरी रेशम मार्ग समरकंद, काशगढ़, तुम्शुक, आक्सु कारा शहर, तुर्फान और हामी से होकर गुजरता था और दक्षिणी रेशम मार्ग यारकन्द, खोतान, केरिया, चेरचेन और मीरान से होकर जाता था। ज्ञान की खोज में और बौद्ध दर्शन का प्रचार करने के लिए अनेक चीनी और भारतीय विद्वान इन मार्गों से गये।

भारत और मध्य एशिया के देशों के बीच जो सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुआ, उसका प्रमाण इन सभी देशों में प्राप्त प्राचीन स्तूपों, मन्दिरों, मठों, मूर्तियों और चित्रों से प्राप्त होता है।

इस मार्ग पर कई स्थान है जहाँ भिक्षु और धर्माचार्य, व्यापारी और तीर्थयात्री सभी यात्रा के बीच में रुका करते थे। ये आगे चलकर बौद्ध शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बने। यहीं से होकर रेशम के साथ-साथ जेड नामक बहुमूल्य पत्थर, घोड़े तथा अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का व्यापार हुआ करता था। परन्तु इस मार्ग से होकर जाने वाला सबसे अधिक प्रभावशाली तत्त्व था-बौद्ध धर्म। अत: कहा जा सकता है कि इस व्यापार मार्ग से धर्म और दर्शन का आस्था

और विश्वास का, भाषा और साहित्य का कला और संस्कृति का प्रसार हुआ। खोतान एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। यह दक्षिणी रेशम मार्ग पर स्थित था।

भारत के साथ इसके संबंधों का इतिहास दो हजार वर्ष पुराना है। मरुभूमि के बीच हरी-भरी धरती पर बसा यह खोतान राज्य रेशमी कपड़ा उद्योग, नृत्य और संगीत, साहित्यिक और व्यापारिक गतिविधियों और सोने तथा जेड के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था।

इतिहास में, भारत और खोतान के बीच संबंध का एक प्रमाण यह है कि भिक्षुओं और शिक्षकों का आवागमन निरंतर चलता रहा। वहां से प्राप्त पहली शताब्दी के सिक्कों पर एक ओर चीनी भाषा में लिखा हुआ है तो दूसरी ओर प्राकृत भाषा में खरोष्टी लिपि में। यह खोतान की मिश्रित संस्कृति को प्रमाणित करता है। यहां रेत के अन्दर दबे मठों की खुदाई करने पर बड़ी संख्या में संस्कृत में बौद्ध दर्शन की पाण्डुलिपियां, उनके लिप्यन्तर और अनुवाद उपलब्ध हुए हैं।

21.4 पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति

चीन

भारत और चीन के आपसी सम्पर्क दूसरी शताब्दी इसवी में आरम्भ हुए। भारतीय संस्कृति ने सर्वप्रथम दो भारतीय आचार्यों-धर्मरक्षित और कश्यप मांतग के माध्यम से चीन में प्रवेश किया जो चीनी सम्राट मिंग ति के निमंत्रण पर सन् 67 में चीन गए थे।

आचार्य-धर्मरक्षित और कश्यप मातंग के पश्चात् चीन और भारत के बीच विद्वानों का आना-जाना निरंतर निर्बाध गति से चलता रहा। चीनी बहुत ही सभ्य लोग थे। उन सभी ने बुद्ध की भावपूर्ण कहानियों को बहुत ध्यान से सुना। जो भी चीनी यात्री ज्ञान की खोज में भारत आये, उन्होंने अपने यात्रा वृतान्त में भारत और भारतीय संस्कृति की इतने विस्तार से चर्चा की कि आज वह वृतांत ऐतिहासिक दृष्टि से हमारे लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण बन गए हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों और विहारों के अनेक शिक्षक चीन में प्रसिद्ध हुए थे जैसे-काञ्चीपुरम् के बोधिधर्म। वे अध्ययन के लिए नालंदा विश्वविद्यालय गये और वहां से वे चीन चले गए थे। वे अपने साथ योग का दर्शन ले गये। चीन में उन्होंने 'ध्यान' (मनन) का प्रचार किया। जिसे बाद में चीन में 'चान्' कहा जाता है। बोधिधर्म वहां इतने प्रसिद्ध हो गये कि चीन और जापान में उनकी पूजा की जाने लगी।

बौद्ध दर्शन ने चीनी विद्वानों को आकृष्ट किया क्योंकि उनके पास पहले से ही 'कन्फ्यूशियनिज्म' नामक विकसित दर्शन था।

चौथी शताब्दी में 'वेई' वंश के राजाओं ने सत्ता संभाली। इस वंश के पहले सम्राट ने बौद्ध धर्म को राज धर्म घोषित कर दिया। इससे बौद्ध दर्शन के प्रचार को गति मिली। इस काल में हजारों संस्कृत किताबों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था। संकटमय, भयानक और लम्बी यात्रा को बहादुरी से तय करते हुए वे बुद्ध की भूमि पर आए। भारत में रहकर उन्होंने

बौद्धों के शव-अवशेष तथा बौद्धधर्म पर हस्तलिखित पुस्तकों को इकट्ठा किया। विभिन्न शैक्षिक केन्द्रों में रहकर इनके विषय में पढ़ाई की।

बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ चीन में बहुत ही बड़े स्तर पर गुफाओं की खुदाई तथा मंदिरों और विहारों के निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ। इन गुफाओं में कहीं चट्टानें काट कर विशालकाय मूर्त्तियां बनाई गईं तो कहीं उनके अंदर अद्भुत चित्रकारी की गई। इनमें से डुन-हुवांग, युन-कांग और लुंग-मेन दुनिया के प्रसिद्ध गुफा परिसर में से हैं। इनमें भारतीय प्रभाव काफी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इस सांस्कृतिक संबंध तथा विचारों के आदान-प्रदान का उत्तरदायित्व आचार्यों और भिक्षुओं के दो तरफा आवागमन पर निर्भर है।

कोरिया

कोरिया चीन के उत्तर-पूर्व में स्थित है। कोरिया को भारतीय संस्कृति के तत्त्व चीन से प्राप्त हुए थे। सबसे पहले सुन्दो नामक एक बौद्ध भिक्षु, बुद्ध की मूर्ति और सूत्र लेकर सन् 352 ई. में कोरिया पहुंचा। उसके उपरान्त सन् 384 में आचार्य मल्लानन्द कोरिया गये। कोरिया के प्योंगयांग नगर में एक भारतीय भिक्षु ने सन् 404 ई. में दो मंदिरों का निर्माण करवाया था। उसके बाद अनेक भारतीय शिक्षक कोरिया जाते रहे। वे भारत से धर्म, दर्शन, मूर्ति बनाने की कला, चित्रकला, धातुविज्ञान, आदि विषयों का ज्ञान अपने साथ लाए। ज्ञान की खोज करते-करते कोरिया से भी बहुत से विद्वान भारत आये। यहां पर उन्होंने विशेष रूप से ज्योतिष, खगोल विज्ञान, आयुर्वेद और ज्ञान के अन्य कई क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्राप्त किया। कोरिया में बने ये मंदिर और बौद्ध विहार धर्म के साथ-साथ ज्ञान के केन्द्र भी बन गये। बड़ी संख्या में बौद्ध ग्रंथों का कोरिया की भाषा में अनुवाद किया गया।

आठवीं-नवीं शताब्दी में भारत से ध्यान योग का दर्शन कोरिया पहुंचा। राजा, रानी, राजकुमार, मंत्री यहां तक कि वहां के सैनिकों ने भी वीरता और निर्भयता सीखने के लिए योग का प्रशिक्षण प्राप्त करना आरंभ कर दिया। ज्ञान के प्रति समर्पण की भावना से कोरिया के लोगों ने छः हजार खंडों में बौद्ध ग्रंथों का प्रकाशन किया। इसी तरह भारतीय लिपियाँ भी कोरिया पहुंचीं।

जापान

भारत और जापान के सांस्कृतिक संबंधों का इतिहास पन्द्रह सौ वर्ष पुराना माना जाता है लेकिन भारतीय संस्कृति के जापान में प्रवेश के लिखित प्रमाण सन् 552 से हैं। उस समय कोरिया के सम्राट ने जापानी सम्राट के लिए अनेक प्रकार की भेंट भेजी जिनमें बौद्ध मूर्त्तियां, सूत्र, पूजा में प्रयोग होने वाली वस्तुएं और उनके साथ मूर्त्तिकार, कलाकार, वास्तुकार आदि सम्मिलित थे।

जल्दी ही बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित कर दिया गया। हजारों की संख्या में लोग भिक्षु तथा भिक्षुणी बन गए।

जापान में संस्कृत को पवित्र भाषा का स्थान प्राप्त हुआ। भिक्षु संस्कृत वर्णों और मंत्रों को लिखने के लिए विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे। जिस लिपि में संस्कृत मंत्र लिखे जाते थे उसे जापानी में 'शित्तन्' कहा जाता है। 'शित्तन्' 'सिद्धम्' का ही दूसरा रूप है, 'सिद्धम्' का अर्थ है ऐसी लिपि जो सिद्धि देती है।

आज भी जापानी विद्वान् संस्कृत के अध्ययन के लिए उत्सुक रहते हैं। वास्तव में बौद्ध ग्रंथों की भाषा होने के कारण, संस्कृत भारत और जापान के मध्य एक महत्त्वपूर्ण कड़ी का कार्य कर रही है। सातवीं शताब्दी में राजकुमार शोतोकुताइशी के समय चीनी भाषा में अनूदित बौद्ध ग्रंथ जापान पहुंचे थे। वह इन ग्रंथों के दर्शन से बहुत प्रभावित हुए।

तिब्बत

तिब्बत हिमालय के उत्तर में बहुत ही ऊंचे पठार पर बसा है। तिब्बत के लोग बौद्ध है। माना जाता है कि तिब्बत के राजा नरदेव ने अपने एक मंत्री थोन्मी सम्भोट के साथ सोलह श्रेष्ठ विद्वानों को मगध भेजा। इन विद्वानों ने भारतीय शिक्षकों से ज्ञान प्राप्त किया। कुछ समय के पश्चात् थोन्मी सम्भोट कश्मीर चले गए थे। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने भारतीय लिपि के आधार पर तिब्बत के लिए एक नयी लिपि का आविष्कार किया। आज तक तिब्बत में इसी लिपि का प्रयोग किया जाता है। इसने मंगोलिया और मंचूरिया की लिपि को भी प्रभावित किया था।

ऐसा मालूम पड़ता है कि थोन्मी सम्भोट अपने साथ भारत से अनेकों पुस्तकें ले गए। तिब्बत लौट कर थोन्मी सम्भोट ने तिब्बती लोगों के लिए नये व्याकरण की रचना की। यह पाणिनि द्वारा लिखे संस्कृत व्याकरण पर आधारित मानी जाती है। संमोट के माध्यम से आये साहित्य के प्रति राजा इतना आकर्षित हुआ कि उसने इस साहित्य के अध्ययन में चार साल बिता दिए। उसने संस्कृत से तिब्बती भाषा में अनुवाद की नींव डाली। इसके परिणामस्वरूप सातवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक निरंतर अनुवाद कार्य चलता रहा। इस प्रकार छियानवे हजार संस्कृत ग्रंथों का तिब्बती भाषा में अनुवाद हुआ।

पाठगत प्रश्न 21.2

1. चीन मार्ग को रेशम मार्ग क्यों कहा जाता है?

   ....

2. कुची कहां है? यह क्यों प्रसिद्ध है?

   ....

3. पहली सदी में एक ओर चीनी भाषा में खुदे हुए और दूसरी ओर खरोष्टी लिपि में प्रकृति लिखे सिक्के कहाँ प्राप्त हुए?

....

4. दुन हुआंग, युन कांग और लुंग-मेन क्या थे?

....

5. कोरिया में 'ध्यान-योग' दर्शन कब पहुंचा?

....

6. जापान में भारतीय संस्कृति कैसे पहुंची?

....

7. जापान में 'शित्तन' क्या है?

....

8. ईशा पश्चात् सातवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी के बीच संस्कृत भाषा की कितनी पुस्तकों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया?

....

21.5 श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति

श्रीलंका

आपने पढ़ा होगा कि महाकाव्य रामायण में अयोध्या के राजा भगवान राम, सीताजी को वापस लेने श्रीलंका गए थे। यह सम्भव है कि उस समय की लंका और श्रीलंका अलग अलग हों। महाराजा अशोक ने भारत के बाहर बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए अथक प्रयास किए। उन्होंने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को बुद्ध के संदेशों के प्रचार कार्य के लिए श्रीलंका भेजा। उनके साथ अन्य कई विद्वान् भी गये। ऐसा कहा जाता है कि वे अपने साथ बोधगया से बोधिवृक्ष की एक शाखा भी काट कर ले गये जो वहाँ लगाई गई। उस समय श्रीलंका में देवानाम्पिय तिस्स नामक राजा था। भारत से जो लोग गए, उन्होंने मौखिक रूप से ही बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार किया। प्राय: दो सौ वर्षों तक श्रीलंका में लोगों ने महेन्द्र द्वारा सिखाए गए शास्त्रों के उच्चारण को संभाल रखा। सबसे पहले महाविहार और अभयगिरि नामक बौद्ध विहारों का निर्माण हुआ।

उस समय से आज तक श्रीलंका बौद्ध धर्म का एक सशक्त केन्द्र रहा है। श्रीलंका के लोग पालि भाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में प्रयोग करने लगे। श्रीलंका की संस्कृति को सुंदर बनाने में बौद्ध धर्म का महत्त्वपूर्ण योगदान है। श्रीलंका में दीपवंश और महावंश बौद्धधर्म के विख्यात स्रोत हैं।

बौद्ध धर्म के साथ-साथ भारतीय कला भी श्रीलंका पहुंची, भारतीय विषय, नृत्य चित्रकला की तकनीक शैली और तरीके, लोक गीत और कला की शैली और वास्तुकला की विधि भी यहीं से वहाँ पहुंची। श्रीलंका की चित्रकला का सबसे सुन्दर निदर्शन 'सिगीरिया' नामक गुफा विहार में मिलता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि राजा कश्यप ने 5वीं शताब्दी में इसे एक मजबूत किले के रूप में परिवर्तित कर दिया। इसकी भित्तियों पर बनाये गये चित्रों का आकार प्रकार भारत की अमरावती की कला शैली में है।

म्यांमार (बर्मा)

ईसा संवत् के प्रारंभ में भारतीय संस्कृति और भारतीय लोग बर्मा पहुंचने लगे थे। म्यांमार चीन जाने वाले रास्ते में पड़ता था। अमरावती और ताम्रलिप्ति से आने वाले लोगों ने दूसरी सदी के बाद म्यांमार में बसना आरंभ कर दिया। म्यांमार में आकर बसने वाले लोगों में व्यापारी, ब्राह्मण, कलाकार, शिल्पी और अन्य लोग शामिल थे।

बर्मा में, पगान 11वीं से 13वीं सदी तक बौद्ध-संस्कृति का महान केन्द्र बना रहा। यहां के एक प्रतापी राजा का नाम अनिरुद्ध है। इन्होंने खेजेगोन पैगोडा तथा हजारों की संख्या में मंदिर बनवाये। उन्होंने पालि भाषा को विकसित किया तथा बौद्ध एवं हिन्दू धर्मग्रन्थों का अपनी पालि भाषा में अनुवाद करवाया।

बर्मा के राजदरबार पर भी भारतीय परंपरा और का गहरा प्रभाव रहा। हाल के दिनों तक यहां राज-ज्योतिषी, भविष्यवक्ता तथा आचार्य ब्राह्मण हुआ करते थे। इन्हें बर्मा में पोन्ना कहा जाता है। इनमें अधिकांश भारत के मणिपुर प्रदेश के थे। माना जाता है कि बर्मा में ये पंडित अत्यंत सक्रिय रहे। पंडित गण की प्रसिद्धि विज्ञान, चिकित्सा तथा ज्योतिष में उनके अच्छे ज्ञान के कारण थी।

थाईलैंड

सन् 1939 ई. तक थाईलैंड को स्याम नाम से ही जाना जाता था। इस देश में भारतीय संस्कृति का प्रवेश ईसा की प्रथम शताब्दी में होना शुरू हुआ। सबसे पहले यह कार्य व्यापारियों ने किया तथा उनके पश्चात् प्रचारकों और धर्माचार्यों ने इसे आगे बढ़ाया। भारतीय संस्कृति अनेक प्रकार से वहां पहुंची। वहां के राज्यों के नाम संस्कृत में रखे गये जैसे-द्वारावती, श्रीविजय, अयोध्या और सुखोदय आदि। थाईलैंड में नगरों के नाम भी भारतीयता के द्योतक हैं जैसे-कंचनपुरी के तर्ज पर कांचनबुरी, राजपुरी के समान राजबुरी और लवपुरी के समान लोबपुरी। यहां शहरों के प्राचीनबुरी, सिहबुरी जैसे नाम मिलते है जो संस्कृत भाषा के प्रभाव को दर्शाते हैं। यहां तक कि राजाराम, राजा-रानी, महाजया और चक्रवंश जैसे गलियों के नाम यहां रामायण की लोकप्रियता का साक्ष्य देते हैं।

ब्राह्मणों की मूर्त्तियाँ और बौद्ध मंदिरों का वहां पर निर्माण तीसरी-चौथी शताब्दी में आरंभ हो गया था। वहां के मंदिरों से प्राप्त होने वाली सबसे प्राचीन मूर्तियां भगवान् विष्णु की हैं।

विभिन्न समय पर थाईलैंड की राजधानी कई बार परिवर्तित हुई। जहां भी नई राजधानी बनती थी वहां भव्य मंदिरों का निर्माण किया जाता थां अयोध्या जिसे 'अयुत्थिया' कहते हैं उन्हीं में से एक है। यहां बहुत बड़े-बड़े मंदिर थे पर आज वे सब खण्डहरों के रूप में खड़े हैं परन्तु वर्तमान राजधानी बैकांक में आज भी 400 मंदिर हैं।

कम्बोडिया

चम्पा (अन्नम) और कम्बोज (कम्बोड़िया) साम्राज्यों पर भारतीय मूल के राजाओं ने शासन किया। भारत और कम्बोडिया के गहरे सांस्कृतिक संबंध का इतिहास पहली और दूसरी शताब्दी ई. पश्चात् तक जाता है। प्रथम शताब्दी से कम्बोज में भारतीय मूल के शासक कौन्डिन्य राजवंश ने शासन किया। असंख्य संस्कृत अभिलेख तथा साहित्य से हम उनके इतिहास का अनुमान लगा सकते हैं। हम शानदार मंदिरों को देखकर उनका वैभव ज्ञात कर सकते हैं।

कम्बोडिया के लोगों ने बड़े-बड़े स्मारक बनाए और उनको भारतीय महाकाव्यों और पुराणों से लेकर शिव, विष्णु, बुद्ध और अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियों से सजाया। राजाओं के द्वारा इन ग्रन्थों के ऐतिहासिक घटनाओं को प्रदर्शित करने के लिए कथानकों से अनेक अंश चुने गए। चौदहवीं शताब्दी तक संस्कृत राजभाषा के पद पर आसीन रही।

राजाओं ने संस्कृत में अपनी उपाधियाँ खुदवाईं। ब्राह्मणों को सबसे ऊंचे पदों पर नियुक्त किया गया। शासन का सारा कार्य हिन्दु नियमों और ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार चलाया जाने लगा। मंदिरों के साथ ज्ञान केन्द्र के रूप में आश्रम खोले गए। ताम्रपुर, विक्रमपुर, ध्रुवपुर आदि नगरों के संस्कृत नाम रखे गए। आज तक यहां भारतीय महीनों के नाम-चेत्, बिसाक, जेश, आसाढ़ आदि चलते हैं। ये भारतीय नामों के ही अपभ्रष्ट उच्चारण हैं। इसी प्रकार थोड़े से उच्चारण भेद के साथ हम आज भी उनकी भाषा में हजारों शब्द देख सकते हैं।

कम्बोड़िया में स्थित आंकोरवाट का मंदिर संसार का सबसे बड़ा विष्णु मंदिर है। इस मंदिर के पांच शिखर सुमेरु पर्वत के पांच शिखर माने जाते हैं। इस मंदिर में वहां के एक राजा सूर्यवर्मन को विष्णु के रूप में मूर्त्तिमान किया गया है। माना जाता है कि वह अपने पुण्य-कार्यों के कारण विष्णुलोक चला गया। यह मंदिर एक वर्गमील में फैला हुआ है। इसके चारों ओर की खाई सदा पानी से भरी रहती है जो इसकी शोभा की चार चांद लगाती है। इसकी दीवारों पर रामायण और महाभारत के चित्र खोदे गये हैं। इनमें सबसे बड़ा दृश्य समुद्रमंथन अर्थात् समुद्र के मथने का है।

कम्बोडिया में यशोधरपुर में एक और भव्य मंदिर है–बाफुओन। यह ग्यारहवीं शताब्दी में बनाया गया था। इसकी दीवारों पर महाकाव्यों के चित्र खुदे हुए हैं जैसे राम-रावण के युद्ध के दृश्य, कैलाश-पर्वत पर अधिष्ठित शिव-पार्वती के दृश्य तथा कामदेव के भस्म होने का दृश्य।

वियतनाम (चम्पा)

चम्पादेश में भारतीय संस्कृति के प्रसार का कार्य भारत के व्यापारियों और राजकुमारों ने किया। वहां जा कर उन्होंने राजनीति और अर्थशास्त्र के अग्रणी के रूप में अपने को सिद्ध किया। दोनों दृष्टियों से उन्होंने वहां के नगरों के नाम इन्द्रपुर, अमरावती, विजय, कौठार, पाण्डुरंग आदि रखे।

चम्पा के लोग चम कहलाते हैं। चम लोगों ने बड़ी संख्या में हिंदु और बौद्ध मंदिरों का निर्माण किया। वे भगवान शिव, गणेश, लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती, बुद्ध तथा लोकेश्वर आदि देवताओं की पूजा किया करते थे। इन्होंने मंदिरों में अन्य मूत्तियों शिवलिंगों की भी स्थापना की। ये मंदिर भव्य थे परन्तु आज जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं।

मलेशिया

प्राचीन काल से भारत में मलेशिया के बारे में जानकारी थी। रामायण, जातक कथाओं, मिलिन्दपण्ह, शिल्पादिकरम् तथा रघुवंश नामक महाकाव्यों में मलयेशिया का उल्लेख आता है। मलेशिया के केडाह तथा वैलेस्ली आदि प्रान्तों से इस बात के प्रमाण मिले हैं कि वहां शैव धर्म प्रचलित था। यहां से कुछ ऐसी देवियों की मूर्तियां भी मिली हैं जिनके हाथ में त्रिशूल है। अन्य मूर्तियों में सातवीं और आठवीं सदी से संबंधित ग्रेनाइट का नन्दी-शीर्ष, दुर्गा-प्रतिमा तथा गणेश मूर्ति आदि विभिन्न स्थलों से प्राप्त हुई हैं।

प्राचीन काल में मलेशिया में ब्राह्मी लिपि के परवर्ती रूप का ही प्रयोग किया जाता था। केडाह नामक स्थान से कुछ ऐसे बौद्ध ग्रंथों के अंश मिले हैं जो पुरानी तमिल से मिलती जुलती किसी लिपि में लिखे गए हैं। संस्कृत वहाँ की स्रोत भाषा रही। वहां की भाषा को शब्द देने का कार्य भी संस्कृत भाषा ने किया। स्वर्ग, रस, गुण, दण्ड, मंत्री, दोहद धीपति, लक्ष इत्यादि अनेक संस्कृत शब्द उनकी भाषा में पाये जाते हैं। हनुमान और गरुड़ अपनी अलौकिक शक्तियों के लिए मलेशिया में प्रसिद्ध थे।

भारत और मलेशिया के सांस्कृतिक संबंधों के सबसे प्राचीन प्रमाण वहां से मिले संस्कृत के शिलालेख हैं। ये चौथी पांचवीं शताब्दी की भारतीय लिपि में लिखे गये हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण लिगोर के शिलालेख को माना जाता है। यहां पर करीब पचास मंदिर मिले हैं।

इण्डोनेशिया

धार्मिक वास्तुशिल्प के क्षेत्र में इण्डोनेशिया का सबसे बड़ा शिव-मंदिर जावा द्वीप में स्थापित है। इसे प्रम्बनन कहा जाता है। यह मंदिर नवीं शताब्दी में बनाया गया था। इसके मध्य में सबसे बड़ा मंदिर शिव मंदिर है। इसके दोनों ओर ब्रह्मा और विष्णु के मंदिर हैं। इन तीन मन्दिरों के सामने तीन मंदिर और हैं जो तीनों देवताओं के वाहनों के मंदिर हैं। जैसे शिव के सामने नन्दी का, विष्णु के सामने गरुड़ का और ब्रह्मा के सामने हंस का मंदिर

है। इन दो पंक्तियों के बीच में दो अन्य मंदिर देवी दुर्गा तथा गणपति के हैं। इस प्रकार इन आठ मंदिरों का एक समूह बन गया है। इस समूह के चारों ओर छोटे-छोटे 240 मंदिरों की पंक्तियां हैं। यह वास्तुशिल्प का अनुपम उदाहरण है। इस मंदिर की दीवारों पर रामायण तथा कृष्ण कथा के चित्रों की जो नक्काशी की गई है, वह संसार की सबसे प्राचीन प्रस्तुतियों में से हैं।

यहां पूजा के समय संस्कृत मंत्रों का पाठ किया जाता है। बालि द्वीप से संस्कृत के ऐसे पांच सौ से अधिक सूक्त तथा श्लोक इकट्ठे किये गये हैं जो अनेक देवी-देवताओं की स्तुति में गाये जाते हैं, जैसे-शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश, बुद्ध आदि। वास्तव में बालि ही एक मात्र प्रदेश है जहां हिंदू संस्कृति समृद्ध हुई और अभी तक अस्तित्व में है। जबकि समस्त (पुराने लोगों) ने इस्लाम स्वीकार कर लिया है, 'बालि' फिर भी हिंदू संस्कृति और धर्म का ही अनुसरण करता है।

इण्डोनेशिया के जावा द्वीप से भारी संख्या में पाण्डुलिपियां मिली हैं। ये प्रायः ताड़पत्रों पर जावा की प्राचीन लिपि 'कावि' में लिखी गयी हैं। कावि लिपि का आधार भी ब्राह्मी लिपि ही है। इन ग्रंथों में प्रायः संस्कृत में श्लोक तथा 'कावि' भाषा में उन की टीकाएँ लिखी हुई हैं। यदि शैव धर्म तथा दर्शन के ग्रंथों पर विचार किया जाये तो उनमें 'भुवनकोश' सबसे बड़ा और सबसे पुराना ग्रन्थ है। इसमें 525 श्लोक संस्कृत में हैं तथा एक टीका इन श्लोकों के अर्थ को बताते हुए लिखी गई है।

दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति तथा धर्म का जितना प्रभाव हुआ उतना शायद संसार के किसी अन्य राज्य पर नहीं पड़ा। सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा भारतीय लिपि में संस्कृत शिलालेख सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। ये शिलालेख सभी राज्यों में प्राप्त होते हैं। इन शिलालेखों तथा साहित्य के अध्ययन से तथा अन्य साहित्य से यहां की भाषा, धर्म राजनीति, सामाजिक संस्थानों पर भारत का बहुत प्रभाव दिखता है।

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र'-ये जाति विभाजन तथा वर्ण व्यवस्था को भी जानते थे। लेकिन यह व्यवस्था भारत के समान कठोर नहीं थी। ऋग्वेद के काल में जैसी कर्म के आधार पर विभाजित व्यवस्था थी वैसी ही व्यवस्था यहाँ पर थी। जन्म के आधार पर बालि में वर्णव्यवस्था नहीं है। विवाह के रीति-रिवाज भी प्रायः एक जैसे ही हैं।

मनोरंजन का बहुत लोकप्रिय साधन (भारतीय कठपुतली के प्रदर्शन जैसा) छाया नाटक 'वायुंग' हैं- जिसकी कहानियां मुख्यरूप से रामायण और महाभारत से ली जाती हैं और जो दक्षिण पूर्व एशिया में अभी भी बहुत लोकप्रिय है।

पाठगत प्रश्न 21.3

1. श्रीलंका के प्रथम दो मठों के नाम बतायें।

....

2. बौद्ध धर्म श्रीलंका कैसे पहुँचा?

3. कौन सी भाषा श्रीलंका की साहित्य की भाषा बनी?

4. 'अंकोर वाट' क्या है?

5. 'अंकोर वाट' के पांच शिखर क्या कहलाते हैं?

6. 'अंकोर वाट' में क्या चित्रित है और क्यों?

7. अंकोर वाट मंदिर किसका प्रतिनिधित्व करता है?

8. 'अंकोर वाट' की दीवारों पर क्या खुदा हुआ है?

9. 'अंकोर वाट' की दीवारों पर कौन सा सबसे महत्त्वपूर्ण दृश्य खुदा हुआ है?

10. 'बाफुओन' पर क्या सजावट की गई है?

11. वियतनाम (चम्पा) के कुछ शहरों के नाम बताइये जिनके नाम भारतीय संस्कृति पर आधारित हैं।

12. मलेशिया में शैवधर्म के प्रमाण कहां पाये गए?

13. मलेशिया में कौन सी महत्वपूर्ण आकृतियाँ खुदाई में प्राप्त हुईं?

14. संस्कृत के उन शब्दों को बताइए जो मलेशिया की भाषा में पाये जाते हैं।

15. चौथी तथा पांचवीं शताब्दी में मलेशिया में कौन से सबसे महत्त्वपूर्ण शिलालेख हैं?

16. 'लिगोर' में कितने मंदिर पाये गए?

....

17. 'प्रंबनन' क्या है?

....

18. शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा के तीनों मंदिरों के सामने क्या बना हुआ है?

....

19. इण्डोनेशिया के जावा द्वीप में कितने मंदिर हैं?

....

20. इण्डोनेशिया के मंदिरों की दीवारों पर कौन सी कहानियां खुदी हुई हैं?

....

21. इण्डोनेशिया के बाली द्वीप में क्या पाया गया?

....

21.6 भारतीय संस्कृति और अरब सभ्यता के संबंध

स्थल और समुद्र-मार्ग के द्वारा पश्चिम एशिया से भारत का संपर्क प्राचीन काल से चला आ रहा है। इन दो संस्कृति-क्षेत्रों (उस समय राष्ट्र का विचार विकसित नहीं हुआ था) के बीच संबंध, पश्चिम एशिया में इस्लामी सभ्यता के उदय और प्रसार के साथ और गहरे हुए। इस संबंध के आर्थिक-पक्ष के विषय में 9वीं सदी के मध्य के अरब तथा अन्य व्यापारी यात्रियों जैसे-सौदागर सुलेमान, अल-मसूदी, इब्न हौकुल, अल इदरिसी आदि के वृतांतों से जानकारी मिलती है। इन यात्रा-वृतांतों के अनुसार इन दो संस्कृति-क्षेत्रों के बीच व्यापारिक आदान-प्रदान का संबंध अत्यंत समृद्ध था। बहरहाल, संस्कृति के क्षेत्र में आठवीं सदी या इससे भी पहले से सक्रिय मेल-जोल के प्रमाण मिले हैं।

भारत और पश्चिम एशिया के बीच सार्थक सांस्कृतिक मेल-जोल के प्रमाण बहुत से क्षेत्रों में प्राप्त होते हैं। हम यहां पढ़ेंगे कि कैसे इस संबंध के फलस्वरूप इस्लामी-जगत समृद्ध हुआ। खगोलविज्ञान के क्षेत्र के दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'ब्रह्म-स्फुट-सिद्धांत' जिसे अरब जगत में 'सिंधिन' के नाम से जानते हैं, तथा 'खण्डनखाध' (अरकंद नाम से प्रसिद्ध) सिन्ध के दूतावासों के माध्यम से बगदाद पहुंचे। इन दूतावासों के भारतीय विद्वानों की मदद से इन ग्रंथों का अरबी में अनुवाद अल-फजारी ने किया। संभवत: अल-फजारी ने याकूब-इन-तारीक की भी मदद की थी। बाद के समय में आर्यभट्ट और वराहमिहिर कृत खगोलविज्ञान के ग्रंथों का भी अरब-जगत में अध्ययन हुआ और इन्हें अरब के वैज्ञानिक साहित्य में शामिल कर लिया गया।

अरब सभ्यता को भारत का एक अन्य महत्त्वपूर्ण योगदान गणित था। अरब के विद्वानों ने गणित शास्त्र को 'हिन्दिसा' (भारत से संबंधित) कहकर भारत के प्रति अपना ऋण स्वीकार किया है। भारतीय गणित अरबी विद्वानों के अध्ययन और विचार-विमर्श का प्रिय विषय बन गया। भारतीय गणित की लोकप्रियता अन्य विद्वानों के अतिरिक्त अलकिन्दी के ग्रंथों के कारण ज्यादा बढ़ी। अरबों ने बहुत जल्दी जान लिया कि शून्य की अवधारणा से सम्पन्न भारतीय दशमिक-प्रणाली अत्यंत क्रांतिकारी है। सीरिया के एक तत्कालीन विद्वान ने शून्य के साथ दाशमिक-प्रणाली के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा था-"मैं मात्र इतना भर कहना चाहता हूं कि यह परिगणना नौ अंकों के सहारे होती है। इसलिए जो यह विश्वास करते हैं कि क्योंकि वे ग्रीक भाषा बोलते हैं, उन्होंने विज्ञान की सरहदों को छू लिया है, यदि इन बातों को जानें तो उन्हें पता लगेगा कि दूसरे लोग भी हैं जिन्हें कुछ आता है।"

10वीं से 13वीं सदी के अनेक अरबी स्रोतों से पता चलता है कि चिकित्सा और औषधि -विज्ञान के बहुत से भारतीय ग्रंथों का खलिफा हारून अल-रशीद के निर्देश पर अरबी में अनुवाद हुआ। खलीफा हारुन अल-रशिद् सन् 786 ई. से सन् 809 ई. तक बगदाद का शासक रहा। उदाहरण के तौर पर सुश्रुत संहिता का अनुवाद अरबी में एक भारतीय ने किया जिसे मंख कहा जाता है।

खगोलविज्ञान, ज्योतिष-शास्त्र, गणित शास्त्र तथा औषधि-विज्ञान आदि ग्रन्थों के अतिरिक्त अरबों ने विभिन्न विषयों के भारतीय ग्रंथों के साथ-साथ भारतीय सभ्यता-संस्कृति के विभिन्न विषयों की भी प्रशंसा की। उन्होंने भारतीय ग्रंथों का अनुवाद भी कराया, लेकिन वे अनुवाद से संतुष्ट नहीं हुए और अनूदित ग्रंथों पर आधारित अथवा उनसे व्युत्पन्न मौलिक ग्रंथों की भी उन्होंने रचना की। अरबों ने भारतीय ज्ञान के जिन अन्य क्षेत्रों का अध्ययन किया उसमें सांप और जहर के विषय में लिखे ग्रंथ, पशु-चिकित्सा से संबंधित ग्रंथ, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीति तथा युद्ध-कला पर लिखित ग्रंथ भी शामिल हैं। इस प्रक्रिया में अरब की शब्दावली भी अत्यंत समृद्ध हुई। मिसाल के तौर पर अरब लोग जहाजरानी में अत्यंत अग्रणी थे परन्तु आप इस क्षेत्र के ऐसे अनेक अरबी शब्दों को पहचान सकते है जो भारतीय मूल के हैं, जैसे, 'हूर्त्ति' (छोटी नाव) जो होरी से बना है तथा 'बनवी' जो बनिया या वणिक् से बना है, एवं 'डोनीज' जो डोंगी से बना है आदि।

21.7 भारत के रोम से संबंध

दक्षिण भारत के उत्पादों का पश्चिम में एकाधिकार था क्योंकि उनकी वहां बहुत मांग थी। वास्तव में ईसा युग की प्रथम तीन शताब्दियों में भारत का पश्चिम के साथ लाभप्रद समुद्री व्यापार हुआ जिनमें रोम साम्राज्य प्रमुख था। रोम भारतीय सामान का सर्वोत्तम ग्राहक था। यह व्यापार दक्षिण भारत के साथ हुआ जो कोयम्बटूर और मदुरई में मिले रोम के सिक्कों से सिद्ध होता है। रोम में काली मिर्च, पान, मसालों और इत्रों की बहुत मांग थी। बहुमूल्य पत्थर जैसे नगीने, हीरे, पन्ने, माणिक्य और मोती, हाथी दांत, रेशम एवं मलमल के वस्त्र वहां बहुत पसंद किये जाते थे। रोम के साथ व्यापार से भारत में सोना आता था और भारत

को इस व्यापार से बहुत लाभ होता था तथा उस समय कुषाण साम्राज्य को आमदनी के रूप में स्थायी स्वर्ण मुद्रा मिलती थी। तमिल राजाओं ने युद्ध स्थल पर अपने शिविरों की रक्षा के लिऐ और मदुरै के नगरद्वार की पहरेदारी के लिए भी यवन नियुक्त किये थे। प्राचीन भारत में यवन शब्द पश्चिम एशिया तथा भूमध्यसागरीय क्षेत्र के लोगों के लिए प्रचलित था और इसमें रोमवासी तथा यूनानी लोग भी शामिल थे। कुछ इतिहासकारों का मत है कि 'यवन' अंगरक्षकों में कुछ रोमवासी भी हो सकते थे।

इस समय तक कावेरीपत्तनम विदेशी व्यापार का एक बहुत महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। कावेरीपत्तनम में तट पर ऊंचे मंच, गोदाम और भंडार गृह जहाजों से उतरे माल को रखने के लिए बनाये गये। इन वस्तुओं की चुंगी भुगतान के बाद इन पर चोलों की बाघ के चिह्नवाली मोहर लगाई जाती थी। उसके बाद माल व्यापारियों के भंडारगृहों (पत्तनप्पलाई) में भेजा जाता था। निकट ही यवन व्यापारियों के आवास और विभिन्न भाषाएं बोलने वाले विदेशी व्यापारियों के रहने के स्थान होते थे। वहीं एक बड़े बाजार में उनकी जरूरत का हर सामान उपलब्ध होता था। यहां फूलों और इत्रों के सुगंधित लेप और चूर्ण बनाने वाले, दर्जी जो सिल्क, ऊनी और सूती वस्त्रों पर काम करते थे, चंदन, मूंगे, सोने, मोती और बहुमूल्य नगों के व्यापारी, अनाज के व्यापारी, धोबी, मछली और नमक आदि के बेचने वाले, मोची, सुनार, चित्रकार, मूर्तिकार, लुहार और खिलौने बनाने वाले सब मिल जाते थे। यहां समुद्र पार सुदूर देशों से आये घोड़े भी बाजार में बेचने के लिए लाए जाते थे।

इनमें अधिकांश वस्तुओं को निर्यात के लिए एकत्र किया जाता था। प्लिनी के अनुसार भारत के निर्यातों में काली मिर्च और अदरक भी शामिल थे। इनका वास्तविक मूल्य से सौ गुना ज्यादा दाम मिलता था। इसके अतिरिक्त भारतीय इत्र, मसालों और सुगंधों आदि वस्तुओं की रोम में बहुत अधिक खपत थी।

प्राचीन काल में विदेशों के साथ भारत के व्यापार संबंध कितने महत्त्वपूर्ण थे इसका अनुमान आप भारतीय राजाओं द्वारा भेजे जाने वाले और उनसे मिलने आने वाले राजदूतों की संख्या से लगा सकते हैं। एक पांड्य (Pandya) राजा ने ईसा पूर्व पहली शताब्दी में रोम के सम्राट अगस्टस के पास राजदूत भेजा था। ईसा के बाद सन् 99 में भी ट्राय के लिए राजदूत भेजे गये। क्लाउडियस, ट्रैजन, एंटोनमिस, पूइस, इंस्तिमान तथा अन्य राजदूतों ने विभिन्न भारतीय राजदरबारों की शोभा बढ़ायी।

रोम के साथ व्यापार इतना अधिक था कि इसकी गति को निर्बाध बनाने के लिए पश्चिमी तट पर सोपारा और बेरीगाज (भड़ौच) जैसे बंदरगाह बने, जबकि कोरोमंडल तट से 'सुनहरे कैरसोनीस' (सुवर्णभूमि) और सुनहरे क्रीस (सुवर्ण द्वीप) के साथ व्यापार होता था। चोल राजाओं ने अपने बंदरगाहों पर प्रकाशस्तंभ लगाये जो रात में तीव्र रोशनी देकर बंदरगाहों पर जहाजों का मार्गदर्शन करते थे। पांडेचेरी के समीप आर्कमेडू नामक स्थान पर इटली की अरेटाइन नाम से प्रसिद्ध बर्तन बनाने की कला के कुछ नमूने जिन पर इटली के बर्तनसाज की मुहर भी है, तथा रोमन लैंप के अवशेष भी मिले हैं।

आंध्र क्षेत्र से भी विदेशी व्यापार की निशानियां मिलती हैं। यहां के कुछ बंदरगाह और आसपास के नगर भी व्यापार में सहायता प्रदान करते थे। अत: पैठन (प्रतिस्थान) से पत्थर तगर, सूती मलमल और अन्य वस्त्र विदेशों को जहाज से भेजे जाते थे। आंध्र के राजा यज्ञश्री ने राज्य के समुद्री व्यापार के प्रतीक रूप में जहाज-मुद्रित दुर्लभ सिक्के चलाये।

21.8 जहाज और विदेशी व्यापार

विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार में व्यापार एक महत्त्वपूर्ण माध्यम रहा। प्राचीन समय से ही हमारे भारतीय जहाज विशाल सागर को पार कर विदेशी तटों पर पहुंचे। उन्होंने वहां बहुत से देशों के साथ व्यापारिक संबंध बनाये। पड़ोसी देशों के साहित्य, कला और शिल्प पर भारतीय संस्कृति और सभ्यता की छाप साफ-साफ दिखायी देती है। यहां तक कि सुदूर अमरीकी तटों सूरीनाम और कैरेबियन द्वीपों पर भी भारतीय संस्कृति के स्मृति चिह्न मिलते हैं।

समुद्रगुप्त (सन् 340-सन् 380) के पास न केवल शक्तिशाली सेना थी बल्कि सशक्त जलसेना भी थी। गंगा-पार प्रायद्वीप में तथा मलय के संग्रहालयों में ऐसे कुछ शिलालेख मिले हैं जो गुप्तकाल में भारतीय नाविकों के क्रिया कलापों को प्रमाणित करते हैं। हर्षवर्धन के (AD 606-647) के काल में भारत की यात्रा करने वाले ह्यूनसांग ने भी उस समय के भारत के विषय में विस्तारपूर्वक लिखा है। चोल शासकों ने एक मजबूत जलसेना बनाई थी और समुद्र पार के देशों पर आक्रमण भी किए थे।

पुर्तगालियों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि कुछ भारतीय व्यापारी पचास जहाजों तक के स्वामी थे। उनके अनुसार भारतीय व्यापारियों के पास निजी जहाजों का होना आम बात थी।

पश्चिम में विभिन्न स्थानों पर मिली हड़प्पा-सभ्यता से संबंधित वस्तुएं सिद्ध करती हैं कि ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में मैसोपोटामिया और मिस्र सभ्यताओं के साथ भारत के व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध थे। यही नहीं, प्राचीन यूनान, रोम और फारस के साथ हमारे देश के सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक विचारों का खूब आदान-प्रादान हुआ। रोम साम्राज्य के साथ व्यापार के फूलने-फूलने का वर्णन रोम के इतिहासकार प्लिनी (Pliny) ने किया जिसे रोम की धन-संपदा का भारत में जाने का दुख था।

21.9 इस संपर्क से भारतीयों ने क्या सीखा

भारतीयों ने विदेशी लोगों से अनेक नई चीजें सीखीं उदाहरणार्थ–ग्रीस और रोम से स्वर्ण सिक्कों की ढलाई, चीन से रेशम बनाने की कला और इण्डोनेशिया से पान को उगाना सीखा। उन्होंने विदेशियों से व्यापार संबंध स्थापित किये। विभिन्न देशों की कला और संस्कृति का भारतीय संस्कृति पर भी प्रभाव पड़ा लेकिन दूसरे देशों में भी इसका प्रतिबिम्ब देखने को मिला।

पाठगत प्रश्न 21.4

1. भारत और अरब के आर्थिक संबंध कितने पुराने है?

2. अरब के कुछ प्रसिद्ध यात्रियों के नाम लिखे।

3. भारत ने खगोल विज्ञान के दो कौन से ग्रंथ अरब को दिए? नाम बतायें।

4. भारत का गणित के क्षेत्र में अरब को क्या योगदान था?

5. 'सुश्रुत-संहिता' का अरबी भाषा में किसने अनुवाद किया?

6. चिकित्सा और औषधि-विज्ञान पर भारतीय ग्रंथों का अरबी में अनुवाद किसके प्रयास पर किया गया? नाम लिखें।

7. भारतीय ज्ञान के किस-किस क्षेत्र में अरबी लोगों ने अध्ययन किया?

8. रोमन सिक्के भारत में कहां पर मिले?

9. अरब में किन चीजों की ज्यादा मांग थी?

10. कुषाण साम्राज्य में स्थायी स्वर्ण मुद्रा को कैसे स्थापित किया गया?

11. 'यवन' कौन थे?

12. प्राचीन भारत में यवनों का क्या कार्य था?

13. इटली की अरेटाइन नाम से प्रसिद्ध बर्तन बनाने वाली कला के नमूने भारत में कहां प्राप्त हुए?

....

14. आंध्र प्रदेश के किस राजा ने राज्य के समुद्री व्यापार के प्रतीक रूप में जहाज मुद्रित दुर्लभ सिक्के चलाये? नाम बतायें।

....

आपने क्या सीखा

- भारतीय संस्कृति का विश्व के अनेक भागों में कई माध्यमों से प्रसार हुआ।
- भारतीय विश्वविद्यालय अपनी शिक्षा की गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध थे और उन्होंने कई देशों के छात्रों को आकर्षित किया। इन छात्रों ने भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार करने में एंजेट की महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।
- संस्कृत और बौद्ध धर्म के ग्रंथों का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया गया। ये ग्रंथ भी भारतीय संस्कृति के विदेशों में प्रसार का एक प्रमुख माध्यम बने।
- जिन देशों में भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रसार हुआ वहां बहुत से बौद्धमठ तथा मंदिर बनाए गए।
- भारतीय कला शैलियों को बहुत देशों के कलाकारों ने अपनाया।
- भारत के महाकाव्य बहुत देशों में प्रसिद्ध हैं। रामायण और महाभारत महाकाव्य, दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में सुप्रसिद्ध महाकाव्य हैं।
- श्रीलंका बौद्ध धर्म को स्वीकार करने वाला प्रथम देश था।
- भारतीय लिपि ब्राह्मी दक्षिण एशियाई देशों में बहुत सी लिपियों के लिए मानक बनी।
- इन देशों में प्राप्त बहुत से शिलालेख भारत और एशियाई देशों के बीच सांस्कृतिक संबंध के महत्त्वपूर्ण साक्ष्य हैं।
- बर्मा, थाइलैंड, श्रीलंका और कम्बोडिया आदि देशों में आज भी बौद्ध धर्म जीवन्त रूप में विद्यमान है।
- अरब सभ्यता को गणित के रूप में भारत का महत्त्वपूर्ण योगदान सिद्ध हुआ।

पाठांत प्रश्न

1. विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार के प्रमुख माध्यम क्या थे?

2. विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार के लिए प्राचीन विश्वविद्यालयों की क्या भूमिका थी?
3. पूर्व एशिया के देशों में बौद्ध धर्म ''शांति धर्म'' के रूप में कैसे पहुंचा?
4. थाईलैंड में भारतीय संस्कृति पर टिप्पणी लिखें।
5. इण्डोनेशिया के धार्मिक स्थापत्य का वर्णन करें।
6. रोम साम्राज्य के साथ भारतीय व्यापार के संबंधों का संक्षेप में विवरण लिखे।
7. प्राचीन भारत की समुद्री तथा विदेशी व्यापार तक गहरी पहुँच थी। विवेचन करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

21.1 1. व्यापारी, शिक्षक और धर्मप्रचारक।

2. नालंदा और वल्लभी विश्वविद्यालय।
3. तारानाथ, तिब्बती विद्वान।
4. कश्यप मातंग और धर्मरक्षित।
5. सम्राट के अनुरोध पर वह संस्कृत के ग्रन्थों को चीनी भाषा में अनुवाद करने गए।
6. जो लोग भारत छोड़कर यूरोप भ्रमण पर गये या वहाँ बस गए, वे ही भारतीय संस्कृति के विदेशों में प्रचारदूत बने।
7. जो लोग, भारत से यूरोप में घूमे और वहीं व्यवस्थित हो गए या रहने लगे वे विदेश में भारतीय संस्कृति के राजदूत बने।

21.2 1. क्योंकि चीन का मुख्य व्यापार मूल्यवान रेशम था!

2. कुची मध्य एशिया में था। यह भारतीय संस्कृति का प्रसिद्ध केन्द्र था। यहां रेशम मार्ग द्विभाजित होता था।
3. खोतान, ओयसिस साम्राज्य।
4. संसार के सुप्रसिद्ध गुफा परिसर।
5. ईसा पश्चात् आठवीं और नौवीं शताब्दी के मध्य में।
6. भारतीय संस्कृति जापान में कोरिया के माध्यम से पहुंची। सन् 552 में कोरिया के सम्राट ने जापानी सम्राट के लिए अनेक प्रकार की भेंट भेजी जिनमें बौद्ध मूर्तिया, सूत्र, पूजा के लिए सामाग्री, कलाकार, चित्रकार मूर्तिकार तथा वास्तुकार भी सम्मिलित थे।

7. जिस लिपि में संस्कृत मंत्र लिखे जाते हैं उसे जापानी भाषा में 'शित्तन' कहते हैं? शित्तन सिद्धम् का ही दूसरा रूप है।
8. 96,000 संस्कृत ग्रंथ

21.3
1. महाविहार और अभयगिरि
2. ये अशोक थे जिन्होंने अपने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा को विद्वानों के साथ श्रीलंका भेजा। बोधगया से बोधिवृक्ष की एक शाखा को वहां पर लगा दिया गया।
3. पालि।
4. यह विष्णु का आवास माना जाता है।
5. वे सुमेरु पर्वत के पांच शिखर/चोटियां कहलाती हैं।
6. राजा सूर्यवर्मन को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया गया है। उसने अपने प्रशंसनीय कार्यों से स्वर्ग में स्थान प्राप्त किया था।
7. यह एक वर्गमील के अन्दर बना हुआ है और इसके चारों ओर खाई है जो इसकी भव्यता को चार चांद लगा देती है।
8. रामायण और महाभारत के दृश्य इस मन्दिर की दीवारों पर खुदवाए गए।
9. समुद्र-मंथन का दृश्य।
10. राम और रावण, कैलाश पर्वत पर शिव-पार्वती तथा कामदेव के विनाश का दृश्य।
11. इन्द्रपुर, अमरावती, विजय, कौठार, पाण्डुरंग।
12. केदाह में और वेल्जली प्रान्त में।
13. त्रिशुल के साथ स्त्री आकृति, नन्दी का सिर, दुर्गा की मूर्ति, गणेश और शिवलिंग।
14. स्वर्ग, रस, गुण, दण्ड, मंत्र, धीपति, लक्ष आदि कुछ शब्द है।
15. लिगोर से अति महत्त्वपूर्ण शिलालेख।
16. पचास मंदिरों से ज्यादा।
17. जावा द्वीप में सबसे विशाल शिव मंदिर प्रम्बनन कहलाता है।
18. शिव, विष्णु और ब्रह्मा के वाहनों के मंदिर।
19. 240 छोटे मन्दिरों से घिरे हुए आठ विशाल मन्दिर।

20. रामायण और कृष्ण।

21. शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, गणेश बुद्ध और खोजे गए अन्य देवी-देवताओं के पांच सौ से ज्यादा स्तुतिगान, स्तोत्र खोजे गए।

21.4 1. यह नौवीं/नवमीं सदी में आरंभ हुआ।

2. सौदागर सुलेमान, अल-मसूदी, इब्न हाकुल, अल-इदरीसी।

3. (अ) ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त – अरब में सिन्धिन कहते हैं।

   (ब) खण्डखाद्य अरकन्द नाम से जाना जाता है।

4. दशमलव प्रणाली के साथ इसकी शून्य अवधारणा।

5. मंख।

6. खलीफा हारुन-अल-रशीद।

7. सर्प, विष, पशु-चिकित्सा पर ग्रन्थ तथा तर्कशास्त्र, दर्शन, नीतिशास्त्र राजनीति, तथा युद्ध विज्ञान पर पुस्तकें।

8. कोयम्बटूर और मदुरै में।

9. काली मिर्च, पान, मसाले, सुगंधित इत्र, बहुमूल्य नगीने जैसे बेरिल, जेम, हीरा, रूबी, माणिक्य मोती, हाथीदांत, रेशम, मलमल आदि।

10. व्यापार में रोम से भारत में सोना लाया गया। इससे कुषण साम्राज्य में स्थायी स्वर्ण मुद्रा कोष स्थापित किया गया।

11. पश्चिमी एशिया और भूमध्यसागरीय क्षेत्र के लोगों के लिए था। इसमें ग्रीक और रोम के लोग भी थे।

12. युद्ध क्षेत्र पर तम्बुओं की पहरेदारी, और मदुराई के द्वारों की सुरक्षा।

13. पांडिचेरी के निकट अरिकामेडू स्थल पर।

14. यज्ञश्री।

पाठ्यचर्या

भारतीय संस्कृति और विरासत

1.0 भूमिका

भारत विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में से एक है जो समय के साथ खरा उतरा है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति को जो चीज अन्य प्राचीन सभ्यताओं से पृथक करती है वह है इसमें बाहरी प्रभावों को समाहित और अन्तर्हित करने की शक्ति जिसके माध्यम से यह उन सबको अपने सांस्कृतिक तानेबाने में समाहित कर लेती है। इस सम्मिश्रित प्रभाव ने न केवल भारत के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को समृद्ध बनाया है बल्कि इसको और अधिक सशक्त भी किया है। भारतीय कला, वास्तुविज्ञान, संगीत, भाषा, दर्शन तथा धर्म सभी में सदियों से चले आ रहे प्रभावों की विभिन्नता प्रयत्क्ष दृष्टिगोचर होती है। भारतीय नागरिक होने के नाते न केवल हमें इस विभिन्नता और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत पर गर्व होना चाहिए अपितु इसका वस्तुनिष्ठ रूप में अध्ययन तथा समालोचनात्मक दृष्टि से आकलन भी करना चाहिए।

2.0 उद्देश्य

इस पाठ्यक्रम के मुख्य उद्देश्य हैं–

- शिक्षार्थियों को भारतीय संस्कृति और विरासत के पक्षों से परिचित कराना;
- धर्म, दर्शन, विज्ञान, कलाएँ, शिक्षा, भाषाएँ और साहित्य के क्षेत्रों मे हमारे पूर्वजों के योगदानों से शिक्षार्थियों को परिचित कराना;
- शिक्षार्थियों को भारतीय संस्कृति के सभी पक्षों में विविधता के अन्तर्गत निहित एकता को सराहने के योग्य बनाना;
- शिक्षार्थियों को विश्व के विभिन्न देशों पर भारतीय संस्कृति के प्रभाव से परिचित कराना;
- शिक्षार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे भारतीय संस्कृति की सम्मिश्रित प्रकृति की सराहना कर सकें;
- विद्यार्थियों में अपने देश के प्रति प्रेम और अपनत्व की भावना को विकसित करना।

3.0 पाठ्यक्रम का विवरण

माड्यूल	शीर्षक	अंक
1	संस्कृति	10
2	विभिन्न युगों में इतिहास और संस्कृति	15
3	भाषाएँ और साहित्य	10

4	धर्म और दर्शन	12
5	चित्रकला, प्रस्तुति कलाएँ और वास्तुविज्ञान	12
6	विज्ञान और प्रौद्योगिकी	10
7	शिक्षा	09
8	सामाजिक संरचना	10
9	भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार	12
	कुल योग	100

पाठ्यक्रम का विस्तृत विवरण

माड्यूल 1 संस्कृति

अंक 10

अध्ययन कालांश 12 घंटे

उपागम

इस माड्यूल में संस्कृति की अवधारणा और अर्थ को समझाने का प्रयास किया गया है। उन प्रमुख घटकों पर भी चर्चा की जाएगी जो इसे विशेष बनाते हैं।

पाठ - 1 संस्कृति - एक परिचय

- संस्कृति की अवधारणा।
- संस्कृति और सभ्यता।
- संस्कृति और विरासत।
- संस्कृति की सामान्य विशेषताएँ।
- विभाग:– संस्कृति के पक्ष।
- मानव जीवन में संस्कृति का महत्त्व।

पाठ - 2 भारतीय संस्कृति

- संस्कृति का अर्थ।
- भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ।
- सांस्कृतिक पहचान–धर्म, क्षेत्र और जातिवाद।
- सांस्कृतिक प्रभाव।

अंक 15

अध्ययन कालांश 35 घण्टे

उपागम

इस माड्यूल का उद्देश्य है– भारतीय संस्कृति के ऐतिहासिक विकास की समझ पैदा करना। युगों-युगों से भारतीय संस्कृति का उद्भव आरेखित किया जाएगा। भारतीय इतिहास के प्राचीन, मध्य और आधुनिक कालों में महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक विकास पर ध्यान आकर्षित करना इस माड्यूल का उद्देश्य है।

पाठ - 3 प्राचीन भारत

- हड़प्पा सभ्यता।
- वैदिक संस्कृति, समाज और धर्म, भौतिक जीवन और अर्थव्यवस्था।
- प्रसिद्ध धार्मिक सुधार।
- पश्चिमी आक्रमण और उनका भारतीय संस्कृति पर प्रभाव।
- यूनानी आक्रमण और उनका भारतीय संस्कृति पर प्रभाव।

महान सम्राट अशोक

- मौर्य और मौर्योत्तरकाल में कला और वास्तुविज्ञान।
- गुप्त काल वास्तुविज्ञान और चित्रकला।
- वैदिक ब्राह्मणवाद का पौराणिक हिन्दुत्व में परिवर्तन।
- नालन्दा का शिक्षा के प्रमुख केन्द्र के रूप में उदय।
- भारत में ईसाई धर्म।
- दक्षिणी भारत-पल्लव और चोल।

पाठ - 4 मध्यकालीन भारत

- मुस्लिम वर्ग का आगमन।
- सूफीवाद का उदय।
- इस युग की राजनैतिक पृष्ठभूमि।
- भारत में सांस्कृतिक विकास।
- धर्म और समाज पर प्रभाव।
- लोक कलाओं, संगीत, चित्रकला का विकास।
- आधुनिक भारतीय भाषाओं का उदय।
- नये मतों का उदय-सिक्ख धर्म, यहूदीधर्म।
- दक्षिण भारत का चोल शासकों के द्वारा विकास, विजय नगर और बहमनी साम्राज्य।

पाठ - 5 आधुनिक भारत

- पाश्चात्य पुनर्जागरण और सुधारात्मक आन्दोलनों का भारत पर प्रभाव।
- 18 वीं शताब्दी के अन्त में भारत की सामाजिक और धार्मिक स्थिति।
- सामाजिक और धार्मिक सुधारक-राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, ज्योतिबा फुले, नारायण गुरु, पंडिता रमा बाई।
- प्रेस और भारतीय भाषाओं और साहित्य का विकास, समाचार पत्रों की भूमिका, कुछ महत्त्वपूर्ण समाचारपत्र।
- स्वातन्त्रयोत्तर भारत–सामाजिक और राजनैतिक विकास

माड्यूल 3 भाषाएँ और साहित्य

अंक 10

अध्ययन कालांश 25 घंटे

यह माड्यूल शिक्षार्थियों को भारत की विभिन्न भाषाओं और साहित्य से परिचित करवाएगा। यह माड्यूल प्राचीन भारत में संस्कृत की महत्त्वपूर्ण भूमिका का परीक्षण करेगा। संस्कृत पालि और प्राकृत में उपलब्ध विशाल साहित्य के विस्तार की गवेषणा करेगा। यह माड्यूल शिक्षार्थियों को तमिल में उपलब्ध संगम साहित्य की समृद्ध विरासत से और अन्य दक्षिण भारतीय भाषाओं तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम आदि में उपलब्ध साहित्य से परिचित कराने का प्रयत्न करेगा।

पाठ - 6 भारतीय भाषाएँ और साहित्य I

- भारतीय भाषाएं - संस्कृत की भूमिका।
- वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद।
- उपनिषद् ग्रन्थ।
- महाकाव्य रामायण और महाभारत।
- भागवद्गीता।
- पुराण और स्मृतियाँ।
- पालि, प्राकृत और संस्कृत में बौद्ध साहित्य, त्रिपिटक, जातक कथाएँ।
- अन्य संस्कृत साहित्य-धर्मशास्त्र, कौटिल्य का अर्थशास्त्र और भास की कृतियाँ, शूद्रक, कालिदास, और बाणभट्ट, चिकित्सा शास्त्र, कश्मीर में संस्कृत साहित्य।
- संगम साहित्य।
- तेलुगु, कन्नड और मलयालम साहित्य।

पाठ - 7 भारतीय भाषाएँ और साहित्य II

- उत्तर-भारतीय भाषाएँ और साहित्य-भाषाओं का विकास, मौखिक एवं लिपिबद्ध-ब्राह्मी लिपि, हिन्दी और इसकी बोलियाँ।
- उर्दू और पारसी साहित्य।
- हिन्दी साहित्य।

- बंगाली, आसामी और उड़िया साहित्य।
- पंजाबी और राजस्थानी साहित्य।
- गुजराती साहित्य।
- सिन्धी साहित्य।
- मराठी साहित्य।
- कश्मीरी साहित्य।
- ईसाई मिशनरियों की भूमिका।
- लिथोग्राफिक प्रेस की भूमिका, मिशनरी विद्यालय और महाविद्यालय।

माड्यूल 4 धर्म और दर्शन — अंक 12

उपागम

इस माड्यूल का उद्देश्य भारतीय दार्शनिक विचारों और युगों युगों से जो प्रमुख धार्मिक परम्पराएँ विकसित हुई और फली फूलीं, उनके विकासक्रम को खोजना है। इस माड्यूल में आधुनिक युग में चलाए गए विभिन्न आन्दोलनों पर भी चर्चा की जाएगी जो भारत के विभिन्न धर्मों में प्रचलित विभिन्न कुरीतियों को दूर करने के लिए चलाए गए।

पाठ - 8 प्राचीन भारत में धर्म और दर्शन

- पूर्व वैदिक और वैदिक धर्म।
- नास्तिक धार्मिक आन्दोलन–बौद्ध धर्म और जैन धर्म।
- आस्तिक धर्म वैष्णव धर्म, शैव धर्म और शाक्त।
- लोक सांरूप यक्षों और नागों की पूजा।
- दक्षिण में वैष्णव और शैव आन्दोलन।
- वैदिक दर्शन सांरूप, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा।
- चार्वाक दर्शन।
- जैन दर्शन।
- बौद्ध दर्शन।

पाठ - 9 मध्यकालीन भारत में धर्म और दर्शन

- सूफी आन्दोलन - चिश्ती और सुहरावर्दी सिलसिला, सूफी आन्दोलन का महत्त्व।
- भक्ति आन्दोलन - भक्ति की निर्गुण और सगुण धाराएँ, कबीर, नानक, मीराबाई और अन्य संतों की भूमिका।
- मध्यकालीन भारत में दर्शन–विशिष्टाद्वैतवाद, शिवाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत।

पाठ - 10 आधुनिक भारत में धर्म सुधार आन्दोलन

- ब्रह्म समाज और राजा राममोहन राय।
- प्रार्थना समाज और रानाडे।
- आर्य समाज और दयानन्द सरस्वती।
- रामकृष्ण मिशन और स्वामी विवेकानन्द।
- थियोसोफिकल सोसाइटी और एनी बेसेन्ट।
- अलीगढ़ आन्दोलन और सैयद अहमद खान।

माड्यूल 5 चित्रकला, प्रस्तुति कलाएँ और वास्तुविज्ञान

अंक 12

अध्ययन कालांश 25

उपागम

भारतीय संस्कृति की पहचान प्रायः इसकी कलात्मक अभिव्यक्तियों से की जाती है वह चित्रकला हो, वास्तुविज्ञान हो, संगीत या नृत्य कला हो। यह इसलिए कि कलाएँ ही संस्कृति का सर्वाधिक प्रत्यक्ष पक्ष होता है। एक प्रकार से इन्हें सांस्कृतिक उपज कहा जा सकता है। इस माड्यूल में विभिन्न भारतीय कलाओं जैसे चित्रकला, हस्तशिल्प, संगीत, नृत्य, वास्तुकला और शिल्प के उद्भव को खोजने का प्रयत्न किया जाएगा।

पाठ - 11 भारतीय चित्रकला

- प्राचीन भारत में कला-हड़प्पा कालीन सभ्यता में रचनात्मक चित्रकला, बौद्ध चित्र, पहाड़ी गुफाएँ-चित्रशालाए और शिल्पशास्त्र।
- मध्यकालीन भारत में कला-मुगल लघु चित्रकला पहाड़ी चित्रकला।
- आधुनिक युग में कला- रवीन्द्रनाथ और अभिन्द्रनाथ ठाकुर, नन्दलाल बोस, एमएफ हुसैन और अन्य कलाकार।
- अलंकृत कला-रंगोली, अल्पना, ऐपन, रंगावली, कुल्लम, मांडना।
- लोक-चित्रकला-मिथिला चित्रकला, कलमवारी चित्रकला, वर्ली चित्रकला, कालीघाट चित्रकला।
- भारतीय हस्तशिल्प-राजस्थान की बंधनी कला, बीदरी पोचमपल्ली साडियाँ, तमिलनाडू की कांजीवरम् साडियाँ, मंसूर की सिल्क और चन्दर की कलाकृतियाँ, आसाम का बेंत का फर्नीचर और बंगाल से टेरे कोटा मॉडल।

पाठ 12 प्रस्तुति कलाएँः संगीत, नृत्य और नाटक

- प्रदर्शनीय कलाओं की अवधारणा-संक्षिप्त इतिहास।
- भारतीय शास्त्रीय संगीत के विभाग-हिन्दुस्तानी और कर्नाटक।
- आधुनिक भारतीय संगीत और लोकगीत।

- भारत के नृत्य विभिन्न नृत्य शैलियाँ–आधुनिक भारत के प्रसिद्ध नर्तक।
- नाटक शास्त्रीय एवं लोक भारतीय रंगमंच का उदय, नाटकों की विभिन्न विधाएँ, महत्त्वपूर्ण नाटक और नाटककार।
- प्रस्तुति कलाएँ और उनका मानवीय व्यक्तित्व पर प्रभाव।

पाठ – 13 भारतीय वास्तुविज्ञान

- वास्तुविज्ञान, इसका उद्‌भव और भारतीय परिप्रेक्ष्य।
- भारतीय वास्तुविज्ञान का विकास–प्रागैतिहासिक, हड़प्पा काल, वैदिक काल में विकास, पूर्व ऐतिहासिक काल, गुहा वास्तुविज्ञान, पहाड़ी से काट कर बनाए गए मंदिर, मुक्त रूप से स्थिर मन्दिर, मुगल काल में वास्तुकला।
- अंग्रेजों के काल में वास्तु विज्ञान और आधुनिक काल।

माड्यूल 6 विज्ञान और प्रौद्योगिकी

अंक 10

अध्ययन कालांश 30

उपागम

संस्कृति के अन्य क्षेत्रों की तरह विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी भारतीयों ने अपने पूर्वजों से बहुत समृद्ध धरोहर प्राप्त की है। इस माड्यूल में भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में इतिहास के अन्तर्गत हुए महत्त्वपूर्ण विकास पर चर्चा की जाएगी। इसमें आधुनिक भारत में वैज्ञानिकों द्वारा दिए गए योगदान का भी मूल्यांकन किया जा रहा है।

पाठ – 14 भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी

- प्राचीन भारत में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में किया गया विकास; नक्षत्र विज्ञान और गणित के क्षेत्र में आर्यभट और वराहमिहिर का योगदान, चरक और सुश्रुत का योगदान, धातु विज्ञान में विकास, भूगोल के क्षेत्र में विकास।
- मध्य भारत में वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक विकास–इस्लामिक विश्व और यूरोप का प्रभाव, मकतबों की मदरसों की भूमिका, कारखानों की स्थापना, गणित, रसायन शास्त्र, नक्षत्र विज्ञान और औषधि के क्षेत्रों में विकास, कृषि के क्षेत्र में नवाचार, नई फसलों का जन्म, सिंचाई की नई तकनीक।
- वर्तमान भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी– सी एस आई आर और डी आर डी ओ जैसी शोध संस्थाओं का विकास, आणविक शक्ति आयोग की स्थापना, अन्तरिक्ष उपग्रहों का विमोचन, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में की गई अन्य प्रगति।

पाठ – 15 प्राचीन भारत के वैज्ञानिक

- प्राचीन भारत के गणितज्ञ
- आर्यभट्ट
- ब्रह्मगुप्त
- नागार्जुन
- नक्षत्रविज्ञान
- ज्योतिर्विज्ञान

- भास्कराचार्य
- कणाद
- वराहमिहिर
- रसायन शास्त्र

- आयुर्वेद
- चरक
- योग
- पतन्जलि

पाठ - 16 मध्यकालीन भारत में विज्ञान और वैज्ञानिक

- मध्य कालीन भारत में विज्ञान।
- गणित शास्त्र।
- जीवविज्ञान।
- रसायन शास्त्र।
- नक्षत्र विज्ञान।
- औषधि विज्ञान।
- कृषि।

पाठ - 17 आधुनिक भारत के वैज्ञानिक

- श्रीनिवास रामानुजन - बरनौली अंकों पर शोधपत्र
- सी.वी. रमन - रमन प्रभाव।
- जगदीशचन्द्र बोस - क्रेस्कोग्राफ और बेतार यन्त्रों का आविष्कार।
- होमी जहांगीर भाभा- टी आई एफ आर की प्रारम्भ करना, आणविक शक्ति आयोग के प्रथम अध्ययन।
- डा. विक्रम साराभाई - एक महान उद्योगपति-सैनिक यन्त्र और पेंसिलिन का आविष्कार, भारतीय राष्ट्रीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान के राष्ट्रीय उद्योग के अध्यक्ष, थुम्बा आणविक राकेट मोचन स्टेशन का निर्देशन, पद्मभूषण और पद्मविभूषण उपाधियों के प्राप्तकर्ता।
- डा. ए.पी जे अब्दुल कलाम, भारत के 11 वें राष्ट्रपति, इसरो, डी आर डी ओ, जैसी सम्मानित संस्थाओं में सम्मानित पद, भारत को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने में कटिबद्ध।

माड्यूल 7 शिक्षा

अंक 9

अध्ययन कालांश 30

उपागम

शिक्षा सांस्कृतिक प्रसारण का साधन है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक सामाजिक वर्ग में उपलब्ध संचित ज्ञान को एक सुनियोजित रूप से आगे प्रसारित किया जाता है। भारत में बहुत प्राचीन काल से ही शिक्षा की एक अपनी विशिष्ट व्यवस्था है। जिसमें प्राय: अन्य सभ्यताओं के प्रभाव भी सन्निहित हैं यह माड्यूल भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों में शिक्षा के क्षेत्र में, विषयों और महत्त्वपूर्ण विषय वस्तुओं के विकास को दर्शाता है। इस माड्यूल में शिक्षार्थियों

को आधुनिक युग की पहली और बाद की व्यवस्थाओं के सबल और निर्बल पक्षों का समालोचनात्मक अध्ययन करने का भी अवसर प्राप्त होगा।

पाठ - 18 भारत में शिक्षा

- प्राचीन भारत में शिक्षा - वैदिक आश्रम, मौर्यकालीन मौर्योत्तर कालीन धर्मप्रचारक, जैन और बौद्ध मठ, महाविद्यालय शिक्षा का उद्देश्य, पढ़ाये गए विषय, नारी शिक्षा को स्थिति।
- मध्य भारत में शिक्षा- मदरसे, मकतब, पारम्परिक और तार्किक विज्ञान, अन्य विषय जैसे लोक प्रशासन, रेखागणित और लेखा-जोखा जैसे विषयों का परिचय।
- आधुनिक काल में शिक्षा - अंग्रेजी राज्य की विरासत, मेकाले के मिनिट्स, वुड घोषणा पत्र, भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट।
- स्वातन्त्र्योत्तर भारत में शिक्षा - प्रारम्भिक शिक्षा, सार्वभौमिक पहुँच और स्थायित्व, माध्यमिक शिक्षा 10+2+3 व्यवस्था, व्यावसायिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, सामाजिक सम्बद्धता और तकनीकी शिक्षा, राष्ट्रिय शिक्षा नीति, पत्राचार शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा

माड्यूल 8 -सामाजिक संरचना

अंक 10

अध्ययन कालांश 30

उपागम

भारतीय संस्कृति के सभी पक्षों को जानने के लिए समाज की संरचना का अध्ययन आवश्यक है। इस माड्यूल का उद्देश्य है भारतीय समाज के सभी विभागों का और इसकी संरचना का आकलन करना है। इसमें वर्तमान भारत के कुछ समसामयिक विषयों का भी परीक्षण करने का प्रयत्न किया गया है।

पाठ - 19 भारतीय सामाजिक संरचना

- जनजातिय समूह, वर्ण और जाति।
- अस्पृश्यता।
- दासता।
- पुरूषार्थ, आश्रम और संस्कार।
- जजमानी प्रथा।
- भारतीय परिवार और विवाह।
- नारी का स्थान।

पाठ - 20 समकालीन भारत में सामाजिक सांस्कृतिक मुद्दे

- जातिप्रथा।
- दहेज व्यवस्था।
- बालिकाओं और नारियों की समस्याएँ।

- महिलाओं से संबंधित समस्याएँ।
- साम्प्रदायिकता।
- वृद्धों की समस्या।
- गरीबी और बेरोजगारी की समस्या।
- विद्वता का बहिर्गमन।
- बालकों की समस्या।

माड्यूल 9 भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार

अंक 12

अध्ययन कालांश 30

उपागम

बहुत प्राचीन काल से ही भारतीयों का बाहरी दुनिया के साथ सम्पर्क बना रहा है। वे बहुत दूर-दूर तक यात्राओं पर गए और जहां भी गए वहाँ एक अमिट छाप छोड़ी। इसी प्रकार इसके सम्पूर्ण इतिहस में भारत में भी बहुत से विदेशी यात्री यहां आए जो अपने साथ भारतीय संस्कृति के कुछ अंश साथ ले गए। इसके साथ-साथ भारत ने भी इन विभिन्न लोगों और उनकी सभ्यताओं से भी कुछ अंश अपने में समाहित कर लिए। इस माड्यूल में हम भारत और विश्व के अन्य देशों के साथ सांस्कृतिक प्रभावों के अन्त मिश्रण का निरीक्षण करेंगे।

पाठ - 21 भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार

- सांस्कृतिक आदान प्रदान के साधन-व्यापारियों, शिक्षकों, राजदूतों, धर्मप्रचारकों और जिप्सियों द्वारा।
- मध्य और पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति।
- अरब सभ्यता के साथ भारत के सांस्कृतिक सम्बन्ध।
- भारत का रोम के साथ सम्बन्ध।
- भारत और विश्व के बीच सांस्कृतिक आदानप्रदान में जलपोतों और व्यापार की भूमिका।

आज ही पूरा भरकर इस प्रारूप को डाक से भेज दीजिए

अंतिम मोड़ और बंद कर दीजिए

पहला मोड़

पाठों पर आपकी प्रतिक्रिया 1-21

पाठ सं०	पाठ का नाम	विषय वस्तु				भाषा		प्रयोग किए गए चित्र		आपने जो सीखा है		
		सरल	कठिन	रुचिवर्धक	अस्पष्ट	आसान	जटिल	उपयोगी	अनु–उपयोगी	उपयोगी बहुत	कुछ उपयोग	उपयोगी नहीं
1.												
2.												
3.												
4.												
5.												
6.												
7.												
8.												
9.												
10.												
11.												
12.												
13.												
14.												
15.												
16.												
17.												
18.												
19.												
20.												
21.												

चौथा मोड़

तीसरा मोड़

प्रिय शिक्षार्थी!

आशा है इस पाठ्य सामग्री को पढ़कर आपको आनंद आया होगा। हमने पाठ्य-सामग्री को प्रासंगिक, उपयोगी और रोचक बनाने का पूरा प्रयास किया है। विषय सामग्री का निर्माण दोतरफा प्रक्रिया होती है आपकी प्रतिक्रिया के आधार पर हम इसका सुधार करेंगे। कृपया थोड़ा-सा समय निकाल कर इस फॉर्म को भर कर हमें भेजिए।

आपके सहयोग के लिए धन्यवाद।

पाठ्यक्रम समन्वयकर्ता

भारतीय संस्कृति और विरासत

प्रश्नों पर आपकी प्रतिक्रिया

पाठ सं०	पाठ का नाम	पाठगत प्रश्न		पाठांत प्रश्न		
		उपयोगी	अनुपयोगी	आसान	कठिन	बहुत कठिन
1.						
2.						
3.						
4.						
5.						
6.						
7.						
8.						
9.						
10.						
11.						
12.						
13.						
14.						
15.						
16.						
17.						
18.						
19.						
20.						
21						

दूसरा मोड़

आपके सुझाव

____
____
____
____

क्या आपने भारतीय संस्कृति और विरासत की कोई अन्य पुस्तक पढ़ी? हाँ/नहीं

यदि हाँ, तो कारण बताइए।

____
____

नाम: ____________________

नामांकन सं: ____________________

पता: ____________________

____

विषय: ____________________

पुस्तक सं.: ____________________

डाक
टिकट

पाठ्यक्रम समन्वयक
भारतीय संस्कृति और विरासत
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
ए-24-25, इंस्टीट्यूशनल एरिया
सेक्टर - 62, नोएडा (उ. प्र.)
पिन - 201309

संलग्नक स्वीकार्य नहीं